तुलसी की काव्य-कला

(उनकी रचनाओं में)

[लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

लेखिका—
डॉ० भाग्यवती सिंह
एम० ए०, पी एच० डी० (डी० लिट् रिसर्च स्कालर)

१९६२

प्रकाशक—
सरस्वती पुस्तक सदन आगरा

प्रकाशक
प्रतापचन्द्र जायसवाल
संचालक
सरस्वती पुस्तक सदन आगरा

प्रथम संस्करण संवत् २०१९

मई १९६२

मूल्य बारह रुपया पचास नये पैसे

मुद्रक
हिन्दुस्तान प्रिंटर्स
लोहामंडी आगरा।

भूमिका

अपने जीवन के धारा और विकास की विषम दुन्दभि के स्वर
यह स्वर अपनी समग्रता में इतने तीक्ष्ण व त्वरितगामी हो गये हैं
की धार में पनी हुई भारतीय संस्कृति और कला अब अवाक
रहती है।

प्रभाव आज हमारी मानसिक विचारणा के क्षेत्र में भी है।
समीक्षा के प्रांगण में भी वह परिव्याप्त है। नये काव्य-प्रतीक
प्रयासों ने हमको अन्तश्चेतना को नया उन्मेष प्रदान किया
एडलर आदि का स्वप्न सिद्धान्त मनोविश्लेषण प्राप्त हुआ
मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष की ठोस मान्यतायें भी उसके निकट आई
कला मूल्यों ने भी हमारी सौंदर्य चेतना को कम प्रभावित नहीं

नए दृष्टिकोण से लिखी जाने वाली नवीन प्रयोगों की रचनाओं
का महत्व है। वहीं प्राचीन महाकवियों की कृतियों का भी
पर पुनर्मूल्यांकन अपेक्षित है। गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों
के आधार पर तो थोड़ा बहुत अध्ययन हुआ है। पर उनकी
रूप में होना शेष था। उसी को पूरा करने का प्रयत्न
गया है।

की नवीनताओं की ओर संकेत करने के पूर्व मैं यह बात स्वीकार
नहीं हिचकती कि गोस्वामी तुलसीदास की काव्य कला का
व्यापक और गम्भीर है कि उसके गर्भ में न जाने कितने ऐसे
उद्घाटन के हेतु अभी कितने ही विवेकशील अनुसन्धायकों
होगी। ऐसी स्थिति में तुलसी जैसे महाकवि की कला
मैंने दूढ़ निकाली हैं ऐसा कहना साहस मात्र है।

प्रयास का लक्ष्य अपने पूर्ववर्ती अथवा वर्तमान आलोचकों की
नहीं है। अभी तक गोस्वामी जी पर जितने ग्रन्थों की रचना
महाकवि की कला सम्बन्धी सभी विशेषताओं का सर्वाङ्गीण
। इस न्यूनता की यथा संभव पूर्ति करते हुए कवि की कला के
कराना ही हमारे प्रबन्ध की नवीनता है। नूतन प्रणाली

प्रकाशक
प्रतापचन्द्र
संचालक
सरस्वती

प्रथम संस्करण

मई १९५८

मूल्य बारह

मुद्रक
हिन्दुस्तान
१९५८

के आलोचनात्मक दृष्टिकोण से भी कवि की कला के महत्त्व पर [illegible] प्रकाश किया गया है।

वर्तमान प्रबन्ध की नवीनता और मौलिकता को स्पष्ट करने के लिए कवि तुलसी पर उनकी काव्य कला के सम्बन्ध में लिखी गई आलोचनाओं का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है।

इस श्रेणी में मिश्रबन्धु, शिवनन्दन सहाय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, चन्द्रबलि पाण्डेय, माता प्रसाद गुप्त की मानस की कला आदि पर की आलोचनाएँ उन बन्धुओं का नाम सब प्रथम साभिप्राय रखा गया है। सन् १९[illegible] रत्न के प्रकाशन काल से पूर्व तुलसी की साहित्यिक विशेषता के और लोगों का ध्यान नहीं गया। गर्भी खोजों और रचनाओं की विचार में पड़े थे। मिश्र बन्धुओं ने एक प्रकार से तुलसी की साहित्यिक की नींव डाली। हिन्दी नवरत्न में गोस्वामी जी की कुछ विशेषताएँ [illegible] बतलाई गई हैं। और कुछ नाम मात्र की त्रुटियों का भी संकेत है। गोस्वामी जी के मत' शीर्षक में उनके मतों का निर्देश है। तदनन्तर मानस रचना की शारीरिक स्फुट गुण के रूप में दिखलाई गई है। अन्य साम्मुखिक तुलना करके गुणों का आधिक्य दिखलाकर कवि को सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया गया है।

श्री शिवनन्दन सहाय ने कला सौष्ठव विषयक जो कार्य गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वितीय खण्ड में है। उसे प्रथम लेखक चुने हुए स्थलों में अन्य विद्वानों द्वारा दिखलायी गई त्रुटियों का निराकरण अध्यात्म रामायण के नवरत्न रामायण में अथवा रामायण [illegible] के पात्र रूप चरित्र से पता मिलता मिलती है आदि शीर्षक से प्रतिपादन किया है। फिर कुछ अध्यायों में अन्य कृतियों की चर्चा कवि की सर्वज्ञता उसके दार्शनिक विचारों का परिचय तथा अध्यात्म रामायण से मानस को कथावस्तु की तुलना करके ग्रंथ के ग्रंथ के प्रतिपादों की बहिरंग परीक्षा विशेष रूप से हुई है। इसमें गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है और तुलसी के मानस तथा संस्कृत ग्रंथों की जो प्रतिच्छाया मिलती है उसकी ओर लेखक पाठकों का ध्यान इसी से आकृष्ट किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामी जी की कला का मह तुलसीदास में उद्घाटित किया है। पहले उनकी यही आलोचना तृतीय खण्ड में संगृहीत थी। किन्तु सन् १९३३ में जो [illegible] संस्करण निकला है उसमें और अधिक लिखा गया है।

विषय से प्रकमत होता है कि इसमें काव्य सौष्ठव को ही व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। तुलसी की काव्य पद्धति से मध्यर परिणाम शीर्षक हिन्दी साहित्य में गोस्वामी जी का स्थान पर्यन्त प्राय सर्वत्र काव्य की ही चर्चा है। इसके अतिरिक्त पुस्तक में कुछ अन्य ऐसी आलोचना भी है जिसका कला विषय से सम्बन्ध नहीं है।

शुक्ल जी ने गोस्वामी जी की काव्य कला का जो मर्म अभिव्यक्त किया है उसके सामने अन्य समीक्षकों की कलात्मक आलोचनाएँ तुच्छ सी प्रतीत होती हैं। तथापि अन्य आलोचनाओं का प्रयास व्यर्थ नहीं कहा जा सकता।

बाबू श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के गोस्वामी तुलसीदास में कला का मर्म विशेष रूप से उद्घाटित नहीं किया गया। फिर भी ग्रंथ में एकादश अध्याय 'गोस्वामी जी की कला' शीर्षक में सामान्यतया प्रतिपादित है कि तल्लीनता रचनापटुता रचना चातुर्य आदि सभी दृष्टियों से गोस्वामी जी की रचना पूर्ण है यह स्पष्ट किया गया है।

श्री सद्गुरु शरण अवस्थी ने गोस्वामी जी की कला का जो सौष्ठव व्यक्त किया है वह उनकी सन् १६३६ में प्रकाशित 'तुलसी के चार दल' पहली पुस्तिका में है। 'काव्य कला और गोस्वामी जी की निजी प्रेरणा' शीर्षक के अधिकांश पृष्ठों में साहित्यिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इस संक्षिप्त चर्चा में समालोचना का दृष्टिकोण नवीन है। इसमें शुक्ल जी के लोकधर्म वाले सिद्धान्त पर आक्षेप है। लेखक का दृष्टिकोण गंभीर है।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने गोस्वामी जी की जिन कलात्मक विशेषताओं को अनावृत किया है वे भी प्रशंसनीय हैं। त्रिपाठी जी के ग्रन्थ तुलसीदास और उनकी कविता के प्रथम दो भागों में लगभग १०० पृष्ठ हो गए हैं। हजार पन्ना के विस्तृत क्षेत्र में एक ही बात का वर्णन कई बार करने और किसी उदाहरण के लिये अवतरण पर अवतरण उद्धृत करने के अतिरिक्त दूसरे प्रसंगों का अभाव है। कदाचित् यही त्रुटि त्रिपाठी जी में विशेष रूप से खटकती है। जो कुछ भी हो त्रिपाठी जी ने तुलसी की भाषा उनकी महाकवित्व शक्ति एवं उनकी काव्य सम्पदा पर काफी प्रकाश डाला है।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी की कला के सम्बन्ध में संक्षेप रूप से अपने ग्रन्थ 'तुलसीदास' में विचार किया है। गोस्वामी जी के चरित्र चित्रण भाव चित्रण वस्तु विन्यास तथा शिल्प आदि शीर्षकों में उनकी कला की झलक मिलती है। इस अध्याय में गुप्त जी ने बड़ी नवीनता से तुलसी की कला पर प्रकाश डाला है। चरित्र चित्रण में गुप्त जी के पूर्ववर्ती कथा ग्रन्थों से तुलना करते हुए तुलसी के चरित्र चित्रण सम्बन्धी कला पर विचार प्रकट किया है। अन्य स्थल भाव चित्रण वस्तु शिल्प आदि जो गुप्त जी ने लिये हैं। उनमें संक्षेप रूप से ही गोस्वामी जी की कला पर प्रकाश डाला गया है।

गोस्वामी जी के कला पारखिता में राय बहादुर लमगोड़ा भी प्रशंसनीय है। तुलसी ग्रन्थावली के तृतीय खंड में संगृहीत अपने निबन्ध 'हिन्दी भाषा' और तुलसी कृत रामायण के अतिरिक्त लेखक ने स्वतन्त्र रूप से विश्व साहित्य में राम चरित मानस ग्रंथ को भागों में लिखा है। इसमें लेखक ने विश्व साहित्य में श्रेष्ठतम समझे जाने वाले शेक्सपियर के कुछ नाटकों से तुलसी के मानस की विषय रूप में तुलना करके उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

इन ग्रंथों में किसी भी ग्रन्थ की एवं गोस्वामी जी की कला के प्रत्येक अंग पर पूर्ण रूप से व्यवस्थित और वैज्ञानिक से विवेचना प्रस्तुत नहीं की गई। जिन ग्रन्थों में की भी गई है उनमें विवेचन का एक अंश मात्र है। कला का प्रत्येक पक्ष स्वतन्त्र रूप से नहीं आ सका। इसी हेतु प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः उपर्युक्त सामग्री के इस संक्षिप्त विवेचन एवं परीक्षण से इतना तो स्पष्ट हो गया कि गोस्वामी जी की काव्य कला के सर्वांगीण अध्ययन का प्रयास अभी तक नहीं हो सका थोड़ा बहुत यदि हुआ भी है तो वह पूर्ण नहीं। वह अन्य अध्ययन प्रसंगों के बीच एक अंश मात्र है। जहाँ तक उक्त सामग्री के ऐतिहासिक महत्व एवं सामयिक उपयोगिता का प्रश्न है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप रेखा निर्धारित करने में कोई एक ग्रन्थ निश्चित रूप से पथ प्रदर्शन नहीं कर सका। कुछ स्फुट स्थलों को छोड़कर सारे प्रबन्ध के विषय विभाजन विवेचन शैली तथा विश्लेषण पद्धति में लेखिका का निजी प्रयत्न है। अस्तु, हम प्रस्तुत अध्ययन के विशेष मौलिक अंशों की ओर संकेत करते हुए उसकी रूप रेखा प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध १२ अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में 'कविता और कला' शीर्षक से पूर्व पीठिका है। इसके अन्तर्गत कविता के स्वरूप और कला के विभिन्न अंग शब्द अर्थ रस अलंकार छन्द आदि पर विद्वानों के मतों का आधार लेते हुए नये निष्कर्ष दिये गए हैं।

दूसरे अध्याय में 'तुलसी का काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण' शीर्षक में गोस्वामी जी के रस भाव ध्वनि वक्रोक्ति और भाषा आदि के विषय में उनके दृष्टिकोण की विवेचना की गई है। गोस्वामी जी के काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण पर अभी तक समीक्षकों की दृष्टि पूर्ण केन्द्रित नहीं गई। इस दृष्टि से इस अध्याय का अपना विशेष महत्व है।

तीसरा अध्याय तुलसी की कला में मर्यादा और औचित्य विषय से सम्बन्धित है। इसमें मर्यादा और औचित्य पर अलग-अलग नवीनता से प्रकाश डाला गया है। इस दिशा में नवीनता यह है कि मर्यादा और औचित्य को गोस्वामी जी के काव्य की सूक्ष्म उक्तियों द्वारा अलग अलग व्यक्त किया गया है ऐसी विवेचना प्रायः अन्यत्र नहीं मिलती।

चौथा अध्याय तुलसी का शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला से सम्बन्धित है। जिसके अन्तर्गत काव्य शास्त्रीय एवं सामान्य दृष्टियों से तुलसी के शब्दों की कलात्मकता की छानबीन की गई है। इस अध्याय में लेखिका ने केवल चुनी हुई कुछ बातों को जिनमें कुछ मौलिक निष्कर्ष निकलते थे विस्तार से लिये हैं। शेष बातों को संकेत भर किया है। इसमें लेखिका की विवेचन शैली अपनी है।

पाँचवाँ अध्याय तुलसी की संगीत और चित्रात्मकता परक कला से सम्बन्धित है। जिसके अन्तर्गत विभिन्न पदों की राग रागिनी को लेकर गोस्वामी जी की संगीत निपुणता और चित्रों को सजीव करने की कला पर मौलिक ढंग से विचार किया गया है।

छठा अध्याय तुलसी की अलंकार प्रयोग सम्बन्धी कला पर है। इसमें विभिन्न ग्रंथों के अलंकारों को लेकर उसमें गोस्वामी जी की कला को अभिव्यक्त करने का जो प्रयत्न हुआ है वह पूर्ण रूप से अपना है।

सातवाँ अध्याय गोस्वामी जी के प्रबन्ध सौष्ठव और वर्णन-पद्धति-विषय से सम्बन्धित है। इसमें बड़े सुचारु रूप से इसके प्रथम भाग प्रबन्ध सौष्ठव के अन्तर्गत गोस्वामी जी के प्रबन्ध मानस की कथा वस्तु में विभिन्न राम काव्यों की अपेक्षा कैसे विशिष्ट सौष्ठव का सम्पादन हो गया है। इस प्रश्न को लेकर उसमें गोस्वामी जी की कला का सौंदर्य दिखलाने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय के दूसरे अंश वर्णन पद्धति में गोस्वामी जी के विभिन्न वर्णनों और उनके प्रकृति चित्रण पर विचार किया गया है। इसमें यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि यद्यपि तुलसी साहित्य में आलम्बन रूप का प्रकृति चित्रण प्रचुर मात्रा में नहीं पाया जाता। फिर भी उनकी रसग्राही भावुकता को केवल के पास पास नहीं दिखाया जा सकता। उन्होंने प्रकृति की नैसर्गिक विभूति को सुदूर ऊँचाई के वातायन से झाँकने की नहीं उसके निकट आकर उसके विशाल एवं लघु उर्वर तथा अनुर्वर उपादानों के साथ अपना सामीप्य स्थापित करने की चेष्टा भी की थी।

आठवाँ अध्याय तुलसी की चरित्र-चित्रण की कला से सम्बन्धित है। इसमें गोस्वामी जी के पात्रों में चरित्र चित्रण की कला कैसे आई है इसकी विवेचना की गई है।

नवाँ अध्याय छन्द योजना और संवाद कला पर है। इसके अन्तर्गत गोस्वामी जी की संवाद और छन्द सम्बन्धी विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है।

दसवाँ अध्याय तुलसी के भाव वर्णन और रस निरूपण पर है। जिसमें गोस्वामी जी की भाव वर्णन और रस परक कला पर प्रकाश डाला गया है।

ग्यारहवाँ अध्याय में तुलसी की शैली और उक्ति वैचित्र्य में क्या कला है इसे स्पष्ट किया गया है।

बारहवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में है। इसमें गोस्वामी जी की कला और तक कवि प्रभाव के बारे उनका मूल्यांकन किया गया है। इसमें गोस्वामी जी के ...

कवियों का जो संक्षिप्त तुलनात्मक विचार किया गया है इससे यह अध्याय पूर्णत मौलिक है।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी की काव्य कला का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत १२ अध्यायों के सहारे संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता नवीनता के सम्बन्ध में तथा उसकी रूप रेखा और आधार मूल सामग्री के विषय मे लेखिका की ओर से इतना निर्देश पर्याप्त होगा।

यहाँ तक तो साहित्यिक सामग्री के इतिहास और उसके प्रयोग एवं आकलन की बात हुई। अब दो शब्द इसकी सामग्री के स्रोत के सम्बन्ध में भी कहना आवश्यक है।

विशेष रूप से इस विषय में नागरी प्रचारिणी सभा मानस संघ रामायण चाहि। कलकत्ता विश्वविद्यालय का पुस्तकालय लखनऊ विश्वविद्यालय में टैगोर पुस्तकालय तथा काशी के तुलसी सम्बन्धी स्थानों का नाम उल्लेखनीय है जहाँ की उपयोगी सामग्री के निरीक्षण का लेखिका को शुभअवसर मिला है। उपर्युक्त सभी केन्द्रों के अधिकारियो विशेषत टैगोर पुस्तकालय के अध्यक्ष आदरणीय तारासिंह जी और अन्य अधिकारियों के प्रति लेखिका आभारी है। जिन्होंने उसे अपने विषयान्तर्गत सामग्री के अवलोकन और निरीक्षण करने का पूर्ण अवसर प्रदान किया।

इस ग्रन्थ के लेखन काल मे जिन महानुभावों से लेखिका को सहायता मिली है। उनमें सर्व प्रथम लेखिका अपने पूज्य गुरुवर तथा प्रबन्ध निर्देशक लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर लेखिका के लिये प्रेरणा के स्रोत पांडित्य सौजन्य और सरलता की समन्वित मूर्ति श्रद्धेय डा० भगीरथ मिश्र के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है जिनके अनवरत पथ प्रदर्शन स्नेह प्रोत्साहन तथा अनुकम्पा से ही यह कार्य अपने इस रूप में और इतने शीघ्र पूर्ण हो सका है।

साथ ही श्रद्धेय डा० दीनदयालु गुप्त अध्यक्ष हिन्दी विभाग का लेखिका हृदय से आभार मानती है जिनके स्नेह परामर्श और प्रोत्साहन से लेखिका को बल मिला है।

हिन्दी विभाग के अन्य गुरुवर्ग और विशेषतः आदरणीय डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित (?)... विपिन बिहारी त्रिवेदी के प्रति भी लेखिका अपनी सम्मान भावना अभिव्यक्त करती है जिनकी सहानुभूति इस प्रयास में सहायक रही है।

इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के लेखन काल में अन्य अनेक महानुभावों से समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव प्राप्त होते रहे हैं उन सभी के प्रति लेखिका हृदय से कृतज्ञ है। काशी विश्वविद्यालय के श्रद्धेय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और आदरणीय पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से भी लेखिका को प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय में जो बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हुए हैं उनके हेतु वह उनके प्रति हृदय से आभार मानती है।

इसके अतिरिक्त भारत के राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद का लेखिका

हृदय से आभार स्वीकार करती है जिन्होंने स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन प्रदान कर इस कार्य को शीघ्र समाप्त करने की प्रेरणा दी है।

जिन पुस्तकों निबन्धों तथा लेखों से इस प्रबन्ध के लिखने में सहायता ली गई है उनके लेखकों के प्रति भी लेखिका आभार व्यक्त करती है।

मानस मर्मज्ञ पं० दीन बन्धु जी व्यास के व्याख्यान भी प्रस्तुत प्रबन्ध में सहायक रहे हैं। अतः उनके प्रति भी कृतज्ञता का भाव प्रकट करना लेखिका का कर्तव्य है। अन्त में मैं अपने पूज्य पिता श्री सीताराम सिंह 'आनन्द' वैद्यराज के प्रति कृतज्ञता प्रगट नहीं कर सकती क्योंकि उनका वरदहस्त तो सदैव ही मेरे सिर पर रहेगा। तुलसी की कला के विषय में मुझे अपने पूज्य पिता जी से जो बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हुए हैं उनके द्वारा प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखन में मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली है।

इस स्थल पर लेखिका अपनी परम प्रिय सहयोगिनी कुमारी कमला रानी तिवारी रिसर्च स्कालर लखनऊ विश्वविद्यालय को भी धन्यवाद देना नहीं भूल सकती जिन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध के सब शीर्षक अपनी कलात्मकता लेखनी से लिखकर अपनी कला-प्रियता का परिचय दिया है।

अन्त में केवल एक बात और विनय इतना अवश्य और विस्तृत है कि यदि यह प्रयास अनुसन्धान की भावी सम्भावनाओं की ओर इंगित करके शोधार्थियों में नए विविध बोधन को भाव उद्दीप्त करने वाला तथा सामान्य पाठकों में विषय के प्रति अभिरुचि जाग्रत करने वाला सिद्ध हुआ तो लेखिका अपना श्रम सफल समझेगी।

टाइप सम्बन्धी अशुद्धियों को सुधारने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु संशोधन के उपरान्त भी यदि कोई त्रुटियाँ अवशेष रह गई हों तो लेखिका उसके लिए क्षमा चाहती है।

अनुक्रम

)

विषय — पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय

विषय

पहला अध्याय



काव्य और कला

कविता का स्वरूप—

काव्य शब्द कव धातु से बना है। संस्कृत के विभिन्न विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से बतलाई है। किसी ने इसकी व्याख्या —

कवनीयम् काव्यम्।[1]

लिखकर की है। दूसरे स्थान पर इसकी व्युत्पत्ति —

कवेरिदम् कार्यं भावो वा इति काव्यम्।[2]

कहकर बतलाई गई है।

इसके साथ ही साथ यहाँ कवि शब्द की उत्पत्ति भी जान लेनी चाहिये क्योंकि काव्य जिसका कर्म है उसके स्वरूप को समझे बिना उसके कर्म को समझना सम्भव नहीं। संस्कृत के कुछ ग्रंथों में कवि शब्द की उत्पत्ति दी गई है जिनमें से कुछ पर हम विचार करते हैं।

संस्कृत के अमर कोष में कवि शब्द की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि सर्वज्ञ और सब विषयों के वर्णन करने वाले को 'कवि' कहते हैं।[3] वेद में कवि शब्द का प्रयोग परमेश्वर के अर्थ में किया गया है।[4] इसी प्रकार भागवत में कवि शब्द ब्रह्मा के हृदय के हेतु प्रयुक्त हुआ है।[5]

कुछ अन्य स्थलों पर इसका प्रयोग व्यास और वाल्मीकि के लिए भी हुआ

---

1 The Dwanyaloka of Anandvardhanacharya edited with the Didhiti commentary Introduction Index etc. By Ravisekhara Pandit Nath Sharma—काव्य लक्षणानुख्यानम् प्रकरण पृ० १२

2. मेदिनी कोष or A Dictionary of Homonymous Words by Medinikar Page 80.

३ अमर कोष महामहोपाध्याय श्री सतीश चन्द्र सम्पादित पृ० ६०

४ शुक्ल-यजु० ४०/८

५ तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये—श्रीमद्भागवत १।१।१

मिलता है। लोक में कवि शब्द साधारणतया प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऐसे काव्य का मानव जीवन में बड़ा महत्व है।[1]

कविता का स्वरूप बड़ा व्यापक है। जितना ही व्यापक है उतना ही सूक्ष्म भी। अतः इसे समस्त की परिधि में बाँधना अत्यन्त कठिन कार्य है। काव्य की व्यापकता का प्रमाण यही है कि संसार के सभी देशों और जातियों में प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में यह पाया जाता है।

कविता के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा भारतीय और पाश्चात्य दोनों जाति के आचार्यों ने की है। पहले हम भारतीय आचार्यों के मत का उल्लेख करेंगे। बाद में पाश्चात्य विद्वानों के विचारों की विवेचना की जायेगी।

संस्कृत में काव्य का स्वरूप निरूपण—

श्रीमद्भागवत गीता में वाङ्मय को तप सत्य प्रिय और हित कर वाङ्मय तप कहा गया है।[2] काव्य इसी तप का परिणाम है। उनके इस काव्य सम्बन्धी स्वरूप निरूपण के आधार पर हम उसी को काव्य कहेंगे जो किसी के लिए उद्वेग कर न हो। साथ ही जिसमें सत्यं शिवं और सुन्दरम् तीनों की ही प्रतिष्ठा की गई हो। संस्कृत के काव्याचार्यों ने काव्य के स्वरूप के विषय में बहुत कुछ लिखा है। सबसे प्रथम भरत मुनि की परिभाषा विचारणीय है। उनके आधार पर काव्य की परिभाषा

---

१ यद्यपि मानव जीवन विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ चुका है। वह पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ सकता है। पृथ्वी के ऊपर का भेद उसने जान लिया है। चन्द्र पर उसका आधिपत्य हो चुका है। तत्वों के विश्लेषण से उसने विद्युत रेडियो आदि का आविष्कार किया है। परन्तु क्या उसके माध्यम से वह मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचान सका है? क्या वह उसके भीतर उपस्थित होने वाली प्रेम और करुणा की अनुभूतियों को समझ सका है? यदि कुछ भी अंशों में हम हाँ कह सकते हैं तो हमें मानना पड़ेगा कि उसका श्रेय काव्य को है। जिसके बिना हम एक कवि के साथ कह सकते हैं।

'आदमी को भी मुयस्सर नहीं इन्साँ होना'। विज्ञान के सर्वनाश रूप स्वार्थ भाव के मंडराते मेघों को अस्थाप्य और प्रेम भावना के झोंके से उड़ा सकने की सामर्थ्य काव्य और साहित्य में ही है। जो मानवता की पहचान के लिए हृदय का विस्तार है।

—डा० मनोरम मिश्र-काव्यशास्त्र—पृ०२

२ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

—श्रीमद्भागवद् गीता १७।१५

इस प्रकार की जा सकती है।[1] जो कोमल पदों से युक्त और गूढ़ शब्द एवं अर्थ से विरहित अर्थात् सर्व साधारण सहज ही जिसको समझ ले जा सके नाट्य रूप में प्रयोग किए जाने के उपयुक्त रस की विविध धाराओं को प्रवाहित करने वाला जो सन्धियों के संधान से युक्त हो वही श्रेष्ठ काव्य है।

'अग्नि पुराण'[2] में शास्त्रादि और इतिहासादि से काव्य को भिन्न बतलाया है। 'भामह' ने काव्य में शब्द और अर्थ की स्थिति को भी महत्व दिया है।[3] आचार्य कुन्तक ने काव्य को वक्रोक्ति जीवित स्वीकार किया है।[4] इसके पश्चात जो संस्कृत की सबसे प्रमुख परिभाषा आती है वह है आचार्य 'मम्मट'[5] की। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है कि शब्द और अर्थ का वह समन्वित रूप जो दोष-रहित हो तथा कहीं-कहीं अलंकार युक्त भी हो काव्य है। अधिकांश परवर्ती आचार्यों ने इसका ही अनुसरण किया है। हेमचन्द्र विद्यानाथ आदि की काव्य-परिभाषायें मम्मट से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं।

संस्कृत में 'विश्वनाथ' की भी काव्य-परिभाषा बहुत प्रसिद्ध है। वे रसवादी थे इस कारण उन्होंने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है।[6] 'पंडित राज जगन्नाथ' ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।[7] भवभूति ने भी अपने उत्तर

---

१ मृदु ललित पदाढ्यं गूढ शब्दार्थ हीनं ।
जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृत्य योज्यम् ।
बहुकृत रस मार्ग—सन्धि संधान युक्तं ।
स भवति शुभ काव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम् ।

भरतमुनि—नाट्यशास्त्र पृ० १६।११८

२ संक्षेपाद्-वाक्य-मिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना-पदावली ।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोष वर्जितम् ॥

—अग्निपुराण ३३७।६।७

३ शब्दार्थौ सहितौकाव्यम् भामह काव्यालंकार १।१६

४ शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापार शालिनि ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी ॥

—कुन्तक—वक्रोक्ति जीवितम् १।७

५ तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुन क्वापि ।
—मम्मट-काव्य प्रकाश (अनु० हरिमंगल मिश्र)—पृ० १६ हि० सं०

६ वाक्यं रसात्मकं काव्यम् विश्वनाथ-साहित्य दर्पण १।३

७ रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।
—पंडितराज जगन्नाथ-रसगंगाधर—पृ० ६ (सं० २०११)

मिलता है। लोक में कवि शब्द साधारणतया प्रतिभा सम्पन्न सम्यार्थ कार के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऐसे काव्य का मानव जीवन में बड़ा महत्व है।[1]

कविता का स्वरूप बड़ा व्यापक है। जितना ही व्यापक है उतना ही सूक्ष्म भी। अत इसे शब्दस की परिधि में बाँधना अत्यन्त कठिन कार्य है। काव्य की व्यापकता का प्रमाण यही है कि संसार के सभी देशों और जातियों म प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में यह पाया जाता है।

कविता के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा भारतीय और पाश्चात्य दोनों कोटि के आचार्यों ने की है। पहले हम भारतीय आचार्यों के मत का उल्लेख करेंगे। बाद में पाश्चात्य विद्वानों के विचारों की विवेचना की जायेगी।

संस्कृत में काव्य का स्वरूप निरूपण—

श्रीमद्भागवत गीता में वाङ्मय को तप सत्य प्रिय और हित कर वाङ्मय तप कहा गया है।[2] काव्य इसी तप का परिणाम है। उनके इस काव्य सम्बन्धी स्वरूप निरूपण के आधार पर हम उसी को काव्य कहेंगे जो किसी के लिए उद्वेग कर न हो। साथ ही जिनमें सत्यं शिवं और सुन्दरम् तीनों की ही प्रतिष्ठा की गई हो। संस्कृत के काव्याचार्यों ने काव्य के स्वरूप के विषय में बहुत कुछ लिखा है। सबसे प्रथम भरत मुनि की परिभाषा विचारणीय है। उनके आधार पर काव्य की परिभाषा

---

१ यद्यपि मानव जीवन विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ चुका है। वह पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ सकता है। पृथ्वी के ऊपर का भेद उसने जान लिया है। जल पर उसका आधिपत्य हो चुका है। तत्वों के विश्लेषण से उसने विद्युत रेडियो आदि का आविष्कार किया है। परन्तु क्या उसके माध्यम से वह मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचान सका है? क्या वह उसके भीतर छिपी होने वाली प्रेम और करुणा की अनुभूतियों को समझ सका है? यदि कुछ भी अंशों में हम हाँ कह सकते हैं तो हमें मानना पड़ेगा कि उसका श्रेय काव्य को है। जिसके बिना हम एक कवि के साथ कह सकते हैं।

'आदमी को भी मुयस्सर नहीं इन्सां होना'। विज्ञान के अन्वेषण रूप सत्यानाश के मँडराते मेघों को करुणा और प्रेम-भावना के झोंके से उड़ा सकने की सामर्थ्य काव्य और साहित्य में ही है। जो मानवता की पहचान के लिए हृदय का विस्तार है।

—डा० भगीरथ मिश्र-काव्यशास्त्र—पृ० २

२ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

—श्रीमद्भागवद् गीता १७।१५

इस प्रकार की जा सकती है।[1] जो कोमल पदों से युक्त और गूढ़ शब्द एवं अर्थ से विरहित अर्थात् सर्व ग्राह्य सहज हो सबको समझ में आ जाने वाला नृत्य में प्रयोग किए जाने के उपयुक्त रस की विविध धाराओं को प्रवाहित करने वाला जो सन्धियों के संधान से युक्त हो वही श्रेष्ठ काव्य है।

अग्नि पुराण[2] में शास्त्रादि और इतिहासादि से काव्य को भिन्न बतलाया है। 'भामह' ने काव्य में शब्द और अर्थ की स्थिति को भी महत्व दिया है।[3] आचार्य कुन्तक ने काव्य का वक्रोक्ति जनित लक्षण कहा है।[4] इसके पश्चात जो संस्कृत की सबसे प्रमुख परिभाषा आती है वह है आचार्य मम्मट[5] की। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है कि शब्द और अर्थ का वह समन्वित रूप जो दोष रहित हो तथा कहीं-कहीं अलंकार युक्त भी हो काव्य है। अधिकांश परवर्ती आचार्यों ने इसका ही अनुसरण किया है। हेमचन्द्र विद्यानाथ आदि की काव्य-परिभाषायें मम्मट से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

संस्कृत में विश्वनाथ की भी काव्य-परिभाषा बहुत प्रसिद्ध है। वे रसवादी थे इस कारण उन्होंने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है।[6] पंडित राज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।[7] भवभूति ने भी अपने उत्तर

---

१ मृदु ललित पदाढ्यं गूढ शब्दार्थहीनं।
जनपद सुख बोध्यं युक्तिमन्नृत्य योज्यम्।
बहुकृत रस मार्गं सन्धि सन्धान युक्तं।
स भवति शुभ काव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम्।

भरतमुनि—नाट्यशास्त्र पृ० १६।११८

२ संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम्॥

—अग्निपुराण ३३७।६।७

३ शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् भामह काव्यालंकार १।१६

४ शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥

—कुन्तक—वक्रोक्ति जीवितम् १।७

५ तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।
—मम्मट-काव्य प्रकाश (अनु० हरिदत्त मिश्र)—पृ० ११ द्वि० सं०

६ वाक्यं रसात्मकं काव्यम् विश्वनाथ-साहित्य दर्पण १।३

७ रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।
—पंडितराज जगन्नाथ रसगंगाधर—पृ० ६ (सं० २०११)

राम चरित के प्रारम्भ में वाङ्मय को आत्मा अविनश्वर कला कह कर उसकी प्राप्ति के हेतु प्रार्थना की है।[1]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में काव्य के स्वरूप के संबन्ध में विस्तृत विवेचन होता रहा है। संस्कृत साहित्यकारों की परिभाषाओं पर यदि हम सूक्ष्मता से विचार करें तो स्पष्ट हो जावेगा कि उन्होंने काव्य पर दो दृष्टियों से विचार किया है। एक काव्य के शरीर की दृष्टि से और दूसरा काव्य की आत्मा की दृष्टि से। काव्य शरीर से सम्बन्धित मत दो मार्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। एक शब्द-निष्ठ और दूसरा शब्द और अर्थ उभयनिष्ठ।

हिन्दी विद्वानों के काव्य-सम्बन्धी विचार—

हिन्दी के विद्वानों ने भी काव्य के स्वरूप को समझाने का प्रयास किया है। आचार्य शुक्ल रस को महत्व देते हैं।[2] इस प्रकार वह प्राचीन रसवादी आचार्यों के अनुयायी प्रतीत होते हैं। अपनी पुस्तक काव्य कला तथा अन्य निबन्ध में श्री जय शंकर प्रसाद काव्य की आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति मानते हैं। ऐसी संकल्पात्मक अनुभूति जिसका सम्बन्ध विश्लेषण से विकल्प या विकल्प से नहीं होता।[3] आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने भी काव्य के स्वरूप पर अपने विचार प्रकट किए हैं।[4]

इस प्रकार देखा जाता है कि हिन्दी-विद्वानों में प्रधान रूप से दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं। एक तो वह जिस पर पाश्चात्य काव्य स्वरूप-निरूपण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और दूसरा वह जो भारतीय काव्य सम्बन्धी मत का अनुयायी है। महावीर

---

१ भवभूति-उत्तर रामचरित-१।१

२ जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के हेतु मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे ही कविता कहते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि—कविता क्या है शीर्षक लेख पृ० १८१

३ आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल रूप में ग्रहण कर लेती है काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।

—जयशंकर प्रसाद—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—पृ० ११

४ (१) कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक अथवा श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है।

(२) मनोभाव शब्द का रूप धारण करते हैं वही कविता है चाहे वह पद्यात्मक हो अथवा गद्यात्मक हो।

(३) अन्तःकरण की वृत्तियों के प्रकाशन का नाम कविता है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी—रसज्ञ रंजन—पृ० ५०

प्रसाद द्विवेदी प्रथम वर्ग के प्रतिनिधि विद्वान माने जाते हैं। शुक्ल जी और प्रसाद आदि द्वितीय वर्ग के पोषक प्रतीत होते हैं। काव्य के वास्तविक स्वरूप को समझने के हेतु हमें पाश्चात्य काव्य-तत्वों और भारतीय काव्य तत्वों दोनों से ही परिचित होना आवश्यक है। अतएव यहाँ पाश्चात्य विद्वानों के काव्य-सम्बन्धी मतों पर एक विस्तृत दृष्टि डालकर काव्य के स्वरूप का निर्णय किया जा सकेगा।

काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों का मत—

पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है।

वर्ड्सवर्थ ने काव्य में कल्पना के स्थान पर भावना को महत्व दिया है।[1] उनका कथन है कि कविता उत्कट भावनाओं का सहजोद्रेक है। उसकी उत्पत्ति शान्ति की सच्ची अनुभूतियों से होती है। मिल्टन' ने काव्य में रस और उत्कट भावनात्मक आवेग को महत्व दिया है। वह उसकी प्रभावात्मकता और सरलता में ही विश्वास रखते हैं।[2] कालरिज् काव्य में भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति को शब्दों द्वारा सजाने के पक्ष में हैं। उनकी दृष्टि में सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता है।[3] शैली ने सरस काव्य में करुणा को आवश्यक माना है।[4] वह अपने काव्य को विषाद के क्षणों की अभिव्यक्ति कहता है। उसका विचार है कि वह हमारे सबसे मधुर गान हैं जिनमें विषादपूर्ण विचार व्यक्त किये जाते हैं।

मैथ्यु आर्नोल्ड ने काव्य में कल्पना के स्थान पर जीवन और विचारात्मक व्याख्या को महत्व देते हुए लिखा है कविता—जीवन की आलोचना है।[5]

डा० जानसन ने कहा है कि कविता सत्य और आनन्द के मिश्रण की कला है। जिसमें बुद्धि की सहायता के हेतु कल्पना का प्रयोग किया जाता है।[6]

उपसंहार—

वास्तव में अधिक विद्वानों ने काव्य को कला के रूप में देखा है। यद्यपि कला केवल चमत्कारिता के अर्थ में न होकर व्यापक अर्थ में भी देखी गई है।

---

1 Poetry is the sponteneous overflow of powerful feelings It takes its origin from emotions recollected in tranquillity

Wordsworth.

2. "Poetry should be simple, sensuous and passionate."

—Milton-Essay on Education.

3 Poetry is the best words in their best order

—Colridge

4 'Our Sweetest songs are those that tell of saddest thought.

—Shelley

5 "Poetry is at bottom a criticism of life.'

—Matthew Arnold.

6. "Poetry is at art of uniting pleasure with truth by calling Imagination to the help of reason

—Dr Johnson.

कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर भाषा में अभिव्यक्त करने की कला कविता है।[1]

इस परिभाषा में काव्य के समस्त अंगों का समावेश हो गया है। काव्य के भीतर अभिव्यंजना कौशल ही रहता है। साथ ही कल्पना अनुभूति तथा विचार तत्व भी काव्य में महत्व रखते हैं। इस परिभाषा में केवल एक दोष है वह यह कि काव्य के हेतु यह आवश्यक नहीं कि वह सदैव संगीतमय मधुर शब्दों का ही हो। कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचार काव्य के भीतर कवि की मौलिकता का स्वरूप इस प्रकार खड़ा किया जा सकता है। काव्य कल्पना और अनुभूति से गृहीत सत्य की रमणीक शब्दों में अभिव्यक्ति है।[2]

अपने काव्यशास्त्र में डा० भगीरथ मिश्र ने काव्य के मूल में ५ तत्वों :—

(१) शब्द
(२) अर्थ
(३) भाव
(४) कल्पना और
(५) बुद्धि या विचार

की सत्ता स्वीकार की है।[3] जो हमारे विचार में मान्य है। तथा इन्हीं के आधार पर उत्कृष्ट काव्य की सृष्टि भी की जा सकती है।

कविता में इन्हीं तत्वों की आवश्यकता है और इनके आधार पर ही काव्य का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है। कविता में भावात्मकता की प्रधानता है। जीवन की प्रत्येक वस्तु को चित्ताकर्षक बनाकर कवि अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा अस्तित्व शून्य पदार्थों को भी मूर्त बनाकर नाम और रूप प्रदान करता है। सत्य में कवि अनुभूति तथा कल्पना द्वारा ही जीवन की व्याख्या करता है। इस प्रकार कविता

---

1 "Poetry is the art of expressing in melodious words, thoughts which are the creation of imaginations and feeling."

—Chambers Dictionary

२ डा० भगीरथ मिश्र—काव्यशास्त्र—पृ० १८ ११।

३ वैज्ञानिक के द्वारा वर्णित फूल नहीं वरन् अपने द्रुम की टहनी में हरी कटावदार सजीव पत्तियां के बीच सुकुमार, सुन्दर मनोहारी रूप से मलयानिल की झकोर पर झूमता और इठलाता हुआ प्राणियों के नेत्रों को आकर्षित करते हुए प्रातः खिलकर संध्या को धूप में मुरझाने वाला फूल है। जिसके इस प्रकार के कल्पना भाव और अनुभाही रूप को कवि हमारे सामने प्रत्यक्ष करता है। सत्य का यह वास्तविक रूप काव्य की आत्मा है। इस आत्मा को शरीर का रूप देने वाले पांच तत्व यही हैं। शब्द अर्थ भाव कल्पना और विचार।

डा० भगीरथ मिश्र—काव्यशास्त्र—पृ० १८ ११।

के कल्पना तथा भाव प्रमुख तत्व कह जा सकते हैं। और उनके अभाव में कोई भी कविता कविता नहीं कहला सकती। किन्तु केवल इन्हीं दो तत्वों के आधार पर किसी साहित्यिक रचना को कविता की संज्ञा प्रदान नहीं की जायेगी। जिस रचना में उपर्युक्त सभी तत्वों का समावेश होता है। वही रचना कविता की कोटि में आ सकती है। कविता में कल्पना तथा भाव के साथ साथ संगीतात्मकता भी होनी चाहिये। अत भाव तथा कल्पना का क्रमबद्ध वर्णन ही दूसरे शब्दों में कविता कहला सकती है। कविता में उपयुक्त तत्वों का समावेश कलात्मक विशेषता का देता है। आगे हम कविता और कला के सम्बन्ध का विश्लेषण करेंगे।

कला का स्वरूप-

कला के स्वरूप के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों और पाश्चात्य विद्वानों में थोड़ा मतभेद है। दोनों के कला सम्बन्धी दृष्टिकोणों को समझने के हेतु यह आवश्यक है कि हम उनके मतों की यहाँ अलग-अलग समीक्षा करें।

भारतीय विद्वानों का कला-परक दृष्टिकोण—

संस्कृत साहित्य में ज्ञान का विभाजन दो भागों में किया गया है।[1]

१—विद्या ; तथा

२—उपविद्या

विद्या के अन्तर्गत काव्य को रक्खा गया है। कलायें उपविद्या के अन्तर्गत रक्खी गई हैं। संस्कृत के विद्वान साहित्य अथवा काव्य को कला से भिन्न समझते थे।[2]

यहाँ पर विचारणीय यह है कि प्राचीन विद्वानों ने काव्य और कला के बीच यह विभाजन रेखा क्यों खींची। वास्तव में दोनों में क्या अन्तर है इस बात का स्पष्ट करने के हेतु हमें दण्डी के कला सम्बन्धी मत पर विचार करना होगा।[3] उनके मतानुसार नृत्य गीत, कला काम और अर्थ के आश्रित है। इस प्रकार उन्होंने कला से साहित्य का स्पष्ट भेद स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में कला कामार्थ संश्रय [काम मे सहायक] होती है। किन्तु साहित्य कोरा कामार्थ संश्रया' किसी भी प्रकार नहीं माना जा सकता। साहित्य या काव्य के सम्बन्ध में हमारे यहाँ बहुत ऊँची धारणायें थी। उसे हमारे यहाँ के मनीषी आत्मा की कला मानते थे। क्षेम राज ने कला को वस्तु को संवारने वाली कहा है।[4] भारतीय विद्वान कला को केवल साहित्य से ही

१ पं० राजशेखर-काव्यमीमांसा-पृ ७०

२ साहित्य संगीत कला विहीन साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन ।

—भर्तृहरि

३ नृत्यगीत प्रभृतयः कला कामार्थ संश्रया ;

—दण्डी काव्यादर्श पृ० १७

४ कलयति स्वरूपं आवेशयति वस्तूनिवा ।

क्षेमराज—शिवसूत्र विमर्शिनी—पृ० ००

भिन्न नहीं समझते थे उनकी दृष्टि में यह ज्ञान शिल्प और विद्या से भी भिन्न वस्तु है। भरत मुनि ने भी यही बात स्वीकार की है।[1] अभिनव गुप्त ने कला को और भी संकुचित रूप दे दिया है। नाट्यशास्त्र की उपर्युक्त पंक्ति का विवेचन करते समय उन्होंने कला का स्पष्टीकरण 'कला गान बजाने आदि को कहते हैं' लिख कर दिया है।[2]

इससे प्रकट होता है कि भारत में कला शब्द का प्रयोग फाईन आर्ट (ललित कला) के लिए भी होता था। भामह ने कला को धर्म अर्थ काम मोक्ष का साधन माना है।[3]

कामशास्त्र के ग्रन्थों में वात्स्यायन का 'कामसूत्र' बहुत प्रसिद्ध है। इसकी रचना ११२ ई० पू० में हुई थी। इस ग्रन्थ में ६४ कलाओं का उल्लेख है।[4] इसी आधार पर भारत में ६४ कलाओं को मान्यता दी गई है।

भारत में कला वास्तव में एक लोकरंजन की वस्तु मात्र समझी जाती थी उसके विपरीत साहित्य आत्मा की अभिव्यक्ति होने के कारण अलौकिक समझा जाता था।

कला के स्वरूप को बलदेवप्रसाद उपाध्याय जी ने अपने ग्रन्थ साहित्य में बड़ी सुन्दरता से इस प्रकार स्पष्ट किया है।[5]

इस प्रकार निष्कर्ष यह निकला कि भारत में कला काव्य से भिन्न समझी जाती थी।

कला के स्वरूप के सम्बन्ध में हिन्दी विद्वानों के विचार आगे कविता और कला के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए बतलाये जायेंगे।

---

१ न तद् ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
भरत मुनि-नाट्य शास्त्र-पृ० ४६

२ कला गीत वाद्यादिका।
—अभिनवगुप्त आचार्य ध्वन्यालोक—पृ ७०

३ धर्मार्थ काम-मोक्षाणां वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिम् करोति कीर्ति च साधुकाव्य-निबन्धनम्।
—भामह—काव्यालंकार-पृ १७

४ श्री वात्स्यायन महर्षि—काम सूत्र प्रथम भाग पृ० ८७-८८

५. कला को उन दूसरी वस्तुओं के साथ भी मिश्रित नहीं करना चाहिये जो किसी विशिष्ट फल के उत्पादन में क्रिया शील रहती हैं। चाहे वह फल सुख आनन्द उपभोग तथा उपयोग हो या कल्याण तथा पुण्य हो। साधारणतः समझा जाता है कि कला की वस्तु आनन्द उत्पन्न करती है वह स्वतः कल्याणकारी होती है या पुण्य सम्पादन में सूक्ष्म होती है। परन्तु क्रोचे इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं।

कला के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य विद्वानों के विचार—

कला के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने भी बड़े ही विस्तार से विचार किया है। यहाँ पर हम कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की काव्य सम्मतियों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

अरस्तू—अरस्तू की 'पोइटिक्स' में कला का प्रत्यक्ष नाम तो कहीं भी नहीं लिया गया किन्तु काव्य नाटक वेणुवादन तन्त्री नाद आदि को अनुकरण कहा गया है।[1]

हीगल—हीगल ने भी अपनी पुस्तक 'The philosophy of fine Art' में कला पर अच्छा विवेचन प्रस्तुत किया है। वह कला और सौन्दर्य में पार्थक्य नहीं समझते।[2] दूसरे शब्दों में सौन्दर्य को ही कला मानते हैं। कहने का अभिप्राय यही है कि सौन्दर्य की कला के हेतु इतनी अधिक आवश्यकता है कि हम सौन्दर्य तत्व का कला की परम आवश्यकता मानकर उसे अलग नहीं कर सकते।

क्रोचे—कला के सम्बन्ध में क्रोचे का विचार भी बड़ा महत्व रखता है। क्रोचे अभिव्यंजनावादी विद्वान था। उसका कला सम्बन्धी सिद्धान्त इस पर आधारित है। वह अभिव्यंजना को ही सौन्दर्य मानता था। सौन्दर्य कला का प्राण है। उसके मतानुसार मूर्त तथा अमूर्त अभिव्यंजना ही कला है।[3]

टालस्टाय—टालस्टाय ने 'What is Art' नामक एक पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने कला सम्बन्धी विविध प्रचलित मतों की समीक्षा की है। पुनरथ उन्होंने

कला का मूल्य आँकने के हेतु हमें अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं होती। कला का उद्देश्य कला ही है। श्रोता के हृदय में आनन्द उत्पन्न करना न तो कवि को इष्ट है और न दर्शक के चित्त को किसी चित्र के द्वारा आनन्द का उदय कराना किसी चित्रकार को पसन्द है। संगीत एक कला है। संगीत के द्वारा कलाकार का उद्देश्य किसी श्रोता के हृदय को आनन्द में तन्मय बनाना नहीं होता। वह तो श्रोता के तारों के ऊपर उंगलियाँ घुमाता है। और एक विचित्र स्वर भणी उत्पन्न करता है। कला का यह उद्देश्य नहीं जो आलोचक मानते आये हैं।

बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य शास्त्र-शीर्षक 'कला का स्वरूप'—पृ० ५२८

1 Epic poetry comedy as for the most part the music of the flute and of the lyre all these are in the most general view of them imitation"

—Aristotle Poetics—Page 37

2 If we are to propound the necessity of our subject matter in other words the beauty of art or the beautiful is a result of antecedents such as when regarded relatively to their true notional concept conduct us with scientific necessity to the similar notion of fine art it-self

—The philosophy of fine Art by G W E. Hegal—Page 31 Part I

3 Benedetto Croce—Aesthetic—page 38

अपना मत प्रतिपादन किया है।[1] उनके मतानुसार कला की प्रक्रिया अपने हृदय में उठी हुई भावनाओं की अनुभूति को किया, रेखा वर्ण ध्वनि आदि शब्द के सहारे व्यक्त और स्पष्ट करने की चेष्टा है। यहाँ पर उस पक्ष को प्रस्तुत कर देना अनुचित न होगा। कला जैसा कि आध्यात्मवादी कहते हैं ईश्वर या सौन्दर्य के किसी रहस्य पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति नहीं है। वह तत्व वेत्ताओं के कथनानुरूप अपने एकत्रीभूत ओज व साहस का उपयोग करने वाली क्रीड़ा भी नहीं है। तथा हम उसे भाव व भी नहीं कह सकते। वास्तव में उसका कार्य मनुष्य को एक ही भाव में परस्पर बाँधना है। तथा व्यक्ति और मानव की हित कामना करना है।[2]

ब्रैडले—ब्रैडले ने Oxford lecture on poetry में अपने कविता विषयक व्याख्यान व तर्कों के विराट आयोजन के साथ कला-कला के लिये ही मानी है। उन्होंने कला को बाह्य संसर्ग से बिल्कुल मुक्त रख कर उसको प्रथम ही अपने में स्वतन्त्रपूर्ण और स्वानुशासित संसार माना है।[3] ब्रैडले की अन्य बातों को हम महत्व नहीं देते किन्तु कला का अर्थ स्वयं कला ही है। ऐसा कह कर उन्होंने बड़ी मार्मिकता का परिचय दिया है।

काडवेल—इन्होंने अपनी पुस्तक Illusion and Reality में कला पर अन्य बातों के साथ कला का विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने जीवन से निरपेक्ष रह कर ही कला की सार्थकता मानी है।[4] किन्तु जीवन पक्ष को छोड़ देने से कला में कुछ तत्व ही नहीं रह सकता।

---

1 To evoke in our self a feeling one has once experienced and having looked it in one self thereby means of movement line colours sounds or forms expressed in worlds so to transmit that feeling, that is the activity of Art

—Tolstoy—What is Art—Page 38

2. Art is not, as the metaphysicians say the manifestation of same mysterious idea of beauty or God it is not as the aesthetical physiologists say a game in which man lets off his excess of stored-up energy it is not the expression of man s emotions by external signs. It is not the pleasure but it is a means of union among men Joining them together in the same feelings, and in dispensable for the life and progress towards well-being of individuals and of humanity

—Tolstoy—What is Art—Page 33

3. Its nature is to be not apart nor yet a copy of the real world (as we commonly understand that phrase) but a world in itself independent, compete autonomous.

A C. Bradley—Oxford Lectures on Poetry Page 5

4 To appreciate a work of art We need bring with us nothing from life no knowledge of its ideas and affairs, no familiarity with its emotions.

Caudwell—Illusion and reality—Page 25

रिचर्ड्स—रिचर्ड्स महोदय ने मानसिक प्रक्रिया से कलावाद की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर अच्छा कुठाराघात किया है। उनके मतानुसार कविता विश्व शेष सृष्टि से भिन्न कोई यथार्थता ही नहीं रखती। इसके न खास नियम हैं और न खास विशिष्टतायें। प्रत्येक कविता हमारी अनुभूति का एक खण्ड मात्र होती है।[1] इन सभी बातों से यह निश्चित होता है कि कला किसी नई और अपरिचित दुनियाँ की चीज नहीं है। वह इसी संसार की वस्तु है और उससे हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है।

पाश्चात्य विद्वानों के कला सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करने पर निम्न लिखित बातें दिखलाई पड़ती हैं—

(१) कला अभिव्यञ्जना का ही मूल रूप है।
(२) कला में दिव्यता भी रहनी चाहिए।
(३) कला सत्य की सजीव और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

यह अभिव्यक्ति बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव की होकर प्रभाव प्रधान होती है। अतएव कला में ये बातें भी व्यंजित हो जाती हैं जो इसकी सत्य प्रकृति से स्वतः स्पष्ट नहीं होतीं। किन्तु फिर भी उसमें उनकी व्यंजना होती है। कलाकार इस व्यंजना को अपनी कृति में मूर्त कर देना चाहता है। शुक्ल जी के मतानुसार एक ही अनुभूति को दूसरे तक पहुँचाना कला का रहस्य होता है।[2]

हमारी समझ में कला अनुकृति है। किन्तु यह अनुकृति न तो प्रतिकृति ही कही जा सकती है और न प्रतिबिम्ब ही। वह प्रतिकृति और अनुकृति होते हुए भी अभिनव होती है। यह नूतनता कवि की प्रतिभा द्वारा लाई जाती है। इसी को कवि कलाकार की मौलिकता कहेंगे। कोई भी प्रतिकृति कला तभी कही जा सकती जब उसमें एक अनिर्वचनीय मौलिकता होगी।

इस अनिर्वचनीय मौलिकता से ही वह कला का रूप नवीन प्रतीत होता है। यह नवीनता ही पाठकों में आनन्द का संचार करती है। इस दृष्टि से हम कला को अनुकृति मान सकते हैं। कला की प्रकृति को केवल अनुकृति मानने वालों के हम पक्षपाती नहीं हैं। क्योंकि कला में जब तक नवीनता न होगी तब तक उसमें सौन्दर्य नहीं आयेगा। वह जड़ ही बनी रहेगी। सजीव कला तो वास्तव में अनुभूत सौन्दर्य की अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति होती है। अतः दोनों ही दृष्टियों से कला के अन्तर्गत अलंकार रीति वक्रोक्ति ध्वनि, रस छन्द और संगीतात्मकता चित्रात्मकता एवं प्रबन्ध सम्बन्धी वस्तुएं आती हैं।

कला का वर्गीकरण—

भारतवर्ष में काव्य को कला से भिन्न समझा जाता था। जैसे पीछे स्पष्ट

---

1 I A Richards—Principle of Literary Criticism.

२ रामचन्द्र शुक्ल—काव्य में रहस्यवाद पृ० १०४

किया जा चुका है। पाश्चात्य विद्वानों का मत भारतीय विद्वानों से भिन्न है वे काव्य कला को एक प्रमुख कला मानते हैं। काव्य कला का आधार भाषा है। काव्य कला की सहायक संगीत कला भी है। चित्रकला ने भी इसको अनुगृहीत किया है। चित्र काव्य बहुत कुछ चित्र कला से ही सम्बन्धित रहता है। मूर्ति कला का भी प्रभाव इस पर दृष्टिगोचर होता है। मूर्त विधान करना अथवा बिम्ब ग्रहण कराना भी काव्य कला की एक प्रमुख विशेषता है। अतः काव्य कला अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। व्यवहारिक दृष्टि से कलाओं को हम दो विभागों में बाँटा जा सकता है।

१—उपयोगी कला
२—ललित कला।[1]

उपयोगी कला में लोहार, बढ़ई, सुनार आदि के व्यापार आते हैं। ललितकला के भी भेद निम्नलिखित हैं।

१—वास्तु कला
२—मूर्ति कला
३—चित्र कला
४—संगीत कला
५—काव्य कला।[2]

यह ललित कलाएं भी मुख्य दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं। एक तो वे जो श्रवणेन्द्रिय के सन्निकर्ष से मानसिक तृप्ति प्रदान करती हैं। और दूसरी वे जो उस श्रवणेन्द्रिय के सन्निकर्ष से उस तृप्ति का साधन बनती हैं। पहले प्रकार की कला में किसी मूर्त आधार की आवश्यकता होती है। पर दूसरी में इतनी आवश्यकता नहीं होती। इस मूर्त आधार की मात्रानुसार ललित कलाओं की श्रेणियाँ उत्तम और मध्यम निर्धारित की जा सकती हैं। जिस कला में मूर्त आधार जितना ही कम होता है वह उतनी ही उच्च कोटि की समझी जा सकती है। इसी भाव के आधार पर काव्य कला को इतना उच्च स्थान प्रदान किया गया है। क्योंकि इसमें मूर्त आधार का पूर्ण अभाव रहता है। जैसे ज्ञानेन्द्रियों के सब सन्देश बिना मस्तिष्क की सहायता और सहयोग के अस्पष्ट और निरर्थक प्रतीत होते हैं। वैसे ही काव्य के बिना पूर्व संचित ज्ञान भण्डार के बिना मानव जीवन पशु के समान होगा। उसमें वह विशेषता न रह जायेगी जिसके कारण मानव मानव कहलाने का अधिकारी है।

कविता और कला का सम्बन्ध—

कविता और कला का क्या सम्बन्ध है यह भी विचारणीय है। इस विषय में

१ डॉ॰ श्यामसुन्दर दास—साहित्यालोचन—पृ॰ १८
२ डॉ॰ श्यामसुन्दर दास—साहित्यालोचन—पृ॰ १८

दो चार प्रमुख सम्मतियाँ उद्धृत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रसाद जी कविता को कला के अन्तर्गत मानते हैं।[1]

श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी कला पर अच्छा विचार प्रकट किया है। यह विवेचन बहुत कुछ पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित है। उन्होंने ज्ञान के दो पक्ष माने हैं।

१—कला

२—विज्ञान[2]

इन्हें स्पष्ट करते हुए आपने कला पर बड़े ही सुन्दर विचार प्रकट किये हैं। आपके मतानुसार कला में मनुष्य बाह्य वस्तुओं को नहीं स्वानुभूति को अभिव्यक्ति करता है। इससे स्पष्ट है कि रवीन्द्र कला में आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति को विशेष महत्व देते थे। इसीलिए इन्होंने कला में व्यक्तित्व पर बहुत अधिक बल दिया है। वे लिखते हैं कि कला का प्रधान लक्ष्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करना है न कि सूक्ष्म और विश्लेषण प्रधान वस्तुओं की विवेचना करना है।[3]

आपने 'कला क्या है' निबन्ध में कला सम्बन्धी एक प्रचलित भाव का भी खण्डन किया है। कुछ लोग कला का लक्ष्य केवल सौन्दर्य प्रधान समझते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में सौन्दर्य विधान कला का एक साधन मात्र है साध्य नहीं। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि इस बात ने कि कला का लक्ष्य केवल सौन्दर्य विधान मात्र है बड़ा भ्रम पैदा कर दिया है। वास्तव में कला सौन्दर्य विधान मात्र है। इस विचार ने बड़ा भ्रम पैदा कर दिया है।[4] किन्तु उनके इस विवेचन से यह नहीं समझना चाहिये कि वे कला में विशेष सौन्दर्य को महत्व नहीं देते। उनकी दृष्टि में सत्य और सौन्दर्य दोनों की ही प्रतिष्ठा कला में आवश्यक होती है। इसी निबन्ध में उन्होंने लिखा है 'कला का कार्य मानव के लिए' सत्य और सौन्दर्य की एक सजीव सृष्टि प्रदान करना होता है।[5]

---

१ कविता विद्या है जबकि कला उपविद्या है। कला का सम्बन्ध अभिव्यक्ति से रहता है। कविता का अभिव्यक्ति सम्बन्धी स्वरूप उसका बाह्य रूप है।

जयशंकर प्रसाद—कविता और कला तथा अन्य निबन्ध—पृ० २५

2. Therefore in Art man reveals himself and not his objects his objects have their place in the books of information and Science.

Ravindra Nath Tagore—Personality—Page 12— What is Art.

3 The principle object of art, also being the expression of personality and not of that which is abstract and analytical.

Ravindra NathTagore—Personality Page 19

4 This has lead to a confusion in our thought that the object of art is the production of beauty where as beauty in art has been more instrument and not a complete and ultimate significance

Ravindra Nath Tagore—Personality-Page 19

5 This building of man s true world the living world of truth and beauty is the function of art

Ravindra Nath Tagore-Personality-Page 31

कला अपने व्यापक अर्थ में बहुत विस्तृत है। और इस दृष्टि से कविता भी कला हो सकती है। पर क्या सम्पूर्ण कविता कला के ही अन्तर्गत गृहीत की जा सकती है। इस विषय में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों में मतभेद है। पाश्चात्य मत से ललित कलाओं में काव्य का स्थान है। वह सर्वश्रेष्ठ ललित कला है पर कविता केवल कला नहीं है वह कला के अतिरिक्त और भी कुछ है क्योंकि कविता कला मात्र से अभिज्ञ व्यक्ति निसर्गतः श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकता। उसका कला पक्ष अवश्य है। पर वह एक पक्ष मात्र है।[1] इसके बाद महादेवी वर्मा का कला सम्बन्धी दृष्टिकोण विचारणीय है। उन्होंने काव्य में कला की उत्कृष्टता को स्वीकार किया है।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमती महादेवी वर्मा का भी यही विश्वास है कि काव्य कला ही नहीं विद्या भी है। निराला जी के मत में कला में जो सौन्दर्य है वह काव्य के अनेक गुणों से उत्पन्न होता है। आपने काव्य सौन्दर्य को कला के अन्तर्गत गृहीत किया है। उनका मत है कि कला केवल वर्ण छन्द अनुप्रास रस या ध्वनि की सुन्दरता नहीं है। किन्तु इन सभी में समाया सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है। पूरे अंगों की १७ साल की सुन्दरी की आँखों की पहचान की तरह देह की क्षीणता दीनता में तरंग सी उतरती चढ़ती हुई भिन्न वर्णों की बनी वाणी में घुलकर क्रमशः मन्द मधुर तल्लीन होती हुई जैसे बीज से पुष्प की पूरी कला विकसित नहीं होती न अंकुर से न डाल से न पौधे से न जड़ से तना डाल पल्लव और फूल के रेणु गन्ध तक फूल की पूरी कला के हेतु आवश्यक हैं वैसे ही काव्य की कला के लिए काव्य के सभी समाप्त।[3]

उपसंहार—

ऊपर के कथन पर विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निराला की कला विषयक धारणा प्रसाद और महादेवी की धारणा से भिन्न है। वे काव्य सौन्दर्य को कला मानते हैं। सौन्दर्य लाने की कुशलता को कला नहीं। यहाँ पर हम यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो दोनों में भेद है क्योंकि कला साधन और सौंदर्य साध्य है अतः दोनों में अन्तर अवश्य है किन्तु बाह्य रूप से यह भेद उतना नहीं जान पड़ता। काव्य का सौन्दर्य काव्य कला ही जान पड़ता है। पर वह इस का परिणाम है। पूर्व वर्णित उदाहरण में निराला जी ने और जो बातें स्वीकार की हैं

---

१ डा० भगीरथ मिश्र—काव्य शास्त्र—पृ १८०

२ काव्य में कला-उत्कर्ष एक ऐसे बिन्दु तक पहुँच गया है जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका।

महादेवी वर्मा—दीपशिखा—चिन्तन के क्षण पृ० १

३ सूर्य कान्त त्रिपाठी निराला-प्रबन्ध प्रतिमा-मेरे गीत और कला शीर्षक लेख—पृ० २७२

यह ठीक है। पर रस को भी काव्य कला कहना अधिक समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि और भी बातें, साधन और रस साध्य है। हाँ निराला जी का यह विचार किसी भी उपकरण को मिलाकर कला का पूर्ण बनाता है अवश्य समीचीन है।

शब्द और अर्थ काव्य के आवश्यक अंग हैं। प्रत्येक शब्द किसी न किसी अर्थ का वाचक होता है। प्राय एक ही अर्थ के वाचक अनेक शब्द होते हैं। इन्हीं में भावोपयुक्त शब्द का प्रयोग करने की विशेषता से ही काव्य में कला आती है।

काव्य कला के विविध अंग—

इतने विवेचन के उपरान्त अब हम काव्य कला के विविध निम्नलिखित अंगो पर एक-एक करके विचार कर रहे हैं।

१—अलंकार
२—रीति
३—वक्रोक्ति
४—ध्वनि
५—रस
६—छन्द
७—संगीत कला
८—काव्य और चित्र कला
९—प्रबन्ध

अलंकार—

भारतीय दृष्टिकोण से कला काव्य का बाह्य पक्ष है। इसलिये कला के अंतर्गत काव्य का सर्वस्व कहा जा जाता। काव्य के अभिव्यक्ति सौष्ठव के विविध अंग कला के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं। इन अंगों में अलंकार काव्य कला का सबसे व्यापक और सहज अंग है। अलंकार काव्य का एक उक्ति विशेष है। और उक्ति विशेष के विविध रूप अलंकारों के विभिन्न भेद प्रभेद हैं। न केवल भारतीय साहित्य में वरन् पाश्चात्य साहित्य में भी अलंकार का काव्य कला के अन्तर्गत प्रमुख स्थान है और उसके बहु संख्यक भेद प्रचलित हैं। भारतीय साहित्य में विशेष रूप से संस्कृत साहित्य में तो अलंकार का काव्य की शोभा माना गया है। और उसके अनेकानेक भेद किये गए हैं। जिनका विवरण संस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रन्थों में मिलता है।

अलंकार का महत्व काव्य के क्षेत्र में इतना बढ़ा कि किसी समय हिन्दी और संस्कृत दोनों ही साहित्यों में अलंकार को दृष्टि में रखकर ही काव्य लिखा जाने लगा। यह अतिशय अलंकारता काव्य की अतिशय सजावट से पुन सिद्ध करने वाली हुई और फिर अलंकारों की स्वाभाविक और संगत योजना पर ही कवियों ने ध्यान दिया।

अलंकार के सम्बन्ध में यह दोनों ही बातें ध्यान देने की हैं। पहली बात तो यह है कि अलंकार का अतिशय प्रयोग काव्य कला को बोझिल बना देता है। दूसरी

बात यह है कि अलंकार को काव्य के क्षेत्र में नितान्त बहिष्कृत भी नहीं किया जा सकता। संसार की कोई भी कविता ऐसी नहीं जिसमें कि अलंकार का प्रयोग न हुआ हो। अतएव अलंकार काव्य सौन्दर्य का एक अनिवार्य अंग है। केवल उसके स्वाभाविक और संयत प्रयोग की ही आवश्यकता है। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अलंकार का प्रयोग बड़ी ही स्वाभाविक और संयत रीति से किया है। वास्तव में उनके अलंकार अलंकरण की सामग्री नहीं वरन् आंतरिक सौन्दर्य और विशेषताओं की अभिव्यक्ति के साधन हैं। जैसा कि हम उनके काव्य में अलंकार सम्बन्धी अध्ययन के प्रसंग में देखेंगे। यहाँ पर हम काव्य कला में अलंकार के महत्व और उसके विविध वर्गों का संकेत मात्र कर देना ही पर्याप्त समझते हैं।

अलंकार का महत्व और उनके विविध वर्ग —

काव्य की परिभाषा करते हुए आचार्य भामह कहते हैं। कि शब्दार्थौ सहितौ काव्यं[1] अर्थात् शब्दार्थ से युक्त पद काव्य है। इसलिये शब्द और अर्थ में चमत्कृत रोचकता लाना ही कवि के लिये सर्वथा अनिवार्य है। किसी प्रकार के चमत्कार के बिना काव्य नहीं कहा जा सकता। यह अवश्य है कि बिना चातुर्य के भी काव्य की सत्ता सम्भव है। किन्तु वैसा काव्य उत्तम काव्य नहीं हो सकता। भामह रुद्रट आदि जो अलंकार सिद्धान्त के मुख्याचार्य हैं। अलंकारों को इसीलिये काव्य में प्रधानता देते हैं। क्योंकि उनके काव्य में आनन्दप्रसारक तथा चमत्कृत रोचकता का प्रादुर्भाव होता है।

वास्तव में यदि विचार पूर्वक देखा जाये तो काव्य में आनन्ददायिनी शक्ति अलंकारों के द्वारा भी आती है। काव्य शास्त्र का कोई भी ग्रन्थ अलंकारों की आवश्यकता उनकी चमत्कृत रोचकता और उनकी महत्ता सत्ता से नितांतमेव शून्य नहीं। सभी में अलंकार का विशेष महत्व दिया गया है।[2] गुणवादी और रीतिवादी आचार्य भी जैसे मम्मट दण्डी आनन्दवर्द्धन वामन आदि सभी अलंकारों को काव्य की आवश्यकता समझकर छोड़ नहीं सके। सारांश यह है कि अलंकारों का स्थान काव्य में यदि सर्वोच्च नहीं तो काव्य के किसी भी गुणादि मुख्य तत्व से किसी भी प्रकार कम नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जावे तो यही ज्ञात होता है कि अलंकार परिपाटी बहुत प्राचीन है। यहाँ तक कि रस सिद्धान्त के जन्मदाता तथा काव्य शास्त्र के सर्व प्रथम आचार्य भरत मुनि ने भी अपने नाट्यशास्त्र में अलंकारों का वर्णन किया है। भाषा काव्य के माध्यमिक काल में तो सम्पूर्ण काव्य कौतुक इन्हीं के आधार पर हुआ है और इन्हीं की तूती बोलती रही। देव बिहारी सेनापति पद्माकर भूषण और मतिराम आदि सभी प्रसिद्ध कवियों ने इन्हीं के आधार पर अपनी-अपनी

१ भामह कृत काव्यालंकार १।१६

२ अलंकार पीयूष–रसाल पृ १६ प्रथमावृत्ति

काव्य मट्टालिकायें बनाईं। इस प्रकार अलंकारों का पट भरते भरते और उसका रस पीते पीते लोगों को अजीर्ण सा हो गया। यहाँ तक आधुनिक समय के लोगों ने उनका बहिष्कार ही कर दिया। तो भी धन्यवाद है उन प्राचीन आचार्यों को जिन्होंने काव्य तत्व की शून्यता में भी एक चमत्कार की सत्ता निर्धारित कर दी है और अलंकारों के इतने भेद प्रभेद कर दिये हैं कि उन से बच कर निकल जाना कवि और कविता की शक्ति से परे है।

इस प्रकार हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि अलंकारों की महत्ता उनके विरोधियों के कठिन कुठाराघातों से भी विनष्ट नहीं हो सकी और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व काव्य के क्षेत्र में बनाये हुए है। अलंकारों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं।

१—भाव को उद्दीप्त करना।

२—कल्पना को प्रेरित करना।

३—वस्तु का स्वाभाविक चित्रण करना।

४—उक्ति को स्मरणीय बनाना।

५—नाद सौन्दर्य की सृष्टि करना। जैसे शब्दालंकार

अलंकार किसी प्रकार के चमत्कार पर आधारित रहते हैं। यह चमत्कार जिन आधारों पर आधारित है। वे साम्य विरोध क्रम न्याय कारण कार्य सम्बन्ध निषेध गूढ़ार्थ प्रतीति आदि हैं। इन्हीं आधारों पर अलंकारों के विभिन्न वर्ग बनाये जा सकते हैं। और इन वर्गों में विभिन्न अलंकार आते हैं। जैसे—

साम्य मूलक अलंकार—साम्य का गुण से सम्बन्धित होते हैं। जैसे उपमा उत्प्रेक्षा रूपक भ्रम संदेह आदि।

वैषम्य या विरोध मूलक—विषमता या विरोध का चमत्कार पूर्ण प्रकाशन इन अलंकारों में रहता है। जैसे असंगति विषम विरोधाभास आदि।

क्रम या शृंखला मूलक—कारण माला एकावली सार आदि।

कारण कार्य सम्बन्ध मूलक—विभावना हेतूत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति आदि।

निषेध मूलक—अपन्हुति विनोक्ति व्यतिरेक आदि।

गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक—पर्यायोक्ति समासोक्ति सूक्ष्म व्याज निन्दा व्याज स्तुति सुगम आदि इन सभी अलंकारों का वृहत् विवेचन तुलसी की अलंकारिक विशेषताओं के अन्तर्गत किया जावेगा।

रीति अथवा शैली

काव्य और शैली—

अन्य रचनाओं की भाँति शैली भी लेखक की एक विशेष प्रकार की कलात्मक चेष्टा है। जो कवि की स्वानुभूतियों को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से अनवरत रूप से हुआ करती है। जब कोई लेखक अथवा कवि सामाजिक परिस्थितियों को अनुभव

मृदुता एवं स्निग्धता से क्षुब्ध अथवा मुग्ध होता है तब उन परिस्थितियों के फलस्वरूप अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के हेतु उतावला हो जाता है। वह तो लिखता है यही विचार कर कि उसकी भाषा का प्रत्येक शब्द प्रत्येक वाक्य उसकी विचारधारा कल्पना एवं अनुभूति का यथा प्रतिबिम्ब है। कवि अपने इस प्रयत्न को अनेकों विधियों एवं प्रकारों से वर्णन करता है। बस इन्हीं प्रयत्नों और प्रकारों में शैली के जन्म की आत्म कहानी छिपी हुई है।

शैली शब्द का मूल अर्थ है ढंग अथवा प्रणाली। साहित्यिक भाषा में शैली वह अभिव्यक्ति प्रणाली है जिसके द्वारा कोई भी रचना रमणीय मोहक एवं प्रभा-वोत्पादक बनकर पाठक के मनोभावों को उद्वेलित करे। इस परिभाषा के अनुसार अलंकार रीति ध्वनि शब्द शक्ति आदि सब शैली के अन्तर्गत गृहीत किये जाते हैं। इनमें से कुछ शब्द सम्बन्धी है और कुछ अर्थ सम्बन्धी।

काव्य का सम्बन्ध मन की रागात्मक प्रवृत्ति से है। इसीलिए उसकी अभिव्यक्ति सदैव ऐसे रूप में होनी चाहिये जिसमें मानव का उसके प्रति सहज आकर्षण हो सके। उसके साथ ही साथ यह भी विचारणीय है कि प्रत्येक व्यक्ति के कथन की शैली उसकी अपनी निजी विशेषता है। जो उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोणों से अनुप्राणित होती है। ऐसी स्थिति में जब साहित्य की अभिव्यक्ति होती है तब दो बातों का ध्यान रखना परम आवश्यक हो जाता है। पहली बात तो यह है कि जीवन एवं सौन्दर्य को इस प्रकार उद्घाटित किया जावे कि वह अधिकाधिक मात्रा में मानव की रागात्मक वृत्ति को जागृत कर सके और दूसरी बात यह है कि व्यक्तिगत दृष्टिकोण में अधिक से अधिक मौलिकता हो। वस्तुतः इन्हीं दो दृष्टिकोणों में शैली की कल्पना हो सकती है। मनोभावों को व्यक्त करने का सौन्दर्यात्मक प्रयोग शैली का आधार है।

शैली के तत्व--

शैली के तत्व भी विद्वानों के द्वारा निर्धारित किये गये हैं। जो दो भागों में विभाजित हैं।

१—बाह्य
२—आंतरिक[1]

बाह्य उपादान तत्वों की संख्या ६ है। ध्वनि शब्द योजना वाक्य अनुच्छेद प्रकरण और चिन्ह। स्थानाभाव के कारण इन तत्वों का नाम निर्देश ही किया गया है।[2]

बाह्य उपादान तत्वों के अनन्तर अब हम उसके आंतरिक उपादान तत्वों पर

---

१ रघुनाथ प्रसाद साधक—समालोचना शास्त्र—पृ० ११७
२ रघुनाथ प्रसाद साधक—समालोचना शास्त्र—पृ० ११०

विचार करते हैं। यह आंतरिक गुण शैली के गुण कहलाते हैं। इन पर दो दृष्टियों से विचार किया जाता है।

१—भारतीय दृष्टिकोण
२—पाश्चात्य दृष्टिकोण

इन उभय दृष्टिकोणों पर संक्षेप में विचार कर लेना इस प्रसंग में आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय दृष्टिकोण—

जिन गुणों के आधार पर भारत के रीतिवादी आचार्यों ने रीति की विवेचना की है। वे गुण शैली की रम्यता के वर्धक हैं। अतः यहाँ प्रमुख आचार्यों के मत का स्थूल दिग्दर्शन मात्र पर्याप्त होगा।

रीति को काव्य की आत्मा मानने वाले[1] रीतिवाद के सर्वप्रमुख आचार्य वामन ने पदों की विशिष्ट रचना को रीति माना है।[2]

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र मुख्यतः नाट्य विषयक ग्रन्थ होते हुए भी काव्य शास्त्र का महाकोष है। काव्य के अंगों की सुस्पष्ट विवेचना इसमें दिखलाई पड़ती है। इसके १७ वें अध्याय में काव्य के लक्षणों गुणों दोषों एवं अलंकारों का विस्तृत निरूपण मिलता है। एवं भाग के अलंकारियों की भाँति भरत के नाट्य शास्त्र में रीतियों का विवेचन नहीं मिलता है पर जिन गुणों की आधार भीति पर रीति का विधान सौध निर्मित हुआ है उन गुणों की विवेचना भरत मुनि ने की है। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में एक जगह नाट्य वृत्तियों का उल्लेख मिलता है।[3] इसके अनुसार नाटकीय काव्य की इस पुष्टि के हेतु उचित गुणों तथा अलंकारों आदि की सहायता आवश्यक है। अपने नाट्य शास्त्र के १७ वें अध्याय में उन्होंने काव्य के ३६ लक्षणों का उल्लेख किया है। इन लक्षणों के अनन्तर १० काव्य दोषों और १० काव्य गुणों का विवरण मिलता है। भरत मुनि के द्वारा वर्णित इन १० गुणों की व्याख्या न देकर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इनके परवर्ती आचार्यों ने यद्यपि गुण दोषों की व्याख्या भिन्न रीति से की है पर तात्पर्य भेद होने पर भी गुणों की संख्या केवल १० ही मिलती है।

भरत के अनन्तर सर्वश्रेष्ठ प्रमुख अलंकारिक भामह माने जाते हैं। उन्होंने

---

१ वामन काव्यालंकार–सूत्र वृत्ति अधि० २ अध्याय २ सूत्र ६
२ वामन काव्यालंकार–सूत्र वृत्ति अधि० १ अध्याय २ सूत्र ७
३ अवन्ती दाक्षिणात्या च तथा चैवोढ्र मागधी।
पांचाली मध्यमा चैव ज्ञेया नाट्य प्रवृत्तय ॥

भरत मुनि—नाट्यशास्त्र—अध्याय ६ श्लोक २१

यद्यपि रीतियों और प्रवृत्तियों का निर्देश नहीं किया है तथापि द्वितीय परिच्छेद के प्रारम्भ में उन्होंने माधुर्य प्रसाद और ओज का संकेत किया है।

भामह के पश्चात् दण्डी आते हैं, दण्डी के काव्यादर्श में भरत द्वारा वर्णित १० गुणों का उल्लेख मिलता है। दण्डी के अनुसार वैदर्भी और गौड़ीय दो ही शैलियाँ मिलती हैं। पर वैदर्भी मार्ग या वैदर्भी रीति के प्राण १० गुण हैं और प्रायः इन्हीं गुणों के विपर्यय गौड़ में गौड़ीय रीति में देखे जाते हैं। अर्थात् श्लेष प्रसाद समता मधुरता सुकुमारता अर्थ व्यक्ति, उदारता कान्ति ओज और समाधि इन १० गुणों का वैदर्भी रीति में होना आवश्यक है।[1]

दण्डी के अनन्तर प्रमुख साहित्य शास्त्रियों में रुद्रट का नाम लिया जाता है। इनका ग्रंथ मुख्यतः अलंकार ग्रंथ है। पर इनके ग्रंथ में वृत्तियों के अनुसार अनुप्रास के तीन भेद किये गये हैं। ये वृत्तियाँ परुषा उपनागरिका एवं ग्राम्या रीतियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। ट ठ संयुक्त वर्ण आदि की जब अनुप्रासात्मक योजना होती है तब उसे परुषा वृत्ति कहते हैं। द्वित्व वर्णों का प्रयोग वर्ग के अक्षरों का वर्ग पंचम के संयोगादि की योजना द्वारा उपनागरिका वृत्ति की सम्भावना होती है। परुषा और उपनागरिका वृत्ति के उपयुक्त वर्णों से अतिरिक्त अक्षरों का जिस योग से संघटन होता है। उसे ग्राम्या अथवा कोमलावृत्ति कहते हैं। अर्थात् प्रथम दो वृत्तियों में क्रमशः मधुर और कोमल वर्णों की आवृत्ति होती है और तृतीय में कठोर वर्णों की। संयुक्ताक्षर का भी प्रयोग तृतीय में होता है। इतना होने पर भी रीति का समुचित विकास वामन के काल में हुआ।

वामन के अनुसार रीति के वैदर्भी गौड़ीय और पांचाली तीन भेद हैं। वामन की रीति के उक्त तीनों भेद इन्हीं १० गुणों के आधार पर हुए हैं जिनका निर्देश भरत मुनि के नाट्यशास्त्र और दण्डी के काव्यादर्श में मिलता है। पर वामन के यह १० गुण शब्द और अर्थ के ही १० गुण हैं। इन शब्दार्थ गुणों में प्रसाद माधुर्य और ओज गुण खास हैं। इन्हीं के आधार पर वामन ने रीति को सत्ता भी मानी है। जिस रीति में यह समस्त शब्दार्थ गुण रहते हैं उसे गौड़ीय और जिसमें माधुर्य और सौकुमार्य रहता है उसे पांचाली कहते हैं। यह वामन की रीतियाँ हैं। इन समस्त आचार्यों की धारणाओं को लेकर रीतियों की विशेषतायें ४ भागों में विभाजित की जाती हैं। वैदर्भी पांचाली गौड़ी और लाटी जिसका उल्लेख रुद्रट ने किया। उपयुक्त चार विशेषताओं में से तीन का विवेचन हो चुका है। कोमल पदों वाली उचित समास से युक्त विशेषण प्रधान वर्णन शैली लाटी रीति है।

१—श्लेषः प्रसाद समता माधुर्य सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः॥

दण्डी काव्यादर्श १।४१।४२

शैली सम्बन्धी गुण—

रीति के विवेचन में गुणों का विवेचन भी अनिवार्य है। मम्मट और विश्वनाथ दोनों ही आचार्यों ने घोषणा की कि प्रसाद माधुर्य और ओज यह ही तीन शैली के गुण है।[1] अतः मम्मट ने अन्य आचार्यों की भाँति १० नहीं ३ ही गुण माने हैं। माधुर्य ओज और प्रसाद। लगभग यही बात आचार्य विश्वनाथ ने भी स्वीकार की है।[2] अतः निष्कर्ष रूप में ओज प्रसाद और माधुर्य यह तीन ही गुण शैली के गुण हैं।

ओज—ओज की उद्भावना के हेतु रचना में प्रौढ़ता एवं उग्रता की भी आवश्यकता है। ओज की परिपुष्टि के लिये ऐसे ध्वनियों का प्रयोग करना पड़ता है जो ओजोत्पादक और परुष हों। किन्तु यह ओज गुण मधुर भावनाओं की अभिव्यंजना में अधिक उपयोगी नहीं होता। जैसे—

> जौं तुम्हार अनुशासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥
> काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
> तोरौं छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
> जौं न करौं प्रभु पद सपथ करम धरौं धनु भाथ॥[3]

यह ओज पूर्ण शब्दावली एक अपूर्व वीरात्मक सौन्दर्य की सृष्टि कर देती है।

प्रसाद—शैली का दूसरा गुण प्रसाद है। प्रसाद का तात्पर्य है कि रचनाकार की उक्ति इस भाँति अभिव्यक्त होनी चाहिये कि उसे सुनते ही उसका अर्थ बोध हो जावे। वक्ता की भाव स्पष्टता उसके शब्दों में झलकनी चाहिये। कामायनी में इसका सुन्दर उदाहरण उपलब्ध होता है।[4] इसी प्रसादात्मक शब्द योजना में सहज सरलता है। जिससे अर्थ में स्वतः ही कला का सन्निवेश हो जाता है।

माधुर्य—माधुर्य चित्त के द्रवित करने वाले गुण से युक्त है। संयोग करुण

---

१ ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥

मम्मट—काव्य प्रकाश—८।८७

२ विश्वनाथ—साहित्यदर्पण ८।१

३ मा० का० पृ० १७७। इस प्रबन्ध में मानस के सभी उद्धरण श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी विरचित श्रीरामचरितमानस टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार द्वितीय संस्करण सं० २००२ से उद्धृत किये गये हैं।

४ चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली।
मैं वह हल्की सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली॥

जयशंकर प्रसाद—कामायनी—पृष्ठ १०१—अष्टम संस्करण

विप्रलम्भ और शान्त में यह क्रमशः अधिक प्रकर्षयुक्त होता है। यह मधुर रचना है। इसका उदाहरण मानस में बड़ा सुन्दर है।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥[1]

मधुर वर्णों के कारण यह पंक्तियाँ श्रुति मधुर हो गयी हैं।

पाश्चात्य दृष्टिकोण—

उपर्युक्त विवेचन में भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर रीति की विवेचना प्रस्तुत की गई है। अब पाश्चात्य दृष्टिकोण से भी शैली के गुणों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

पाश्चात्य साहित्य में शैली शब्द का प्रयोग साधारणतः निम्नलिखित तीन अर्थों में होता है। मरे ने इन तीनों अर्थों पर गम्भीरता से विचार किया है।[2]

१—अभिव्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषतायें जिनसे किसी लेखक विशेष को सरलता से पहचाना जा सके।

२—अभिव्यंजना के विधान।

३—साहित्य की उच्चतम सिद्धि।

किन्तु शैली के उपर्युक्त तीनों अर्थ एकांगी प्रतीत होते हैं। वास्तव में इन तीनों अर्थों से समन्वित परिभाषा ही स्तुत्य शैली की ओर संकेत कर सकती है। क्योंकि श्रेष्ठ शैली में उपर्युक्त तीनों गुण विद्यमान रहते हैं। काव्य आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति होने के कारण लेखक के व्यक्तित्व से भी अवश्य प्रभावित रहता है। शैली में लेखक की वैयक्तिक विशेषतायें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिम्बित रहती हैं। शैली का वैधानिक पक्ष भी उपेक्षणीय नहीं है। अभिव्यंजना शक्ति पर ही काव्य की सफलता पर निर्भर है। अभिव्यंजना की विविध प्रणालियाँ और शैलियाँ प्रचलित हैं। शैली का तीसरा अर्थ भी साहित्य में शैली के महत्व की ओर संकेत कर रहा है। उचित गुणों से युक्त शैली ही रचना को साहित्यिक रूप प्रदान करती है।

पाश्चात्य धारणा के अनुसार शैली के गुण

इस प्रकार योरप के विद्वानों ने शैली के गुणों पर अतीव विस्तृत रूप से विचार किया है। पर वे अभी तक किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। सभी आचार्यों ने अपने-अपने विचार के अनुसार इन गुणों को मापने का यत्न किया है। किन्तु इनमें आज तक एक मत नहीं स्थापित हो सका। इन सभी मतों का निरूपण यहाँ आवश्यक और सम्भव न होने के कारण इनके केवल ओरोप का निर्देश मात्र पर्याप्त समझ कर किया जा रहा है। मिन्टो[3] ने अभिव्यक्ति शैली सम्बन्धी मत मतान्तरों

---

1 मा० पा० पृ० १६१
2. The problem of style by Murry—Page 30
3. Manual of English Prose by Minto—Page 45

पर विचार करके जो साराश निकाला है उसके अनुसार शैली के निम्नलिखित गुण हैं।

१—सरलता
२—स्वच्छता
३—मर्मस्पर्शता
४—प्रभावोत्पादकता
५—शिष्टता
६—लय

इन गुणों पर एक-एक करके संक्षेप में नीचे विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

सरलता—पाश्चात्य दृष्टिकोण से यह शैली का प्रथम गुण है। इसमें कवि लोक प्रियता की भावना स प्रेरित होकर इस प्रकार के शब्द वाक्य और मुहावरो का प्रयोग अपनी रचना में करता है। जो सरल हो। गोस्वामी जी ने भी काव्य के हेतु इस विशेषता को स्वीकार है।[1]

स्वच्छता—शैली का दूसरा गुण स्वच्छता है। इसका काव्य की सजीवता से अभिप्राय है। वर्णन इतना सजीव हो कि पढ़ते ही वह पाठक के समक्ष सजीव हो उठे। यह सजीवता अर्थ द्वारा आती है। अतः यह शैली का अर्थगत गुण है।

स्पष्टता—शैली का तीसरा गुण स्पष्टता है। इस गुण के आधार पर कवि की भाषा में शब्द और मुहावरों के प्रयोग व्याकरण के अनुसार होने चाहिये। ऐसा करने से अर्थ में स्पष्टता आ जाती है। अतएव यह शैली का अर्थगत गुण हुआ।

प्रभावोत्पादकता—इस गुण के द्वारा रचयिता पाठक को अपनी रचना द्वारा प्रभावित करके उसे अपने में लय कर लेता है। शब्द और अर्थ दोनो के द्वारा प्रभाव सम्भव होता है। अतः इसमें शब्दार्थ दोनो ही गुणों का समावेश है।

शिष्टता—इस गुण से प्रेरित होकर कवि अपनी रचना में अश्लील भाषा का परित्याग करके शिष्ट एवं सामाजिक भाषा का व्यवहार करता है। चूँकि इस शैली सम्बन्धी गुण का अभिप्राय भाषा की शिष्टता से है। अतः यह शैली का शब्द गत गुण है।

लय—शैली का अन्तिम गुण लय है। यह गुण किसी भी रचना में पाठकों को तन्मय कर देता है। इसमें संगीत की प्रधानता रहती है तथा ताल एवं लय के द्वारा रचना में गीतात्मक स्वर का संचार होता है। रागात्मकता शब्दों में होती है। अतः यह शैली का शब्दगत गुण है।

---

१ सरल कवित कीरति बिमल सुनि आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराई रिपु जो सुनि करैं बखान॥
—मा० बा० पृ० १२

शैली के प्रकार—

शैली का रूप निश्चित करने में भाव अनुभव भाव वर्ण्य विषय परिस्थिति आदि शैली के स्वरूप निर्धारण में योग देते हैं। इन तत्वों का ध्यान रखते हुए डा० भगीरथ मिश्र अपने 'काव्यशास्त्र' में निम्नलिखित काव्य रीतियाँ मानते हैं।[1]

१—सरस शैली
२—मधुर शैली
३—ललित शैली
४—क्लिष्ट या विदग्ध शैली
५—उदात्त शैली
६—व्यंग्य शैली

शैली के अनेक प्रचलित प्रकारों के फेर में न पड़कर यह विभाजन सुन्दर और मान्य प्रतीत होता है। यह शैली के सभी प्रकार काव्य में पूर्ण योग देते हैं। जैसे सरस शैली द्वारा काव्य में रमणीयता आती है। ऐसे ही काव्य में मधुरता लाने में मधुर शैली का योग रहता है। इसमें मधुर और संगीतात्मक शब्दों के द्वारा काव्य में प्रतीत सुन्दर मधुरिमा के दर्शन होते हैं। लालित्य भी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। जो सम्भवतः ललित शैली के द्वारा उत्पन्न होती है। क्लिष्टता भी शैली का एक प्रकार माना गया है। ओज गुण भी काव्य के हेतु अनिवार्य स्वीकार किया गया है। सम्भवतः इसी गुण के दर्शन हमें उदात्त शैली में होते हैं। व्यंग्यार्थ प्रधान होने के कारण व्यंजना का काव्य में प्रमुख स्थान है। इस गुण की परख व्यंग्य शैली में होती है। इस प्रकार उपर्युक्त सभी प्रकार काव्य की कला में सहयोगी सिद्ध हो चुके हैं।

अतः शैली किसी भी वस्तु को हमारे सामने चमत्कारिक रूप से उपस्थित करती है। यही बात कला में भी होती है। अतः शैली का कला से सीधा सम्बन्ध है। शैली की सभी विशेषताएँ गोस्वामी जी की कृतियों में मिलती हैं जो पाठक पर तुरन्त प्रभाव डालती हैं। प्रभाव की व्यापकता और यह तुलसी की शैली की सरलता कला के रूप में उनके काव्य में पाई हुई है।

वक्रोक्ति—

साहित्य में ध्वनि सिद्धान्त के दृढ़ स्थापन काल में ही वक्रोक्ति सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक हैं। कुन्तक के समय में आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वनि सिद्धान्त की महत्ता प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकार करली थी। किन्तु आचार्य कुन्तक ने ध्वनि के इस व्यापक सिद्धान्त का विरोध कर वक्रोक्ति काव्यजीवितम् की उद्घोषणा की। भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही वक्रोक्ति किसी न किसी रूप में प्रयुक्त थी। कुन्तक ने इसे सम्प्रदाय विशेष रूप में प्रतिष्ठित

---

१ डा० भगीरथ मिश्र—काव्यशास्त्र—पृ० १०७।

किया । भामह के मतानुसार यह वाग्वैचित्र्य का एक रूप है और सभी अलंकारों का मूल भी यही है ।

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना ।।[1]

दण्डी ने वक्रोक्ति का विवेचन कुछ अधिक स्पष्ट रूप में किया है । उन्होंने वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया है । स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति । यहाँ अलंकार विशेष नहीं है बल्कि स्वभावोक्ति के अतिरिक्त सर्वालंकारों में व्याप्त चमत्कार के रूप में है । श्लेष के द्वारा वक्रोक्ति में सौन्दर्य की वृद्धि होती है ।[2] अर्थात् श्लेष प्रायः सर्वत्र वक्रोक्ति में सौन्दर्य को पुष्ट करता है । इस प्रकार स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति दोनों अलग-अलग प्रकार का सौन्दर्य व्यक्त करती हैं ।

कुन्तक ने 'वक्रोक्ति जीवित' नामक ग्रन्थ में वक्रोक्ति के महत्व और स्वरूप की विशद व्याख्या की है । वक्रोक्ति को उन्होंने काव्य का प्राण माना है ।[3] वक्रोक्ति का लक्षण वे इस प्रकार देते हैं कि वाग्वैदग्ध्यपूर्ण विचित्र उक्ति ही वक्रोक्ति है ।[4] इस 'वैदग्ध्यभंगीभणिति' को चमत्कार मूलक भी माना है ।[5] असामान्य चमत्कार पूर्ण आह्लाद के उत्पन्न करने वाले वैचित्र्य वर्णन के लिए अपनी वक्रोक्ति की परिभाषा में स्वयं कुन्तक ने वक्रोक्ति में तीन बातें आवश्यक मानी हैं । कवि कौशल या कवि का प्रातिभ व्यापार चमत्कार और उक्ति ।[6] इस प्रकार कुन्तक शब्द अर्थ को अलंकार्य और वक्रोक्ति को उनका अलंकरण का साधन मानते हैं । जैसा कि उनकी इस उक्ति से स्पष्ट है ।

---

१ भामह-काव्यालंकार २।८५

२ श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् ।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम् ।।
—दण्डी काव्यादर्श (२।३६२)

३ वक्रोक्ति काव्य जीवितम् । व० जी० पृ० २२ ।

४ वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ।
—वक्रोक्ति जीवितम् पृ० २२

५ लोकोत्तर चमत्कारकारि वैचित्र्यसिद्धये ।
काव्यस्यायमलङ्कारः कोऽप्यपूर्वो विधीयते ।।
—वक्रोक्ति जीवितम् पृ० २२ (१।२)

६ वैदग्ध्यं विदग्धभावः कवि कर्म कौशलं ।
तस्यभङ्गिर्विच्छित्तिः तया भणितिः विचित्रैव अभिधा वक्रोक्तिः ।
—वक्रोक्ति जीवितम् १।२ (पृ० २२)

उभावेतावलङ्कार्यौ तयोः पुनरलंकृति
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गी भणितिरुच्यते ।[1]

अभिनवगुप्त ने भी इसी प्रकार शब्द और अर्थ की वक्रता उनके लोकोत्तर में प्रतिष्ठित होने पर सम्भव मानी है ।[2]

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के ६ भेद माने हैं—

१—वर्ण विन्यास वक्रता
२—पद पूर्वार्धवक्रता
३—पद परार्धवक्रता
४—वाक्य वक्रता
५—प्रकरण वक्रता और
६—प्रबन्ध वक्रता ।[3]

शब्द से सम्बन्ध रखने वाले वर्ण विन्यास वक्रता, पद पूर्वार्ध वक्रता के भेद पर्याय वक्रता, विशेषण वक्रता, उपचार वक्रता, वृत्ति वक्रता, क्रिया वक्रता, पद परार्ध वक्रता, कारक वक्रता, संख्या वक्रता आते हैं । और अर्थ से सम्बन्धित वक्रता के अन्तर्गत अन्य भेद आते हैं । जैसे वस्तु वैचित्र्य वक्रता, भाव वैचित्र्य वक्रता, प्रकरण वक्रता, प्रबन्ध वक्रता आदि । वाक्य वक्रता का सम्बन्ध शब्द और अर्थ दोनों से है ।

ध्वनि—

ध्वनि मत रस मत का विस्तृत रूप है । इस सिद्धान्त का सम्बन्ध मुख्यतः नाटकों के सम्बन्ध में ही पहले किया गया है । यह रस कभी वाच्य नहीं होता । प्रस्तुत व्यंग्य ही हुआ करता है । इस विचारधारा को स्वीकार कर आनन्दवर्धन ने व्यंग्य को ही काव्य में प्रधान माना है । ध्वनि शब्द के लिये अलंकारिक वैयाकरणों का ऋणी है । वैयाकरण स्फोट रूप अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले शब्द के लिये ध्वनि का प्रयोग करता है । इस मत के आद्याचार्य आनन्दवर्धन ने कृतियों के सहार

---

१ वक्रोक्ति जीवितम् १।१

२. शब्दस्यापि वक्रता अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन ।
रूपेणावस्थानमिति अयमेवासौ अलङ्कारस्यालंकारान्तर भाव ।
अभिनव गुप्त—ध्वन्यालोक लोचन पृ० २०८

३ वर्णविन्यास वक्रत्वं पद पूर्वार्ध वक्रता ।
वक्रतायाः परोऽप्यस्ति प्रकार. प्रत्ययाश्रय ॥ १९ ॥
वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भिद्यते य सहस्रधा ।
यत्रालंकार वर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति ॥ २० ॥
वक्रभाव प्रकरणे प्रबन्धे वाऽस्ति यादृश ।
उच्यते सहजाहार्यः सौकुमार्य मनोहर. ॥ २१ ॥
—कुन्तक—वक्रोक्ति जीवितम्

व्यंग्य की सत्ता वाच्य से पृथक् करती है। आनन्दवर्धन के पहले ध्वनि के विषय में तीन मत थे।

१—अभाववादी
२—भक्तिवादी
३—अनिर्वचनीयवादी।[1]

इनका समुचित खण्डन आनन्द की बुद्धि का चमत्कार है। ध्वनि के मुख्य तीन भेद हैं।

१—रस
२—वस्तु
३—अलंकार

अलङ्कार के इतिहास में ध्वनि की कल्पना बड़ी ही सूक्ष्म बुद्धि की परिचायिका है। ध्वनि के चमत्कार को पाश्चात्य आलङ्कारिक भी मानते हैं। महाकवि ब्राउनिंग की उक्ति More is meant than meets the ear में ध्वनि को ही प्रकारान्तर से सूचना है।[2]

ध्वनि क्या है और उसका रचना में स्थान—

वाच्य से अधिक चमत्कारक व्यंग्य ही ध्वनि है[3]। व्यंग्य ही ध्वनि का प्राण है। वाच्य से व्यंग्य की प्रधानता का अभिप्राय है वाच्यार्थ से अधिक चमत्कार होना। चमत्कार के तारतम्य पर ही वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का प्रधान होना निर्भर है। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ शब्द या अर्थ स्वयं साधन होकर साध्य विशेष किसी चमत्कार अर्थ को अभिव्यक्त करे वह ध्वनि काव्य है।

ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए ध्वनिकार लिखते हैं—

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥[4]

अर्थात् जिसमें शब्द और अर्थ अपने स्वरूप को छिपाये हुए उस अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं जो काव्य का परम रहस्य है। अतः यही विशिष्ट प्रकार का उत्तम काव्य है।

रस यदि काव्य की आत्मा है तो ध्वनि काव्य शरीर को प्राण देने वाली प्राण शक्ति अवश्य है। ध्वन्यालोककार ने ध्वनि को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है।

---

१ बलदेव उपाध्याय—साहित्य शास्त्र पृ० २५
२ बलदेव उपाध्याय—साहित्य शास्त्र पृ० २५
३ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० १२७
4 Dhvanyaloka of Anandvardahamacharya—Third Revised Edition 1928—Page 33

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः ।
तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ॥[1]

ध्वनि शब्द का तात्पर्य अनुरणन या घण्टे की सी टन की देर तक होने वाली झङ्कार से है। अभिधा और लक्षणा के उपरान्त व्यंजना से ध्वनित होने वाला चमत्कारक अर्थ ही ध्वनि है। ध्वनि में शब्द और अर्थ अपने स्वरूप को छिपाते हुए काव्य के परम रहस्य सम्बन्धी अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। अतः यह उत्तम काव्य है। मम्मट ने तो स्पष्ट ही लिखा है।

इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः ।[2]

अर्थात् वाच्यार्थ से अधिक उत्कृष्ट व्यंग्य ही विद्वानों के द्वारा ध्वनि कही गई है। साहित्यदर्पणकार का भी यही मत है।

वाच्यातिशयिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम् ।[3]

इस प्रकार वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक व्यंग्यार्थ ध्वनि है। ध्वनि में शब्द और अर्थ दोनों का ही चमत्कार मिश्रित रहता है। शाब्दी व्यंजना के अन्तर्गत शब्दगत कला की विशेषता प्रत्यक्ष है। पर अन्य भेद अधिकांशतः अर्थगत कला से ही सम्बन्ध रखते हैं प्रधानतया ध्वनि का सम्बन्ध काव्य का कला पक्ष ही है। यह काव्य कला के विश्लेषण का उत्तम सिद्धान्त है।

इसीलिये इस ध्वनि का काव्य कला में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वनि में व्यंग्यार्थ प्रधान होने से इसमें कला स्वतः आ जाती है। ध्वनि शब्द की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति व्यंजना से प्राप्त अर्थ को प्रदान करता है। व्यंजना सामान्य अर्थ न होकर विशिष्ट अर्थ देती है। इसी से चमत्कार आ जाता है। और कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें कला स्वयमेव आ जाती है। दूसरी एक और भी बात है जिसके आधार पर हम ध्वनि को कला कह सकते हैं। वह यह कि हम पीछे अलंकार को कला सिद्ध कर आये हैं और अलंकार के बहुत से भेद ध्वनि में आते हैं इसलिये भी ध्वनि कला है। ध्वनि का विवेचन ही काव्य का विवेचन है। इसको भी पूर्ण अभिव्यक्ति गोस्वामी जी की कृतियों में हुई है। जिसे हम आगे तुलसी की अलंकार और ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं के अन्तर्गत स्पष्ट करेंगे।

रस और भाव—

भाव और रस में जो सम्बन्धात्मक गुण हैं—प्रसाद माधुर्य और ओज वे ही काव्य कला के अङ्ग या भाव अथवा रस के कलापक्ष हैं। गुण रस वर्णन नहीं।

---

1 Dwanyaloka of Anandvardahanacharya—Third Revised Edition 1928 × Page 2

२ मम्मट-काव्य प्रकाश १।४

३ विश्वनाथ-साहित्य दर्पण-चतुर्थ परिच्छेद-पृ० १२६

भाव और रस के वर्णन में जो एक प्रकार का चातुर्य होता है वह भी रस और भाव के कलापक्ष के अन्तर्गत गृहीत किया जा सकता है।

भावों के वर्णन में जो औचित्य होता है वह भी कला के एक प्रमुख रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि रस है। इसमें जो चमत्कार लाने का प्रयास है वह कला ही कहा जायेगा। गोस्वामीजी की कृतियों में भी भाव और रस निरूपण की कला अपने पूर्ण रूप में प्रस्फुटित हुई है जिसको हम 'तुलसी के भाव वर्णन और रस निरूपण' के अन्तर्गत देखेंगे।

छन्द और संगीत

छन्द—

छन्द का महत्व और उसका काव्य में स्थान—वैदिक युग में छन्द देवताओं के प्रसन्न करने के साधन थे। अतः उनकी महत्ता भी दैवी और अलौकिक मान ली गई।[1] छन्द द्वारा संसार की सभी मनोकामनायें पूर्ण की जा सकती हैं। छन्द विश्व की समस्त व्याधियों से मुक्त करने वाला है। एक बार मृत्यु ने देवताओं पर आक्रमण किया। देवताओं ने मृत्यु के भय से बचने के हेतु वेद विद्या में प्रवेश कर उन्होंने अपने को मंत्रों से ढंक लिया। अतः आच्छादन का हेतु होने के कारण मन्त्रों का नाम छन्द पड़ गया।[2]

छन्दों का आश्रय लेकर स्वयं देवताओं ने स्वर्ग लोक को प्राप्त किया था।[3]

स्वर वर्ण और अर्थ संयुक्त ज्ञान करके जो वेद का अध्ययन करता है वह ब्रह्म लोक का भागी होता था।[4] इसके विपरीत जो अज्ञानतावश से छन्द का प्रयोग करता है वह पाप का भागी होता था।[5]

छन्दों के अशुद्ध प्रयोग से पाप की धारणा ने वैदिक छन्द के स्वरूप को अक्षुण्ण और अलोप रूप में संचित रखने में बड़ी सहायता पहुँचाई है।

इस प्रकार के विश्वास का चाहे कोई आध्यात्मिक मूल्य हो या न हो पर इतना तो स्वीकार ही करना होगा कि भाषा की स्थिरता छन्द पाठ की निश्चयात्मकता और उच्चारण की विशुद्धि में यह विचार सहायक रहे हैं।

---

१ डा० पुत्तू लाल शुक्ल–आधुनिक काव्य में छन्द योजना–पृ० ३१–
प्रथमावृत्ति ११००

२ देवा व मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशंस्ते।
छंदोभिरच्छादयम् यैदे भिरच्छादय तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।
प्रपाठक २ चौथा खण्ड प्रपाठक १ छन्दोग्योपनिषद

३ छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्ग लोकं समाश्नुवते
शतपथ ब्राह्मण २।१।४।१२

४ पाणिनीय शिक्षा ५२

५. पाणिनीय शिक्षा ५२

मध्यकाल में छन्दों का ऐहिक महत्त्व बढ़ता ही गया। काव्य शास्त्र के ग्रन्थों में आदि से छन्द की व्यावहारिक उपयोगिता का पता चलता है।

प्रणव या उद्गीथ ही छन्द सृष्टि का आदि रूप है।[1] यही छन्द विश्व कमल पर भृंग की भांति गुंजार कर रहा है। इसी से त्रयी विद्या की छन्दोमयी त्रिधारा[2] अनेक कवि कण्ठों से फूट कर समाज को आप्लावित करती रही है। भावावेग से छन्द के जन्म का सिद्धान्त प्रतीक रूप से रामायण कार की क्रौंच कथा से व्यक्त होता है। क्रौंच वध से ऋषि की रागस्मृति पर आघात हुआ और उच्छलित करुणा संस्कृत वाणी में श्लोक के रूप में फूट पड़ी।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्च-मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥[3]

श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर का विश्वास है कि यही कवि का आप छन्द को वाहन बनाकर अब तक चल रहा है। और शाश्वत रूप से काल कालान्तर से अनेक कण्ठों से ध्वनित हो रहा है। इस शाश्वत कथा को प्रकाशित करने के हेतु छन्द है।[4] सेंट्सबरी प्राचीन छन्दों का विकास प्रकृति की स्वाभाविकता से मानते हैं।[5] जो भी हो यह

---

१ प्रणवश्छन्दसामिव रघुवंश प्रथम सर्ग ११—कालिदास

२ त्रयीय त्रैविद्य त्रयी विद्या कहते हैं। ऋक् यजु और साम।
छान्दोग्य उपनिषद खण्ड १ प्रपाठक ६

३ निषाद विद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः
रघुवंश १४ सर्ग ७० कालिदास।

४ सेइ प्रथम कविर आप छन्देर वाहन की पीठे काल थेके कालान्तरे ध्वनिते थाकलो।
किन्तु सेई आदि कविर आप शाश्वत कालेर कण्ठे ध्वनित होये रइल। एइ शाश्वत कालेर कथा के प्रकाश करबार जन्यइ तो छन्द।
रवीन्द्र ग्रन्थावली भाग २१ पृ २११

5 Its origin is quite unknown but presence of closely allied forms in the different scandanavian and teutonic languages assures beyond doubt a natural rise from some speech rhythum and time rhythum proper to the race and tongue. It is also possible that the remarkable differenc of length-short normal and extended with is observable in O F poetry is of the highest antiquity It has at any rate preserved to the present day in the metrical successor of the line and there is probably no other poetry which has at a majority of its periods if not through out indulged such a variety of fine length as English. Nor perhaps, is there any which contains ever in its oldest

निश्चित है कि मनुष्य को प्रकृति से ही छन्द का दान मिला है। निर्झरा का निनाद पत्तों का मर्मर संगीत पवन का सनसन नदियों का कल-कल बादलों की रिमझिम पक्षियों का कल गायन वृक्षों का सवेग कम्पन मानव के लय संस्कार बनाने मे सहायक अवश्य हुआ है। प्रकृति के गायन और नर्तन से मानव ने बहुत कुछ सीखा है। संभवत भावावेग ने अविकसित मानव को समष्टत्व प्रदान किया होगा। जिसे मानव ने आगे चलकर साहित्यिक छन्द का रूप प्रदान किया।

कविता में भी छन्द भावना का बड़ा योग है। पद्य और छन्द का सम्बन्ध बहुत पुराना है। वास्तविकता तो यह है कि छन्द भी कवि के अन्तर्जगत की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। जिस पर नियम का बन्धन आरोपित कर दिया है। छन्दों की सहायता से ही कविता गद्य की अपेक्षा मानव के हृदय के अधिक निकट है और वह रसाप्लावित करने में समर्थ भी हो सकती है। अतः कविता में उसके स्वाभाविक गुण की साधना के हेतु छन्द या लय का बन्धन आवश्यक नहीं। अपितु अनिवार्य भी है।

छन्द कविता में वचन को गति प्रदान करता है। जैसे नृत्य। इस गति में आकर्षण होता है और इससे विभव-विभय भाव जागृत होते है और उनकी अभिव्यक्ति होती है। संगीत को भी इस छन्द विधान से सहारा मिलता है कविता मे छन्द योजना में गति का ध्यान रखते हुए जो शब्दावली डाली जाती है उसमें कला के दर्शन होते है। छन्द में इस कला को कई प्रकारों से देख सकते है जैसे :—

१—छन्द में आये हुए सभी शब्द सार्थक और विशिष्ट अर्थ की आभा से युक्त हो। भरती के नही।

२—इन शब्दों से छन्द में एक स्वाभाविक प्रवाह और जो रमणीयता आती है इसमे कला क दर्शन होते है।

३—छन्द गठन में जहां वर्णन की अनुकूलता पाई जाती है।

४—छन्द जहां पात्र और भाव के अनुरूप हों।

५—छन्द जहां प्रबन्ध को आगे बढ़ाने में सहयोगी होकर आते है।

यह बातें यू कि कला के अन्तगत आता है और वह छन्द में भी पाई जाती है अतः छन्द में भी कला हमें विभिन्न रूपों में मिलती है। गोस्वामी जी तो अपनी कलात्मक छन्द भावना के हेतु प्रसिद्ध है। जिसकी विवेचना हम उनके 'छन्द और सम्वाद कला' प्रकरण के अन्तर्गत वृहत रूप मे प्रस्तुत करेंगे।

---

and roughest form of a metrical and a quasimetrical arrangement more closed to the naturally increased but no deratutulized emphesis of impassioned utterance more through-ly born the primeval oak and rock.

George Saints Bury-Historical Manual of English Prosody—
Book IV Chapter III—Page 316

संगीत

काव्य और संगीत का सम्बन्ध और काव्य में संगीत की आवश्यकता—जब सम्पूर्ण सृष्टि और मानव के कण-कण में संगीत व्याप्त है तो साहित्य में भी संगीत का होना अनिवार्य है। काव्य या साहित्य का निर्माण भी तो संगीत प्रिय मानवों ने ही किया है। काव्य के समस्त अङ्गों में संगीत का किसी न किसी रूप में थोड़ा बहुत योग अवश्य रहता है।

कविता को सुन्दर बनाने के लिए उसके सुन्दर पाठ तथा रसास्वादन के हेतु संगीत अपेक्षित है। Shenstone ने कहा है कि कविता तथा गद्य की वे ही पंक्तियाँ सबसे अधिक स्मरण तथा उद्धृत की जाती हैं जो संगीतमय होती हैं।[1] A J Ragon ने संगीतमय गीतों की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है :—

When falls the soldier brave
Dead at the feet of wrong
The poet sings a guards his grave
With sentinels of song.[2]

संगीत एवं काव्य में अटूट सम्बन्ध है। एडगर एलेन पो कविता को सौन्दर्य की संगीतमय सृष्टि कहते हैं।[3] कारलाइल ने संगीतमय विचारों को ही काव्य कहा है। उसके शब्दों में कविता मनोवेगमय और संगीतमय भाषा में मानव अन्तःकरण की पूर्ण और कलात्मक व्यंजना करती है।[4] मास्कर्ड आस्टिन का कहना है कि कविता में और किसी ही गुण क्यों न हों पर यदि वह संगीत विहीन और अर्थ की रमणीयता से विहीन है तो फिर वह कविता नहीं है।[5] लार्ड बायरन का कथन है कि जब मनुष्य के भाव और इच्छाएँ अंतिम सीमा पर पहुँच जाती हैं तब वे कविता का रूप धारण कर लेती हैं।[6] वास्तव में कविता राग के बिना कुछ भी नहीं। इनके अनुसार कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत के ध्वनि के रूप में कविता है।[7] पो नामक अमरीकन साहित्यकार ने संगीतमय शब्दावली को ही कविता कहा है।

---

1 The lines of poetry the periods of prose and even the tex of scripture most frequently recollected and quoted are those which are felt to be preemsnetly musical

The New Dictionary of Thoughts—Page 414

2. The pocket book of Quotations edited by Henry David —Page 27

3. Bact Lates Camellar—Quotations Page 196 (J)

4 Best quotations for all Occasion—Page 125

५—प्रयाग संगीत समिति प्रयाग वार्षिक संस्करण १९५६ पृ० ११।

६—माधुरी। पौष ११० तु० सं १९९० सन् १९३३ भाग १ ख ५०१५।

7 The New Dictionary of thoughts—Page 470.

है।[1] काव्य और संगीत के स्वाभाविक सामंजस्य को भी मैथिलीशरण गुप्त ने कितनी सुन्दर रूप में प्रकट किया है।

केवल भाव मयी कला, ध्वनिमय है संगीत
भाव और ध्वनिमय उभय, जय कवित्व जय गीति ॥

कविता और संगीत का समन्वय ही काव्य का श्रेष्ठतम रूप है। श्रेष्ठ काव्य में संगीत का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः काव्य स्वतः संगीत है।[2] संगीत अस्फुट और चेतना सापेक्ष्य शब्द, अर्थ भाव सत्य, कल्पना, माधुर्य प्रवाह, कला रहस्योद्घाटन की प्रवृत्ति चमत्कार आकस्मिक उन्माद हृदय की वासना एवं उल्लास पुँजभी स्मृतियों से विलसित भावात्मक प्रस्फुटित होने वाली रचना कविता के नाम से पुकारी जाती है।[3]

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में संगीत का योग आवश्यक माना है, काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त विधान के हेतु कविता चित्र विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है। उसी प्रकार नाद सौष्ठव के हेतु वह कुछ-कुछ संगीत का सहारा लेती है। नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है। अतः नाद सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के हेतु आवश्यक होता है।[4]

कलाओं में काव्य कला संगीत कला की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए आचार्य ललिता प्रसाद जी शुक्ल ने काव्य तथा संगीत को एक दूसरे का पर्याय माना है। कहते हैं काव्य और संगीत कला की उत्कृष्ट सीमा है। शब्दावली और भावनाओं के सजीव चित्रण जब ताल और स्वर में बँधकर किसी ऐसे ही भव्य विधान में सजकर व्यक्त होते हैं जिनके द्वारा समन्वय की प्रतिष्ठापना हो जाती है और रस का प्रवाह उमड़ने लगता है तो उसे ही काव्य या संगीत कहते हैं।[5]

इसी प्रकार संगीतज्ञों का कहना है कि संगीत को कविता से अलग करना उसके प्रभाव तथा महत्व को बहुत न्यून कर देना है। गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर जी का मत है।[6] संगीत और काव्य का जब मेल होता है तब सोने में सुगन्ध आ जाती है। सरस्वती की वाणी पुस्तक का मेल इसी का दिग्दर्शन है।

---

१ विशाल भारत नवम्बर १९४६ पृ० १२७।

२ गुलाब राय—सिद्धान्त और अध्ययन—पृ० १११

३ आनन्द कुमार—समाज और साहित्य—पृ० २३।

४ रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि प्रथम भाग—पृ० १७९-८०।

५. ललिता प्रसाद शुक्ल—साहित्य जिज्ञासा—हिन्दी और बंगला का साहित्यिक आदान प्रदान शीर्षक लेख—पृ० ३३।

६ माधुरी—दिसम्बर १९२७ गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर जी से साक्षात—मुकुट धर पाण्डेय पृ० ७०२।

यद्यपि साहित्य और संगीत पृथक्-पृथक् भी सभी आनन्द को प्रदान करते आते हैं। बिना संगीत के काव्य के उत्कृष्ट कोटि के संगीत का सृजन हो सकता है। जिस समय हम किसी सुन्दर कविता को पढ़ते हैं तो उस समय हमारा हृदय आनन्द विभोर हो जाता है। इसी प्रकार सुमधुर संगीत की ध्वनि कान में पड़ने से प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। तथापि दोनों का सहयोग सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर देता है। काव्य तथा संगीत कला अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी अनेकों अंशों में अन्योन्याश्रित हैं। दोनों का पारस्परिक विरोध सर्वथा अवांछनीय है। सहयोग तथा एकता में ही दोनों की उन्नति और प्रगति अन्तर्निहित है।

जब हम विभिन्न कला सृष्टियों पर विचार करते हैं और कलाओं के मूर्त रूप पर दृष्टि डालते हैं तब हमें कला की भिन्नता के दर्शन होते हैं अतः कला का वर्गीकरण करना अनिवार्य हो जाता है।

साहित्यकारों ने कला का विभाजन करते हुए उसके दो रूप ठहराये हैं एक तो उपयोगी कला और दूसरा ललित कला। उपयोगी कला में बढ़ई सुनार लोहार, राज आदि आते हैं और ललित कला के अन्तर्गत वस्तु कला। सभी कलायें उन्नति एवं विकास की द्योतक हैं अन्तर केवल इतना ही है कि एक का सम्बन्ध मनुष्य को शारीरिक और आर्थिक उन्नति से है और दूसरे का उसके मानसिक एवं शारीरिक विकास से।

प्रत्येक पंक्ति के साथ कविता का और प्रत्येक आरोह तथा अवरोह के साथ संगीत का प्रभाव आगे बढ़ता है। चित्र का हम एक ओर से दूसरी ओर ध्वनि से आगे जिस प्रकार चाहें देख कर समान आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। पर कविता और संगीत में गति आगे की ओर बढ़ती है।[1]

गायक और कवि दोनों ही कला का एक अर्थ है। गायक गाने वाले को कहते हैं कवि शब्द का भी तात्पर्य गाने ही वाला होता है।

संगीत कला का संवाहक नाद है। काव्य शब्दों का एक विशेष आरोह, अवरोह संयोग या तारतम्य है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भावभूमि पर पाठक को ले जाते हैं। वहीं नाद के द्वारा मानव विभाग भी करते हैं। काव्य कला का आधार भाषा है। जो नाद का ही विकसित रूप है। अतः काव्य और संगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वर व्यंजनात्मक स्वरूप है। दूसरी का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह और अवरोह है।[2]

काव्य और संगीत दोनों ही लय पर अवलम्बित हैं। काव्य की रचना छन्दों में होती आई है। और छन्द ही के आधार पर कवि अपने भावों को काव्य कला का रूप देता है।

---

१ हजारी प्रसाद द्विवेदी — साहित्य का मर्म—पृ० ११।
२ हजारी प्रसाद द्विवेदी— साहित्य का मर्म—पृ० ११।

छन्द लय [1] के ही आधार पर टिका हुआ नाद विधान है। छन्द में प्राण प्रतिष्ठा करने वाला यही तत्व है। छन्द और लय एक दूसरे के प्रेरक हैं। बिना एक के दूसरे की गति सम्भव नहीं। छन्द का आधार भी लय है।

प्राचीन युग में छपाई की सुविधा तो थी नहीं फलस्वरूप संगीतज्ञ स्वरों को लय में बांध कर गाया करते थे। कविता भी कवि गण लय के सहयोग से स्मरण रखते थे। लिखने की प्रवृत्ति न होने के कारण उन्हें यही प्रणाली सरल प्रतीत हुई। लय की समानता के कारण ही छन्दों में बन्धी हुई कविता में जो माधुर्य तथा ओज मयी अनुभूति होती है। वही रसानुभूति संगीत में भी प्रस्फुटित होती है।

भारतीय संगीत तथा काव्य दोनों का विकास प्रकृति के क्रोड़ में हुआ है। कवि यहीं से संगीत के हेतु प्रेरणा पाता है। और संगीतज्ञ यहीं से कविता के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। प्रकृति के अणु-अणु में सजीव संगीत व्याप्त है। अतः प्रकृति संगीतज्ञ को संगीत की प्रेरणा देती है। भ्रमरों की गुंजार पक्षियों का कलरव झरनों की कल-कल संगीतज्ञ के संगीत को आधार दिलाये हैं।

प्राकृतिक सौन्दर्य का रहस्योद्घाटन कर उसके रस में डुबो देना ही साहित्य की सर्वोपरि विशेषता है। काव्य मनुष्य और प्रकृति की छवि है। वह कवि (मनुष्य) और प्रकृति को मूलतः परस्पर सामंजस्य करते हुए मानता है। और मानता है मनुष्य के संगीत को। स्वभावतः प्रकृति के अत्यन्त सुकुमार तथा रोचक तत्वों का दर्पण है। [2] प्रकृति अनगुम्फित वही है। कवि कौतूहल पूर्ण है। इसी कौतूहल वृत्ति के कारण कवि उसकी ओर आकर्षित होता है। और उसके सौन्दर्य पर रीझ कर आत्म विभोर हो जाता है। कवि सुध-बुध भुलाकर उसी के गीत गाने लगता है। सत्य तो यह है कि प्रकृति से पाये आनन्द को तथा कौतूहल को प्रकट करने के हेतु कवि ने काव्य की और संगीतज्ञ ने संगीत की रचना की।

संगीत और साहित्य दोनों ही हृदय से उत्पन्न होते हैं। किसी विशेष मनोवृत्ति की अनुभूति में हृदय के अन्तरतम से निकली हुई भाषा की तीव्र धारा की उत्पत्ति का

---

१ समय की चाल का नाम लय है। शास्त्रकारों ने संगीत की लय तीन प्रकार की मानी है यानी लय के तीन भेद हैं। द्रुत मध्य तथा विलम्बित। विलम्बित गति की लय अत्यन्त मन्द होती है। विलम्बित लय की गति मध्य लय की होती है तथा द्रुत गति की लय मध्य गति से दुगुनी होती है। —संगीत सीकर—पृ० ११४

2. Poetry is the image of man and nature ··· ··He (Poet) considers man and nature as essential by adopted to each other and the mind of man as a naturally the mirror of the fairest and most interesting properties of nature

Loci—Critic by George Saintsbury—Wordsworth on Poetry and Poetic Diction preface to Second Edition of Lyrical Ballads —Page 273–75

आरम्भ होती है। हृदय के भावुक सुकुमार आंतरिक उमड़े हुए उद्गार संगीत और काव्य की इस छाया में बिखर पड़ते हैं और भावों के सहयोग से संगीत खिल उठता है, और संगीत के सौन्दर्य से भाव। वहीं दूसरी ओर भावों को काव्य से अनुपम सौन्दर्य मिलता है और भावों के सुन्दर समन्वय से संगीत जगमगा उठता है।

जब हम काव्य और संगीत के उद्देश्यों की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमें दोनों का एक ही ध्येय ज्ञात होता है। मनुष्य जीवन का महत्तम ध्येय आनन्द प्राप्त करना है। यह आनन्द उसे साहित्य तथा संगीत दोनों ही कलाओं के द्वारा प्राप्त होता है। काव्य और संगीत का सम्बन्ध चैतन्य-लोक से होने के कारण उसका मूल रूप भी चैतन्य की भाँति अनन्त और प्रकाशमय है।

साहित्य और संगीत दोनों में ही हमें रसानुभूति प्राप्त होती है। दोनों में ही हँसाने और रुलाने की शक्ति है और दोनों का ही उद्देश्य आत्मा को प्रभावित करना है।

इन्हीं सब आधारों पर कहा जा सकता है कि संगीत काव्य कला का प्रमुख सहयोगी उपकरण है। जो काव्य में लयात्मकता और श्रुति मधुरता की सृष्टि करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी संगीत के बड़े पंडित थे जिसे हम उनकी संगीत और चित्रात्मक विशेषताओं में देखेंगे।

काव्य कला और चित्रकला—

कला के कुछ विवेचन करने वालों ने कविता और चित्रण कला को बहुत कुछ एक सिद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होंने चित्र को रेखा बद्ध कविता और कविता को शब्दों द्वारा चित्रण बतलाया है ध्यान पूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि कविता और चित्रण कला में अन्तर है। पर इसके होते हुए भी इनमें बहुत कुछ मिलता है।

काव्य कला गति शील कला है किन्तु चित्रण कला स्थायी कला है। काव्य में शब्दों की सहायता से क्रियाओं और घटनाओं का वर्णन किया जाता है। कविता का प्रवाह समय द्वारा बंधा हुआ नहीं है। समय और कविता दोनों ही गतिशील हैं। इसलिये कविता समय के साथ परिवर्तित होने वाली क्रियाओं घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन समुचित रूप से कर सकती है। चित्रण कला स्थायी होने के कारण समय के एक पल को पदार्थों के केवल एक रूप को अंकित कर सकती है। चित्रण कला में केवल पदार्थों का चित्रण हो सकता है। कविता में परिवर्तनशील परिस्थितियों घटनाओं और क्रियाओं का वर्णन हो सकता है। इसलिये कहा जा सकता है कि कविता का क्षेत्र चित्रण कला से विस्तृत है। कविता द्वारा व्यक्त किये हुये एक एक भाव और कभी-कभी कविता के एक-एक शब्द लिये अलग अलग चित्र अंकित किये जाते हैं। किसी अंश में कविता पदार्थों का सहारा लेती है और चित्रण कला समय के द्वारा प्रभावित होती है। किन्तु चित्रकार और कवि दोनों ही कल्पना के योग से अपने

चित्र का अंकन करते हैं। यही है काव्य कला और चित्रण कला की समानता और असमानता। पर काव्य में चित्र कला का भी योग उसे सुन्दर बनाता है।

प्रबन्ध सम्बन्धी कला—

अभी तक काव्य कला के जिन अंगों पर विचार किया गया है वे काव्य के सभी प्रकारों से सम्बन्ध रखते हैं। पर काव्य का महत्वपूर्ण भेद प्रबन्ध है। जिसमें कि कथा साहित्य और नाटक की विशेषताओं का बहुत कुछ समावेश हो जाता है। महाकाव्य की प्रबन्ध सम्बन्धी कला कथानक से सम्बन्धित है। जिसमें विभिन्न कथा पात्रों की विशेषता सन्निहित होती है। अतएव प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत कला के प्रसंग में कथा संघटन चरित्र चित्रण और सम्वाद योजना सम्बन्धी कला पर भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

कथासंघटन—प्रबन्ध के हेतु कथासंघटन का बड़ा महत्व है। क्योंकि इसी पर सारा प्रबन्ध आधारित होता है। कथासंघटन में प्रवाह और घटनाओं का यथास्थान संघटन होने से ही कला आती है। जिसका पूर्ण विवेचन 'तुलसी का प्रबन्ध सौष्ठव और वर्णन पद्धति' शीर्षक के अन्तर्गत किया जायेगा।

संवाद – संवादों का वास्तविक क्षेत्र नाटक है। नाटक में ही संवादों का महत्व होता है। संवादों के ही कारण नाटक बनते और बिगड़ते हैं। काव्य या कहानी में कथोपकथन या संवाद का महत्व साधारण होता है। फिर भी उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि किसी-किसी कथा काव्य में बीच-बीच में संवादों की योजना हो जाये तो उसमें जीवन आ जाता है।

संवादों से यहाँ हमारा अभिप्राय पात्रों द्वारा कथा की धारा में जोड़ तोड़ के उत्तर से है। इस प्रकार का अति सुन्दर संवाद कालिदास के 'कुमार सम्भव' में पाया जाता है। जहाँ बटुकर शिव ने शंकर के रूप, गुण और स्वभाव के सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दरता से उत्तर प्रति उत्तर दिये हैं।

प्रबन्ध कला में संवाद का होना नितान्त आवश्यक है। इस नाटकीय पद्धति से पात्रों के चरित्र चित्रण का विकास स्वतः ही कुशलता से हो जाता है। जिस काव्य में यह संवादात्मकता का गुण रोचकता और कलात्मकता के साथ प्रदर्शित किया जाता है। उसमें मनोरंजकता स्वाभाविकता और रसात्मकता आ जाती है। इस प्रकार के पात्रों द्वारा वार्तालाप में पात्रों का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष तथा पात्रों का स्वरूप और भाव एवं विचार आदि सभी कुछ पाठकों या श्रोताओं के समक्ष सजीव रूप में चित्रित हो जाता है। इस कसौटी पर कसने से मानस के संवाद बड़े ही सजीव और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। इस क्षेत्र में कवि की कला पूर्ण रूप से निखर उठी है।

संवाद किसी विषय को खोल कर उसे अधिक सुबोध बनाने में ही सहायक नहीं होते अपितु विचार अथवा कवि की भाषा सम्बन्धी व्यंजकता और लोक व्यवहार

दक्षता के भी द्योतक होते हैं । लोक भाषा में प्रचलित मुहावरे कहावतों और कथा नकों का बड़ा ही हृदयहारी समन्वय होता है । उत्तम कोटि का संवाद रखने वाला कवि किसी भी भाषा और साहित्य में क्रान्ति उत्पन्न कर सकता है ।

चरित्र चित्रण—

महाकाव्य में लक्ष्य सिद्धि का सबसे बड़ा साधन पात्रों के चरित्र चित्रण की कला ही है ।

चरित्र चित्रण का तात्पर्य यही है कि उसमें पात्रों के वास्तविक स्वभाव का परिचय हो सके । चरित्र चित्रण महाकाव्य का प्रधान अंग है।

काव्य में सौन्दर्य के साथ चरित्र चित्रण का भी प्रश्न उपस्थित हो जाता है । आलम्बन के आश्रय भाव में उसका रूप और चरित्र सभी कुछ आ जाता है । यद्यपि हमारे यहाँ नायक और विशेषकर नायिकाओं का वर्णन हास्यास्पद कोटि तक पहुँच गया है । तथापि हमारे यहाँ व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं की गई । नायकों में तो व्यक्तित्व काफी रहता है । धीरोदात्त नायक राम और युधिष्ठिर का व्यक्तित्व भिन्न है । इसी प्रकार दुष्यन्त वत्सराज आदि धीर ललित हैं ।

सामान्य और विशिष्ट का समन्वय ही चरित्र चित्रण की मूल समस्या है । यदि पात्र अधिक समन्वय की ओर जाता है तो उसका अस्तित्व नहीं रहता । यदि वह सामान्य से बहुत दूर जाता है तो पाठक उसका विशिष्ट कहलाने लगता है इसलिये उत्तम पात्र वे ही हैं जो सामान्य से दूर न होते हुए भी अपनी विशेषता बनाये रखते हैं ऐसे पात्रों को जो कुछ समाज से मिलता है वह उसका सामान्य अंश होता है और जो व्यक्ति स्वयं अपनी गाँठ का लाता है वह उसका वैयक्तिक भाव होता है । फिर भी कुछ पात्र सामान्य की ओर अधिक झुके हुए सरल होते हैं और व्यक्तित्व की ओर झुके हुए पात्र अपेक्षाकृत पेचीदा । किन्तु यह बात निश्चय रूप से स्वीकृत नहीं हो सकती । मानस की मंथरा सामान्य पात्र है अपनी स्वामिनी की हित कामना इधर उधर लगाने की प्रवृत्ति उसमें अन्य नौकरानियों की सी है । किन्तु यह दो प्रवृत्तियाँ सबमें एक रूप से नहीं हो सकतीं । इसी में व्यक्ति की विशेषता आ जाती है ।

अतः चरित्र चित्रण महाकाव्य, खण्ड काव्य मुक्तक नाटक, उपन्यास कहानी आदि सभी में थोड़ी बहुत मात्रा में होता है । किन्तु सबसे विभिन्न प्रकार से ।

चरित्र चित्रण के अन्तर्गत कला का सन्निवेश तीन पक्षों के द्वारा होता है ।

१—शारीरिक व्यक्तित्व जैसे मानस में परशुराम के रूप का चित्रण किया गया है ।

२—बौद्धिक गुण इसमें पात्र के चातुर्यपूर्ण कार्य आते हैं ।

३—हार्दिक गुण जैसे सीता ।

उपसंहार—

अत शब्द और अर्थ शैली अलंकार ध्वनि छन्द रस संगीत प्रबंध आदि काव्य कला के प्रमुख अंग हैं जिनके बिना काव्य कला की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह काव्य कला के सभी तत्व कवि कुल मुकुट मणि गोस्वामी तुलसी दास जी की कविता में बड़ी ही प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं जिसका विवेचन एक-एक करके प्रस्तुत प्रबन्ध में यथास्थान आगे किया जायगा।

दूसरा अध्याय



तुलसी का काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण

महाकवि तुलसीदास हिन्दी काव्य गगन के सबसे दीप्तिमान नक्षत्र हैं। उनकी काव्य प्रतिभा और पांडित्य का प्रभाव देश काल की सीमा का अतिक्रमण कर आज सर्व कालिक और सार्वभौम हो रहा है। उनकी अनेक काव्य कृतियाँ अपनी प्रचुर भाव सामग्री अनुपम अभिव्यक्ति कौशल के कारण हिन्दी काव्य क्षेत्र में सर्व श्रेष्ठ समझी जाती हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की कविता का आदर्श लोक-जीवन का कल्याण था और स्वान्तः सुखाय का उद्देश्य रखते हुए भी उनकी कविता परान्तः सुखाय भी बनती ही थी।[1]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने काव्य सिद्धान्तों पर विशेष प्रकाश नहीं डाला है। किन्तु उन्होंने संक्षेप में सूत्र रूप में जो 'मानस' में लिख दिया है। वह उनके कवि और काव्य के स्वरूप जानने के हेतु पर्याप्त है। नीचे विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत हम गोस्वामी जी के कवि और काव्य सम्बन्धी विचारों की विवेचना कर रहे हैं।

काव्य का स्वरूप—

गोस्वामी जी का कवि शब्द से क्या तात्पर्य है इस प्रकरण में यह भी जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। मानस के प्रारम्भ में गोस्वामी जी ने लिखा है :—

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥
सत्य कहौं लिखि कागद कोरें।[2]

इस का अभिप्राय यह नहीं कि वे कलात्मक ज्ञान से शून्य थे। तुलसी की इस उक्ति का यही अभिप्राय हो सकता है कि कवि शब्द के विषय में उनका यह दृष्टिकोण है कि कवि पद अत्यन्त प्रतिष्ठित है और दैवी देन के बिना इसे कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। गोस्वामी जी तक जिन पूर्ववर्ती कवियों की रचनायें पहुँच चुकी थीं। निस्संदेह वे दिव्य प्रतिभा सम्पन्न थे। तभी आधुनिक युग के समस्त साधनों के अभाव में उनकी कृतियाँ इतने काल तक जीवित रह सकीं और आज भी उनका मान है। अतएव यदि तुलसीदास कवि शब्द का प्रयोग वाल्मीकि व्यास कालिदास जैसे साहित्य-कारों के हेतु ही करना चाहते हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं और इस दृष्टि से

१ काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र—पृ० १७२
२ मा० बा० १५

कोई भी व्यक्ति इसके लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग करने की धृष्टता नहीं कर सकता। कारण ऐसा करने पर यह समझा जायेगा कि वह अपने को उस दैवी शक्ति से सम्पन्न समझता है। तात्पर्य यह है कि कविता के स्वरूप के सम्बन्ध में वह अपना स्पष्ट मत अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि कविता उस महत्व पद की अधिकारिणी है जिसकी समता कोई भी लौकिक विभूति नहीं कर सकती जिसकी अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में होती है —

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाहि न कोटि उपाय॥
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहि बानी।।[1]

स्पष्ट हो है कि जब सरस्वती इस अलौकिक शक्ति के वशीभूत होकर दौड़ती चली आती है तब यही सिद्ध होता है कि कविता वास्तव में महत्व पद की अधिका-रिणी है।

काव्य की उत्पत्ति —

गोस्वामी जी ने काव्य की वस्तु पर विशेष ध्यान दिया है और यह माना है कि काव्य एक पवित्र वस्तु है क्योंकि उसमें राम नाम जैसी पवित्र वस्तु का गान किया गया है। लिखा भी है।

एहि महं रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा।।[2]

उन्होंने एक अन्य स्थान पर लिखा है।

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबन्ध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥[3]

अक्षर विन्यास अभिधा लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों के द्वारा विभिन्न अर्थों का प्रतिपादन, अलंकार छन्दों की विविधता रसों का वर्गीकरण कविता में स्नेह प्रसाद आदि गुण तथा अश्लीलता आदि दोष इन बातों का पूर्ण पांडित्य गोस्वामी जी में विद्यमान था। इस विषयक उनकी एक उक्ति अन्यत्र भी मिलती है।

यद्यपि कवित्त रस एकउ नाहीं।।[4]

यह एक नम्रता सूचक वाक्य अवश्य है। किन्तु इससे यह ज्ञात होता है कि काव्य की सुन्दरता के हेतु गोस्वामी जी रस की भी अनिवार्यता स्वीकार करते थे।

गोस्वामी जी ने युक्ति अर्जन क्षमता की भी सराहना की है किन्तु काव्य की मूल प्रेरणा को कवि हृदय नहीं प्रभु को माना है।

---

१ मा० बा० पृ० ११
२ मा० बा० पृ० १०
३ मा० बा० पृ० ११
४ मा० बा० पृ० ११

सारदा दारु नारि सम स्वामी । राम सूत्र धर अन्तरयामी ।।
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी । कवि उर अजिर नचावहिं बानी ।।[1]

भाव है राम कठपुतली सरस्वती को नचाने वाले हैं । और जिस पर भी उनकी कृपा होती है । वह उस सरस्वती को उसी के आँगन में नचाते हैं । इससे स्पष्ट है कि काव्य की उत्पत्ति जीव कृत नहीं अपितु प्रभु कृत है । यहाँ पर गोस्वामी जी का ईश्वर प्रदत्त या जन्म जात प्रतिभा पर विश्वास प्रकट होता है ।

सत्य है राम की कृपा से ही कवि को वाणी प्रसाद प्राप्त होता है । इस शक्ति का सदुपयोग कवि के अपने ही हाथ म होता है —

असमानस मानस चख चाही । भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही ।।
भयउ हृदय आनन्द उछाहू । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ।।
चली सुभग कविता सरिता सो । राम विमल जस जल भरिता सो ।।[2]

तुलसी ने यहाँ भी अपनी कविता की उत्पत्ति सम्बन्धी विचार धारा प्रस्तुत की है और यह बतलाया है कि यह किस प्रकार मन बुद्धि और हृदय आदि से सम्बन्ध रखती है और यही कविता किस पुण्य जल से आप्लावित होकर सर्व सुखद बन जाती है । गोस्वामी जी ने 'शंभु प्रसाद' और 'हरि प्रेरणा' को ही काव्य की उत्पत्ति के हेतु सब कुछ नहीं मान लिया है उन्होंने संयम निष्ठा और ध्येय पर भी ध्यान दिया है । गोस्वामी जी ने एक रूपक के द्वारा काव्य की उत्पत्ति के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं ।

हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ।
जो बरषै बर बारि बिचारू । होहिं कवित मुक्तामनि चारू ।।[3]

स्वाति नक्षत्र आने पर जब सिंधु स्थित सीप में वर्षा होती है तब उसमें मोती उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार हृदय स्थित मति में शारदा की प्रेरणा से जब सुन्दर विचारों की वर्षा होती है तब उसमें कविता उत्पन्न होती है । भाव है यहाँ सिंधु हृदय है और मति सीप और स्वाति सरस्वती है । ऐसी अवस्था में जब हृदय रूपी समुद्र में की बुद्धि मति रूपी सीप है उसमें स्वाति रूपी शारदा की वर्षा का जल पावे तभी काव्य की उत्पत्ति सम्भव है । निष्कर्ष यह निकला कि शारदा काव्य की उत्पत्ति में प्रमुख स्थान रखती है उसी के प्रसाद से कविता करने की शक्ति उत्पन्न होती है और यह शारदा (सरस्वती) राम के इशारे पर नाचती है ऐसी अवस्था में गोस्वामी जी के इस कविता के उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त में भी भक्ति भावना काम कर रही है । जिसे तन्मय भाव राम की कथा में संचित करके अनुराग से हृदय में धारण करते हैं । —

---

१ मा० बा० पृ० ११
२ मा० बा० पृ० ३९
३ मा० बा० पृ० १०–११

काव्य का प्रयोजन—

गोस्वामी जी के काव्य के उद्देश्य परक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करने के हेतु उनकी एक निम्नलिखित उक्ति से काम चल सकता है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई ॥[1]

मानसकार गोस्वामी जी का यह मत कीर्ति कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो। काव्य सम्बन्धी उनके लौकिक और साहित्यिक दृष्टिकोण का परिचायक है। मानव की चरम आकांक्षा होती है लौकिक विभूति प्राप्त करने की। तुलसी इसे बुरा नहीं समझते। सांसारिक सम्पत्ति या वैभव प्राप्त करने की वे अनुमति देते हैं। परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि वह गंगा के तुल्य सबका हित करने वाली हो। इसी प्रकार वह कीर्ति प्राप्त करने की आकांक्षा को भी बुरा नहीं समझते परन्तु उसका उद्देश्य भी गंगा के समान सबका हित करने वाला होना चाहिए। कीर्ति और विभूति वाला दृष्टिकोण कविता के सम्बन्ध में भी गोस्वामी जी स्वीकार करते हैं। अर्थात् कविता भी सुरसरि के समान सबका हित करने वाली हो। तभी उसकी सार्थकता है।

गोस्वामी जी की उक्त चौपाई में भी काव्य को सप्रयोजन मानते हैं। वे उसमें उपयोगिता का रहना आवश्यक समझते हैं। उनकी दृष्टि में यह उपयोगिता मानवता और स्वस्थता का संचार करने वाली हो विचारों को उन्नत और सुन्दर बनाने वाली हो एवं रुचि को परिष्कृत और सुसंस्कृत करने वाली हो। इस भाँति उनकी रचना का उद्देश्य बहुत ही व्यापक और उदार है। तुलसी की उक्त उक्ति में सब कर हित होई कह कर सत्यं और सुन्दरं की अपेक्षा शिवं को अधिक महत्व दिया गया है। और वह इस कारण कि जीवन की मूल भावना सत्य और सुन्दरं की अपेक्षा शिवं से अधिक घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। यह उद्देश्य सम्बन्धी उनका सामाजिक दृष्टिकोण है।

गोस्वामी जी की उक्त उक्ति का एक महत्वपूर्ण संकेत यह भी है कि वे समाज की उपेक्षा करने में काव्य की सार्थकता नहीं मानते।

यहाँ एक शंका हो सकती है कि गंगा तो केवल उत्तर भारत के निवासियों का ही हित करती है समस्त भारत का नहीं। तब समस्त संसार की बात तो दूर रही। अतएव क्या गोस्वामी जी का उक्त मत संकुचित दृष्टिकोण का परिचायक है तथा वे गंगा तट वासियों का ही कल्याण चाहते थे। इसका समाधान यह है कि गोस्वामी जी का दृष्टिकोण संकुचित नहीं अत्यन्त व्यापक और उदार है। उनके उपर्युक्त कथन का अभिप्राय केवल यही है कि गंगा अपने तटवासियों और अपने ऊपर श्रद्धा रखने वालों का जिस प्रकार लौकिक और पारलौकिक हित करती है उसी प्रकार मानव मात्र के हित का ध्यान कीर्ति और काव्य प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति में होना

१ मा० बा० पृ० १२

चाहिये। दूसरे शब्दों में लोक कल्याण और लोक सेवा का भाव यदि उक्त तीनों गुणों से सम्पन्न व्यक्ति में है तो समाज में उसके विरुद्ध कभी भी ईर्ष्या द्वेष की भावना उत्पन्न न होगी। अपितु ऐसे व्यक्तियों के प्रति लोगों का आदर भाव रहेगा।

सारांश यह है कि गोस्वामी जी का उपर्युक्त काव्य का प्रयोजन सम्बन्धी दृष्टिकोण एक ओर तो भारतीय दृष्टिकोण से मानव मात्र के लौकिक आदर्श की प्रतिष्ठा करता है और दूसरी ओर ईश्वर प्रदत्त काव्य प्रतिभा के चरम उद्देश्य की भी व्याख्या करा देता है। महाकवि सम्राट ने कभी भी लौकिक विभूति प्राप्त करने की कामना नहीं की। किन्तु अपनी काव्य प्रतिभा का उपयोग उन्होंने अपने उक्त दृष्टिकोण के अनुसार ही किया है। जिससे उनकी अमर कृति मानस लगभग ३५० वर्षों से इस लोक में सुख और शान्ति के साथ परलोक की प्राप्ति के हेतु भी मानव समाज को आश्वस्त करती रही है।

काव्य का विषय —

काव्य प्रतिभा ईश प्रदत्त विशिष्ट गुण है। भारतीय अधिकांश कवियों ने देव गुण गान में ही इसकी सार्थकता मानी है। परन्तु इस प्रकार का चरितगान स्वार्थ भाव से प्राप्त लोभ से नहीं जन कल्याणार्थ करना ही हमारे कवियों को अभीष्ट रहा है। गोस्वामी जी भी काव्य का विषय प्राकृत जन गुण गान नहीं अपितु अलौकिक चरित्र के गुणगान को ही स्वीकार करते हैं। उनके इस दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति इस पंक्ति में हुई है।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥[1]

तात्पर्य यह है कि लौकिक प्रतिभा के नाम से काव्य का सर्वथा दुरुपयोग होता है। यहाँ प्राकृत जन का गुणगान न करने की बात जब गोस्वामी जी कहते हैं तो समझना चाहिये कि वह पूर्ववर्ती वीरगाथा कालीन कवियों का स्पष्ट विरोध करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। और उनके आश्रयदाताओं के गुणगान को भी वह अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते थे। काव्य के विषय के सम्बन्ध में गोस्वामी जी का दृष्टिकोण अपनी सर्वाङ्गीण पूर्णता के हेतु भी बड़े महत्व का है। ईश्वर को ही समस्त मानवीय गुणों का मूल मानने के कारण उनके प्रति पाठक में सहज ही श्रद्धा भाव जागृत हो जाता है।

विदेशियों के हेतु भी गोस्वामी जी का विषय परक दृष्टिकोण महत्वहीन नहीं कहा जा सकता है। अधर्मियों से धर्म की रक्षा के लिए अवतार लेने की बात यदि छोड़ दी जावे तो भी मानवीय समस्याओं और उनका सामना करने वाली शक्तियों के परिचय के दृष्टिकोण से राम कथा किसी भी अभारतीय पाठक के लिए अत्यन्त रोचक आख्यान है। राम कथा से सम्बन्धित प्राय तुलसी के सभी पात्र अभारतीय साहित्य में प्राय किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं और उनके चरित्रों से वे जो प्रेरणा लेते हैं वह भी गोस्वामी जी के दृष्टिकोण से भिन्न नहीं है।

१ मा० बा० दो० ११

काव्य का प्रभाव—

उत्कृष्ट काव्य के प्रभाव के भी सम्बन्ध में गोस्वामी जी का अपना प्रसग दृष्टिकोण है। उनके मतानुसार उत्तम काव्य वही है जिसको विद्वानों द्वारा आदर प्राप्त हो। नहीं तो वह बाल प्रयास ही कहा जायेगा।

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।[1]

यहाँ गोस्वामी जी द्वारा प्रयुक्त बाल कवि शब्द भी ध्यान देने योग्य है। बाल प्रकृति में गम्भीरता का अभाव रहता है। उसकी रुचि भी परिष्कृत नहीं होती है और न उसके विचारों में स्थायित्व ही होता है। जब तक कवि का स्वभाव इस प्रकार का रहेगा तब तक उसकी रचना का प्रभाव पण्डित समाज पर पड़ ही नहीं सकता। पण्डितों में सम्मान किस कविता का होता है इस विषय में भी गोस्वामी जी ने बड़ा ही सुन्दर दृष्टिकोण रक्खा है।

सरल कबित कीरति बिमल सुनि आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करैं बखान॥[2]

तात्पर्य यह है कि कविता में तीन गुण होने चाहिये पहली बात है सरलता अर्थात् जिस कविता में जटिलता अथवा क्लिष्टता होगी वह लोक प्रिय नहीं हो सकती। दूसरे रचना में वर्णित चरित्र निर्मल होना चाहिये। तीसरे गुण का सम्बन्ध कथा वस्तु से है। कविता का अन्तिम गुण इस बात में है कि उसको सुनकर शत्रु तक अपना बैर भाव भूल जावे और मुक्त कण्ठ से उसकी सराहना करने लगे। कविता के प्रभाव के सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण दृष्टिकोण गोस्वामी जी ने उपस्थित किया है।

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥[3]

मनि मानिक और मोती में जो सुन्दर छबि होती है वह अपने उत्पत्ति स्थल अहि गिरि और गज मस्तक पर शोभा नहीं पाती। इन पदार्थों की शोभा का निखार तो तब देखने में आता है जब वे मुकुट अथवा आभूषणों में जड़ जाकर राजा के मस्तक अथवा युवती के शरीर पर धारण किए जाते हैं। इसी प्रकार कवि की रचना की भी सृष्टि एक स्थान पर होती है पर उसको सम्मान अन्यत्र मिलता है और इस अन्यत्र से गोस्वामी जी का संकेत उस स्थल से है जहाँ कविता के पारखी सहृदय विद्वान हों।

काव्य और भक्ति—

तुलसीदास मूलतः भक्त और सन्त कोटि के साधक थे। उनकी काव्य रचना

१ मा० बा० पृ० १५
२ मा० बा० पृ० १५
३ मा० बा० पृ० १२

के सामाजिक और वैयक्तिक दृष्टिकोण में भी भक्ति और आत्मोद्धार की भावना प्रधान थी। अन्यथा वे अपने काव्य को स्वान्तः सुखाय क्यों कहते। मानस जैसे विशाल ग्रन्थ की रचना करते समय भी तुलसी की एक कवि की अपेक्षा भक्ति की ही भावना प्रबल रही है। मानस को वे राम भगति सुरसरि कह कर राम भक्ति के प्रवाह सिंधु में प्रवेश करते हैं। उनके विचार में कविता साधन है और साध्य है राम भक्ति। तभी तो वह अपने काव्य में राम नाम की प्रधानता भक्ति भावना के ही कारण देते हुए कहते हैं।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अतिपावन पुरान श्रुति सारा॥

× × ×

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥[1]

मति अनुरूप राम गुन गाना ही उनकी भक्ति भावना का बोध कराता है। अतः उनकी दृष्टि में काव्य की रचना के सामाजिक एवं वैयक्तिक दृष्टिकोण में भक्ति एवं आत्मोद्धार की ही भावना प्रधान थी।

काव्य साधन है साध्य नहीं—

यह ऊपर ही कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी की दृष्टि में कला साधन है साध्य नहीं। उनकी साध्य तो राम भक्ति है। जिसे व्यक्त करने के हेतु वह साधन रूप में कला का आश्रय लेते हैं। यही उनका कला सम्बन्धी दृष्टिकोण है। अपने कला सम्बन्धी इस विचार के आधार पर ही वे कलात्मक प्रदर्शन को प्रमुखता नहीं देते। कला उनके वास्तविक विचार विमर्श अथवा सामाजिक दर्शन के स्पष्टीकरण का साधन मात्र है। साध्य नहीं। जहाँ तक कलात्मक चतुरता का प्रश्न है गोस्वामी जी उससे बिलकुल ही पृथक रहना चाहते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं।

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥

कबित्त विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥[2]

इस कथन का अभिप्राय यह नहीं कि वे कलात्मक ज्ञान से शून्य थे। पर इसका प्रमुख कारण यह है कि उनका काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण जो है वह सम्भवतः उस युग को तथा उनसे पूर्ववर्ती कवियों को मान्य नहीं। गोस्वामी जी ऐसे उक्ति वैचित्र्य को कभी भी महत्व नहीं देते जिसके भीतर सत्य का समावेश न हो और जिसके भीतर जीवन का मार्ग प्रदर्शन करने वाले उदात्त चरित्रों का प्रणयन न हो। इस हेतु वह कोरे कागज में सत्य का उद्घाटन ही कला का प्रमुख उद्देश्य समझते हैं। साथ ही काव्य कला का व्यापक आदर्श उपस्थित करते हुए वे कहते हैं।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥[3]

---

१ मा० बा० पृ० १

२ मा० बा० पृ० ११

३ मा० बा० १४

जो समाज के प्रत्येक वर्ग का कल्याण कर सके वही कला है। चूँकि गोस्वामी जी की कला साध्य नहीं साधन है इसीलिए वह व्यापक आदर्श लेकर चले हैं और इसीलिये उन्होंने काव्य को सर्व जन मंगलकारी बनाया है।

बालकाण्ड के मंगलाचरण में गोस्वामी जी ने मानस की रचना का उद्देश्य स्पष्ट वर्णन किया है।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।[1]

स्वान्तः सुखाय लिखने का उद्देश्य गोस्वामी जी को केवल अपने ही सुख देने मात्र से नहीं था वास्तव में उन्होंने अपना ग्रन्थ सभी को सुख देने के अभिप्राय से लिखा था।

इससे स्पष्ट हो गया कि उन्होंने 'सब कर हित' के लिए सबको कलि मल रहित करने के लिए, भव भय का शोषण करने वाले दुरित दोष और दुख का शमन करने वाले काम क्रोध मद लोभ को विनष्ट करने वाले तथा विमल विवेक और विराग बढ़ाने वाले मानस जल की सृष्टि की जिसमें सादर स्नान करने से हृदय का पाप और परिताप मिट जावे यही तुलसी के कला सम्बन्धी 'कविता साधन है साध्य नहीं' का ज्वलन्त प्रमाण है।

काव्य कला और उसके अङ्ग—

हम नहीं चाहते कि गोस्वामी जी के कोरे आदर्श के सत्य को असत्य कर दिखलायें। पर हम यह जानते हैं कि काव्य विवेक इस प्रभाव में तुलसीदास जी की रचना में काव्य के सभी अंग भाषा भाव रस छन्द आदि आ गए हैं। तुलसी ने इन सभी अंगों का विवेचन सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।[2] वाले प्रकरण में किया है। जिसकी विवेचना नीचे की जा रही है।

भाषा और भाव—गोस्वामी जी भाषा को उतना महत्व नहीं देते जितना कि भाव विचार और अर्थ को। उनकी पक्की धारणा यह है कि काव्य की वस्तु और उसका उद्देश्य तो उत्तम होना चाहिए फिर भाषा चाहे गंवारू ही क्यों न हो। इसी के आधार पर गोस्वामी जी कहते हैं।

भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी।।[3]

इसमें उनको अटल विश्वास भी है —

प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु विचार कि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग।।[4]

---

१ मा० बा० पृ० २
२ मा० बा० पृ० १४
३ मा० बा० पृ० ११
४ मा० बा० पृ० १२

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥[१]

भाषा और भाव पर गोस्वामी जी ने अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण भी रक्खा है । उनके विचार से भाषा और भाव में वही सम्बन्ध है जो सीता और राम में उन्होंने अपनी इससे सम्बन्धित समस्त भावना को इस दोहे में समेट कर रख दिया है ।

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥[२]

इस दोहे में गोस्वामी जी ने भाषा और भाव का पूर्ण रूपेण स्पष्टीकरण किया है । उनके अनुसार भाषा जल है और भाव जल की बीचि । यहाँ पर गोस्वामी जी ने जल की लहर न लिख कर भाव के हेतु जो 'बीचि' लिखा है । इसमें भी भाव 'बीचि' जल का बहुत सूक्ष्म रूप है । इसका अभिप्राय यही है कि भाषा के माध्यम से भावों के सूक्ष्म और प्रभावपूर्ण अंश स्पष्ट होते हैं । अतः भाषा और भाव अभिन्न हैं जैसे 'जल' और 'बीचि' ।

रस—इसको गोस्वामी जी ने तड़ाग में जलचर के रूप में स्वीकार किया है ।

नवरस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥[३]

इसका अभिप्राय यही है कि जिस प्रकार से जलचरों से सरोवर में एक सौन्दर्य आ जाता है उसी प्रकार से काव्य में रस से भी एक अपूर्व सौन्दर्य की वृद्धि होती है ।

छन्द—गोस्वामी जी की छन्द सम्बन्धी धारणा को स्पष्ट करने के हेतु हमें गोस्वामी जी की निम्न पंक्तियों की ओर दृष्टि डालनी होगी ।

छंद सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरन्द सुबासा ॥[४]

अर्थ पराग है और भाव मकरन्द है तथा सुगन्ध है भाषा । सुगन्ध से हम पुष्प की ओर आकर्षित होते हैं । इसी प्रकार भाषा से काव्य की ओर । अर्थ पराग के रूप में प्रस्तुत होता है । किन्तु कवि का भाव तो मकरन्द में ही रमा होता है । वही तो इसका रस का है । भाषा छन्द को पाकर और भी खिल उठता है । तो चौपाई छन्द आदि पुट, रूप और रंग रंग के कमल हैं ।[५]

---

१ मा० बा० पृ० १२
२ मा० बा पृ० १९
३ मा० बा० पृ १४
४ मा० बा पृ १४
५. मा० बा० पृ० ११

काव्य तथा विभिन्न सिद्धान्त—

वक्रोक्ति और ध्वनि—ध्वनि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए 'मानस' में गोस्वामी जी कहते हैं।

धुनि अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँति ॥[1]

यहाँ ध्वनि और वक्रोक्ति को भी मीन कहा गया है। और 'नवरस' को 'जलचर' बतलाया जा चुका है तो क्या इससे ध्वनि और रस का सम्बन्ध ध्वनित नहीं होता। इसके द्वारा कविता में वक्रोक्ति का महत्व भी स्पष्ट हो जाता है। काव्य में ध्वनि का भी वही स्थान है जो मीन का जल में होता है।

अलंकार—रही चमत्कार की बात सो गोस्वामी जी ने 'उपमा बीचि बिलास मनोरम'[2] के रूप में व्यक्त की है। गोस्वामी जी की इस चमत्कार सम्बन्धी उक्ति से मत होता है कि वे सभी अलंकारों को उपमा मूलक रूप में स्वीकार करते थे। चमत्कार का कार्य है अलंकृत करना और काव्य की शोभा को उभार कर प्रस्तुत करना। यही हमारे महाकवि का अलंकार के सम्बन्ध में दृष्टिकोण प्रतीत होता है।

रीति—'आखर अरथ अलंकृत नाना'[3] वाला जो प्रकरण प्रस्तुत किया है उससे स्पष्ट है कि उन्होंने काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। और उनके काव्य में भाषा छन्द और चमत्कार के जो विलक्षणता-युक्त प्रयोग मिलते हैं वे उनके तत्सम्बन्धी अधिकार के प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सभी प्रकार के मनोविकारों की व्यंजना द्वारा भाषा को समर्थ बनाकर उसे काव्य भाषा का प्रतिष्ठित पद प्रदान करना गोस्वामी जी का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण से प्रतीत होता है।

गोस्वामी जी का छन्द चयन भी कौतूहल उत्पन्न करता है। चौपाई में सामान्य वर्णन रहते हैं कथा का मुख्य भाग। दोहा उनके कथानक के घटना चक्र को जोड़ने वाला एक बिन्दु है। इसके साथ ही साथ उन्होंने छन्द सोरठा और दोहा को काव्य सरोवर वाले रूपक में कमल माना है।

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥[4]

अभिप्राय है कि जिस प्रकार कमल सरोवर का सौन्दर्य कई सौ गुना बढ़ा देने में समर्थ होता है उसी प्रकार से छन्द भी काव्य के सौन्दर्य को कई गुना अधिक बढ़ा देते हैं। सोरठे में आरोह और सवैया में कवि का प्रिय लगने वाले रोचक स्थल उनके छन्द सम्बन्धी निश्चित और सुव्यवस्थित दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

उन्होंने चमत्कार योजना को कभी भी साध्य नहीं माना। अलंकारों को उन्होंने सदैव काव्यगत व्यापार को तीव्र करने में एवं गुणों के उत्कर्ष में सहायक

१ मा० बा० पृ० १४
२ मा० बा० पृ० ११
३ मा० बा० पृ० ११
४ मा० बा० पृ० १४

माना। यही कारण है कि उनकी अलंकार योजना सर्वत्र भावाभिव्यक्ति को स्पष्टता एवं बोध गम्यता प्रदान करने में सहायक हुई है। और इस दृष्टिकोण का निर्वाह करने से ही उनकी काव्य की रमणीयता कई सौ गुना अधिक बढ़ गई है।

तुलसी का शब्द प्रयोग सम्बन्धी आदर्श भी प्रकट है। वह यह है कि गोस्वामी जी सार्थक शब्द योजना को ही काव्य के हेतु आवश्यक समझते हैं। यही कारण है। कि उनका एक-एक शब्द सामिप्रायक और सार्थक है। इन सभी बातों से उनकी शैली में बड़ी ही रोचकता आ गई है।

उपसंहार—

अत गोस्वामी जी के काव्य और कला सम्बन्धी दृष्टिकोण में इतनी व्यापकता है कि न तो वे किसी क्षेत्र में संकोच की प्रवृत्ति को ही अंगीकार करते हैं और न आदर्श विशेष के प्रति इतना दुराग्रह ही करते हैं। जो उनके मत से मेल न खाने के कारण अखर जावे। इस प्रकार गोस्वामी जी के काव्य का सामाजिक महत्व यही है कि उसमें जन कल्याण की भावना कूट कूट कर भरी है। जो पीछे उनके उद्देश्य के प्रसंगवश स्पष्ट की जा चुकी है।

तीसरा अध्याय



तुलसी की कला में मर्यादा और औचित्य

मर्यादा और औचित्य का भेद—

गोस्वामी जी का आगमन जन समाज के बीच उस समय हुआ जब भारतीय संस्कृति का व्यापक स्वरूप लोगों के नेत्रों से एकदम ओझल हो गया था। अरब सभ्यता को अपने साथ मिलाने के अभिप्राय से लोगों ने नवीन पन्था का भी निर्माण कर लिया था। उस समय लोक को व्यवस्थित करने वाली औचित्य युक्त मर्यादा न थी। धर्म कर्म की मर्यादा से विहीन लोगों में वर्णाश्रम धर्म के प्रति श्रद्धा का भाव भी प्रायः विलुप्त हो गया था।

ठीक इसी समय गोस्वामी जी का आगमन हिन्दी साहित्य में हुआ। जिन्होंने वर्ण व्यवस्था आश्रम धर्म कुलाचार इत्यादि सभी के साथ भक्ति का सामंजस्य स्थापित करके भारतीय संस्कृति को छिन्न भिन्न होने से बचाया। ऐसे सर्वांगदर्शी महात्मा के हेतु मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र से बढ़कर और अवलम्ब हो क्या मिल सकता था। राम के चरित्र में आदर्शपूर्ण अंगों की प्रतिष्ठा करके गोस्वामी जी ने तत्कालीन सामाजिक स्तर में नव चेतना जागृत की।

मर्यादा और औचित्य दोनों का भाव एक दूसरे से भिन्न है। जहाँ एक ओर मर्यादा आदर्शों का पालन है वहीं दूसरी ओर औचित्य वैयक्तिक तर्क पर आधारित है। मर्यादा परिवार समाज राज्य या सम्प्रदाय के प्रसंग में निर्धारित नियमों का पालन है। किसी कार्य को इस ढंग से करना कि उसको प्रत्येक प्रकार से ठीक और उचित कहा जाए औचित्य कहा जायेगा। उचित में मर्यादा के नियम हो सर्वथा कसौटी नहीं होते औचित्य स्वयं कभी-कभी मर्यादा के नियम बनाता है। संक्षेप में मर्यादा और औचित्य में यही विभिन्नता है।

जैसे भाव छन्द रस, अलंकार आदि काव्य के आवश्यक उपकरण स्वीकार किए गये हैं, उसी प्रकार से मर्यादा और औचित्य दोनों का समान योग काव्य में अत्यधिक अपेक्षित है। गोस्वामी जी की रचना में मर्यादा और औचित्य दोनों ही विशेषताएँ देखी जा सकती हैं जिनकी हम अलग-अलग विवेचना नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

मर्यादा—

गोस्वामी जी के प्रबन्ध काव्य 'मानस' में पग-पग पर मर्यादा देखने को मिलती

है। वर्णन चरित्र चित्रण संस्कृति रस भाव, शब्द प्रयोग पारस्परिक व्यवहार वर्णाश्रम धर्म आदि क्षेत्रों में गोस्वामी जी ने मर्यादा का पालन किया है जिस पर एक एक करके नीचे विचार किया जा रहा है।

वर्णन में मर्यादा—गोस्वामी जी के वर्णनों में सर्वत्र मर्यादा की योजना देखने को मिलती है। गोस्वामी जी बहुत मर्यादावादी थे। मर्यादा का उल्लंघन उनके लिए एक दम असह्यनीय था। सौन्दर्य वर्णन में गोस्वामी जी ने जैसी चतुरता से मर्यादा का निर्वाह किया है। वह देखते ही बनता है। पार्वती और शंकर के जिस शृंगार वर्णन में कालिदास ने कुमार संभव में कोई कसर नहीं उठा रक्खी उसी को गोस्वामी जी ने इतने मर्यादित रूप में लिखा है जिसकी सराहना किये बिना नहीं रहा जा सकता। शंकर और पार्वती की प्रेम केलि के प्रसंग में गोस्वामी जी ने कहा :—

जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि शृंगारु न कहौं बखानी।।[1]

इसी प्रकार सीता के भी सौन्दर्य वर्णन में गोस्वामी जी ने कह दिया :—

सिय बरनिअ तेहि उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई।।[2]

गोस्वामी जी की दृष्टि में जगज्जननी जानकी के सौन्दर्य का वर्णन कुकवि की श्रेणी में आता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि गोस्वामी जी ने जानकी के सौन्दर्य का अंकन नहीं किया उन्होंने जानकी के सौन्दर्य का वर्णन अलौकिक लक्ष्मी की उद्भावना कर बड़ा ही सुन्दर किया है। किन्तु बाद में उपर्युक्त चौपाई लिख कर उन्होंने मर्यादा की हद कर दी।

उसी प्रकार गोस्वामी जी ने प्रकृति वर्णन भी एक आदर्श रूप में किया है। प्रकृति से उनके उपदेश ग्रहण की प्रवृत्ति प्रकृति में एक आदर्श रूप स्थापना की द्योतक है। इसी प्रकार सर्वत्र मर्यादा का पालन किया है। जिसका वृहद् विवेचन आगे 'तुलसी का प्रबन्ध सौष्ठव और वर्णन पद्धति' के अन्तर्गत किया जायेगा। अतएव यहाँ इसका संकेत मात्र ही पर्याप्त होगा।

चरित्र चित्रण में मर्यादा—तुलसी के सभी पात्र अपनी-अपनी संस्कृति की मर्यादा के अनुरूप महाकाव्य में उपस्थित हुए हैं। जिसकी विवेचना चरित्र चित्रण वाले प्रकरण में आगे विस्तार से की जायेगी। अतः यहाँ इसका विवेचन पुनरावृत्ति मात्र ही होगा।

संस्कृति एवं धर्म निरूपण में मर्यादा

संस्कृति—गोस्वामी जी की संस्कृति गत मर्यादा को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

१—वेद शास्त्र की मर्यादा

२—लोक मर्यादा

---

१ मा० बा० पृ० ७८

२ मा० बा० पृ० १७२

नीचे इन दोनों का ही क्रमानुसार वर्णन किया जा रहा है।

वेदशास्त्र की मर्यादा—तुलसीदास जी के प्रारम्भिक काल में भारतीय संस्कृति के शरीर में रोग प्रविष्ट हो चुके थे। सदाचार का स्थान कदाचार ने सत्य का असत्य ने उदारता का अनुदारता ने संयम का लोलता का प दण्ड ने ले लिया था। सर्वत्र मर्यादा हीनता व्याप्त हो रही था। गोस्वामी जी ने इस परिस्थिति का चित्रण करते हुए कहा —

> सब नर कल्पित करहिं अचारा ।
> जाइ न बरनि अनीति अपारा ।
> भए बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग।
> करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग ॥[१]

गोस्वामी जी ने राम के आदर्श लोक नायक चरित्र में आर्य संस्कृति वेद और शास्त्र को मर्यादा का विकसित रूप पाया। जिसे लेकर वह द्रुत गति से आगे बढ़े। राम के राज्य में सभी अपने अपने धर्म में रत थे। प्रात उठकर ईश्वरोपासना संध्योपासना यज्ञ हवन करना व्यक्तियों का परम कर्तव्य था। स्वयं महाराजा राम की भी यही दिनचर्या है —

> बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन। वद पुरान बसिष्ठ बखानहिं।
> सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं। उनके गृह गृह होहिं पुराना।
> राम चरित पावन विधि नाना ॥[२]

इस प्रकार गोस्वामी जी ने मर्यादा पालन की सीमा को निर्धारित करते हुए राम के आदर्श जीवन में संस्कृति का समन्वय दिखलाकर जनता के सामने सांस्कृतिक आदर्श रखा और साथ ही जनता के व्यवहारिक जीवन को नीचा-ऊँचा कर देने का भी प्रयास किया।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की परम्परा का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी ने राम के जीवन में संस्कारों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया है।[३]

जातकर्म—जातकर्म संस्कार भारतीय रीति रस्मों के आधार पर बालक का

---

१ मा० उत्तर पृ० ७६१

२ मा० उत्तर पृ० ७१० ४११, ७१४।

३ उन्होंने राम के १६ संस्कारों का वर्णन नहीं किया जिनका वेदों और स्मृतियों में उल्लेख है। तथा जिनकी ओर हम ने समाज का ध्यान विशेष रूप से आर्य समाज के आन्दोलन के बाद आकृष्ट हुआ है। परन्तु उन्होंने जातकर्म मुंडन कर्णवेध उपनयन और विवाह संस्कारों का विशेष वर्णन किया है। उनका आज भी हमारे समाज में बड़ा महत्व है। इस प्रकार इन संस्कारों का सीधा देना वर्णन करके उन्होंने हमारे लोक जीवन का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

—डा० भगीरथ मिश्र—गोस्वामी तुलसीदास और लोक जीवन

प्रथम संस्कार होता है। राम के जन्म लेने के उपरान्त कवि सम्राट ने इस संस्कार का विवेचन किया है।

जात करम करि पूजि पितर
सुर दिये महि देवन्ह दाम ।[1]

छटी-- जागिय राम छटी रजनि रुचिर सिंहार ॥[2]

मुण्डन— करन वेद चूड़ाकरम कौशिक वैदिक काज।
गुरु आयसु भूपति करत मंगल साज समाज ॥[3]

विवाह—इन्हीं संस्कारों की भांति विवाह संस्कार का भी बड़ा महत्व है। इसमें गोस्वामी जी ने जो राम और सीता का विवाह स्वयंवर की रीति से कराया है वह वेद शास्त्र की मर्यादा के अनुरूप ही है। कहा गया है—राम और सीता का विवाह स्वयंवर की रीति से हुआ। स्वयंवर का आधार कन्या का स्वेच्छापूर्वक वरण था। रामायण तथा महाभारत में स्वयंवर माता पिता की इच्छा से होता था। किन्तु सामाजिक शास्त्र के नियमों में यह विवाह माता पिता की इच्छा को प्रधानता नहीं देता। वह माता पिता के लिए एक प्रकार से दण्ड स्वरूप था कि शास्त्र द्वारा निर्धारित नियम का पालन करते हुए कन्या का विवाह क्यों नहीं कर दिया। पिता का धर्म था कि वह अपनी कन्या का विवाह युवावस्था प्रारम्भ होने के तीन वर्ष के अन्दर कर दे। यदि पिता इस अवस्था के अन्दर विवाह न करे तो स्वयंवर हो सकता था जो कि ग्रंथों के आधार पर सिद्ध है।[4]

इन पंक्तियों में सूक्ष्म जातीय संस्कृति का यह प्रतिबिम्ब प्रदर्शित है जिसकी गम्भीर छाया भारतीय संस्कृति का प्राण है। तुलसी दास जी सदैव ही उदारता के पक्षपाती रहे। उन्होंने सांस्कृतिक सहिष्णुता की ओर भी ध्यान दिया। त्याग दया रक्षा सहनशीलता पारस्परिक मित्रता में भारतीय संस्कृति के मूल तत्व सन्निहित हैं। वे इन्हीं की रक्षा के हेतु प्रयत्नशील थे। उन्होंने लिखा है —

---

१ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खण्ड—गीतावली—पृ० २२।
२ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खण्ड—गीतावली—पृ० २११ १।
३ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खण्ड—रामाज्ञाप्रश्न—पृ० ११।
४ मनुस्मृति ९ ९० ९१
याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र १।६४
विष्णु स्मृति २४।४ तथा १७।६१।६२
वशिष्ठ धर्म सूत्र १७।६७।६८
नारद सूत्र १८ ९
गौतम धर्म सूत्र १८ २०

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई।
पुनि मुनिगन दुहु भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनन्दे ॥[1]

\+ \+ \+

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधासी।
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥[2]

भारतीय संस्कृति की उदारता है कि उसमें लघु से लघु और महान् से महान् भी समान देखे जा सकते हैं। शरण में आया हुआ किसी भी वर्ग का व्यक्ति रक्षणीय है। शत्रु का भाई विभीषण राम की शरण में आकर कहता है।

'श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवभीरा।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीरा।[3]

राम तो इस शरणागत की रक्षा के हेतु यहाँ तक कहते हैं।

'जो सभीत आवा सरनाईं। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं।[4]

राम के कहे वचन की सार्थकता का परिचय मिला लक्ष्मण के शक्ति लगने के समय। लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति से आहत देखकर राम रोने लगे। राम का यह रोना विभीषण के हेतु था लक्ष्मण के लिए नहीं। क्योंकि लक्ष्मण के हेतु तो राम ने स्पष्ट ही कह दिया कि मैं भाई के साथ चला जाऊँगा। फिर उनके हेतु रुदन कैसा। रुदन तो वास्तव में विभीषण के हेतु है जिसकी अभिव्यक्ति गीतावली के इस पद में हुई है।

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको।
सुनु सुग्रीव साँचेहु मो पर फेर्यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता।
गिरि कानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति रही सोच भरि छाती ॥[5]

यह तो हुई भारतीय संस्कृति की एक विशेषता जिसमें शरणागत सहोदर भाई से भी अधिक रक्षणीय है। लंका काण्ड में राम अंगद को दूत बनाकर भेजते समय शत्रु की हित कामना ही करते हैं।

काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥[6]

---

१ मा० अयो० पृ ४०८
२ मा० अयो० पृ ४१३
३ मा० सु० पृ ३५१
४ मा० सु० पृ ३५०
५ गीतावली लं० पृ० ३९१ पं० सं० ७
६ मा० लं० पृ० ३९६

शायद ही विश्व में ऐसा कोई देश हो जिसकी संस्कृति में ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हों। गोस्वामी जी ने लोक-धर्म में मर्यादा की ऐसी स्थापना की जिससे समाज की ऊँच-नीच सभी जातियाँ एक में मिल गईं।[1]

गोस्वामी जी ने परम्परागत विचारों का परिचय देने के लिए संस्कृति के प्रत्येक पहलू को अपनाया है। जैसे :—

लोक विश्वास—

शकुन विचार — गोस्वामी जी की रचनाओं में शकुनों पर भी विचार किया गया है। राम की बारात जाते समय शकुनों का जो विवेचन गोस्वामी जी ने किया है वही प्रस्तुत किया जा रहा है :—

> बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता॥
> चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥
> दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा॥
> सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥
> लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा॥
> मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥
> छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी।
> सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥[2]

---

१ गोस्वामी जी ने शूद्रों को भी मन्दिर प्रवेश का अधिकार दिया है। 'जनमत भयउँ सूद्र तनु पाई' इस प्रकार अपने पूर्व जन्म की कथा कहते हुए काकभुसुंडि गरुड़ से कहते हैं— एक बार हर मन्दिर जपत रहेउँ सिव नाम। इसका अभिप्राय यह है कि गोस्वामी जी समाज में छुआछूत के भाव को पनपने देना नहीं चाहते थे। गोस्वामी जी आर्य संस्कृति के परम भक्त थे। उसकी रक्षा उनके जीवन का सर्वोच्च ध्येय था। मनुष्य-मनुष्य का ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं जिसमें गोस्वामी जी ने आदर्श की स्थापना न की हो। हमारी संस्कृति की विशेषता उत्सर्ग है। मानस में इस उत्सर्ग के उत्कर्ष का रूप खूब पल्लवित हुआ है। दशरथ के परिवार का प्रत्येक व्यक्ति सारे परिवार की सुख शान्ति के हेतु अपने-अपने सुखों का त्याग करने को प्रस्तुत है और सारे परिवार का त्याग मिलकर राज्य और समाज का कल्याण करता है। यह उत्सर्ग भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता का द्योतक है। भारतीय समाज व्यवस्था के आधार स्तम्भ वर्ण व्यवस्था धर्म और आश्रम धर्म हमारी संस्कृति के आध्यात्मिक तत्त्व की ओर संकेत करते हैं।

—डा० श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल—गोस्वामी तुलसीदास—व्यवहार धर्म शीर्ष लेख—पृ० १२ १२३ १२४।

२ मा० बालो० पृ० २०८

असगुन विचार—गोस्वामी जी ने सगुनों की भाँति असगुनों पर भी विचार किया है। जैसे —

> असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
> खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होई भरत मन सूला॥[1]

भाग्यवाद—गोस्वामी जी कट्टर भाग्यवादी थे। भाग्यवाद के सैकड़ों उदाहरण उनकी रचनाओं में बिना प्रयास के ही मिल जाते हैं। जैसे :—

> कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
> देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटन हार॥[2]
> तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
> आपुन आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥[3]

इस प्रकार गोस्वामी जी ने यत्र तत्र सभी जगह संस्कृति में मर्यादा का निर्वाह किया है।

लोक मर्यादा—

तुलसीदास ने मानस में लोक संस्कृति की विविध प्रणालियों को अपनाया है।

अनेक वन्य जातियों का प्रयोग मानस में मिलता है। इन जातियों में निषाद वानर, भील आदि आते हैं। यह जातियाँ नागरिक जीवन से दूर सघन वनों में निवसित हैं। राम से इनका सम्पर्क होता है राम की संस्कृति का प्रभाव भी इन पर पड़ता है। इस प्रकार तुलसी ने लोक संस्कृति की मर्यादा के चित्र अंकित किए हैं जिनका उद्देश्य लोक प्रिय संस्कृति का भव्य रूप खड़ा करना है।

तुलसीदास ने चित्रकूट के पथ पर अग्रसर राम को अनेक ग्राम निवासी नर नारियों से मिलाया है। तथा अनेक ग्रामों में होकर उनके मार्ग का निर्माण किया। इस वर्णन में लोक संस्कृति के चित्रों की अनुपम सजावट है। विशेष रूप से नर नारियों की विविध मानसिक स्थितियों का वर्णन किया गया है। राजा दशरथ की वचन प्रियता तथा उनकी सत्यता आदि बौद्धिक आदर्श के आधार पर टिकी हुई राजा दशरथ की निर्दोषता पर ग्राम वासियों की दृष्टि नहीं जाती। उन्हें राजा दशरथ और कैकेयी समान रूप से दोषी प्रतीत होते हैं।

> सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं॥[4]

कितना आदर्श चित्रण है। लोकापवाद का यह रूप लोक संस्कृति की मनोभूमि का प्रधान अंग है। इससे यह सिद्ध है कि नागरिक समाज की अपेक्षा लोक समाज

---

१ मा० अयो० पृ० ३२४
२ मा० बा० पृ० ५२
३ मा० बा० पृ० ११४
४ मा० अयो० पृ० १२१

मे सहानुभूति के भाव की प्रधानता होती है। राम लक्ष्मण और सीता के प्रति भी ग्राम वासियों की सहानुभूति के भाव की प्रधानता है। राम लक्ष्मण और सीता के प्रति ग्राम वासियों की सहानुभूति और उनका स्नेह उमड़ पड़ता है।

राम लखन सिय रूप निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी ॥[1]

इसी ग्राम संस्कृति के ऊपर अनेक नागरिक संस्कृतियाँ न्योछावर की जा सकती हैं। इसी रूप पर भगवान बुद्ध की करुणा तुलसीदास जी का लोक संग्रह तथा गाँधीजी की सेवा भावना आधारित है। नागरिक संस्कृति में यह सहानुभूति और करुणा केवल दिखाने मात्र की वस्तु हो गई है। सभ्य मानव ने इन गुणों के साथ अनेक छल कपट पूर्ण व्यवहारों का भी आविष्कार किया है। किन्तु ग्राम्य संस्कृति में इन छल पूर्ण व्यवहारों का आविष्कार नहीं हुआ। देखिए एक चित्र।

एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन ॥[2]

यह है छल विहीन सहानुभूति का प्रदर्शन। उनकी सहानुभूति की पृष्ठभूमि पर अतिथि सत्कार का सांस्कृतिक रूप अंकित है। ग्राम वासियों की आतिथ्य भावना की एक झाँकी इस प्रकार मिलती है।

एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात ॥
एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी ॥[3]

इस प्रकार अतिथि सत्कार में नागरिक व्यावसायिक बुद्धि की प्रधानता नहीं। सच्ची अनुभूति की व्यंजना है। ग्राम युवतियाँ राम के विषय में सीता से पूछती हैं —

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥[4]

किन्तु पति का नाम लेने पर लोक संस्कृति में न मालूम इसके विपरीत कितने अपवाद पड़ सकते हैं। पति की आयु घट जाती है। आदि आदि। अतः पति के परिचय की रूढ़ी द्वारा व्यक्त करने की एक शैली बनी जिसका रूप गोस्वामी जी ने इस प्रकार बाँध दिया —

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥[5]

आगे इस परिचय का लोक सांस्कृतिक रूप इस भाँति बँधा होता है —

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि ॥[6]

---

१ मा० प्रयो० पृ० १२४
२ मा० प्रयो० पृ० १२५
३ मा० प्रयो० पृ० १२६
४ मा० प्रयो० पृ० १२७
५ मा० प्रयो० पृ० १२८

इस प्रकार केवल सपनों से ही पति का परिचय देना लोक संस्कृति की मर्यादा के आधार पर बनाया गया है ।

लोक जीवन का सबसे प्रधान और महत्वपूर्ण संस्कार विवाह है । इस पर लोक संस्कृति के अनेक विश्वास केन्द्रित हैं । इसका भी वृहत वर्णन मानस में उपलब्ध होता है । राम जन्म मानस में प्रधान संस्कार है । राम के जन्म होते ही थोड़े समय में ही सही वातावरण में लोक सांस्कृतिक कृत्यों की सूचना देना तुलसी नहीं भूले ।

नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह ।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥[1]

आगे चल कर कवि नगर के निवासियों के समारोह का वर्णन करने लगता है । उस समारोह में मंगल कलश आदि का वर्णन लोक सांस्कृतिक धरातल पर ही है । जैसे —

बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं । सहज सिंगार किएँ उठि धाईं ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥[2]

आगे नामकरण का संस्कार है यह जन्म के संस्कार का महत्वपूर्ण अंग है ।

विवाहों में लोक संस्कृति—

दूसरा प्रधान संस्कार जिसकी पृष्ठभूमि लोक संस्कृति से अधिक पुष्ट है वह विवाह संस्कार है । मानस में दो विवाह प्रमुख हैं एक शिव पार्वती और दूसरा राम और सीता का । इन दोनों ही संस्कारों में लोक संस्कृति के तत्व अन्य संस्कार से अधिक उभरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं । बरात की अगवानी लेना भी एक लोक सांस्कृतिक कृत्य है । उस समय का एक चित्र गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है वह देखिये कितना सुन्दर है ।

मैना सुभ आरती सँवारी । संग सुमंगल गावहिं नारी ॥
कंचन थार सोह बर पानी । परिछन चली हरहि हरषानी ॥[3]

इस परिछन के जितने भी उपकरण हैं उन सबका सांस्कृतिक महत्व है । स्त्रियों द्वारा शुभ मंगल गान मंगल अवसर पर नाना प्रान्त सभी वर्गों की संस्कृतियों में मिलता है । इस मंगल गान का जितना लोक साहित्य उपलब्ध होता है उतना और किसी भी कृत्य का नहीं । मंगल गान के अलावा ज्योनार के समय गारी गाना भी लोक संस्कृति का ही कृत्य है । इसका उल्लेख भी शिव पार्वती विवाह में हुआ है ।

नारि बृन्द सुर जेंवत जानी । लगीं देन गारीं मृदु बानी ॥[4]

---

१ मा० बा० पृ० १६७
२ मा० बा० पृ० ११७
३ मा० बा० पृ० ७९
४ मा० बा० पृ० ५२

इस प्रकार स्त्री पुरुषों का नाम ले ले कर गारी गाने की प्रथा अब भी विवाहों में पाई जाती है।

शिव पार्वती के विवाह का वर्णन करना गोस्वामी जी का प्रमुख लक्ष्य नहीं था। सीता राम विवाह का वर्णन तो बिल्कुल लोक सांस्कृतिक धरातल पर ही हुआ है। राम परछन करन जब सीता की माता चली तो वेद की रीति के अनुरूप कुल आचार' का निर्देश किया है। इस प्रकार के लोकाचार का मूल मुख्यतः लोक संस्कृति ही दिखलाई देती है। मांडवे के निर्माण में हरे बांसों के उपयोग की बात कही गई है।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे ॥[1]

इस प्रकार के हरे बांसो द्वारा मड़वे के बनाये जाने का उल्लेख लोक में प्रचलित वैवाहिक गीतों में अनेक स्थानों पर मिलता है। सीता द्वारा देवताओं की पूजा करवाई जाती है। यह देव पूजा भी लोक संस्कृति का ही तत्व है।

आचार करि गुरु गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।[2]

इसके साथ ही स्त्रियों की विविध प्रकार की गालियाँ करने का उल्लेख तुलसी ने किया है —

पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बिनय सुनावहीं।
ब्याहिहि चारिउ भाई एहि पुर हम सुमंगल गावहिं ॥[3]

भांवर पड़ने के पश्चात एक सांस्कृतिक कृत्य देखिए।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥[4]

कोहबर कृत्य के समय तुलसी लोक सांस्कृतिक तत्वों की ओर भी स्पष्ट रूप से संकेत करते हैं।

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि
सुआसिनिन्ह सुख पाइ के ॥
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ के।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं ॥
रनिवास हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं ।[5]

जेवनार का वर्णन भी लोक सांस्कृतिक है। पंच कवल प्रथा का उल्लेख है।

पंच कवल करि जेवन लागे ॥[6]

इस प्रकार के वर्णनों से हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि मानस के वैवाहिक चित्र ग्राम अथवा लोक संस्कृति की दृष्टि से बनाये गये हैं। इनमें यहां वर्णनों

---

१ मा० बा० पृ० १६८
२ मा० बा० पृ० २२२
३ मा० बा० पृ० २११
४ मा बा० पृ० २२५
५ मा० बा० पृ० २३८
६ मा० बा० पृ० २३०

में सजीवता और गति आती है वही भारतीय लोक संस्कृति के विविध तत्वों का एक कोष सा बन जाता है।

धर्म की मर्यादा—

गोस्वामी जी का आविर्भाव जिस समय हुआ उस समय धर्म का स्थान पाखंड ने ले लिया था। सदाचार पर दुराचार की विजय हो रही था। जैसे —

> दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत ब्यवहार।
> स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार॥[1]

गोस्वामी जी ने समाज धर्म पर भी कहा। जो कुछ भी कहा वह उस युग की स्थिति पर विचार करके कहा। मानस का कलियुग वर्णन इसका प्रमाण है। जिसके अध्ययन से धर्म का तत्व सुलभ और सुगम हो जाता है। उसमें गोस्वामी जी ने लोक जीवन की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की है। तुलसी ने भक्ति को धर्म में लाकर इतना सुलभ किया कि सर्व साधारण भी धर्म से विमुख नहीं रह सका। परिवार के जितने भी व्यक्ति हों उनके आचरण में उनके व्यक्तित्व में और उनके कर्तव्य में धर्म की गहरी छाप रहनी चाहिए। पति पत्नी माता पिता भाई भाई स्वामी सेवक सब का पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिए इसकी व्याख्या मानस में अनेक बार की गई है। जिसकी विवेचना इसी अध्याय में आगे की जायगी।

धर्म पथ पर आने के हेतु जड़ जीव को माया जाल से दूर करने की भी आवश्यकता है। धर्म और भक्ति जैसी भावना बिना प्रीति के उत्पन्न ही नहीं हो सकती। सम्भवत इसी हेतु गोस्वामी जी ने ऐसे भाव भी कहे हैं।

> प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥[2]

बिना ममता के भक्ति भावना नहीं अपनाई जा सकती है। ममता से ही श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धा से धर्म की भावना दृढ़ होती है जिसके हेतु कहा भी है।

> श्रद्धा बिना धरम नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥[3]

श्रद्धा की भावना दृढ़ हो जाने पर जब धर्म की भावना परिपक्व होने लगती है तब विश्वास की मात्रा भी बढ़ने लगती है। क्योंकि बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती।

> बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
> राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥[4]

धर्म को अपनाने अथवा धार्मिक बनने के हेतु सामाजिकों को जिन वस्तुओं

---

१ मा० उत्तर पृ० ७६२
२ मा० उत्तर पृ० ५६२
३ मा० उत्तर पृ० ५६१
४ मा० उत्तर पृ० ७६२

का त्याग करना चाहिये और किन्हें अपनाना चाहिए इस विषय की भी व्याख्या गोस्वामी जी ने की है। धर्म के क्षेत्र में ज्ञान और भक्ति का समन्वय गोस्वामी जी की महती विशेषता है। अतः धर्म भी गोस्वामी जी की मर्यादा और औचित्य सम्बन्धी कला का एक अंग है। वर्णाश्रम धर्म भी निरूपण में प्रमुख स्थान रखता है। अतएव इस स्थल पर यह भी विचारणीय है कि गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम धर्म में मर्यादा की व्यवस्था किस प्रकार प्रस्तुत की है। अतएव नीचे वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का संक्षिप्त मूल्यांकन किया जा रहा है।

वर्णाश्रम धर्म—

समकालीन स्थिति—गोस्वामी तुलसीदास जी के समय का सामाजिक स्तर बहुत नीचे गिर चुका था। वर्ण व्यवस्था का लोप सा हो गया था। निम्नलिखित उदाहरणों में गोस्वामी जी ने बड़ी ही सुन्दरता से तत्कालीन विशृंखल वर्ण व्यवस्था का चित्र खींचा है।

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥[1]

\+ \+ \+

बरन धरम गयो आश्रम निवास तज्यो। त्रासन चकित सो परावनो परो सो है ।[2]

\+ \+ \+

बर्ण विभाग न आश्रम धर्म। दुनी दुख दोष दुख दारिद दली है ।[3]

\+ \+ \+

आश्रम बरन कलि बिबस बिकलभय निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी ॥[4]

\+ \+ \+

धरम बरन आश्रमनि के पैयत पोथेहि ही पुरान ॥[5]

\+ \+ \+

शूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ॥[6]

ऐसे समय में गोस्वामी तुलसी दास जी ने भली भाँति समझ लिया यदि वर्ण व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो गई तो समाज की बढ़ती उच्छृंखलता को किसी भी प्रकार रोका न जा सकेगा। अतः शास्त्र और लोक के हेतु वर्ण-व्यवस्था के महत्व को यदि गोस्वामी जी न समझते तो वे समाज में जिस नीति और आदर्श की स्थापना करना

---

१ मा० उत्तर पृ० ७२५
२ कवितावली उत्तर पृ० १८३
३ कवितावली उत्तर पृ० १८४
४ कवितावली पृ० २०६
५ विनय पत्रिका पृ० ४६१
६ मा० उत्तर पृ० ७६२ ६१

चाहते थे वह स्वप्न ही बना रहता। उनका आदर्श था कि समाज में ब्राह्मण ब्राह्मणत्व आदि को लेकर अपना कार्य करें। क्योंकि उनका कार्य अध्ययन और अध्यापन है।[1] उन्होंने ऐसे ज्ञानी ब्राह्मणों के हेतु समाज में उच्च स्थान निर्धारित किया और इसीलिए उन्होंने सबसे प्रथम पृथ्वी पर देवता रूप ब्राह्मणों की स्तुति की है।

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।[2]

ब्राह्मणों का कार्य समाज को ज्ञान प्रदान करना है। उन्हें किसी भी प्रकार के वैभव आदि की चिन्ता नहीं होनी चाहिये। ऐसे ब्राह्मणों के द्वारा ही देश उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच सकता है। महाकवि गोस्वामी जी ने ऐसे ही ब्राह्मण समाज की कल्पना की है। उसके साथ ही साथ वे ऐसे ब्राह्मण वर्ग को कभी भी महत्व प्रदान नहीं कर सकते जो जहाँ तहाँ गाल बजाते घूमते हैं।

पंडित सोइ जो गाल बजावा।[3]

यह वृत्ति गोस्वामी जी को मान्य नहीं। मर्यादा का उल्लंघन भी समाज को उच्छृंखल बना देता है। इसका उदाहरण हमें काकभुशुंडि के पूर्ववर्ती शूद्र जीवन के प्रसंग में मिलता है।

एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनामा।[4]

और इसके हेतु वहीं भयानक दंड का विधान भी कर दिया गया कि —

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस।[5]

मंदिर माझ भई नभबानी रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा अति कृपाल चित सम्यक बोधा।
तदपि साप सठ दैहउँ तोही नीति बिरोध सोहाइ न मोही।
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा।

वर्ण व्यवस्था में ऊँच नीच छोटे ब्राह्मण शूद्र के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए यह चित्रकूट में निषाद और वशिष्ट मिलन से पूर्ण स्पष्ट है। जिसे हम आगे स्पष्ट करेंगे।

क्षत्रियों का प्रमुख कर्तव्य प्रजारक्षण दान यज्ञ अध्ययन और शक्ति एवं

---

१ अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानाम कल्पयत् मनु स्मृति श्लोक ८८ पृ० १७

२ मा० बा० पृ० १

३ मा० उत्तर पृ० ७९१

४ मा० उत्तर पृ० ७९८

५ मा० उत्तर पृ० ७९९

पराक्रम का प्रयोग युद्ध में करता था। राम और पराक्रमी क्षत्री हैं। यहाँ तक कि वे जगद्विजयी रावण के भी दर्प को चूर्ण करते हैं। इसी प्रकार समाज के भरण पोषण का भार सब वैश्यों पर है। वैश्यों के प्रमुख कार्य पशु पालन व्यापार आदि थे। गोस्वामी जी ने वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत वैश्यों की उन्नति के हेतु भी उचित ध्यान रक्खा है। इसीलिये —

> खेती बनि विद्या बनिज सेवा सिल्पि सुकाज।
> तुलसी सुरतरु सरिस सब सुफल राम के राज॥[1]

इस प्रकार उन्होंने वर्ण व्यवस्था के पूर्ण पालन की मर्यादा उत्तम और समृद्ध समाज की कल्पना के हेतु निश्चित की। यहाँ राम के राज्य में वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का पूर्ण पालन हो रहा है। इस प्रकार —

> बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग।
> चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग॥[2]

हमारी धारणा में गोस्वामी जी ने संस्कृति और धर्म निरूपण के आदर्श का जैसा चित्रण किया है वैसा अन्यत्र कम देखने में आता है। मानस सामाजिक आदर्शों का वृहत् दर्पण है जो कवि की महती देन है। उन्होंने समाज के आदर्श और उसके उत्थान के हेतु प्राचीन काल से आती हुई जिस व्यवस्था की परम्परा का निर्वाह किया वह लोक मंगल की भावना के पूर्णतः अनुकूल ही है।

रस और भाव वर्णन में मर्यादा—

गोस्वामी जी ने रस और भाव दोनों में ही मर्यादा का पूर्णतः पालन किया है। शृंगार रस के विवेचन में गोस्वामी जी ने रूप चित्रण में सर्वत्र ही मर्यादा की रक्षा की है। जैसे जानकी के रूप वर्णन के साथ गोस्वामी जी का यह लिख देना अपत जनान अतुलित छवि भारी मर्यादा का संरक्षण नहीं तो और क्या है। इसी प्रकार गोस्वामी जी ने सर्वत्र भाषा की मर्यादा का भी पालन किया है। जैसे जिस भाव का वर्णन किया है उसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं आ पाया है। बहुत से कवियों की रस योजना में रस दोष आ जाता है। किन्तु गोस्वामी जी के रस वर्णन में यह बात नहीं। वह तो अपने रस वर्णन में पाठकों को रस मग्न कर देते हैं। 'भाव और रस निरूपण' वाले अध्याय में इस विवेचन को विस्तार से लिया जायेगा। अतएव यहाँ इसका संकेत भर ही पर्याप्त होगा।

शब्द प्रयोग में मर्यादा—

गोस्वामी जी की कला का सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी शब्द योजना सर्वत्र मर्यादानुकूल है। जो कवि के लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य है कि वह शब्दों में भी

---

१ तुलसी ग्रंथावली दूसरा खंड रामाज्ञा प्रश्न पृ० २०
२ [illegible]

मर्यादा का निर्वाह करें। राम विवाह मंडप के नीचे बैठे सीता की माँग में सिन्दूर लगा रहे हैं कितना सुन्दर दृश्य है।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं।
अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥[1]

यहाँ राम की भुजा को साँप की उपमा दी गई है। इसी अहि में तो मर्यादा है। सीता के बालों को भी महाकवि ने आगे चलकर सांपिनि लिखा है। सरद कमल सलि अहि भामिनी[2] गोस्वामी जी ने यहाँ राम की भुजा को अहि लिखकर यह सिद्ध किया कि नागिन के समीप यदि कोई जा सकता है तो वह नाग ही है। इसी कारण गोस्वामी जी ने इस अहि में मर्यादा की इति कर दी।

मानस के अन्तर्गत सीता जी की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उनकी उपमा दीपशिखा से देते हुए तुलसी कहते हैं —

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबि गृह दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी॥[3]

किन्तु इसी के कुछ आगे बढ़कर हम कवि के मुख से सुनते हैं—

तात जनकतनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं।[4]

दोनों स्थलों को एक साथ देखने पर हमें पता चलता है कि यहाँ पर सीता जी का फुलवाई में प्रकाश करते हुए फिरने का जो वर्णन कवि ने किया है उसमें पूर्वोक्त दीपशिखा शब्द की मर्यादा निभाने का स्पष्ट प्रयत्न विद्यमान है क्योंकि पीछे कवि ने सीता जी को छवि गृह में जलती हुई दीपशिखा कहा है।

इस प्रकार विनय पत्रिका की निम्नलिखित पंक्तियों में अपने को भवव्याल ग्रसित कहकर भगवान की शरण में जाते हुए उनके लिए 'उरग रिपु गामी' का प्रयोग भी कितना अर्थ पूर्ण है।

तुलसीदास भव व्याल ग्रसित तव सरन उरग रिपु गामी।[5]

यह एक तथ्य है कि उरग रिपु गरुड़ के समीप जाते ही व्याल के प्राण के लाले पड़ जायेंगे। इस विशेष शब्दावली के भीतर शब्द मर्यादा के निर्वाह का ध्यान न होता तो कवि 'उरग रिपु' के स्थान में 'गरुड़' का कोई भी पर्यायवाची शब्द रखकर काम चला सकता था।

आगे हम कुछ और रोचक उदाहरणों का उल्लेख कर देना उचित समझते

---

१ मा० बा० पृ० २२५
२ मा० अरण्य पृ० ४६७
३ रा० १—२३०
४ रा० १—२३१
५ विनयपत्रिका पद ११७

है। जिसमें शब्द मर्यादा का बड़ा ही उत्कृष्ट एवं कलात्मक रूप दृष्टिगोचर होता है जिस पर एक भाषा कला पारखी की दृष्टि रुके बिना नहीं रह सकती।

कंत बीस लोचन बिलोकिये कुमत फल।
× × +
ख्याल लंका लाई कपि रांड़ की सी झोपरी।[1]
सीता हरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ।
जौ मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥[2]
छाँपिऊ मैं नचाइ भुजबीहा।
जौ न उपारिउँ तव दसजीहा॥[3]
पानि पर बाम बिधि दहि राम सौं समर संग्राम दसकंध कांप्यो॥[4]
सुन दसमाथ नाथ साथ के हमारे कपि।
हाथ लंका लाइ हैं तौ रहैगी हथेरी सी॥[5]
नाई दस माथ महि जोरि बीस हाथ।
पिय मिलिए पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै॥[6]

उपर्युक्त उदाहरणों के अन्तर्गत एक रावण के ही सम्बन्ध में जिन अनेक प्रकार के शब्दों का विशेषणादि के रूप में व्यवहार किया गया है उससे तुलसी की शब्द मर्यादा की कला पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। बिलोकिये के साथ बीस लोचन का कहिहि के साथ दसानन का दसजीहु उपारने के प्रसंग में भुजबीहा का बीस भुजाओं के द्वारा अवरोध करने में समर्थ रावण की दसों जीभ उखाड़ने के लिए अंगद का स्वाभिमान पूर्ण कथन कितना व्यंजक एवं चमत्कारक हुआ है। नहीं कवि पर भार संभावना के साथ दस कंध का सुनु सुन्दु से यहाँ पर विचारपूर्वक चुनने से विशेष तात्पर्य है जिसमें मस्तक की भी उपयोगिता का संकेत हो जाता है। क्योंकि यह विचार का माध्यम है। के साथ दस माथ का तथा नाइ झुककर के साथ दस माथ और जोरि के साथ बीस हाथ का व्यवहार विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इन शब्दों के स्थान में अन्य पर्यायवाची शब्दों से काम चल सकता था परन्तु न तो यह चमत्कार रह जाता न शब्द मर्यादा का ही निर्वाह हो पाता। इन प्रयोगों की सार्थकता का विचार करें तो रावण सम्बन्धी कुछ विशेषण बड़े ही मार्के के आए हैं। उदाहरणार्थ कहिहि दसानन आई में दसों मुखों से एक मुख से नहीं अपनी करतूत और उसके परिणामस्वरूप अपने नाश का समाचार कहने की क्रिया दसकंध कांप्यो

---

१ कवितावली ६—२७
२ रा० ३—११
३ रा० ६—१४
४ कवितावली ६—४
५ गीतावली ६ १०
६ कवितावली ६ २७

में राम से युद्ध करने का भार वहन करने में एक के स्थान में बस कर रखते हुये भी रावण की असमर्थता शुद्ध दस भाव के अन्तर्गत एक के स्थान में दस मस्तक रखते हुये भी रावण की तत्कालीन विचारहीनता साकेत में लंकार ''बलबोहा में रावण की बीस भुजाएँ होने की प्रस्तुत क्षमता तथा बीस लोचन विलोचिए में रावण की निरीक्षण शक्ति की अधिकता होते हुए भी इस सम्बन्ध में उसकी असावधानी इत्यादि विविध भावों की जो सफल अभिव्यक्ति हुई है वह देखते ही बनती है। कहना न होगा कि यह सारी सफलता शब्द प्रयोग की मर्यादा पर ही निर्भर है।

शब्द मर्यादा के सम्बन्ध में जिस दूसरे रूप का निर्देश पीछे किया गया है उसके विषय में विशेष बात ध्यान देने की यह है कि ऐसे स्थलों पर शब्द या वाक्य की मर्यादा इस बात में निहित है कि उनके द्वारा विभिन्न स्थलों पर बिलकुल समान स्थिति की व्यंजना होती है। अतः वे शब्द और वाक्य भी पुनरुक्ति के विचार को महत्व न देकर इन स्थलों पर वैसे के वैसे ही दोहरा दिए गए हैं। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रसंगों के अन्तर्गत एक ही शब्द बड़भागी के प्रयोग पर ध्यान दीजिये।

अतिशय बड़ भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ।[1]
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी ॥[2]
बड़भागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चापत विधि नाना ॥[3]
अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारबिन्दु अनुरागी ।[4]

उपर्युक्त पंक्तियों के देखने से बिलकुल स्पष्ट है कि जहाँ-जहाँ किसी भी पात्र को भगवान राम के चरणों की सेवा अथवा प्रत्यक्ष रूप से उनमें रत होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वहाँ वहाँ विशेषण के रूप में उस पात्र के लिए इस बड़भागी शब्द का प्रयोग किया गया है।

सामाजिक और पारिवारिक मर्यादा—

सामाजिक—सामाजिक क्षेत्र में हम गोस्वामी जी के नारी के आदर्श सम्बन्धी विचारों का विवेचन करेंगे। और साथ ही यह भी स्पष्ट करेंगे कि गोस्वामी जी ने नारी में आदर्शों की प्रतिष्ठा किस प्रकार से की है।

वैदिक काल में स्त्रियों की शिक्षा की भी व्यवस्था थी। वे दार्शनिक ब्रह्मवादिनी मणिमय बनकर सर्वदा के हेतु भारतीय समाज एवं संस्कृति में अपना एक विशिष्ट आदर्श स्थापित कर अपने को अमर बना गई। दर्शन के क्षेत्र में गार्गी और मैत्री के नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे जायेंगे। शिक्षा के क्षेत्र में लोपामुद्रा अपालादि के नाम उल्लेखनीय हैं। वीरता के क्षेत्र में नारियों ने सहज सुकुमारता और कोमलता को त्याग

---

१ रा० १—२११
२ रा० ३—१०
३ रा० ६—११
४ रा० ७—१

कर पत्नी का कर धारण किया। राजा दशरथ के साथ कैकेयी युद्ध स्थल में गयी थी। रथ के पहिये की कील निकल जाने पर रानी ने उंगली लगाकर पति की सहायता की। इसी प्रकार झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई ने आधुनिक युग में भी अद्भुत साहस और पराक्रम दिखला कर भारतीय समाज के सम्मुख यह आदर्श रक्खा कि युद्ध क्षेत्र में महिलायें भी यथेष्ट कुशलता से कार्य कर सकती हैं।

पुराण काल में नारियों के सम्मान मर्यादा एवं शक्ति पर कुठाराघात-सा हो गया। पुरुष ने नारी पर एकाधिपत्य प्राप्त करना चाहा। नारी पुरुषों के आमोद प्रमोद का साधन ही मात्र बन कर रह गई।

महाभारत काल में द्रोपदी जैसी नारी का भी भरी सभा में अपमान पूर्ण किया गया।

ऐसी विषम परिस्थिति में नाना पुराण निगमागम को मानने वाले गोस्वामीजी ने विचार किया कि समाज में जो उच्छृंखलताएँ फैल रही थीं उनका मूल कारण क्या था। उन्हें समझने में जरा भी देर न लगी कि भारतीय समाज में स्त्रियों का अमर्यादित होना ही इसका मूल कारण है। गोस्वामी जी ने इसी हेतु नायक नायक श्री राम के पारिवारिक जीवन कौशिल्या और सुमित्रादि को आदर्श माता गृहणी धर्मात्मा एवं वासना विहीन रूप में चित्रित किया है। ऐसी देवी की वंदना करने में गोस्वामी जी ने रंचमात्र भी संकोच नहीं किया। इससे और उनके इस कथन से हम तो आरम्भ प्रेम रस पत्नी के उपदेश भी सिद्ध होता है कि उन्होंने नारियों को कभी भी हेय दृष्टि से नहीं देखा। कौशिल्या परिवार वर्ग में भी रत है जो कि नारी का प्रमुख कर्त्तव्य है और साथ ही उनमें अपार वात्सल्य का स्रोत भी उमड़ रहा है। ऐसी आदर्श नारियों के चरित्र इस बात के द्योतक हैं कि गोस्वामी जी की नारी समाज के प्रति कितनी श्रद्धा थी और वे उन्हें कितने मर्यादित रूप में देखना चाहते थे।

परिवार—गोस्वामी तुलसीदास जी के समय परिवार की जो स्थिति थी उसका बड़ा ही सफलता पूर्वक चित्रण गोस्वामी जी ने किया है। पारिवारिक जीवन को गोस्वामी ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखा था और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श परिवार का कल्पना करके उसका महत्व और आदर्श समाज के सम्मुख रक्खा। सम्पन्न परिवार का चित्र अंकित करते हुए उसमें जो बुराईयाँ आ गई थीं उनका सुधार उन्होंने किया। साथ ही वे निम्न परिवारों के स्तर को भी वे विस्मृत नहीं कर सके। राम के परिवार में कौशिल्या सीतादि पत्नियाँ गृहस्थ जीवन का पालन करती हुई सात्विक जीवन व्यतीत करती हैं। परन्तु दूसरी ओर कौशिल्या दासी के भीषण चरित्र का चित्रण भी गोस्वामी जी ने किया है। कैकेयी कहती हैं:—

नैहर जनम भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥[1]

---

१ मा० अयो० पृ० १६६

यथा— दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥[1]

कैकेयी के चित्रण में गोस्वामी जी ने बहु विवाह दुर्दशा की ओर भी संकेत किया है। उन्होंने वैभव सम्पन्न परिवारों के चित्रण के साथ साधारण श्रेणी के परिवार का उल्लेख करके तत्कालीन परिवारों का भी चित्रण किया है।

गोस्वामी जी की दृष्टि में ऐसे भी परिवार आये जिनके पारस्परिक प्रेम पर वे मुग्ध हो गये। ऐसे आदर्शों का समीकरण उन्होंने राम के परिवार में किया। दाम्पत्य प्रेम भ्रातृ प्रेम मातृ प्रेम गुरु भक्ति आदि अन्य विषय भारतीय परिवार के सुन्दर आदर्श हैं। अब हम राम के इस आदर्श परिवार के इन सभी अंगों पर एक-एक करके अति संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

दाम्पत्य प्रेम—

इस पर पीछे विचार किया जा चुका है। अतएव यहाँ पर इस विषय की एक झाँकी ही पर्याप्त होगी। हमारे गोस्वामी जी की ही प्रतिभा थी कि उन्होंने दाम्पत्य जीवन के अन्तर्गत पत्नरा में मर्यादा का पालन किया। हनुमान राम का कहा संदेश सीता को सुनाना चाहते हैं। पर विचारणीय बात यह है कि संदेश कहने वाले हैं पुत्र भाव से और संदेश कहा किससे जायेगा माता से। संदेश है किसका? राम का। संदेश कैसा है पति से अपनी पत्नी के हेतु। पुत्र पिता का प्रेम संदेश माता से स्वयं कहे। क्या यह मर्यादित है? और पुत्र अपने मुँह से कैसे शब्दों में 'तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥'[2] में प्रिया शब्द का उच्चारण कैसे करे यदि करे तो मर्यादा हिलता। गोस्वामी जी ने तुरन्त दोहा लिख हनुमान को शांत करा दिया।

रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर॥[3]

अब आप बोला कौन? हनुमान नहीं। राम के द्वारा ही संदेश प्रारम्भ होता है। 'राम कहा वियोग तव सीता'[4] अब जरा दाम्पत्य प्रेम के वर्णन के अन्तर्गत तुलसी की मर्यादा देखिये। जैसे ही यह राम का संदेश समाप्त हुआ वैसे ही हनुमान के मुँह से यही जननी वाचक शब्द निकला। 'कह कपि हृदय धीर धरु माता।'[5] यह है तुलसी की दाम्पत्य जीवन में अभिव्यक्त मर्यादा। जिसका निर्वाह करना साधारण कवि के हेतु बड़ा ही कठिन कार्य है। इसी प्रकार राम जंगल जाने को तैयार हैं। वह माता के घर विदा लेने जाते हैं। यह समाचार सुन जानकी जी व्याकुल होकर वहाँ

---

१ मा० अयो० पृ० २६७
२ मा० सुन्दर पृ० ५५०
३ मा० सुन्दर पृ० ५५०
४ मा० सुन्दर पृ० ५५०
५ मा० सुन्दर पृ० ५५१

आ जाती है। सीता इस स्थल पर राम से एकदम बात नहीं करने लगती बल्कि वह पहले सास के चरणों को वंदना करके इस प्रकार अपनी वार्ता प्रारम्भ करती है —

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥[१]

यह है पति और पत्नी के बात करने की मर्यादा। इसी प्रकार राम भी माता के समक्ष बात करने में संकोच करते हैं।

मातु समीप कहत सकुचाहीं॥[२]

इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की कितनी सुन्दर और मर्यादापूर्ण व्याख्या गोस्वामी जी ने प्रस्तुत की है।

भ्रातृ स्नेह—

गोस्वामी तुलसीदास जी ने पारिवारिक चित्रण में राम भरत और लक्ष्मण के आदर्श भ्रातृ प्रेम का चित्रण किया है। यद्यपि राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न सम भाई नहीं है। पर राम का सभी भाइयों पर समान स्नेह है। जो राम के चरित्र के उत्कर्ष को चरम आदर्श पर पहुँचा देता है। राम का भ्रातृ स्नेह देखिये। अपने अभिषेक के समय सोच रहे हैं।

जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥[३]
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा।
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥[४]

राम के स्नेह और सहानुभूति के फलस्वरूप ही लक्ष्मण अपना सर्वस्व यहाँ तक कि नव विवाहिता उर्मिला तक को त्याग कर भाई के साथ वन जाने को इस प्रकार प्रस्तुत होते हैं।

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥[५]

लक्ष्मण के मेघनाद द्वारा शक्ति लगने पर राम अपने भ्रातृ स्नेह का महान परिचय देते हुए कहते हैं :—

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।

---

१ मा॰ अयोध्या पृ॰ २६४
२ मा॰ अयोध्या पृ॰ २६१
३ मा॰ अयोध्या पृ॰ २६६
४ मा॰ अयोध्या पृ॰ २६६
५. मा॰ अयोध्या पृ॰ २६८

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥
जैहउँ अवध कवन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥[1]

यह है भ्रातृ स्नेह की पराकाष्ठा जिसमें समक्ष सीता जैसी महान पतिव्रता को भी न्योछावर किया जा रहा है।

शत्रुघ्न सभी से छोटे थे। उनकी चर्चा मानस में अन्य लोगों से बहुत कम है।

माता पिता का प्रेम—

गोस्वामी जी ने पारिवारिक चित्रण में माता पिता के प्रति बालक के प्रेम का पूर्ण चित्रण किया है। दशरथ जी के अन्तिम आयु में पुत्र प्राप्त हुए थे शिशु को गोद में लिए अपूर्व आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। सभी माताएँ पुत्रों की बाल केलि का अवलोकन कर आनन्द से आपूरित हो रही हैं। माता और पिता के प्रेम की उत्कर्षता तब होती है जब चारों भाई विवाहित होकर अवध में आ जाते हैं। तुलसी यद्यपि मातृ सुख से वंचित रहे फिर भी माताओं की स्वाभाविक भावना का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है।

पुत्र के सम्बन्ध की मर्यादा—

दशरथ जी यदि एक महान पुत्र वत्सल पिता के आदर्श हैं तो राम एक आदर्श पुत्र थे। दशरथ राम को वन को तो भेज देते हैं किन्तु उनके वियोग में वह अपने प्राणों का भी अन्त कर देते हैं इसीलिए गोस्वामी जी महाराज दशरथ की वन्दना करते हुए लिखते हैं।

बन्दउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥[2]

इसी दशरथ के राम के प्रति प्रेम की महानता गोस्वामी जी ने 'गीतावली' के 'सुत को बदन हिये बहु भारा'[3] वाले पद में व्यक्त की है। पिता के प्रति एक महान आदर्श पुत्र के प्रेम भावना के दर्शन हमें उस समय होते हैं जब राम भरत से वन में यह कहते हुए दृष्टिगोचर होते हैं —

सिर धरि बास जौं लि या तनु त
जा लिनु पग पालहा पवाओ।
होउँ न मरनि पिता सम्मुख न ताके बचन मनि कैसे पति पाओ।[4]

---

१ मा० लंका पृ० ६२८
२ मा० बा० पृ० १८
३ गीतावली अयोध्या पृ० २८७ पद सं० ६६
४ गीतावली पृ० २९८ पद सं० ७८

मातृ प्रेम—

मातृ प्रेम की तो गोस्वामी जी ने अपनी कृतियों में बड़ी मार्मिक व्यंजना की है।—

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे लाल कुसल घर कहौ काग फुरि बाता।[1]

× × ×

कौसिल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥[2]

इस मातृ प्रेम के साथ कौशिल्या कर्तव्य परायणा भी हैं। देखिये राम को वह कितना कर्तव्य से भरा उपदेश कर रही हैं।

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥[3]

उधर सुमित्रा भी कौशिल्या से कम नहीं हैं उनमें कहीं अधिक कर्तव्य परायणता है। वह लक्ष्मण को जबरदस्ती राम के साथ जंगल भेज रही हैं। विश्व की किसी भी संस्कृति में ऐसा पुनीत आदर्श न मिलेगा। यह गोस्वामी जी की कला की ही महानता है कि उसने ऐसे पुनीत आदर्श समाज को भेंट किये। उधर राम अपने जीवन की सार्थकता माता के आदेश पालन में समझते हैं। सगी माता नहीं अपितु विमाता के मुख से अपने बन गमन की बात सुनकर वे कुपित नहीं होते अपितु बड़ी ही मधुरता और स्नेह से भरा उत्तर देकर आदर्श के महानत्व को प्रतिष्ठा वह इस प्रकार करते हैं।

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।[4]

सास और बहू का प्रेम—

कौशिल्या अपनी बहू को कितना अधिक प्यार करती थी इसका परिचय देते हुए वह कहती हैं —

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
जियनमूरि जिमि जोगवत रहेऊ। दीप बाति नहिं टारन कहेऊ॥[5]

जानकी का भी अपनी सास से कितना प्रेम है यह उनके कथन से स्पष्ट है।

---

१ गीतावली लंका पृ० ३३४ छन्द सं० १९
२ मा० उत्तर पृ० ६६४
३ मा० अयो० पृ० २२८
४ मा० अयो० पृ० २०१
५ मा० अयो पृ० २९०

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥[1]

× × ×

सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥[2]

दशरथ जी का भी बहुओं के प्रति असीम स्नेह था वे कहते हैं।

बधू लरकनीं पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥[3]

गुरु भक्ति—

परिवार में माता पिता से भी ऊँचा स्थान गुरु का है। राम ने अभिषेक के समय जो द्वार पर आकर गुरु का स्वागत किया वह आदर्श दर्शनीय है। यह सब परिवार के आदर्श थे। महाराज दशरथ का परिवार आदर्श परिवार था। अतः गोस्वामी जी के पश्चात् चाहे भारतीय परिवार स्वयं न बन सके किन्तु इसकी कल्पना तो की ही जा सकती है। निस्संदेह यह महाकवि के चित्रण कला की यह अभिनन्दनीय सफलता है।

औचित्य

औचित्य में यह कार्य आपेक्षा कि जिसे इस ढंग से किया जावे कि उसे प्रत्येक प्रकार से ठीक और उचित कहा जाय। गोस्वामी जी ने अपने काव्य में प्रत्येक स्थल पर इस औचित्य की प्रतिष्ठा का ध्यान रक्खा है। गोस्वामी जी के औचित्य संबंधी विचारों पर हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत एक एक करके विवेचना करेंगे।

१—विभिन्न प्रसंगों का औचित्य
२—कथा क्रम का औचित्य
३—वर्णन का औचित्य
  १—लम्बी भूमिका
  २—साधु वन्दना
  ३—दुष्ट निन्दा
  ४—प्रकृति वर्णन
४—विभिन्न संवाद
५—नारी निन्दा
६—शब्द प्रयोग का औचित्य
७—अनेक शंकायें और उनका समाधान

विभिन्न प्रसंगों का औचित्य—

गोस्वामी जी मर्यादावादी थे परम्परावादी नहीं। इसी हेतु उन्होंने अपने

---

१ मा० अयो० पृ० २६६
२ मा० अयो० पृ० ४१४
३ मा० बाल० पृ० २४६

मानस में विभिन्न प्रसंगों में औचित्य को ही अपनाया है। परम्परा से चली आती हुई रूढ़ि को नहीं।

मानस के बाल काण्ड में गोस्वामी जी ने राम लक्ष्मण को जो जनक के नगर में घुमाया है वह भी औचित्य ही है मर्यादा नहीं। इसी प्रकार राम और लक्ष्मण का वाटिका भ्रमण भी एक आदर्श नहीं कहा जा सकता। क्योंकि विवाह के पूर्व इस प्रकार वाटिका में राम जानकी प्रेम वर्णन किसी भी प्रकार से आदर्श नहीं कहा जा सकता। यह भी औचित्य के ही अन्तर्गत आएगा। विवाह के पूर्व गोस्वामी जी ने राम और जानकी के पुनीत स्नेह का वर्णन करना उचित समझा। ऐसे ही जनक के दरबार में परशुराम का आगमन महाकवि के द्वारा दिखाया गया है। राम का पूर्ण अभ्युदय दिखलाने के हेतु यह उचित ही जान पड़ता है।

अयोध्या काण्ड में नगर से राम को वन देखने आये जनक न देखने जावें यह किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता। अतएव गोस्वामी जी ने मानस में जनक का आगमन जंगल में दिखलाकर औचित्य का पूर्ण पालन किया है। इसी प्रकार से वशिष्ठ और केवट के मिलन प्रसंग में गोस्वामी जी द्वारा बड़ा ही सुन्दर औचित्य सम्बन्धी उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वशिष्ठ ब्राह्मण नीच शूद्र केवट को अपने हृदय से लगा लें यह किसी प्रकार से मर्यादा के क्षेत्र में नहीं आ सकता औचित्य में ही आयेगा।

राम सखा ऋषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।[1]

लंका काण्ड में गोस्वामी जी ने राम रावण युद्ध में विभीषण पर रावण द्वारा छोड़ी हुई शक्ति का लक्ष्मण से सहन कराते नहीं (वाल्मीकि की भाँति) अपितु राम को सहन करते दिखलाकर भी औचित्य का पालन किया है। क्योंकि विभीषण की चिन्ता अधिक राम को है न कि लक्ष्मण को। अतएव शक्ति सहन करना भी राम को विभीषण के ही हेतु उचित था। ऐसे ही गोस्वामी जी ने सीता निर्वासन के प्रसंग को भी अनुचित समझकर ही अपने काव्य में स्थान नहीं दिया यह भी उनका औचित्य ही कहा जायेगा। अतः इन विभिन्न प्रसंगों में गोस्वामी जी ने औचित्य की पूर्णरूपेण रक्षा की है।

कथा क्रम का औचित्य—

कथा के क्रम में भी गोस्वामी जी ने औचित्य का पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने राम कथा क्रम में विभिन्न प्रसंग जिनका वर्णन पीछे हो चुका है। कथा क्रम के औचित्य विचार के लिए है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने पूर्णरूपेण औचित्य का विचार रक्खा है। वाल्मीकि रामायण से उन्होंने अपने मानस में जो परिवर्तन किया है वे कथा क्रम के औचित्य को ध्यान में रखते हुए ही किये गये हैं। यदि 'वाल्मीकीय रामायण' के सीता के द्वारा लक्ष्मण के लिए कटु वचनों का प्रयोग

---

१ मा० अयो० पृ० ४०८

अरण्य काण्ड में मिलता है। किन्तु गोस्वामी जी ने इसे उचित न समझा कि वह सीता जो नारियों में शिरोमणि है उनके मुख से इतने अशिष्ट वचनों का प्रयोग लक्ष्मण के लिए करायें अतएव उन्होंने इस प्रसंग को इस रूप में लिखा।

मरम वचन सीता जब बोला।[1]

इसमें भी उनकी औचित्य भावना काम कर रही है। अतः गोस्वामी जी के कथा क्रम में भी औचित्य सिद्धान्त का पूर्णतः पालन हुआ है।

वर्णन का औचित्य—

गोस्वामी जी के निम्नलिखित वर्णनों में औचित्य का पूरा ध्यान रक्खा गया है।

१—लम्बी भूमिका
२—साधु वन्दना
३—दुष्ट निन्दा
४—प्रकृति चित्रण
५—विभिन्न संवाद
६—नारी निन्दा

इन पर एक एक करके नीचे विचार किया जा रहा है।

लम्बी भूमिका—

गोस्वामी जी का मानस में उद्देश्य था राम को ब्रह्म के रूप में अंकन करना। अतएव उनको स्वयं शंका थी कि ऐसे चरित्र को संभव है कथा में पाकर लोग ब्रह्म न मानें साधारण मानव ही मानें। अतएव उन्होंने पार्वती और भरद्वाज की भूमिका के रूप में रखकर यह दिखलाया कि इन दोनों को ही राम के ब्रह्म रूप में शंका है। अतएव इसकी शंका समाधान के हेतु उन्होंने लम्बी भूमिका उचित ही समझी।

साधु वन्दना—

ग्रन्थ के प्रारम्भ में साधुओं की वन्दना करना भी मर्यादा नहीं कहा जा सकता औचित्य ही कहा जायगा। अपने काव्य को जन कल्याणकारी बनाने के हेतु ही प्रारंभ में साधु वन्दना की है।

दुष्ट निन्दा—

सत्य का अच्छा और असत्य का बुरा तो फल होता ही है। अतएव जहाँ एक ओर उन्होंने सन्तों की प्रशंसा की है वहीं दुष्टों की निन्दा करना भी गोस्वामी जी की दृष्टि में उचित था। अतएव दुष्ट निन्दा औचित्य में ही आयेगी।

प्रकृति चित्रण—

गोस्वामी जी का प्रकृति वर्णन भी औचित्य पूर्ण है। उनकी प्रकृति एक उपदेशक रूप में आई है जिसमें सर्वत्र औचित्य का निर्वाह किया गया है। जिसकी

---

१ मा० अरण्य पृ० ४६१

विषय विवेचना 'तुलसी का प्रबन्ध सौष्ठव और वर्णन' पद्धति के अन्तर्गत की जायेगी। यहाँ संकेत भर ही पर्याप्त है।

विभिन्न संवाद—

विभिन्न संवादों में तो औचित्य कूट कूट कर भरा है। प्रत्येक संवाद में प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी भाषा में बोलता है। निषाद ग्रामीण भाषा 'तोहार' और अंगद भी अपनी संस्कृति ही के अनुरूप शब्दावली में रावण से बात करते हैं। गोस्वामी जी के संवादों पर आक्षेप किया गया है कि वे कुछ संवादों और प्रसंगों जैसे परशुराम और लक्ष्मण तथा अंगद रावण मंदोदरी वार्ता आदि में मर्यादा का उल्लंघन कर गये हैं। ऐसी बात नहीं उन्होंने अमुक वर्णना में मर्यादा की अवहेलना नहीं अपितु औचित्य की रक्षा की है। जिसे इसी अध्याय में हम आगे स्पष्ट करेंगे।

नारी निन्दा—

गोस्वामी जी के मानस में जो कुछ नारी निन्दा की द्योतक चौपाइयाँ मिलती हैं वे भी तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति को देखते हुए उचित ही कही जायेंगी। जिसकी विवेचना नीचे की जा रही है।

गोस्वामी जी नारी को विश्व विभूति के पारखी थे किन्तु गोस्वामी जी के मानस के कुछ नारी विरोधी विचारों को लेकर ही विभिन्न विद्वानों ने नारी निन्दा का आरोप गोस्वामी जी पर लगाया है ऐसा गोस्वामी जी के अभिप्राय को न समझने के कारण ही हुआ है। साथ ही गोस्वामी जी की नारी विषयक उक्तियों पर विचार करते समय उन विद्वानों ने प्रसंग विषय के प्रयोग को नहीं देखा जैसे —

ढोल गवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

नारी के स्वभाव में उन्होंने जिन गुणों का वर्णन किया है इससे यह कभी भी सिद्ध नहीं होता कि वह नारी को हेय दृष्टि से देखते थे। उनके समस्त नारी विरोधी विचार यहाँ पर संकलित हैं।

गोस्वामी जी के नारी विरोधी विचार—

नारि सहज जड़ अज्ञ।[1]
जद्यपि जोषिता नहिं अधिकारी।[2]
नारि चरित जल निधि अवगाहू।[3]
काले अवसर का अवसर नारि बिस्वास।[4]
अति चपला जिमि करुणा करहु।[5]
सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ।

---

१ मा० बा० पृ ४८
२ मा० बा० पृ० ८३
३ मा० अयो० पृ १७०
४ मा० अयो० पृ १७१
५ मा० अयो० पृ० २७१

सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ।[1]

का न करै अबला प्रबल । केहि जग कालु न खाइ ।[2]

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ।[3]

महा वृष्टि चलि फूटि किआरीं । जिमि सुतन्त्र भए बिगरहिं नारी ।।[4]

सभय स्वभाव नारि कर साँचा । मंगल महुँ भय मन अति काँचा ।।[5]

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।।[6]

नारि स्वभाव सत्य सब कहहीं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ।।[7]

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ।।[8]

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।।[9]

अब, हम इन विविध नारी विरोधी विचारों का एक एक करके विवेचना कर यह प्रमाणित करने का प्रयास करेंगे कि गोस्वामी जी नारी निंदक नहीं । अपितु उसके प्रति श्रद्धा रखने वाले और उसके आदर्श रूप के पुजारी भी हैं ।

नारि सहज जड़ अज्ञ—

यह प्रसंग है पार्वती और शंकर का । यह कथन सती का है । वे कह रही हैं— कीन्ह कपट मैं संभु सन नारि सहज जड़ अज्ञ । वास्तव में पति से कपट करना जड़ता नहीं तो और क्या है । यहाँ पर गोस्वामी जी ने ऐसा प्रसंग लिया है कि इसमें उनकी नारी के प्रति कोई निजी विरोध की भावना प्रकट नहीं होती ।

जदपि सहज जड़ नारि अयानी

इस वाक्य में नारी को सहज जड़ और अयानी शब्दों में सम्बोधित किया गया है यह सम्भवतः इसीलिए कि गोस्वामी जी के समय की नारियों में अज्ञान अधिक आ गया था । उनके समय में स्त्री शिक्षा का इतना प्रचार न था । इससे यह नहीं कहा जा सकता कि गोस्वामी जी नारी निन्दक थे ।

कवने अवसर का भयउ गयउ नारि बिस्वास

यह महाराजा दशरथ जी का स्व कथन है । वह तो कैकेयी के विश्वास में आ चुके थे तभी तो उन्होंने कैकेयी से स्पष्ट कहा —

---

१ मा० अयो० पृ० २८१
२ मा० अयो० पृ० २८३
३ मा० अयो० पृ० ३२६
४ मा० किष्किन्धा पृ० ५२५—६६८
५ मा० लंका पृ० ५६५
६ मा० सुन्दर पृ० ३८७
७ मा० लंका पृ० ५६४
८ मा० अरण्य पृ० ३०८
९ मा० अरण्य पृ० ४८२

भामिनि भयउ तोर मन भावा । घर घर आनँद बजब बधावा ॥[1]

दशरथ के इस अटूट विश्वास का पत्नी की ओर से प्रतिकार मिला प्राणहानि । अतः दशरथजी का यह कथन स्वाभाविक भी है । गोस्वामी जी का नारी के प्रति कोई निजी दृष्टिकोण नहीं प्रासंगिक है ।

नारि चरित जलनिधि अवगाहू

यह प्रसंग राम वन गमन का है इसमें कैकयी जैसी नारियों के प्रति ही संकेत किया गया है । सत्य ही है जैसे समुद्र का अन्त कोई नहीं पा सकता वैसे ही दशरथ भी कैकयी में वास्तविकता क्या है इसका अनुमान नहीं लगा सके । यह भी प्रासंगिक है । तुलसी की निजी धारणा नहीं ।

कवि अबला जिमि करुणा करहू

यह कैकयी का कथन है । प्रासंगिक है । दशरथ जी रोने लगे तभी उक्त वचन कैकयी ने दशरथ से कहे —

सत्य कहहिं कवि नारि स्वभाऊ । सब विधि अगहु अगाध दुराऊ ।
निज प्रतिबिम्ब बरुकु गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ।

यह उदाहरण राम वन गमन के समय का है । प्रसंग के अनुकूल ही है । कैकयी जैसी स्त्री वास्तव में उक्त स्थल पर ऐसे ही शब्दों की अधिकारिणी थी । उसकी गति वास्तव में अज्ञात थी । जिसे अन्त तक दशरथ न समझ सके ।

काज करइ अबला प्रबल कहि जब जानु न जाइ ।

ऐसे वाक्य गोस्वामी जी ने संस्कृत सूक्तियों के आधार पर लिखे हैं उसमें प्रबल शब्द पर जोर दिया है । पंचतंत्र में लिखा है कि जब स्त्री मर्यादा हीन होने लगती है तब अनर्थ उपस्थित हो जाता है । ऐसी मर्यादा हीन स्त्री क्या नहीं कर सकती । इससे गोस्वामी जी का संकेत है नारी को मर्यादा हीन नहीं होना चाहिये अमर्यादित होने पर उसकी शोभा नहीं रहती । इससे यह ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी ने ऐसी उक्तियाँ अपने समय के नारी समाज को उन्नत बनाने की दृष्टि से लिखी हैं ।

महा वृष्टि चलि फूटि किआरी । जिमि स्वतंत्र भए बिगरहिं नारी ॥

स्वतन्त्रता का अर्थ यहाँ मर्यादा के उल्लंघन से है इसी मर्यादा को स्थिर रखने के हेतु गोस्वामी जी ने नारी समाज को बराबर चेतावनी दी है । यदि वे सामान्य रूप से नारी के विरोधी होते तो जानकी को कभी भी माता के रूप में न देखते ।

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥

यह भी प्रासंगिक है । राम के वन गमन के प्रसंग का है । अतः गोस्वामी जी का यह वचन कैकयी जैसी कपट रखने वाली अवगुणों की खानि नारियों के प्रति ही है । समस्त नारी वर्ग के हेतु नहीं ।

---

१ मा० अयो० पृ० २७०

समय सुभाउ नारि कर सांचा । मंगल महु भयमन अति कांचा ॥

यह रावण का कथन है। मंदोदरी राम की वीरता के भय से आतंकित थी। इसके निवारण के हेतु ही रावण ने ऐसे वचन कहे हैं। प्रासंगिक है। गोस्वामीजी की निजी धारणा नहीं।

ढोल गवार शूद्र पशु नारि । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

इस प्रख्यात सूक्ति में ताड़न के अधिकारी प्रसंग ऐसा है कि जो तुलसी की नारी विषयक तिरस्कार भावना की पुष्टि के हेतु विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ ताड़ना शब्द व्यापार्थ का लिए है। इसका अर्थ अभिधा द्वारा स्पष्ट नहीं हो सकता। जिसमें 'ताड़न' का अर्थ पीटना होता है 'तड़' धातु से 'ताड़न' शब्द बना है। किन्तु 'तड़' धातु का अर्थ ताड़न ही नहीं होता। 'ताड़न' का अर्थ संस्कृत विद्वानों ने नियंत्रण भी माना है।[1] यहाँ पर 'ताड़न' का अर्थ यदि यह लिया जाये कि बच्चे को दस वर्ष तक पीटता रहे तो कहाँ न्याय संगत माना जा सकता है। अतः 'तड़' का व्यापार्थ नियंत्रण ही होता है। नियंत्रण का यह गम्भीर अर्थ निकलता है कि ढोल गवार शूद्र पशु और नारी को अपेक्षित ध्यान एवं देख रेख में रखना चाहिए। यदि गोस्वामी जी का अभिप्राय नियंत्रण न होकर पीटना होता तो उन्होंने अपने समय की सामाजिक स्थिति में व्याभिचार विष उगलते कीर्ते होते जहाँ स्त्रियों पर डंडे पड़ते हुए देखे जाते। यहाँ तो तुलसी ने अपने मानस के पात्र बाली का भी अपनी पत्नी पर अत्याचार नहीं करने दिया।

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहिं । अवगुन आठ सदा उर रहहीं ।

यह भी रावण के वचन हैं। इस रावण का तो काम ही नारी जाति का अपमान करना है। जानकी हरण स्वयं उसके नारी सम्मान का द्योतक है। गोस्वामी जी की निजी धारणा नहीं है।

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धार ।
तिन महु अति दारुन दुखदमायारूपी नारि ॥[2]

यह राम का कथन है। अरण्य काण्ड में नारद ने यह कहा कि जब आपने अपनी माया की प्रेरणा की तो जब मैं विवाह का अभिलाषी था तो आपने किस कारण मुझे विवाह नहीं करने दिया। तब भगवान ने कहा नारी अत्यन्त दुखद है इसी कारण मैंने तुम्हारा विवाह नहीं होने दिया। इस प्रसंग का मानस में मुनि शब्द से ही प्रारंभ और अन्त हुआ है।

अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन निवारण मुनि मैं यह जिय जानि ॥

---

१ लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताड़येत् प्राप्ते ।
तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् । मनु० ४।१८

२ मा० अरण्य पृ० ३०६

यह राम की नारी निन्दा सम्बन्धी बात सुनिया के लिए है। गृहस्थ के हेतु नहीं। यदि राम की एसी धारणा नारी के प्रति होती तो वह लताओं और वृक्षों से जानकी के समाचार न पूछते घूमते। अतः यह भी गोस्वामी जी की निजी धारणा नहीं।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखति नारी॥

यह सूपनखा के प्रसंग की उक्ति है। सूपनखा जैसी दुष्ट नारियों के प्रति ही यह कथन है। गोस्वामी जी ने ऐसी उक्ति राक्षस जाति की नारी के प्रति की है। प्रमाण है विभीषण जो मन्दोदरी का पुत्र तुल्य है अन्त में रावण की मृत्यु के बाद वह विभीषण की ही पत्नी हो जाती। अतः ऐसी ही राक्षस नारियों के हेतु गोस्वामीजी की यह उक्ति है। समस्त नारी जाति के प्रति नहीं।

सारांश यह है कि गोस्वामी जी ने अपने समय की ऊँच और नीच दोनों ही स्तर की नारियों के स्वभाव को खूब परखा था। वे भक्त थे। वैरागी थे एवं मानस प्रिय थे। अतः उनकी सूक्तियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे नारी को समाज से बहिष्कृत या तिरस्कृत करना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन के समय में नारी प्रसाधन और अलंकार की सामग्री मानी जाती थी जो भक्त के हेतु अहितकर थी। इस प्रकार मिलता है कि सभी पुरुष नारी के वशीभूत होकर नट मरकट की भाँति नाचते हैं और नारियाँ भी सुन्दर पतियों को छोड़कर पर पुरुषों को भजती हैं। पुत्र माता पिता को तभी तक मानते हैं जब तक कि पत्नी नहीं आती। इन सभी बातों का चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥[१]

इससे सिद्ध होता है कि पुरुष समाज को नारी विषयक आसक्ति ने धैर्य और समाज की मर्यादा का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया था। इससे तुलसीदास जी को इन बातों पर पूर्ण प्रकाश डालना था और ऐसी विषम परिस्थिति में तुलसी को मर्यादा विहीन स्त्रियों को लक्ष्य करके लोगों को भक्ति के हेतु भुकाने के लिये देस पद्धति का अनुसरण करना पड़ा। इससे यह कभी भी सिद्ध नहीं होता कि वे नारी जाति के विरोधी थे। अतः सुधार की भावना से ही गोस्वामी जी को कटु सत्य का आश्रय लेकर नारी के स्वभाव का यथार्थ पूर्ण चित्रण करना पड़ा। यह मनोवैज्ञानिक सत्य का चित्रण है। जो सामाजिक आदर्श के हेतु अत्यन्त उपयोगी है। आचार्य रामचन्द्र

१ मा० उत्तर पृ० ७६२, ७६३ ७६४

शुक्ल गोस्वामी जी को नारी निन्दक नहीं स्वीकार करते।[1] अतः यह कहना कि गोस्वामी जी स्त्रियों के विरोधी थे सर्वथा निर्मूल और असत्य प्रतीत होता है। क्योंकि यदि वे नारी विरोधी होते तो व शास्त्रियों को धर्म परायण और विदुषी न चित्रित करते। या मंदोदरी से स्पष्ट है। वास्तव में यह सिद्ध होता है कि उनकी रचनाओं में जो यत्र-तत्र नारी निन्दा सम्बन्धी विचार मिलते हैं जिसकी विवेचना पीछे की जा चुकी है और साथ ही यह सिद्ध भी किया जा चुका है कि उन्होंने यह नारी निन्दा सम्बन्धी उक्तियाँ अवसर का ध्यान रखते हुए उचित ढंग से प्रस्तुत की हैं। इससे यह भी ध्वनित होता है कि नारी निन्दा सम्बन्धी उक्तियों में भी गोस्वामी जी की औचित्यपरक दृष्टि काम कर रही है।

शब्द प्रयोग का औचित्य—

गोस्वामी जी ने शब्दों के प्रयोग में भी सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखा है। स्थानाभाव से यहाँ एक शब्द औचित्य का बड़ा ही सुन्दर उदाहरण गोस्वामी जी के काव्य में प्रस्तुत किया जा रहा है। राम को देखकर जनकपुर की स्त्रियों का कथन है —

नेकु सुमुखि चित लाइ चितौरी ।
राज कुँवर मूरति रचिबे की ॥
रुचि सुबिरंचि श्रम कियो है कितौरी ॥
नख सिख सुन्दरता अवलोकत ।
कह्यो न परत सुख होत जितौरी ।
सांवर रूप सुधा भरिबे कहँ ।
नयन कमल कल कलस रितौरी ॥[1]

इसमें 'नयन कमल कल कलस रितौरी' में शब्दों का कितना सुन्दर औचित्य सन्निहित है। इसमें नेत्र कमलों को सुन्दर घड़ों की उपमा दी गई है। नारियों का इसमें जो संकेत है वह यह है कि अभी तक हमारे नेत्र जो अन्य नारों के सौन्दर्य दर्शन से भरे हैं उन्होंने खाली करके ही इसमें राम का सौन्दर्य सुधा को भरा जा

---

१ गीतावली बाल पृ० ७८

२ उन पर स्त्रियों की निन्दा का महापातक लगाया जाता है। पर यह अपराध उन्होंने अपनी विरति की पुष्टि के ही हेतु किया है। इसे उनका वैरागीपन ही समझना चाहिये। सब रूपों में उन्होंने नारी निन्दा नहीं की। केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में अथवा दाम्पत्य रति के आलम्बन रूप में की। माता पुत्री भगिनी आदि के रूप में नहीं। इससे सिद्ध है कि गोस्वामी जी का नारी के प्रति कोई द्वेष नहीं था।

—गोस्वामी तुलसीदास–रामचन्द्र शुक्ल–पृ० ४६
लोक नीति और मर्यादावाद शीर्षक

सकता है। क्योंकि इस ब्रह्म रूप सुधा के समक्ष सभी सौन्दर्य व्यर्थ है। कितना सुन्दर यह औचित्य है।

विभिन्न शंकायें और उनका समाधान—

गोस्वामी जी कट्टर मर्यादावादी थे किन्तु परम्परावादी न थे। उनका परम्परावादी न होना ही उन्हें औचित्यवादी सिद्ध करता है। क्योंकि औचित्य भी परम्परा पर नहीं अपितु वैयक्तिक तर्क पर चलता है। मानस के निम्नलिखित प्रकरणों में गोस्वामी जी मर्यादा की रक्षा नहीं कर सके हैं ऐसी शंका विद्वानों द्वारा उठाई गई है।

१— लक्ष्मण और परशुराम की वार्ता में
२—अंगद और रावण संवाद में
३—बालि वध
४— मन्दोदरी रावण वार्ता में।

अतः हम इनमें से एक-एक पर विचार करेंगे और यह प्रमाणित करने की चेष्टा करेंगे कि यथास्थान इन सभी स्थानों में गोस्वामी जी ने मर्यादा और औचित्य की रक्षा की है उल्लंघन नहीं।

लक्ष्मण और परशुराम वार्ता में—इस प्रसंग में मर्यादा की नहीं अपितु औचित्य की रक्षा की गई है। क्योंकि परशुराम का राम और लक्ष्मण के प्रति जो व्यवहार हुआ है वह ऋषि के स्वरूप के अनुरूप नहीं। इस कारण मर्यादा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। लक्ष्मण ने परशुराम के उक्त व्यवहार के फलस्वरूप जो परशुराम से उत्तर प्रति उत्तर किए हैं वे सभी औचित्यपूर्ण हैं।

अंगद और रावण संवाद में—अंगद रावण से जो वार्ता करता है वह एक दूत की मर्यादा के अनुरूप ही है। दूसरे अंगद स्वयं वानर जाति का है। अतएव वह मर्यादा पूर्ण वार्ता कर भी नहीं सकता। अतः यहाँ गोस्वामी ने अंगद की वार्ता में उसकी संस्कृति का औचित्य और एक दूत की मर्यादा दोनों का ही पूर्ण रूपेण रक्षण किया है।

बालि वध—बालि के साथ राम का जो व्यवहार था उसमें मर्यादा की तो बात ही न थी क्योंकि हम अवैध और अमर्यादित व्यवहार उससे करेंगे जो हमारा मित्र हो। राम की सुग्रीव से मित्रता थी। सुग्रीव बालि का शत्रु है। अतएव वह राम का भी शत्रु ही हो सकता है। शत्रु के साथ राम मर्यादा बरतें यह अस्वाभाविक-सी बात है। अतएव इसमें गोस्वामी जी द्वारा राम के चरित्रगत औचित्य की रक्षा की गई है। राम के द्वारा बालि वध सर्वथा औचित्य पूर्ण है क्योंकि वह उनके मित्र सुग्रीव का शत्रु था।

रावण मन्दोदरी वार्ता में—मन्दोदरी रावण संवाद में अनार्य संस्कृति के औचित्य की रक्षा हुई है।

गोस्वामी जी मर्यादावादी थे। पर उनकी यह मर्यादा और आदर्श रूढ़ नहीं है। वरन् यथार्थ के औचित्य के अनुरूप है। जीवन में मर्यादा और आदर्शों में स्थिति के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है। इस कारण जीवन-गत परिस्थिति की यथार्थता के औचित्य का ध्यान रखना मर्यादा की लीक पीटने से अधिक प्रगतिशील है।

अत गोस्वामी जी की रचना में सर्वत्र आदर्श और मर्यादा का पालन तथा औचित्य का निर्वाह है। यह उनकी काव्य कला को गम्भीर महत्त्व प्रदान करता है।

चौथा अध्याय



तुलसी की शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला

विषय प्रवेश—

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में विक्रम की १६वीं शताब्दी एक पुण्य की शताब्दी हुई। सोलहवीं शताब्दी का आकाश ब्रह्ममुहूर्त के समान था। जिसमें ऊषा की लालिमा छिटकी और अकस्मात् साहित्य गगन मंडल के मार्तण्ड महात्मा तुलसीदास जी का उदय हुआ। एक प्रचलित कथन है।

सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास॥

परन्तु मेरी धारणा यह है कि 'सूर' सूर का यमक और 'तुलसी' ससी का अनुप्रास मिलाने की लिप्सा से ही ऊपर के दोहे की सृष्टि हो गई है। अन्यथा इसकी रचना मेरे विचार में इस प्रकार होती।

तुलसी रवि अरु सूर ससि उडगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास॥

जिस प्रकार चन्द्रमा सब वनस्पतियों में रस प्रदान करता है और वही सूर्य चराचर प्राणियों और जीवनी शक्ति का संचार करता है उसी प्रकार सूर्य की रसमय प्रेम भावना को तुलसी ने अपने मर्यादावाद एवं आदर्श से परिपक्व कर हिन्दी काव्य को सुन्दर एवं सत्य शिव मंडित बना दिया।

उन्होंने हिन्दी साहित्य की शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला के उद्यान में नवीन नवीन भाव कुसुम खिलाये। यहाँ हम गोस्वामी जी की शब्द प्रयोग सम्बन्धी विलक्षण प्रतिभा पर दृष्टिपात कर रहे हैं।

भाषा में लिखने का कारण—

गोस्वामी जी ने स्वीकार किया है कि हम 'स्वान्तःसुखाय' अथवा 'मोरे हित प्रबोध जेहि होई' इस कारण भाषा में लिखते हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय संस्कृत भाषा में प्रबोध होना कठिन है। गोस्वामी जी की अपनी भावना भाषा में लिखने की यही है कि गुरु जी ने जो राम कथा बार बार मुझसे कही वह संस्कृत में थी। अपनी बाल बुद्धि के अनुसार मैंने उसे थोड़ा बहुत समझा। प्रबोध तो तभी होगा जब मैं अपनी भाषा में कहूँगा। इससे एक लाभ भी होगा वह यह कि भगवान के गुण गान करके मैं अपनी वाणी को पवित्र करूँगा।

भाषा में ही रचना करने का एक यह भी कारण है कि वह महत्वपूर्ण युग जीवन के हेतु आवश्यक ज्ञान को सर्व सुलभ बनाना चाहते थे। इसलिए भी उन्होंने भाषा में लिखा।

जिस भाँति गौतम बुद्ध ने प्राकृत को अपनाकर अपने मत का प्रचार किया उसी प्रकार गोस्वामी जी ने भी मधुर भाषा में रामचरित का वर्णन करके मानस को अमर कर दिया। इस ग्रंथ रूपी सुधा समुद्र जिसमें पूर्ण इस अगाध मानससागर का • वर्षों से निरन्तर कीर्ति सम्पन्न बने रहना हमें यह दृढ़ विश्वास दिलाता है कि इसी प्रकार कई सौ वर्ष पूर्व आगे की सन्तान भी इस मानस का इसी भाँति रसास्वादन करती रहेगी। और इसकी अक्षय कीर्ति भी इसी प्रकार की बनी रहेगी।

शब्द कोष—

गोस्वामी जी का शब्द कोष इतना विशाल है जितना और किसी भी कवि का न होगा। इन्होंने तद्भवों संस्कृत प्राकृत तथा विभिन्न भाषाओं के शब्दों का बड़े अधिकार के साथ प्रयोग किया है। जिस कवि का शब्द कोष जितना ही विशाल होगा वह उतने ही सौष्ठव के साथ अपने भावों को अभिव्यक्त कर सकता। किसी अधिकारी कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों की गिनती करना और उनके अर्थों को निर्धारित करके कवि के मनोगत भाव का पता लगाना भी बड़ा उपयोगी अनुसन्धान कार्य है। तुलसी पर ऐसा कार्य काफी हो चुका है। गोस्वामी जी का शब्द भण्डार विशाल होने के साथ साथ इतना गम्भीर भी है कि टीकाकार उनके शब्दों का अर्थ करने में चकरा जाते हैं। गोस्वामी जी की शब्दावली को लेकर जितना भी विचार किया जाय उतना ही नया मसाला मिलता है। नीचे हम गोस्वामी जी की मर्यादानुकूल शब्दावली की विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

मर्यादानुकूल शब्दावली—

तुलसीदास को हम सर्वत्र शब्दों के तात्पर्य की मर्यादा की रक्षा करते हुए पाते हैं। शब्द प्रयोग में ऐसा सावधान कवि हिन्दी में कोई भी नहीं मिलता है। जैसे उन्होंने अपने पात्रों की मर्यादा का ध्यान सर्वत्र रखा है। वैसे ही शब्दों की मर्यादा भी उन्होंने निभाई है। शब्दों की मर्यादा की रक्षा का एक उदाहरण लीजिये। हनुमान ने राम को सीता का सन्देश इन शब्दों में सुनाया।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥[1]

इसमें 'तनु' 'शरीर' और देह यह तीनों ही शब्द एक चौपाई में आये हैं एक ही अर्थ के वाचक होने पर भी 'तनु' 'शरीर' और 'देह' के तात्पर्य भिन्न-भिन्न हैं। 'तनु' (तन+उन) शब्द सुकुमारता का, देह (दिह्+अच) स्थूलता और पुष्टता तथा 'शरीर' (शृ+ईरन) प्रति क्षण क्षय होने वाले अर्थ का वाचक है।

---

१ मा० सु० पृ० ३९१

उक्त तीनों प्रकार के शब्दों के प्रयोग की कला का सौन्दर्य देखिये। तन की कोमलता के लिए तनु, मन के लिए शरीर और जल से सीचे जाते रहने के कारण उत्पन्न हुई स्वस्थता के हेतु देह शब्द का प्रयोग करके कवि ने रचनाचातुर्य की परा काष्ठा दिखला दी है।

अब एक दूसरा प्रसंग देखिए। महाराज दशरथ राम के विवाह की बारात सजा कर जनकपुर गये। जनक के स्वागत सत्कार पाकर वे जनवासे में बैठे हुए हैं। पर मन में अपने पुत्रों के देखने के हेतु छटपटा रहे हैं एकाएक उनके दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ आते हुए दिखलाई देते हैं उन्हें हृदय से लगाने के हेतु आतुर होकर महाराज उठे। इस अवसर पर तुलसी ने उन्हें दौड़ाया नहीं। क्योंकि वे पुत्र के स्नेह के भार से दबे हुये थे। अतएव उनका धीरे-धीरे चलना ही स्वाभाविक था। तुलसी कहते हैं।

भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेता।
उठेउ हरषि सुख सिन्धु महु चले थाह-सी लेता॥[१]

सारा रस 'चले थाह सी लेत' में है। कवि मानो पुत्र स्नेही पिता का अनुभव कर रहा है। यहाँ जो महाराज दशरथ दौड़ते नहीं हैं प्रत्युत थाह सी लेने के आधार पर जो धीरे-धीरे चलते हैं इसमें जो भाव है वह यह कि दशरथ जी चूँकि राम को बहुत दिन बाद आज देख रहे हैं इस कारण उनका वात्सल्य प्रेम उमड़ पड़ा और इसी कारण वह प्रेम में अधीर होने से धीरे धीरे चल रहे हैं। पर वे ही तुलसी चित्रकूट में गुरु आगमन सुनकर राम को कितने वेग से दौड़ाते हैं।

चले सबेग राम तेहि काला। धीर धुरन्धर दीन दयाला॥[२]

स्नेह भरे पिता का धीरे चलना उचित था और कर्त्तव्य बुद्धि से प्रेरित राम को वेग से।

मानस में गोस्वामी जी की शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला एक निश्चित मर्यादा से बँधी हुई है। उदाहरण स्वरूप सुख शब्द का प्रयोग मानस में एक निश्चित प्रयोग और अवसर की मर्यादा से बँधा मिलता है। जहाँ भी राम के सम्पर्क का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया है। वहाँ उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को सुख प्राप्त होता है। यह सर्वत्र दिखलाया गया है। इसके समर्थन में मानस से इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

राम गर्भ में आ रहे हैं तभी संसार में सुख की अविरल वर्षा हो रही है।
जा दिन तें हरि गर्भहिं आये। सकल लोक सुख संपति छाये॥[३]

---

१ मा० बा० पृ० १११
२ मा० अयो० पृ० ४०८
३ मा० बा० पृ० ११५

अवतार हो गया। चारों भाई बड़े हो गए अवध में विहार कर रहे हैं तभी महाकवि ने लिखा —

कछुक काल बीतें सब भाई। बड़े भये परिजन सुखदाई ॥[1]

राम बाल्यावस्था में भी सभी को सुखी करते हैं —

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥[2]

जैसे ही मिथिलावासियों की दृष्टि राम पर पड़ी कवि की लेखनी ने अपने नियमानुकूल लिख ही दिया।

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥[3]

जब राम अयोध्या में विवाह कर आये तब भी उनके सम्पर्क में सभी सुखी हैं —

एहि बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचन्द्र मुख चन्द्र निहारी ॥[4]

जब रामचन्द्र वनपथ के निवासियों के सम्पर्क में आये तब फिर महाकवि ने यही शब्द लिखा —

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई।
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। पाइ नयन फल होहिं सुखारी ॥[5]

गोस्वामी जी का यह शब्द उस समय अपनी असाधारण प्रतिभा दिखलाता है जब राम मनुष्यों को नहीं वरन् सम्पर्क में आये हुए पशुओं को भी सुखी कर रहे हैं —

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं सुखारी मृग बृन्द बिसेषी ॥[6]

इतना ही नहीं जब राम जड़ों के सम्पर्क में आये तब भी गोस्वामी जी अपने इस शब्द को नहीं भूले —

परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी ॥[7]

आगे राम जब मुनियों के सम्पर्क में जंगल में आये तब भी इसी शब्द का निर्वाह देखिये —

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥[8]

---

१ मा० बा० पृ० १४३
२ मा० बा० पृ० १४५
३ मा० बा० पृ० १५५
४ मा० अयो० पृ० २५४
५ मा० अयो० पृ० ३२४
६ मा० अयो० पृ० ३४१
७ मा० अयो० पृ० ३४१
८ मा० अरण्य० पृ० ४७६

इसी प्रकार से इस राम के विभिन्न भावों और रूपों में भी इस सुख शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे राम का नाम —

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू ॥[1]

इसी प्रकार से राम के रूप[2], लीला[3], धाम[4], चरित[5], क्रीड़ा[6], भक्ति[7], प्रजा[8], वास[9] और आसन[10] आदि में भी इस शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है।

इतना ही नहीं राम के हेतु प्रयुक्त विशेषणों में भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है।

जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ ॥[11]

---

१ मा० बाल पृ० २०

२—रूप राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक ॥
—मा० बा० पृ० ११

३—लीला प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे ॥
—मा० बा० पृ० १८२

४—धाम अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी ॥
—मा० उत्तर पृ० ६६२

५—चरित राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥
—मा० बा० पृ० ३०

६—क्रीड़ा प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे ॥
—मा० लंका पृ० ५८६

७—भक्ति सब सुख खानि भगति तैं मागी।
नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ॥
—मा० उत्तर पृ० ७५१

८—प्रजा अवध पुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥
—मा० उत्तर पृ० ७११

९—वास जब तें राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा ॥
—मा० अरण्य पृ० ४७१

१०—आसन एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना ॥
—मा० अरण्य पृ० ४८०

११ मा० बा० पृ० १२४

इसी प्रकार अन्य जगह भी इस शब्द का प्रयोग बराबर मिलता है।[1] इसी प्रकार महाकवि की शब्द योजना बड़ी ही मर्मानुकूल और कलात्मक रचना से युक्त है।

भावानुकूल शब्द योजना—

प्रारम्भिक अवस्था दुःख पूर्ण होने के कारण गोस्वामी जी का हृदय बड़ा संवेदन शील हो गया था। साथ ही इन्हें जीवन का व्यापक अनुभव प्राप्त था। और संस्कृत तथा हिन्दी के विविध ग्रन्थों पर उनको विशाल ज्ञान था। इसलिये इनकी रचना में सर्वत्र भावानुकूल शब्द योजना प्राप्त होती है। यह बात केवल उनके ज्ञान की ही द्योतक नहीं वरन् उनकी उत्कृष्ट प्रतिभा की भी द्योतक है। उनकी भावानुकूल शब्दा वली को हम दार्शनिक भावों में और प्रेम पूर्ण शृंगारिक प्रसंगों की शब्दावली के शीर्षकों के अन्तर्गत ले सकते हैं। जिनका एक एक करके विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त शब्दावली—

दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति में गोस्वामी जी की शब्दावली बिल्कुल ही रूप बदल कर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। ऐसे स्थलों पर उनका जन भाषा के रूढ़ प्रवाह के साथ जो घनिष्ठ सम्बन्ध अन्यत्र दिखलाई पड़ता है वह एक दम छूट जाता है और दूसरी शब्दावली तथा वाक्य योजना बड़ ही भिन्न साहित्यिक स्तर को अप नाती हुई तथा तर्क शैली एवं सूत्र पद्धति का अधिक अनुगमन करती हुई चलती है। प्रायः इस प्रकार के दार्शनिक विवेचन में जनसाधारण की बुद्धि का प्रवेश नहीं हो पाता। उसके लिए उसमें एक मात्र गम्भीरता और चिन्तन शीलता की ध्वनि वर्तमान रहती है और सिवा इस बात के हल्के आभास के कि कोई दार्शनिक अथवा सैद्धान्तिक विषय चल रही है उसे कुछ और पता नहीं चलता ऐसे अवसरों पर इस प्रकार की शब्दावली का आश्रय लेना जिसमें संस्कृत तत्सम शब्दावली का अधिक समावेश रहता है। तुलसी की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है कि और साथ ही ऐसी संस्कृत तत्सम शब्दावली से उनकी रचना में एक अपूर्व कलात्मक सौन्दर्य की सृष्टि का है। क्योंकि किसी भी भाषा का साहित्य इस तथ्य का साक्षी है कि गम्भीर दार्शनिक मत, वाद शास्त्रीय निष्कर्षों तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रकाशन करने में जनता की साधारण बोल चाल की भाषा कभी भी उतनी समर्थ नहीं हो सकती जितनी उच्च कोटि के साहित्यिक स्तर का

१ (१) मा० प्रयो० पृ० १८०
(२) मा० बा० पृ० १३६
(३) मा० बा० पृ० १३६
(४) मा० बा० पृ० १८०
(५) मा० सु० पृ० ५४६

विद्व भाषा । योरोपीय देशों की ग्रीक लैटिन आदि भाषाओं की भाँति अपने भारतीय साहित्य के अन्तर्गत संस्कृत ही इस प्रकार की साहित्यिक स्तर की आधार शिला बनाई जाने के कारण सबसे अधिक समर्थ और पूर्ण है । यही कारण है कि दार्शनिक विवेचन में गोस्वामी जी ने संस्कृत की समास बहुला (तत्सम) शब्दावली का प्रयोग किया है और इस बात का सदा प्रयत्न किया है कि वह स्वस्थ दार्शनिक भावों के अनुरूप गम्भीर बना रहे । जैसे :—

> बुध विश्राम सकल जन रंजनि । राम कथा-कलि कलुष विभंजनि ।।
> राम कथा कलि पंनग भरनी । पुनि विवेक पावक कहुं अरनी ।।[1]

स्तुति के प्रसंगों में तुलसी की भाषा जन भाषा के स्तर से बहुत ही ऊपर उठी हुई दिखलाई देती है । वस्तुतः इन्हीं स्थलों पर वह संस्कृत से इतना निकट और बोलचाल की भाषा से इतनी दूर हो गई है कि उनमें की अधिकांश पंक्तियां विशुद्ध संस्कृत श्लोकों के भीतर खपाई जा सकती हैं । अनुमान न होगा कि इस प्रवृत्ति के पीछे देववाणी संस्कृत के प्रति तुलसी की असीम श्रद्धा तथा साथ ही स्तोत्रों की पवित्रता और सांस्कृतिक महत्ता के साथ वह परम्परा विद्यमान रही होगी जो आज तक किसी न किसी रूप में चली आ रही है । इन स्थलों की भाषा तथा दार्शनिक विवेचन के प्रसंगों की भाषा में इतना अन्तर अवश्य स्पष्ट है कि स्तुतियों की भाषा में चाहे कितनी ही संस्कृत तत्समता न हो किन्तु इसमें गम्भीर तर्क शैली का समावेश बहुत कम मिलेगा । इस सबका अभिप्राय केवल यही है कि गोस्वामी जी की दार्शनिक शब्दावली की विशेषता यह है कि उसमें गम्भीर तर्क शैली तथा सूत्र पद्धति का समावेश मिलता है । विनय पत्रिका की निम्न पंक्तियों में देखिये कितनी गम्भीर तर्क शैली तथा सूत्र पद्धति का अनुसरण करते हुए अन्त में भक्ति की महत्ता स्वीकार की गई है ।

> जो निज मन परिहरै बिकारा ।
> तौ कत द्वैत जनित संसृति दुख संसय सोक अपारा ।।
> सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआई ।
> त्यागन गहन उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं
> असन बसन पसु बस्तु बिबिध बिधि सब मनि महँ रह जैसे ।
> सरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ।
> बिटप मध्य पुतिका सूत महँ कंचुक बिनहिं बनाए।
> मन महं तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाये ।।
> रघुपति भगति बारि छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
> तुलसीदास कह चिद बिलास जग बूझत बूझत बूझै ।।[2]

---

१ मा० बा० पृ० २८
२ विनय पत्रिका पद १२४

संवादों में भावानुकूल शब्दावली—

संवादों में भी अवसरानुकूल शब्दावली का प्रयोग गोस्वामी जी ने किया है। अंगद रावण संवाद में रोष उत्पन्न करने वाले शब्द हैं। इसके विपरीत परशुराम लक्ष्मण संवाद में व्यंग्य प्रधान शब्दावली है। भरत राम संवाद शिष्टता और विनम्रता से भरी शब्दावली में प्रस्तुत किया गया है।

संवादों में प्रयुक्त शब्दावली के विषय में कुछ कहने के पूर्व इतना संकेत कर देना आवश्यक है कि तुलसी के समय में हिन्दी गद्य का कोई रूप निश्चित रूप से उपस्थित न होने के कारण संवादों की सजीव योजना में पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ता था। कुछ कवि इस कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से नाटकों की वार्तालाप शैली का अनुसरण करने को बाध्य होते थे। और पद्यात्मक संवाद के अन्तर्गत वक्तव्य के पूर्व वक्ता का निर्देश अवश्य ही कर देना अनुचित नहीं समझते थे। जैसे कि केशव की रामचन्द्रिका जैसे ग्रन्थों में बहुतायत से देखने को मिलेगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार का निर्देश मूल काव्य की शब्दावली का अंग बनने में असमर्थ रहता था। और इस दृष्टि से यहाँ पर इस पद्धति का अनुसरण खटकता रहा है। परन्तु तुलसी ने अपनी कई रचनाओं में संवादतत्व को एक महत्वपूर्ण स्थान देते हुए भी कहीं पर भी उक्त पद्धति द्वारा अपनी कठिनाई को हल करना उचित नहीं समझा। उन्होंने ऐसी कुशलता एवं कलात्मकता से शब्दों एवं वाक्यों का विन्यास किया कि बिना किसी बाहरी निर्देश के पाठक के समक्ष वक्ता और श्रोता की सत्ता का ठीक ठीक रूप अंकित होता रहता है। यहाँ तक कि मानस जैसे ग्रंथों में भी जहाँ चार चार वक्ताओं और चार चार श्रोताओं अर्थात् आठ पात्रों के बीच संवाद चलता है वहाँ किसी भी प्रकार के भ्रम अथवा अव्यवस्था की संभावना नहीं हो पाती। यह साधारण प्रतिभा का काम नहीं है। कवि की कलात्मक प्रतिभा का परिचय तो उस समय मिलता है जहाँ कवि अमुक पात्र ने कहा इस बात का बिल्कुल संकेत किये बिना परिस्थिति एवं घटनाचक्र के मोड़ द्वारा अपने पात्रों का बोध कराता हुआ वक्तव्यों को बदल देता है। संस्कृत के प्रथम श्रेणी के कवि श्रीमद् भगवद्व्यास भी भी 'भगवान उवाच' अथवा 'शुकदेव उवाच' इत्यादि बाह्य निर्देश के अवलम्ब का त्याग नहीं कर सके किन्तु इस पौराणिक शैली का सहारा लिए बिना ही जिस अद्वितीय सफलता के साथ तुलसी ने अपनी संवाद योजना को प्रभावशाली तथा कलात्मक बनाया है वह उनकी भाषा की इस अद्भुत शक्ति तथा व्यापक सत्ता पहुँच के ही बल पर सम्भव हो सका है।

यहाँ पर इस बात की ओर भी संकेत कर देना अच्छा होगा कि तुलसी अपने संवादों की शब्दावली में विभिन्न पात्रों की व्यक्तिगत विशेषता के अनुकूल भी भाषा के रूप में विभिन्नता लाते हैं। जिसका उद्देश्य प्रायः यही रहता है कि किसी प्रकार की अस्वाभाविकता का समावेश वार्तालाप में न हो पावे। संभवतः यही कारण है

तुलसी निम्नवर्गीय अशिक्षित पात्रों द्वारा ऊँचे स्तर की संस्कृत तत्सम शब्दावली से युक्त संस्कृत भाषा का व्यवहार न कराकर सामान्य जन भाषा के ठेठ रूपों का प्रयोग कराते हैं। इसी प्रकार उच्चवर्गीय शिक्षित पात्रों द्वारा विशिष्ट प्रसंगों में उक्त दोनों प्रकार की भाषाओं का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है। प्रायः ऐसे व्यक्तियों द्वारा सब साधारण से सम्बन्धित गम्भीर प्रसंगों में संस्कृत तत्सम शब्दावली का व्यवहार तथा आत्मीय जनों से सम्बन्धित प्रसंगों में जन भाषा की ठेठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरणों द्वारा हम उक्त विवेचन की पुष्टि करेंगे।

वार्तालाप का चित्र रूप चित्र वर्णों को चित्र भाषा में प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं। नारद मेना व हिमवंत की बातचीत में कहते हैं—

गिरिवरहि लागि हमार जिवन सुख संपति।
नाथ कहिय सो जतन मिटइ जेहि दूषनु।
दोष दलन मुनि कहेउ बाल बिधु भूषनु॥[1]

गोस्वामी जी की प्रवृत्ति मानस में पात्रों के अनुकूल शब्दावली का व्यवहार करने की विशेष से दिखलाई पड़ती है। निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त शब्दावली संभवतः मंथरा को छोड़कर मानस के किसी अन्य पात्र के मुँह से कदाचित ही इतनी स्वाभाविक सिद्ध हुई हो।

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा।
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥[2]

उपर्युक्त पंक्तियाँ राम अभिषेक की तैयारी पर क्षोभ प्रकट करने वाली मंथरा के कैकेयी की फटकार सुनकर कहे हैं।

यहाँ वक्ता का कोई भी निर्देश नहीं वरन् उस शैली में जिसका अनुसरण आधुनिक के वार्तालाप प्रधान कहानियों अथवा उपन्यासों में प्रायः दिखलाई देता है गोस्वामी जी ने संवाद स्थापित किया है। यहाँ शब्दावली में भाषा के अपूर्व चमत्कार दिखलाया है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियों में बाल कृष्ण तथा माता यशोदा का वार्तालाप कितने मार्मिक ढंग से बिना किसी भी वक्ता के निर्देश किये उपस्थित किया गया है।

---

१ पार्वती मंगल—पद सं० २०—२१
२ रा० २, १९

छोट मोटो मोसी रोटो चिक्नो कुपरि कै तू ल दी मैया।
मैं कन्हैया मो कत मर्याहि तात।
सिगरियै हौं ही बैंहा बलराऊ को म दैहौं
सो बया मदू तेरो कहा करहि हम उत आत ॥[1]

एक एक पंक्ति में वार्तालाप की सम्भावना समाई हुई है। कई कई छोटे छोटे उपवाक्यों की योजना कवि की संवाद योजना म प्रयुक्त वाक्यावली की क्षमता का सुन्दर रूप प्रस्फुटित करती है। प्रह्लाद और हिरण्यकश्यप क वार्तालाप का रूप प्रस्तुत करने वाली निम्नलिखित पंक्ति भी इसी प्रकार की वाक्य रचना का एक सुन्दर उदाहरण है—

राम कहाँ सब ठाउँ है खंभ म।
हाँ सुनि हाँक नृकेहरि जाग ॥[2]

इस छोटे से वाक्य में कई कई वचना मे यक संवाद और साथ ही साथ प्रमुख क्रिया व्यापारो का भी निर्देश कर देना तुलसी की इस उत्कृष्ट कला का परिणाम है। गोस्वामी जी के प्रमुख संवादों म भी कला अपने उत्कृष्ट रूप मे प्रस्तुत हुई है। संवादो के अन्तर्गत कला का विवेचना हम 'छन्द प्रयोग और संवाद कला' शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से करेंगे।

प्रेम पूर्ण श्रृंगारिक वर्णनों की शब्दावली—

प्रेम पूर्ण श्रृंगारिक वर्णनों म गोस्वामी जी की शब्दावली अत्यन्त मधुर हो जाती है। जैसे—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥[3]
और वाटि मनाज सजावनिहार। मुमुखि कहहु का आहि तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥
तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी ॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥[4]
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥

यहाँ सब तदय मधुर शब्दावली है इसके अन्तर्गत कंकन किंकिनि नुपुर धुनि तथा द्वितीय उदाहरण में सुनि सनेहमय सकुचि सिय मृगनयनी पिकबयनी खंजन

---

१ धारण्ए मानावला पद सं० २
२ कवितावली ७ १ ८
३ मा० प्रयो० पृ० १६१
४ मा० प्रयो० पृ० २७-२८

मधु मधमनि सधमनि आदि शब्द संगीतमय और मधुर शब्दावली के उदाहरण हैं जिससे शब्दावली में एक अपूर्व लालित्य और मधुरिमा आ गई है।

अर्थानुरूप शब्द योजना—

गोस्वामी जी के शब्दों का सौन्दर्य जहाँ खिल उठता है वहाँ हम उन्हें पाठकों को कौतूहल में डाल देने वाले दो अर्थों के शब्दों का प्रयोग करते हुए देखते हैं। जान पड़ता था कि वे ऐसे अर्थानुरूप शब्दों को चुन चुन कर रखते थे। उनकी इस अर्थानुरूप शब्द योजना में मानस के बहुत से टीकाकार उलझ गये हैं। यहाँ गोस्वामी जी के अर्थानुरूप शब्द चयन के स्थानाभाव से एकाध उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

चलि— सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥[1]

यहाँ पर 'चलि' शब्द से ऐसा ज्ञात होता है कि मकरंद को लिये चले जाते हुए भौंरे गुंज रहे हैं। यहाँ पर शंका यह होती है कि उनके मुँह में मकरन्द है तब गुँजते कैसे हैं। इसका कोई भी समाधान न होने पर हम उसके दूसरे अर्थ को ढूँढने के हेतु विवश होते हैं जिसका द्योतन चलि शब्द के श्लेषित होने के कारण करता है। इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार होगा कि शीतल और सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रही है। उसका धीरे बहना इस कारण है कि वह मकरन्द से सिक्त है। और साथ ही भौंरें भी इसलिये गुंजार करते हैं कि वह फूलों का मकरन्द लेकर भागी जा रही है। यह उनकी गुंजार वायु के इस चोरी कार्य के प्रतिरोध स्वरूप है।

बनी— जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिम गिरि संग बनी जनु मयना ॥[2]

टीकाकारों ने इस चौपाई में आये हुए बनी शब्द पर ध्यान नहीं दिया। यह शब्द अकारण नहीं आ गया है। इस शब्द को यहाँ लाने के लिये लालित्य-प्रियता ही कारण हुई है। बनी का अर्थ हिन्दी में बनी हुई और सुशोभित होता है। पर दुलहिन को बनी भी कहते हैं। अवश्य ही यह यहाँ दुलहिन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः बनी के साथ साथ उसका दूसरा अर्थ दुलहिन भी प्रकट होता है दोनों ही अर्थों से इसका चमत्कार निखर उठा है।

लोना— बीरहि बरन सोह सुठि लोना। मनहुँ लोपि सरसीरुह लोना ॥[3]

इसमें सरसीरुह लोना से बहुतेरों को मुरझाये कमल का धोखा हो सकता है। पर यह 'लोना' शब्द संस्कृत के लोण का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ है लाल।

कूट— कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ धनु तोरा ।[4]

'कूट' शब्द प्रायः पर्वत के अर्थ में आता है पर यहाँ लोहे के अर्थ में आया प्रतीत होता है।

---

१ मा० उत्तर पृ० ७०५
२. मा० बा० पृ० २११
३ मा० बाल० पृ० २४८
४ मा० बाल० पृ० २५५

चरम— चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई ॥[1]

जो लोग संस्कृत के चरम शब्द का अर्थ नहीं जानते वे तो चमड़े की देह ही समझेंगे। संस्कृत में 'चरम' शब्द अन्तिम का बोधक है।

शब्दों के गुण—

शब्दों के गुण भरत ने १०, व्यास ने १६, भामह ने ३, दण्डी ने १०, वामन ने २० और भोज ने २४ माने हैं। परन्तु मम्मट और विश्वनाथ आदि परवर्ती प्रतिष्ठित काव्याचार्यों ने ३ गुणों के भीतर अन्य गुणों को अन्तर्निहित माना है। और अब उन्हीं की मान्यता व्यापक है।[2] ये तीन गुण हैं।

१—माधुर्य
२—प्रसाद
३—ओज

इन्हीं के प्रकाश में तुलसी की शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला का मूल्यांकन संक्षेप में नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

प्रसाद—सूखे ईंधन में आग जैसे शीघ्र जल उठती है वैसे ही जो गुण चित्त में शीघ्र व्याप्त हो जाता है। अर्थात् रचना का उद्बोध करा देता है वह प्रसाद गुण है। श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति कराने वाले सरल सुबोध शब्द प्रसाद गुण के व्यंजक हैं।[3] इस गुण के सूचक स्थलों पर समास का प्रायः अभाव रहता है तथा साधारणतः सुकुमार वर्णों का प्रयोग किया जाता है। कटु वर्णों का अभाव तथा कठिन शब्द योजना का अभाव इस गुण की प्रमुख विशेषतायें हैं।

गोस्वामी जी की रचनायें अधिकांश में इसी गुण का विकास अपनी शब्दावली द्वारा प्रस्तुत करती हैं। केवल विनयपत्रिका के पूर्वार्ध की कुछ स्तुतियों की शब्द योजना तथा कवितावली और मानस के कुछ युद्ध वर्णन आदि प्रसंगों में प्रयुक्त भाषा इस गुण से रहित है। अन्यथा अन्य सभी स्थलों की शब्दावली इसी गुण से भरपूर मिलती है। कुछ ऐसे उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनके रेखांकित अक्षरों वाले पदों में इस गुण के उत्कर्ष के हेतु अपेक्षित श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति कराने वाले सरल और सुबोध शब्दों की लोक प्रिय योजना देखने को मिलती है।

सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥[4]
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई ॥[5]

---

१ मा० उत्तर पृ० ७७।
२ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० ३०१ ३१२
३ रामदहिन मिश्र—काव्य—दर्पण—पृ० ३१४
४ रा० १ २४८
५. रा० १, १४

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई ॥[1]
तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय। बड़े भाग अनुराग राम सन होय ॥[2]

ओज—वह गुण है जिस से चित्त में स्फूर्ति आ जाय और मन में एक तेजस्विता भर जाए।[3] भाषा की ओजस्विता की दृष्टि से इसके उत्कर्ष के लिए द्वित्व वर्णों संयुक्त वर्णों और ट ठ ड ढ आदि वर्णों का अधिक प्रयोग तथा समासबहुल आदि सहायक होते हैं। इस गुण के उदाहरण कवितावली तथा मानस में विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं। गीतावली श्रीकृष्णगीतावली तथा अन्य छोटे छोटे ग्रन्थों में इसका प्रायः अभाव सा ही दिखलाई देता है। ओज गुण सूचक शब्दावली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं। जिनके रेखांकित अक्षरों वाले शब्दों में इस गुण के उत्कर्ष के हेतु अपेक्षित प्रकरण भाव से ओज गुण को प्रत्यक्ष कराने वाले ओज गुण व्यंजक शब्दों की क्रमात्मक योजना द्रष्टव्य है।

बोलहिं जो जय जय मुंड रुंड
प्रचंड सिर बिनु धावहीं
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं
सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥[4]
कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥[5]

यह रेखांकित शब्दों में आये हुये वर्ण विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं।

माधुर्य—वह गुण है जिसके द्वारा अन्तःकरण आनन्द से द्रवीभूत हो जाय। इस गुण के उत्कर्ष में ट ठ ड ढ को छोड़कर क से म तक के वर्ण ङ—ञ ण न म के मेल वाले ह्रस्व र और ण आदि का प्रयोग होता है। अथवा अल्प समास के पद तथा कोमल और मधुर शब्दावली का व्यवहार किया जाता है। इन सभी से माधुर्य गुण के उत्कर्ष में सहायता मिलती है। तुलसी की लगभग सभी रचनाओं की भाषा में इस गुण का अधिक विकास मिलता है। किन्तु मानस कवितावली गीतावली

१ विनय पत्रिका १६४
२ बरवै ६९
३ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ ३११
४ रा० ६ ८८
५ कवितावली ६ ४७

में इसका सर्वोत्कृष्ट रूप सबसे अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के।
चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥[1]

साथ निसिनाथ मुखी पाथनाथ नंदिनी सी।
तुलसी बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनन्द उमग मन जौबन उमंग तन।
रूप की उमग उमगत अंग अंग हैं॥[2]

शब्द शक्तियाँ—

काव्य में शब्दार्थ के बोध व्यापार का नाम शब्द शक्ति है। जिसके तीन प्रमुख भेद काव्यशास्त्र के अन्तर्गत प्रचलित हैं।

१—अभिधा
२—लक्षणा
३—व्यंजना।[3]

तुलसी की भाषा में प्रयुक्त शब्दावली के अन्तर्गत तीनों शब्द शक्तियों का यथेष्ट विकास दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी स्वयं उस विषय में सचेत रहे हैं। या शब्द शक्तियाँ स्वयं ही उनकी सहज शब्द शक्ति के प्रयोग का बल पाकर प्रस्फुटित हो गई हैं। परन्तु तीनों प्रकार की शब्द शक्तियों की अभिव्यक्ति करने वाले कुछ उदाहरणों के विवेचन द्वारा हम तुलसी की शब्द योजना में उन पर विचार करेंगे।

अभिधा—

साक्षात संकेतित अर्थ की बोधिका शब्द की पहली शक्ति का नाम अभिधा है।[4] अभिधा शक्ति द्वारा जिन वाचक शब्दों का अर्थ बोध होता है। वे प्रधानतः तीन प्रकार के होते हैं।

१—रूढ़
२—यौगिक

---

१ रा० १ २४२
२ कवितावली २ १५
३ वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः।
व्यंग्यो व्यंजनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः।
—विश्वनाथ-साहित्यदर्पण-२, ११
४ तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।
—विश्वनाथ-साहित्य दर्पण-२,१२

३—योग रूढ़

इन तीनों प्रकार के शब्दों का व्यवहार प्रचुरता से अपने पूर्ण सौंदर्य एवं शक्ति के साथ तुलसी के काव्य में मिलता है। जैसा हम आगे देखेंगे। संक्षेप में इन तीन भेदों का उदाहरण सहित विश्लेषण आवश्यक होगा।

रूढ़—

रूढ़ अथवा बिना व्युत्पत्ति वाले शब्द जिनके प्रकृति प्रत्यय रूप अवयवों का या तो कोई अर्थ नहीं होता या होने पर भी संगत प्रतीत नहीं हो सकता।[1] जैसे पुस्तक कमल फूल आदि। तुलसी की शब्दावली का सबसे बड़ा भाग ऐसे ही शब्दों से भरा हुआ है। उनका प्रयोग सामान्यतः सभी कवियों में बड़ा व्यापक होता है। जैसे—

सनमुख आवत दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥[2]
गया बस कर कमल सो तुरत मगाइय हो ॥[3]
और फूल दीजिये को भये फुलवाई हो ॥[4]

उपर्युक्त पंक्तियों के रेखांकित अक्षरों वाले शब्द रूढ़ शब्दों के अन्तर्गत ही आयेंगे। क्योंकि इनके प्रकृति प्रत्यय रूप अवयवों का न तो कोई अर्थ है और न ठीक-ठीक इनकी कोई व्युत्पत्ति ही सम्भव है।

यौगिक—

वे शब्द हैं जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का योग होकर अवयवार्थ सहित समुदाय अर्थ की प्रतीति होती है।[5] जैसे दिवाकर निशाकर जो क्रमशः सूर्य और चन्द्र के बोधक हैं। ऐसे शब्द भी तुलसी की भाषा में पर्याप्त मिलते हैं जैसे —

मोह निहार दिवाकर सरन सोक भयहारी।[6]
मिस नैन हत उदय उदय जब कीन।
निरखि निसाकर नृप मुख भये मलीन।[7]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त रेखांकित अक्षरों वाले शब्द विशुद्ध यौगिक शब्दों के अन्तर्गत आयेंगे। क्योंकि दिवाकर और निशाकर दोनों शब्दों की क्रमशः स्पष्ट व्युत्पत्ति दिन का करने वाला तथा रात का करने वाला सिद्ध है। इस प्रकार इनमें प्रकृति और प्रत्यय दोनों के योग द्वारा शब्दों का निर्माण प्रत्यक्ष है। जो यौगिक शब्दों का प्रमुख लक्षण है।

---

१ रामदहिन मिश्र-काव्य दर्पण-पृ० २०
२ रा० १, ३०३
३ रा० ल० न० १
४ गीता १ ६६
५ रामदहिन मिश्र-काव्यदर्पण-पृ० २०
६ वि० ६
७ बरवै ११

योग रूढ़ शब्द—

अथवा समूहाथ बोधक शब्दों में अङ्ग शक्ति और समूह शक्ति अथवा योग तथा रूढ़ि दोनों का ही मिश्रण मिलता है। यहाँ पर शब्द का प्रकृति प्रत्यय रूप अवयवों का स्पष्ट रहने पर भी रूढ़ि के कारण किसी विशेष अर्थ का ही बोध होता है।[1] उदाहरणार्थ पंकज निशाचर अथवा गण नायक शब्द। पंकज का यौगिक अर्थ हुआ पंक से उत्पन्न होने वाला कोई भी पदार्थ। किन्तु इससे बोध होता है कमल कमल का। निशाचर का अर्थ होता है रात्रि में घूमने विचरने वाला कोई भी प्राणी। किन्तु रूढ़ि के कारण इससे केवल राक्षस का बोध होता है। ऐसे शब्दों के प्रयोग में कभी कभी कोई कवि चमत्कार सृष्टि के हेतु उक्त मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं। किन्तु गोस्वामी जी ने इस प्रकार की स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का अनुसरण नहीं किया है। जहाँ किया भी है वहाँ किसी विशेष परिस्थिति का अनुरोध रहा है। यहाँ पर गोस्वामी जी की कृतियों से एकाध उदाहरण योग रूढ़ शब्दों के प्रस्तुत किये जाते हैं।

> परत पद पंकज नृपति बरनी।[2]
> रजनिचर बरनि बर मम वचन सुनत।
> हनुमान को हांक बांकी॥[3]
> जेहि सुमिरत सिधि होई गननायक करि बर बदन।[4]

उपर्युक्त पंक्तियों के रेखांकित अक्षरों वाले शब्द स्पष्ट रूप से योगरूढ़ शब्दों में आयेंगे। क्योंकि इन सब में योग तथा रूढ़ि का मिश्रण है। तथा इन सभी शब्दों का प्रकृति प्रत्यय रूप अवयवों पंक+ज पंकज रजनी+चर, रजनीचर गन नायक में गन+नायक गननायक[5] का स्पष्ट रूप रहने पर भी रूढ़ि के कारण क्रमशः कमल राक्षस तथा गणेश का ही बोध होता है।

लक्षणा—

लक्षणा शक्ति उसे कहते हैं जिसके द्वारा मुख्यार्थ का बाधा या व्याघात होने पर भी रूढ़ि अथवा प्रयोजन को लेकर मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ लक्षित हों।[6] इसी आधार पर लक्षक अथवा लाक्षणिक शब्द तथा लक्ष्यार्थ की कल्पना की गई है। वैसे तो

---

१ रामबहिन मिश्र-काव्य दर्पण-पृ० २१
२ गीतावली १, ६
३ कवितावली ६, ४४
४ रा० १ प्रारम्भिक सोरठा
५ डा० देवकी नन्दन श्रीवास्तव तुलसीदास की भाषा—पृ० २२१-२२२
६ मुख्यार्थ बाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
  रूढे प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥
  —विश्वनाथ-साहित्यदर्पण—२, १४

लक्षणा शक्ति के बहुत से भेद प्राचीन काव्यशास्त्र ग्रन्थों में गिनाये गए हैं। किन्तु उनमें से केवल प्रमुख भेदों तक ही अपने को सीमित रखना उचित होगा। उनमें रूढ़ि और प्रयोजनवती यह दो मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। जिनके पुनः गौणी और शुद्धा दो विभाग किये जाते हैं। शुद्धा के भी दो प्रमुख भेद हैं।

१—उपादान लक्षणा

२—लक्षण लक्षणा

इन दोनों के तथा गौणी लक्षणा के पुनः दो दो भेद और माने जाते हैं।

१—सारोपा

२—साध्यवसाना।

गूढ़ व्यंग्य आदि कुछ भेद भी किये जाते हैं। जिनके विशेष विस्तार में न जाकर हम कुछ प्रमुख भेदों के आधार पर तुलसी की शब्दावली की विवेचना करेंगे।

रूढ़ि लक्षणा—

इस शक्ति के द्वारा प्रसंगों में रूढ़ि के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ का ग्रहण अपेक्षित होता है।[1] इसके कुछ उदाहरण विविध मुहावरों एवं कहावतों के अन्तर्गत आते रहे हैं जिनका तुलसी ने अपनी कृतियों के भीतर प्रचुर मात्रा में व्यवहार किया है। और जिनका उनकी भाषा को सजीव एवं लोक-प्रिय बनाने में पर्याप्त योग रहा है। वस्तुतः ऐसे मुहावरों एवं कहावतों के अभिधार्थ में चमत्कार न होकर लक्ष्यार्थ में चमत्कार विद्यमान रहता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों के रेखांकित शब्दों वाले अंश :—

धातु की कासिहु परी की भरी
कह कोहि न काढ़ि दिवारी को दियो ॥[2]
मुँह लावै मूड़हि चढ़ी अन्तहु अहिरिनि तू सूधी करि पाइ ॥[3]
लोचन भरो अगाध जो भरो हौंस की पास।
करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास ॥[4]

उपर्युक्त पंक्तियों के रेखांकित अंशों में व्यवहृत शब्दों एवं शब्द समूहों के केवल वाच्यार्थ से कहीं भी अर्थ का स्पष्टीकरण होना पूर्णतया सम्भव नहीं है। जब तक कि उनके रूढ़िगत अर्थ अर्थात् लक्ष्यार्थ से परिचित न हों। उदाहरणार्थ दिवारी का दिया चाटना, मुँह लगे का मूड़ चढ़ना, तथा गगन को गेंडुआ करना, प्रकाश की लठिया बनाना आदि प्रयोग स्पष्टतः मूल अर्थ में एक प्रकार की अस्वाभाविक एवं असम्भावी बातें हैं किन्तु रूढ़िगत लक्ष्यार्थ के अनुसार उनसे अर्थ समाप्त कर देना

१ रामदहिन मिश्र-काव्यदर्पण-पृ० ९२
२ कवितावली ७, १०१
३ श्री कृष्ण गीतावली ८
४ दोहावली ४६१

दिखाई से अनुचित लाभ उठाने का भी अवसर देना तथा अभिनय एवं अस्वाभाविक व्यापार के प्रयत्न इत्यादि के बोध हो जाने पर ही इन प्रयोगों के महत्व एवं चमत्कार का पता चलता है। गोस्वामी जी का इस लक्ष्यार्थ शक्ति पर कितना असीमित अधिकार था इसका अनुमान उक्त उदाहरणों से भी हो जाता है।

प्रयोजनवती गौणी लक्षणा—

इस शक्ति के अन्तर्गत सादृश्य सम्बन्ध से अर्थात् समान गुण या धर्म के कारण लक्ष्यार्थ को ग्रहण किया जाता है।[1] उदाहरणार्थ तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में रेखांकित अथवा काले शब्द।

नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं।[2]
नीलसरोरुह नील मणि नील नीरधर स्याम।।[3]
लाजहिं तनु सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम।।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त कंज और लोचन, कंज और मुख, कंज और कर तथा कंज और पद इन सबमें पूर्ण सादृश्य नहीं है। किन्तु फिर भी श्यामता और अरुणाई तथा गुण साम्य कान्ति और कोमलता के कारण गौणी प्रयोजनवती लक्षणा सम्भव हुई। यही बात दूसरे उदाहरण के अन्तर्गत नील कमल नीलमणि और नीले बादल के साथ भगवान राम के स्याम तनु के सम्बन्ध स्थापन के विषय में समझना चाहिए।

प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा—

जिसमें सादृश्य सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य सम्बन्ध से लक्ष्यार्थ का बोध होता हो वहाँ प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा होती है।[4] इसका भी बड़ा व्यापक रूप तुलसी की कृतियों में दिखलाई पड़ता है। जैसे निम्नलिखित पंक्तियों के अन्तर्गत आधाराधेय के सम्बन्ध से आनन्द की व्यापक प्रतीति कराने के प्रयोजन से अवध में रहने वाला के हेतु अवध नगर को ही आनन्द से उमड़ती हुई कहा गया है।

मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भांति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति।।[5]

अवध का उमगना सम्भव नहीं। अतः यहाँ पर आधाराधेय सम्बन्ध है जैसा पीछे कहा गया है। अवध निवासियों के उल्लास की व्यापकता स्पष्ट करना ही इसका प्रयोजन है। इसीलिये यहाँ पर उक्त लक्षणा हुई। इसी प्रकार तारतम्य से सम्बन्धित शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा शक्ति का प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये।

---

१ राम दहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० २१
२ विनयपत्रिका—४५
३ रा० १।१४६
४ राम दहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० २४
५ रा० १।३५९

पावक मय ससि स्रवत न आगी । मानहुँ मोहि जानि हत भागी ॥[1]

यह बात स्पष्ट है कि शशि न तो पावकमय होता है न आग बुझाना ही उसका काम है । तात्पर्य सम्बन्ध से लक्ष्यार्थ द्वारा इसमें सीता की अत्यन्त तीव्र विरह व्यथा का तथा उस विरह व्यथा को बढ़ाने वाले चन्द्रमा के प्रति सीताजी के तात्कालीन भाव विषाद का बोध होता है ।

उपादान लक्षणा—

जहाँ वाच्यार्थ की संगति के हेतु अन्य अर्थ को लक्षित किये जाने पर भी अपना अर्थ न छूटे वहाँ पर इस शक्ति का समावेश हो जाता है । इसमें वाच्यार्थ का सर्वथा परित्याग नहीं होता । अतः इसे अजहत्स्वार्था भी कहते हैं ।[2] तुलसी की रस भाषा में यदि इसका स्वरूप देखना हो तो निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये ।

अपनी भलाई भली कि तो भलाई न ता
तुलसी को सूझे भी खखाभोलोठे नाम को ॥[3]
बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को ॥[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में रेखांकित अक्षरों वाले वाक्यों में केवल वाच्यार्थ द्वारा पूर्ण अर्थ स्पष्ट न होने पर भी उसका अपना अस्तित्व बिल्कुल समाप्त नहीं हो जाता । यद्यपि वाच्यार्थ की संगति के हेतु अन्य अर्थ कल्पित होता है । इसी आधार पर छोटे बाल का ललाना बिलखना तथा चार चने को ही चार फल जानना इन वाक्यों द्वारा क्रमशः अपनी हीनता का आविष्कार तथा दारिद्र्य की चरम सीमा का बोध होता है ।

लक्षण लक्षणा—

यह लक्षणा वहाँ होती है जहाँ वाच्यार्थ की सिद्धि के हेतु वाच्यार्थ अपने को छोड़कर केवल लक्ष्यार्थ को सूचित करता है । यहाँ शब्द का अपना अर्थ बिल्कुल ही छूट जाता है इसी से इसे जहत्स्वार्था भी कहते हैं ।[5] इस लक्षणा शक्ति का उपयोग विशेष प्रतिभा वाले कवियों में ही अधिक दृष्टिगोचर होता है । तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में इसका बड़ा उत्कृष्ट रूप प्रकट हुआ है ।

तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥[6]
सुनि भैया हैरी ही करी पापी टेक सरम बड़ी

१ रा० ५ १२
२ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० २४
३ कवितावली ७ ७०
४ कवितावली ७ ७३
५ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० २५
६ कवितावली ७ ९६

सकुच बेचसी जाई ।।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में भाव हुमे पेट की आग तथा सकुच को बेच मामा ने अपना मूल अर्थ बिल्कुल ही त्याग दिया और सम्बन्ध से इनमें क्रमश भूख तथा ग्लानि रेखा का अर्थ ही ग्रहण होता है। लक्षणा शक्ति का विषय यहीं पर समाप्त करके अब हम व्यंजना शक्ति की ओर अग्रसर होते हैं।

व्यंजना—

अभिधा और लक्षणा के अपना अपना कार्य समाप्त कर चुकने पर जिस अन्य शक्ति के सहारे अभिप्रेत अर्थ का बोध होता है। उसी को काव्य शास्त्रीय भाषा में व्यंजना कहा गया है।[2] इसमें शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना यह दो प्रमुख भेद माने गये हैं। पुन शाब्दी व्यंजना के दो मुख्य भेद हैं।

१—अभिधा मूला

२—लक्षणा मूला।[3]

इनके आधार पर तुलसी की पदावली में व्यंजनात्मकता का प्रकाशन भावि किया जा सकता है।

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना—

संयोगादि के द्वारा अनेक अर्थ वाले शब्द के प्रस्तुत एक अर्थ के निश्चय हो जाने पर जो शक्ति अन्य अर्थ का बोध कराती है उसी को अभिधा मूला शाब्दी व्यंजना माना गया है।[4]

अब नीचे संयोगादि विधान की रूप रेखा उपस्थित करते हुए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनसे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना का स्वरूप स्पष्ट है क्योंकि निम्नलिखित सभी स्थलों पर संयोगादि के द्वारा अनेक अर्थवाची शब्द के प्रकरणोपयोगी एक अर्थ में नियंत्रित हो जाने पर इसी शक्ति के द्वारा अन्यार्थ का ज्ञान सम्भव हो सका है।

प्रयुक्तोपयोगी—

अन्यार्थ की व्यंजना में अनेकार्थ की शक्ति को केन्द्रित करने में

---

१ श्री कृष्ण गीतावली ८

२ विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यतेऽपर ।
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ॥
विश्वनाथ—साहित्य दर्पण—२ २४

३ अभिधा लक्षणा-मूला शब्दस्य व्यंजना द्विधा ।
विश्वनाथ-साहित्य दर्पण २ २५

४ अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियन्त्रिते ।
एकत्रार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यंजना साभिधाश्रया ॥
विश्वनाथ—साहित्य दर्पण २ २६

संयोगादि[1] जिन साधनों अथवा परिस्थितियों के द्वारा काव्य शास्त्रियों ने नियन्त्रित कर रखे हैं उनका लक्षण में तुलसी के ही प्रयोगों के आधार पर उदाहरण सहित उल्लेख किया जाता है।

१—संयोग[2]—अनेकार्थ वाचक शब्द के किसी एक ही अर्थ के साथ प्रसिद्ध सम्बन्ध का संयोग कहा है। उदाहरणार्थ —

सोई राम कामारि प्रिय अवध पति
सर्वदा दास तुलसी त्रास निधि वहित्र।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त राम शब्द के परशुराम बलराम रामचन्द्रादि कई अर्थ सम्भव होने पर भी कामारि प्रिय तथा अवधपति आदि विशेषणों के प्रयोग के कारण यहाँ पर यह एक मात्र रामचन्द्र का ही बोधक होगा।

२—वियोग—जहाँ अनेकार्थवाचक शब्द के एक अर्थ का निर्धारण किसी प्रसिद्ध वस्तु सम्बन्ध के अभाव से होता है वहाँ वियोग माना जाता है।[4] जैसे—

अति अनन्य गति इन्द्रीजीता। जा को हरि बिनु कतहुँ न चीता॥[5]

यहाँ पर हरि शब्द बन्दर सिंह सूर्य आदि अनेक अर्थ में सम्भव होते हुए भी इस स्थल पर भगवान विष्णु का ही अर्थ अभिप्रेत है। क्योंकि इन्द्रीजित सन्तों के चित्त से वियोग होना इसी अर्थ को निश्चित करता है।

(३) साहचर्य—जहाँ पर किसी सहचर की प्रसिद्ध सत्ता के सम्बन्ध से अर्थ का निर्णय हो जाय वहाँ साहचर्य होता है।[6] उदाहरणार्थ—

हरिहि हरिता विधिहि विधिता
सिवहि सिवता जो दई।
सोइ जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।[7]

यहाँ पर भी 'हरि' के उपर्युक्त कई अर्थ संभव होते हुए भी ब्रह्मा और शिव के साथ विष्णु भगवान का ही अर्थ व्यक्त होना स्वाभाविक है।

---

१ संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥
विश्वनाथ-साहित्यदर्पण २,२१ टिप्पणी में।

२ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ३४

३ विनयपत्रिका पृ०-२०

४ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ३४

५ वैराग्य संदीपिनी—२४

६ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० ३५

७ विनय पत्रिका १३५

(४) विरोध—किसी प्रसिद्ध असंगति के कारण जहाँ पर अर्थ निर्णय होता है।[1] जैसे—

कतहि सुप विलोकत जाके। जिमि गज हरि किसोर के ताके ॥[2]

यहाँ पर भी हरि के उपर्युक्त कई अर्थ होते हुए भी इस स्थल पर हरि शब्द से सिंह का बोध होता। न कि विष्णु बन्दर और सूर्य आदि का क्योंकि गज और सिंह का स्वाभाविक विरोध है और इस विरोध में ही उक्त पंक्ति का अर्थ निहित है।

(५) अर्थ—जहाँ प्रयोजन अनेकार्थ में एकार्थ का निश्चय कराता हो। वहाँ अर्थ की स्थिति समझनी चाहिये।[3] जैसे—

द्विज देव गुरु हरि सन्त बिनु संसार पार न पावई।[4]

यहाँ पर द्विज शब्द के दाँत पक्षी चन्द्रमा तथा ब्राह्मण इन कई अर्थों के संभव होते हुए भी संसार से पार पाने का प्रयोजन होने के कारण इनके अर्थ का ग्रहण क्रमशः ब्राह्मण और विष्णु के रूप में ही होगा। इस प्रकार अर्थ के द्वारा उक्त शब्दों के वास्तविक अर्थ का निर्धारण हुआ है।

(६) लिंग—नानार्थक शब्दों के किसी एक अर्थ में वर्तमान और उसके अर्थ में अवर्तमान किसी विशेष धर्म चिन्ह या लक्षण का नाम लिंग है।[5] जैसे—

बालधी बढ़न लागी ठौर ठौर दीन्हो आगि।
विंध की दवारि कैधौं कोटि सत सूर हैं ॥[6]

यहाँ पर जलाने का धर्म सूर शब्द के अथवा शब्द के अर्थ में नहीं किन्तु सूर्य के ही अर्थ में घटित होता है। इसलिये यहाँ लिंग ही सूर शब्द के अर्थ का निर्णायक हुआ।

(७) शब्द सन्निधि—अनेकार्थी शब्द के किसी एक ही अर्थ के साथ सम्बन्ध रखने वाले भिन्नार्थक शब्द की समीपता शब्द सन्निधि है।[7] उदाहरणार्थ तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं—

कीजै जो कोटि उपाय त्रिविध ताप न जाय।
कहयो जो भुज उठाइ मुनि वर कीर ॥[8]

---

१ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० ११
२ रा० १२६१
३ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० ११
४ विनय पत्रिका—१३६
५ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० ११
६ कवितावली ५१
७ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ११
८ विनयपत्रिका—११०

यहाँ पर कीर शब्द का अर्थ 'सुग्गा' रहते हुये भी निकटवर्ती मुनिवर शब्द के कारण इस स्थल पर इस शब्द से शुकदेव का ही ग्रहण होगा। इसी प्रकार निम्न लिखित पंक्ति में प्रयुक्त कीर का वास्तविक अर्थ खग शब्द के कारण सुग्गे के अर्थ का ही वाचक होगा।

सुनिय नाना पुरान मिटत नहिं अज्ञान।
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर ॥[1]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में कीर का वास्तविक अर्थ अन्य सन्निधि के द्वारा हो सका है।

(८) सामर्थ्य—इसकी स्थिति वहाँ मानी जाती है। जहाँ किसी कार्य के सम्पादन में किसी पदार्थ की शक्ति से अनेकार्थों में से एकार्थ का निश्चय हो।[2] उदाहरणार्थ—

तनु महँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं।[3]

यहाँ पर सर शब्द का अर्थ तालाब न होकर बाण ही होगा। क्योंकि उसी में यह सामर्थ्य है कि शरीर के आर पार हो सकें।

(९) औचित्य—इसकी स्थिति ऐसे स्थलों पर होती है जहाँ किसी पदार्थ की योग्यता के कारण अनेकार्थों में एकार्थ का निर्णय हो।[4] उदाहरणार्थ—

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।[5]

यहाँ पर समर युद्ध में करनी करने के औचित्य से 'सूर का' अर्थ वीर ही होगा न कि अन्धा या सूर्य।

(१०) देश—जहाँ किसी स्थान की विशेषता का अनेकार्थ शब्द के एक अर्थ से निश्चय हो वहाँ देश होता है।[6] जैसे—

चार पदारथ में सबे नरक द्वार हू काम।[7]

यहाँ पर 'काम' के अर्थ षड्विकारान्तर्गत काम विकार, सम्भोग क्रिया से सम्बन्धित कार्य विशेष और कोई भी साधारण कार्य होने पर भी 'नरक द्वार' के निर्देश से इस स्थल पर इस शब्द से 'षड्विकारान्तर्गत काम विकार' का ही अर्थ ग्रहण होगा। इस प्रकार देश के आधार पर काम शब्द के अर्थ का निश्चय हुआ।

---

१ विनयपत्रिका १२७
२ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० १६
३ रा० ६,६६
४ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० १६
५ रा० १ २७४
६ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० १६
७ दोहावली १६६

(११) काल—समय के कारण जहाँ पर अनेकार्थ में से एकार्थ का निश्चय होता है वहाँ पर काल का ग्रहण होता है।[1] उदाहरणार्थ—

सब ऋतु सुखप्रद सो पुरी पावस अति कमनाय।
बक राजि राजत गगन हरिधनु तड़ित दिसि दिसि सोहहीं ॥[2]

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'गीतावली' में पावस ऋतु वर्णन में से ली गई हैं। पावस ऋतु के प्रसंग के कारण यहाँ पर 'हरिधनु' शब्द इन्द्र धनुष का ही बोधक होगा यद्यपि हरि शब्द के विष्णु बन्दर आदि के कई अर्थ होने से हरिधनु के भी कई अर्थ संभव हो सकते हैं।

(१२) व्यक्ति—इसकी व्यक्ति वहाँ पर मानते हैं जहाँ व्यक्ति से अर्थात् पुल्लिंग आदि से अनेकार्थ में से एक एक अर्थ का निश्चय होता है।[3] उदाहरणार्थ—

सरजू बर तीरहि तीर फिरें रघुबीर सखा अरु बीर सबै।[4]
बीर बीर सिय राम लखन बिनु लागत जग अँधियारो।[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में बीर शब्द का अर्थ पुल्लिंग के कारण भाई ही होगा यद्यपि इसके अन्य अर्थ योद्धा सखा आदि भी होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति से यहाँ पर बीर शब्द के अर्थ का निर्णय हुआ।

ऊपर संयोगादि विधान की रूप रेखा उपस्थित करते हुए जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इन सभी के अन्तर्गत अभिधामूला शाब्दी व्यंजना का स्वरूप स्पष्ट है। क्योंकि सभी स्थलों पर संयोगादि के द्वारा अनेकार्थ वाची शब्द के प्रकरणोपयोगी एक अर्थ के नियंत्रित हो जाने पर इसी शक्ति के द्वारा अन्यार्थ का ज्ञान संभव हो सका है।

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना—

जिस प्रयोजन के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है वह प्रयोजन जिस शक्ति द्वारा प्रतीत होता है उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं।[6] इस शब्द शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए—

कालिह ही तरुन तन कालिह ही धरनि धन
कालिह जितौंगा रन कहत कुचालि है।

---

१ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ३६
२ गीतावली ७ १६
३ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण— पृ० ३७
४ कवितावली—१ ७
५. गीतावली २ ६६
६ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ३७

> कालिहु ही साथी को काज कालिहु ही राज समाज
> मसक है कहूँ भार मेरे मेरु हालि है ॥[१]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'मसक है कहूँ भार मेरे मेरु हालि है' इन शब्दों में पर्याप्त बल सामर्थ्य एवं उपकरण के ही प्रश्नों के द्वारा एक दुष्कर कार्य की असंभावना सूचित है। जिसका पता वक्तृ वाच्य अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना द्वारा ही चलता है।

आर्थी व्यंजना—

यह वह शब्द शक्ति है जो वक्ता बोधव्य वाक्य अन्यसन्निधि वाच्य प्रस्ताव प्रकरण देश काल काकु (कंठ ध्वनि) चेष्टा आदि की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ प्रतीति कराती है। इस व्यंजना में व्यंग्यार्थ किसी शब्द विशेष पर नहीं वरन् अर्थ पर अवलम्बित रहता है।

शाब्दी व्यंजना की ही भाँति इसके भेद भी उक्त विशेषताओं के आधार पर बहुत से होते हैं जैसे वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा बोधव्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा वाक्य वैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा काकुवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा और चेष्टावैशिष्ट्यो त्पन्न वाच्य संभवा इत्यादि।[२] सभी भेदों के विस्तार में न जाकर हम कुछ ही भेदों के प्रकरण में तुलसी की भाषा में आर्थी व्यंजना के उत्कर्ष का अध्ययन करेंगे।

वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न वाच्यसंभवा—

कवि या कवि-कल्पित व्यक्ति के कथन की विशेषता के कारण ही जो व्यंग्यार्थ प्रतीत होता है वह वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न होता है।[४] जैसा तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में है—

> जेहि वाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
> स्वास समीर भेंट भई भोरेहु तेहि मग पगु न धर्यो तिहुँ पौन ॥[५]

यहाँ पर कवि कल्पित वक्ता गीतावली में हनुमान जी, विरहिणी सीता की दशा उनके वियतम भगवान श्रीराम से इस प्रकार निवेदन करते हैं कि वे जिस वाटिका में रहती हैं वहाँ से खग मृग भागकर अपने पुराने स्थानों को चले गये और श्वास की समीर से भेंट होने के कारण प्रातः काल के भी त्रिविध वायु उस राह पर पैर नहीं रखता। यहाँ पर वक्ता हनुमान द्वारा सीता की विरहावस्था के विशिष्ट ढंग के वर्णन में राम की तत्सम्बन्ध निश्चिन्तता के प्रति व्यंग्य है। और

---

१ कवितावली—७ १०
२ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ ३७
३ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ३८
४ गीतावली—५ २
५ गीतावली ५ २०

व्यंग्यार्थ द्वारा ही सम्भव हुआ है। अतः इसमें वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना का स्वरूप स्पष्ट है।

वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्नलक्ष्यसम्भवा—

जहाँ लक्ष्यार्थ से व्यंजना हो वहाँ यह भेद होता है।[1] तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में इसका अच्छा उदाहरण मिलता है —

ससि तें सीतल मोको लागै माई री तरनि।
याके उए बरति अधिक अंग अंग दव।
वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि॥[2]

कोई कृष्ण-विरहिणी गोपिका कहती है कि उस चन्द्रमा से अधिक शीतल सूर्य लगता है क्योंकि चन्द्रमा के उदय होने पर उसके अंग-अंग में विरह की दावाग्नि जलने लगती है और सूर्य के उदय होने पर रात्रि में उत्पन्न जलन मिट जाती है।

यहाँ पर चन्द्रमा से जलन तथा सूर्य से शीतलता मिलने की क्रिया में वाच्यार्थ का बोध है। बोध होने पर लक्षणा द्वारा अर्थ यह निकलता है कि विरहिणी नायिका को चन्द्र दर्शन असह्य है। व्यंग्यार्थ यह निकला कि विरहिणी अपने विरह ताप की उद्दीपक वस्तुओं से अत्यन्त पीड़ित है। वक्तृवैशिष्ट्य यहाँ इसीलिए मान्य है कि वक्ता गोपिका के वैशिष्ट्य से ही वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ द्वारा क्रमशः इस व्यंग्यार्थ की प्रतीति हुई।

वाक्य वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा—

जहाँ पर सम्पूर्ण वाक्य की विशेषता से व्यंग्यार्थ प्रकट होता है वहाँ यह भेद होता है।[3] इसका रूप तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार।[4]

उक्त पंक्तियाँ राम चरित मानस के अन्तर्गत नारद मोह प्रसंग से उद्धृत हैं। विश्वमोहिनी नामक राजकन्या पर मुग्ध होकर उसके द्वारा वरण किये जाने की लालसा से नारद भगवान विष्णु से उन्हीं का रूप माँगते हैं। जिसके उत्तर में भग-वान कहते हैं—हमारा यह नितान्त सत्य वचन है कि मैं वही करूँगा जिससे तुम्हारा परम हित सम्भव हो। नारद इससे समझते हैं कि उनका अभिप्राय सिद्ध हो गया। किन्तु यहाँ पर वाच्यार्थ द्वारा बोधित यह व्यंग्यार्थ स्पष्ट है कि वस्तुतः भगवान के इस वचन का तात्पर्य यह है कि वे नारद की आध्यात्मिक साधना में विघ्न रूप इस

---

१ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण—पृ० ३८
२ श्री कृष्ण गीतावली ३०
३ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ४०
४ रा० १,११२

वासना की पूर्ति के हेतु भगवान का रूप न देंगे। और इस प्रकार नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से उनका परम हित साधित करेंगे, यह परम हित नहीं जो उस समय नारद के मन में घूम रहा था। इस प्रकार यहाँ एक पूरे लक्ष्य वाक्य के वैशिष्ट्य के कारण वाक्य वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना सिद्ध होती है।

काकुवैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा—

कण्ठ ध्वनि की भिन्नता से अर्थात् धम के द्वारा विशेष प्रकार से निकाली हुई ध्वनि को काकु कहते हैं। काकु की विशेषता के कारण जहाँ व्यंग्यार्थ प्रकट हो वहाँ यह व्यंजना शक्ति होती है।[1] उदाहरणार्थ तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ :—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुमहि उचित तप मो कहँ भोगू॥[2]

यहाँ पर राम के प्रति सीता के कथन में 'मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू' तथा तुमहि उचित तप मो कहँ भोगू। इन वाक्यों का विशेष कण्ठ ध्वनि से उच्चारण करने पर ही क्रमशः यह वाच्यार्थ होगा कि मैं केवल सुकुमार नहीं हूँ आप भी सुकुमार हैं। आप वन के योग्य हैं तो मैं भी वन के ही योग्य हूँ। तुम्हारे लिए तप उचित है तो मेरे लिए भी। मेरे लिये यदि भोग का अवसर है तो वह तुम्हारे साथ रह कर ही। फलतः इस प्रकार काकु द्वारा वाच्यार्थ करने पर ही सीता जी के उक्त कथन का यह व्यंग्यार्थ स्पष्ट होगा कि मेरा सर्वथा आप के साथ वन जाना ही उचित है। इसलिए काकु के वैशिष्ट्य से वाच्यार्थ द्वारा सम्भव व्यंग्यार्थ होने के कारण यहाँ पर काकु वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना स्पष्ट है।

चेष्टा वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा—

जहाँ चेष्टा अर्थात् इंगित हाव-भाव आदि द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध होता है। वहाँ यह आर्थी व्यंजना होती है।[3] उदाहरण के लिए तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ —

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जान भली।
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसकाइ चली॥[4]

इन पंक्तियों में वन जाने के मार्ग में जाते हुए राम के रूप लावण्य पर मुग्ध ग्राम कामिनियाँ सीता जी से पूछती हैं कि साँवरे से राम आपके कौन हैं। उनके इस प्रकार पूछने पर सीता जी नैन तिरछे करके उन्हें संकेत द्वारा कुछ समझाकर मुसकरा उठीं। उनकी इस विशिष्ट चेष्टा द्वारा इस बात की व्यंजना की गई है कि राम उनके पति हैं। यह व्यंग्यार्थ चेष्टा के वैशिष्ट्य पर निर्भर है। अतः यहाँ चेष्टा वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना है।

---

१ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ४२
२ रामायण २ ६७
३ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० ४२
४ कवितावली २,१२

शब्द शक्तियों के आधार पर तुलसी की भाषा शक्ति का उपर्युक्त विवेचन एवं विश्लेषण इतना तो सिद्ध कर देने के हेतु पर्याप्त ही है कि उनकी दृष्टि भले ही इस ओर से इसकी ओर चाहे रही हो अथवा न रही हो। किन्तु इस क्षेत्र में भी उनकी पहुँच असाधारण ही कही जा सकती है। और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वे शब्द और अर्थ के विविध बोध व्यापारों के विषय में अधिकारपूर्ण ज्ञान रखते हैं।

तुलसी की रचनाओं में विभिन्न भाषाओं के शब्द प्रयोग

गोस्वामी जी की रचनाओं में निम्नलिखित भाषाओं की शब्दावली पाई जाती है।

अवधी—

तुलसीदास का सबसे बड़ा और प्रभावशाली काव्य मानस है। मानस की भाषा मुख्यतः अवधी है। अवधी को ही उन्होंने इसके हेतु क्या चुना इसका कारण यही हो सकता है कि अवधी उस प्रान्त की बोली है जिसमें उनके आराध्य देव मर्यादा पुरुषोत्तम ने अवतार लिया था। उस पर उनका सहज अनुराग होना बड़ा स्वाभाविक था। तुलसी का अवधी और ब्रज भाषा दोनों पर ही समान अधिकार था। फिर भी अवधी का ही मानस के हेतु उन्होंने क्यों आवश्यक समझा। अवधी गोस्वामी जी की निज की भाषा थी। इसलिए उन्होंने इसी ही मानस की कथा का माध्यम बनाया। तुलसी ही नहीं राम की नगरी की भाषा में रचि होना प्रत्येक राम भक्त कवि के लिये स्वाभाविक है। इस कारण गोस्वामी जी ने ब्रज भाषा को छोड़ अवधी को प्रमुखता दी।

उस समय काव्य की प्रचलित भाषा ब्रज भाषा थी। मध्य युग के वैष्णव भक्तों ने इसी को अपनाया था। सूर और सूर सागर के पद इसी भाषा में रचे थे। गोस्वामी जी ने भी पहले इसी में फुटकर रचना करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कवितावली गीतावली और विनयपत्रिका का अधिक अंश इसी भाषा में लिखा। परन्तु ब्रजभाषा फुटकर छन्दों के ही हेतु उपयुक्त था। उसमें अभी तक कोई भी प्रबंध काव्य नहीं लिखा गया। अतएव वे राम चरित को प्रबन्ध रूप में लिखने बैठे। तब उन्हें दूसरी भाषा ढूंढने की आवश्यकता हुई। जब हम देखते हैं कि आगे चलकर जिन लोगों ने ब्रज भाषा में प्रबन्ध काव्य लिखने का प्रयत्न किया वे सब असफल रहे। तब हम गोस्वामी जी के ब्रज भाषा में प्रबन्ध न लिखने का औचित्य जान पड़ता है। अवधी की ओर गोस्वामी जी की रुचि का एक कारण यह भी था कि गोस्वामी जी के पहले प्रबन्ध आख्यान काव्य अवधी में लिखे जा चुके थे। अतः गोस्वामी जी ने अवधी भाषा का अपने ढंग से प्रयोग किया। तुलसी के बाद और किसी का भी अवधी काव्य इतना सुन्दर नहीं हुआ।

अवधी बोली की दृष्टि से तुलसी की भाषा पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके द्वारा व्यवहृत सभी बोलियों में इसका प्रभाव सबसे अधिक है।

अस्तु । अवधी की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर तुलसी की रचनावली में उपलब्ध अवधी प्रयोगों की उदाहरण सहित विवेचना नीचे की जा रही है ।

अवधी में संज्ञा के ह्रस्व अकारान्त रूपों का बाहुल्य पाया जाता है । उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियों में गंगा के लिये गंग माला के लिये माल तथा पताका के लिये पताक —

मग सकल मुद मंगल मूला ।[1]
सीस गंग गिरिजा अर्धंग भूषण भुजंग बर ।[2]
मुंड माल बिधु बाल भाल डमरू कपाल कर ।[3]
लसत ललित कर कमल माल पहिरावत
कामफन्द जनु चन्दहि बनज फँदावत ।।[4]
चमर पताक बितान तोरन कलस दीपावलि बनी ।।[5]

अवधी में विकारी बहु वचन रूपों का निर्माण एक वचन रूपों में न्ह प्रत्यय का योग करके बनता है । जो तुलसी की रचनाओं में प्रचुरता से दिखलाई देता है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में व्याकुल मारिन्ह कुचलिन्ह बोलिन्ह बंदिन्ह इत्यादि —

राम रूप अरु सिय छबि देखें । नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें ।।[6]
फूल फूल फूल, ललितोतम कुसुलिन्ह भरि भरि भार भये ।।[7]
मागध सूती भीर भइ बोलिन्ह बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बये ।।[8]

केवल न प्रत्यय के योग से भी अवधी में बहु वचन रूप बनाये जाते हैं । क्योंकि यही प्रवृत्ति ब्रज भाषा के विकारी रूपों में भी बहुलता से मिलती है । इस लिये ऐसे रूपों का ब्रजभाषा के प्रयोगों में ही दिखलाना उचित एवं संगत है । अवधी के न्ह प्रत्यय से युक्त रूपों को विशेष महत्व इसलिये दिया गया है कि वे इस बोली के अपने विशेष हैं, जो ब्रज भाषा में नहीं मिलते ।

अवधी में बहुत-सी संज्ञाओं व विशेषणों के अकारांत रूपों को उकारांत रूप में प्रयोग करने की परम्परा पाई जाती है । इस प्रवृत्ति के दर्शन तुलसी की भी अवधी

---

१ रा० १.८७
२ विनयपत्रिका १४९
३ विनयपत्रिका १४९
४ जानकी मंगल १२२
५. गीतावली १.१
६ रा० १.२४८
७ गीतावली १.३
८. गीतावली १.३

बहुल रचनाओं में बराबर ही मिलते हैं। जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में रेखांकित शब्द।

नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु।[1]
देखि राम छबि अतुलित उर उमगत अनुरागु।[2]
अवधि राम चलेउ सो हृदुं बिरहु अति दागु।[3]

सर्वनामों के अन्तर्गत अवधी के सम्बन्ध कारक रूप कुछ विशेष प्रकार के मिलते हैं जिनमें यहाँ पर तोर मोर हमार तुम्हार ताकर, जाकर केहिकर, आदि का उल्लेख किया जा सकता है। तुलसी की भाषा में इनका भी पर्याप्त प्रयोग अवधी के प्रभाव का द्योतक है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

बिषय बिमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ।[4]
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिस्वासा।[5]
राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान मय सुरतरु तुलसी तोर॥[6]
प्रनतपाल प्रन तोर मोर प्रन जियउँ कमल पद देख।[7]
गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति।
नाथ माहि बालकन्ह सहित पुर परिजन।
राखन हार तुम्हार अनुग्रह घर बन॥[9]
ताकर सुत अगस्त जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥[10]
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥[11]
गामु करब केहिकर धनु पाई॥[12]

भूतकालिक सहायक क्रिया के रूपों में वचन लिंग तथा पुरुष के कारण

---

१ गीतावली ७ २१
२ गीतावली ७ २१
३ रा० ७४
४ जानकी मंगल ४
५ रा० ७४१
६ दोहावली १
७ विनयपत्रिका १११
८ पार्वती मंगल ९०
९ पार्वती मंगल ९८
१० रा० ४ २१
११ रा० १ ११३
१२ रा० २ १४

विभिन्नता होना भी तुलसी की भाषा में अवधी व्याकरण तथा बोलचाल में प्रचलित सामान्य नियमों के प्रभाव के ही कारण माना है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त भा में भइ भई और भये, आदि —

अपनी समुझि साधु सुचि को भा।[1]

भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।[2]

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी ॥[3]

पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।[4]

तेहि के भये जुगल सुत बीरा।[5]

क्रिया के सामान्य वर्तमान काल में केवल मूल धातु के व्यवहार की प्रवृत्ति भी अवधी की एक प्रमुख विशेषता है। जिसके उदाहरण तुलसी की शब्दावली में भी बहुत से मिल जाते हैं। जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त जान और कह आदि—

जान आदि कवि तुलसी नाम प्रभाउ।[6]

कुअँरि जानि सिसु काल छाँड़ि भई सोहई।
रूप न जाइ बखानि जान जोइ जोहई॥[7]

कोउ कह संकर चाप कठोरा ॥[8]

तुलसी की रचनाओं के अन्तर्गत बहुत से ऐसे शब्दों मुहावरों एवं कहावतों का ठेठ रूप में भी व्यवहार हुआ है जो अवधी के क्षेत्र में विशेष रूप से प्रचलित रहे हैं और उनकी बोलचाल का अपना विशिष्ट महत्व है, क्योंकि इनके बिना तुलसी की भाषा को जनता में इतनी लोक प्रियता प्रदान करने में अवधी की ठेठ शब्दावली ने जो बहुमूल्य सहायता प्रदान की है और जिसके फलस्वरूप ही वह तुलसी द्वारा व्यवहृत अन्य सारी भाषाओं एवं बोलियों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है इसका सही करण न हो सकता। परन्तु, हम संक्षेप में तुलसी की रचनाओं में बिखरे हुए इन शब्दों से कतिपय चुने हुए शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

(१) ब्यात—बालक बृन्दन बू के ब्यात हौ पिनाक तोरयो।
मंडलीक मंडली प्रताप दाप दासि दो ॥[9]

---

१ रा० २।२११
२ रा० १।२६
३ रा० २।११७
४ रा० १।१११
५ रा० १।१५३
६ बरवै २५
७ पार्वती मंगल ११
८ रा० १।२२१
९ रा० १।२१४

(२) समराई—देखि मनुप एक समराई।[1]

(३) मांडव— जो विवाह के समय छाया जाता है।

सुनि सम बोलि महत्व नृप मांडव छावन।
गावहिं गीत के मांडव मनि गन पुरन हीं ॥[2]

(४) मुह बाहर—उमगि चलेउ आनन्द भुवन भुई बाहर।[3]

इस प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में प्रमुखतया अवधी भाषा पूर्ण रूप से व्यवहृत हुई है। और मानस तो उनका अवधी में ही लिखा महाकाव्य है।

अरबी फारसी शब्द समूह—

तुलसीदास जी ने अपनी रचनाओं में इतने अधिक अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है जितना शायद किसी हिन्दी के पुराने कवि ने न किया होगा। तुलसी-दास जैसे हिन्दू संस्कृति के प्रबल समर्थक और धार्मिक कवि के लिये यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

मेरा अनुमान ही नहीं दृढ़ विश्वास भी है कि तुलसीदास अपने समय की राज भाषा से भी परिचित थे। और यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविता में स्वच्छन्दता पूर्वक राजभाषा के शब्दों का व्यवहार किया है। उन्होंने जो यह लिखा है।

पूनाह पाद न देहु, अन्धि तुरा परहिं मलद।

यह तो शेख सादी की इन पंक्तियों का अक्षरशः अनुवाद ही है।

पस अज सी साले बिरसी बारस
हनोज अज चाक दिल दर न मुदे।

राजभाषा का प्रभाव तुलसीदास ही पर पड़ा हो यह बात नहीं है। संस्कृत कवि भी उससे अछूते नहीं बचे। लालित्यराज ने वैराग्यशतक में सुल्तान और बादशाह शब्दों को बड़े गर्व के साथ ग्रहण किया है।

दुग्धमहार्णवमानुसोमप्रकाशावर्षपदर्शितमाया स्वम्परीपुपपाल ।
एवमपि परमशेषु वस्य वैराग्यशते वर्णितुम सुलतानो सालसोलिमराज ।
सम्प्रदुम्भोपगिरिमुखोवो विपयवासिमस्त शरीर
मुहिन्दिर्य संयमपु प्रशान्तस्तोलिम्मराज वरिवादशाह ।

तुलसीदास ने अपनी कविता में अरबी फारसी के शब्दों का यथास्थान प्रयोग किया है। यह भी उनके परिचय प्रान्त निवासी होने के कारण माना जा सकता है। सोरों और उसके आस-पास के जिला में मुसलमानों की बस्तियां बहुत हैं। इसी से अरबी फारसी के जितने शब्द इनमें मिलते हैं उतने पूरी हिन्दी में नहीं। जैसे

गरीब सांप निवाजन ही पर बीजन आप भये है।

—गीतावली

---

१ जानकी मंगल १२७
२ रामलला नहछू ३
३ जानकी मंगल २१०

सीपर फारसी का सिपर है जिसका अर्थ है ढाल। यह तो स्पष्ट ही है कि पर (हृदय पर) का अनुप्रास मिलाने के लिए ही सीपर आया है। पर आया है जितनी आसानी से यह ध्यान देने की बात है। तुलसीदास न म्लेच्छों के हिमायती थे न म्लेच्छ भाषा के प्रेमी। यदि सिपर शब्द उनकी बोलचाल में आमतौर से प्रचलित न होता तो फारसी कोश में से निकाल कर वे इस शब्द को राम के साथ प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते। कुछ एक शब्द और लीजिए।

> भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।
> मैं विभीषन की कछु न सबील की॥
>
> —कवितावली

दिल (दील) और सबील शब्दों को देखिये किस स्वाभाविक प्रवाह में बह दिये गए हैं। राम के मुख से तुलसीदास जैसे वैष्णव साधु का यह कहलाना कि मैंने विभीषण की कुछ सबील (प्रबन्ध) नहीं की साधारण महत्व नहीं रखता। यदि सबील और दिल उनकी रोजमर्रा की बोलचाल के शब्द न होते तो मेरा विश्वास है वे कम से कम राम के मुख में तो इन्हें न आने देते।

रामचरित मानस में तो अरबी फारसी शब्दों का एक तांता-सा लगा हुआ है। इस प्रकार अरबी फारसी आदि विदेशी भाषाओं के प्रयोगों के महत्व एवं उनकी परिस्थिति-जन्य उपयोगिता पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेने के पश्चात् अब हम तुलसी की रचनाओं से कतिपय उदाहरण उद्धृत करते हुए इन प्रयोगों का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

ये स्थल वहाँ पर केवल पर्याप्त प्रचलित शब्द आए हैं जो आज तक हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र की जनता की बोलचाल में व्यापक रूप से व्यवहृत होते रहे हैं। ऐसे आधुनिक कवि और लेखक भी जिनका ध्यान भाषा के किसी विशेष रूप को स्थिर रखने पर नहीं रहता अपनी अपनी रचनाओं में बराबर स्थान देते रहते हैं। इनमें कवि की दृष्टि प्रायः जनता पर अपना भाषा का रूप लादने पर नहीं वरन् जनता की भाषा के अधिकाधिक निकट पहुँचने की प्रवृत्ति से प्रभावित रहती है। इस विषय में उनका ध्यान इन प्रयोगों के पीछे देखी जाने वाली संकुचित जातीयता की मनोवृत्ति पर बिल्कुल नहीं रहता।

ऐसी शब्दावली का व्यवहार तुलसी के सभी महत्वपूर्ण ग्रंथों, रामचरित मानस विनयपत्रिका गीतावली और कवितावली आदि के अन्तर्गत प्रचुर मात्रा में हुआ है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त गरूर, गुमान गनी, गरीब साहेब, रहम गरीब निवाज गरीबी समय और दर्जा इत्यादि, जो केवल ध्वनि की दृष्टि से [illegible] परिवर्तित कर दिए गए हैं और गुरूर गनी गरीब इत्यादि के ही रूपान्तर हैं।

गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ।[1]
गनी गरीब ग्राम नर नागर ।
साहेब समर्थ दसरथ के दयालु देव दूसरो ।

न तों लों तुही आपने की लाज को ॥[2]

राम के विरोधे बुरो विधि हरि हर हू को
सब को भलो है राजा राम के रहम ही ।[3]

आप गरीब निवाज है मैं गही गरीबी ।[4]

राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भए रावरे हू सतानंद पूत भए माय है ।[5]

सांति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है ।[6]

ये स्थल जहाँ पर अरबी, फारसी शब्दों को हिन्दी भाषा के व्याकरण के साँचे में ढालने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है । यहाँ पर तत्सम रूपों के बहिष्कार तथा उनके देशी संस्कार की ओर कवि की प्रबल प्रवृत्ति जान पड़ती है । भाषा विज्ञान के अन्तर्गत साम्य भाषा विकास के सिद्धान्तों की दृष्टि से ऐसी प्रवृत्ति भी बहुधा दो रूपों में मिलती है ।

(अ) एक तो ऐसे रूप हैं जिनमें केवल ध्वनियों और मात्राओं में ही इस उद्देश्य से साधारण परिवर्तन किए गए हैं कि उनको अपनी भाषा की ध्वनियों व मात्राओं के मेल में रख लिया जाय । जैसे—

गई बहोर गरीब नेवाजू सरल सबल साहिब रघुराजू ॥[7]

मारुति सांग बिभीषन हो पर सोवर आपु भये हैं ।[8]

बैरख बांह बसाइये पै तुलसी-घर ब्याध अजामिल खेरे ॥[9]

स्वारथ धाम परमारथ को कहा जसो
पेट की कठिन जग जीव को जवार है ॥[1]

---

१ कवितावली १,२०
२ रा० १ २८
३ कवितावली ७ ११
४ कवितावली ६ ८
५ विनयपत्रिका १४८
६ गीतावली ६ १५
७ रा० १ ११
८ गीतावली ६ ५
९ कवितावली ७ ६२
१ कवितावली ७ ६७

सुत गुरु सचिव निपुन नेवाजि
अवरेब न समुझि सुधारी है।[१]
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो
लैबे को एकु न दैबे को दोऊ।[२]

(आ) दूसरे कुछ ऐसे रूप भी हैं जिनमें इन विदेशी भाषाओं के शब्दों में अपनी भाषा के व्याकरणिक नियमों के आधार पर प्रत्यय और उपसर्ग आदि के सहारे नए शब्द-रूपों का निर्माण किया गया है, और इस प्रकार उनका देशी संस्कार ही नहीं वरन् एक प्रकार से देशी रूपांतर तक कर लिया गया है। इस क्रिया में बड़ी सावधानी और कौशल की अपेक्षा होती है और बहुत कम कवि ऐसे परिवर्तनों को स्वाभाविक एवं लोकप्रिय बनाने में समर्थ हो पाते हैं परन्तु तुलसी की शब्दावली में इन दोनों प्रकार के रूपों की योजना बड़े ही कलात्मक ढंग से की गई है। जैसे—

कहो धू क्यों न करौ कुपरी जो करी नट नागर हेरि हुमाकी।[३]

करुनाकर की करुना करुना हित नाम सुहेत जो बेद बजाई॥[४]

यहि दरबार में है गरब ते सुख हानि
लाभ राम प्रेम की गरीबी निवाजिता॥[५]

सुर स्वारथी अनीस अलायक निठुर दया चित नाहीं।[६]

राम गरीब नेवाजे।[७]
टूटयो सो न जुरैगो सरासन महेस जू को
रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही।[८]

इसमें आये हुए शब्द रूपों के अन्तर्गत हुमक से हुमाकी तथा से बजाई निवाज से निवाजिता नायक से अलायक नेवाज से नेवाजे (क्रिया) तथा सरीक से सरीकता इत्यादि शब्दों के निर्माण में क्रमशः ई० आ ता प्रत्ययों और अ उपसर्ग का प्रयोग विशेष कलात्मक ढङ्ग से हुआ है।

वे स्थल जहाँ पर ऐसे अप्रचलित अथवा कम प्रचलित अरबी फारसी तथा तुर्की आदि शब्दों के प्रयोग हुए हैं। जो आज दुरूह कवि द्वारा अपनी भाषा में लाये जान पड़ते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त सबील पश्म, तसक-

१ मा० ७ ६७
२ गीतावली १ ६८
३ कवितावली ७ ६१४
४ कवितावली ७ ६१
५ विनयपत्रिका २६२
६ विनयपत्रिका १४२
७ मा० १ २५
८ कवितावली १,११

हुलक कहुरो बहरी गिरमानी और हबूब इत्यादि का व्यवहार जिनमें [illegible] के साथ कुछ विदेशी शब्दों का प्रभाव स्पष्ट है।

> भाई को न मोह छोह सीय को न तुलसीस कहै मैं विभीषन
> को कछु न सबील की।
>
> पाल भूप मारन बोलाए न कहत काम
> पुलक सरीर सेवा करन कहूम सो।[1]
>
> जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूर कीन्हे,
> पैयत न छत्री खोज खोजत खलक में।[3]
>
> माहिषमती को नाथ साहसी सहस बाहु
> समर समर्थ नाथ हेरिए हलक में।[4]
>
> लंक से बंक महा गढ़ दुर्गम ढाहिबे को कहुरी है।[5]
>
> तीछन तोम तमीचर सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है।[6]
>
> जम बायस मेघद न कीन्ह उस रोष बड़ा गिरमानी।[7]
>
> साधु जानै महासाधु खल जानै महाखल
> बानी झूँठी साँची कोटि उठत हबूब है।[8]

गोस्वामी जी ने संस्कृत शब्दों की पंक्ति में फारसी शब्द का बड़ी सुन्दरता से न्यास किया है।

> भानु मन्न का भव भय बाज ।[9]

उपर्युक्त संस्कृत छन्द में रचित स्तुति के अन्तर्गत बाज जैसे विदेशी शब्द का संस्कृत अथवा विभक्ति के अनुसार पुल्लिंग एक वचन संज्ञा की भाँति व्यवहृत हुआ है। यहाँ इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि उपर्युक्त प्रयोग में मृगराज के जोड़ में केवल मात्रा पूर्ति के हेतु बाज का व्यवहार किया गया है न कि अज्ञानवश उसे संस्कृत का शब्द समझकर अकारान्त पुल्लिंग एक वचन के रूप में रक्खा गया है। अवश्य ही संस्कृत छन्द पंक्ति में इस शब्द का प्रयोग एक कौतूहल की सृष्टि करता

---

१ कवितावली ६ २२
२ कवितावली ६ ८
३ कवितावली ६ २५
४ कवितावली ६ २५
५ कवितावली ६ २६
६ कवितावली ६ २६
७ विनयपत्रिका १२७
८ कवितावली ७ १०८
९ मा० ३ ११

संभव है कवि ने स्वयं जान बूझकर बाज शब्द का इस प्रकार प्रयोग कर कौतूहल का अवसर दिया हो।

भोजपुरी—

भोजपुरी भाषी युक्त प्रान्त में जौनपुर, गाजीपुर, बलिया गोरखपुर, बस्ती आजमगढ़, बनारस और मिर्जापुर बिहार में शाहाबाद और छोटा नागपुर तक फैली हुई है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग करोड़ है। भोजपुरी में कोई उल्लेखनीय साहित्य नहीं है। हाँ इस बोली के ग्राम गीत बहुत ही सरस और हृदय स्पर्शी होते हैं।[1]

मानस के पूर्व रचित गोस्वामी जी के काव्य में भोजपुरी शब्द शायद ही कहीं देखने को मिलें। क्योंकि उनकी रचना के समय तक तुलसीदास का आवागमन भोजपुरी प्रान्त में प्रायः नहीं रहा था। गृह त्याग के बाद जब वह काशी में रहने लगे और जनकपुर आदि की यात्राओं में गए तब भोजपुरी के कुछ शब्द उनकी पकड़ में आये। और उन्होंने उनसे काम भी लिया। परन्तु बहुत कम भोजपुरी शब्दों को उन्होंने अपनाया।

जहाँ तक व्याकरण तथा शब्द क्रम की ठेठ प्रवाह परम्परा का सम्बन्ध है भोजपुरी अवधी से बहुत अंशों में मिलती-जुलती है। भोजपुरी के प्रमुख भेदक लक्षण यह है—

१—इसके क्रिया रूपों में लकार का बाहुल्य।

२—इसके अन्तर्गत आदरार्थ मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम के रूप में रावर रावरो रावरे आदि रूपों का व्यवहार होता है।

३—स्थान वाचक क्रियाविशेषणों के रूप में जहवाँ तहवाँ, जैसे रूपों का प्रयोग।[1] अब इन्हीं भोजपुरी के भेदक लक्षणों के आधार पर हम गोस्वामी जी की शब्दावली में व्यवहृत भोजपुरी की शब्दावली पर नीचे संक्षेप में विचार कर रहे हैं।

गोस्वामी जी की रचनाओं में जहवाँ तहवाँ का व्यवहार स्थान वाचक क्रिया विशेषण के रूप में भोजपुरी के ही प्रभाव का द्योतक है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में —

करि छोह कर मनहु पुनि रहेवा।
सब सपोक सीता पह कहेवा।।[3]

---

१ राम नरेश त्रिपाठी—तुलसी और उनकी कविता—तुलसी की भाषा शीर्षक—पृ० ३००

२. डा० देवकी नन्दन श्रीवास्तव—तुलसीदास की भाषा—पृ० २१६

३ रा० ५,८

निम्नलिखित पंक्तियों में खोइ तथा खोई जिसका अर्थ आधुनिक खड़ी बोली में प्रचलित खोना है का व्यवहार भी स्पष्टतः भोजपुरी का है। इसका प्रयोग आज भी कहीं-कहीं खोने के रूप में देखा जाता है।

देव हेत सब सरनि कां सबरस मानस मोह ।
तुलसी जो पानी भया बहुरि न पावक होइ ।[1]

तुलसी तहि समान नहि कोई । हम नीके देखा सब टोई ॥[2]

इसी प्रकार सूतहि या सोते है के अर्थ में व्यवहार भी भोजपुरी के प्रभाव का सूचक है। सोने के अर्थ में सूतना धातु का प्रयोग आज भी इस सीमा के अंचल में दिखाई पड़ता है। जैसे क्रिया रूपों में सूतत आदि —

जेहि निसि सकल जीव सूतहि तव
कृपापात्र जन जाग ।[3]

आदरार्थ—मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम रूप रावर रावरे, आदि रूपों का व्यवहार भी गोस्वामी जी की रचनावली पर भोजपुरी प्रभाव का द्योतक है। जैसे —

जो रावर आयसु मैं पावौं । नगर देखाइ तुरत लै आवौं ॥[4]

मेरो तो थोरो ही है सुधरैगी बिगरियो बलि ।
रामरावरी सौं रहौ रावरी चाहत ।[5]

रावरे दोष न पायन को पगधूरि को भूरि प्रभाव महा है ।[6]

साँचो सदा रावरो हौं रावरो सो रावरे सो झूठ क्यों
कहौंगो जानो सब ही के मन की ॥[7]

बुन्देलखण्डी—

बुन्देलखण्डी युक्त प्रान्त के झाँसी, जालौन, हमीरपुर से लेकर मध्य प्रान्त में हुशंगाबाद तक बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या ६६ लाख है। मानस में बुन्देलखण्डी शब्द बहुत हैं। इनमें से कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

संज्ञा शब्दों के अन्तर्गत कई ऐसे शब्द भी तुलसी की रचनाओं में मिलते हैं जो अवधी जैसी तुलसी की सुपरिचित बोलियों में कभी-कदा ही प्रयुक्त होते हैं। किन्तु बुन्देली में उनका व्यापक रूप में व्यवहार होता है। जैसे —

---

१ वैराग्य संदीपिनी ६५
२ वैराग्य संदीपिनी ४०
३ विनयपत्रिका ११८
४ मा० १ २१८
५ विनयपत्रिका १२१
६ कवितावली २७
७ विनयपत्रिका ७२

सुभग सुरभि पय फेन समाना । कोमल कलित सुपेती नाना ॥[1]

कनक कलस मनि कोपर भरे ॥[2]

सर्वनामों के ही अन्तर्गत मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम का आदरार्थ एवं संबंध कारक रूप रउरें तथा रौरे जिसका व्यवहार निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है स्पष्टतः बुन्देली से ही लिये गये जान पड़ते हैं ।

पठए भरत भूप ननिअउरें । राम मातु मत जानब रउरें ॥[3]

जो सोचहि ससि कलहि सो सोचहि रौरेहि ॥[4]

ब्रजभाषा—

तुलसीदास जी का जन्म ही ब्रजभाषा की सरहद पर हुआ था । अतएव ब्रजभाषा में रचना करना उनके हेतु स्वाभाविक था । उन्होंने गीतावली दोहावली कृष्ण गीतावली और विनय पत्रिका में ब्रज भाषा के प्रचुर शब्दों का प्रयोग किया है । पर ब्रज भाषा का नमूना उनकी कवितावली और गीतावली में देखा जा सकता है । ब्रजभाषा के शब्दों का वैकल्पिक प्रभाव तुलसी को प्रिय था । ब्रज भाषा की शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की विशेषताओं को स्पष्ट करने वाले शब्दों का प्रयोग तुलसी की रचनाओं में प्रचुरता से देखा जा सकता है । उनमें सर्वनामों के पश्चात् प्रयोग बाहुल्य के विचार से इसी का स्थान है ।

कर्म व सम्प्रदान कारक के रूपों में का कौं तथा को कारकों का व्यवहार ब्रज भाषा में होता है । इनमें अधिक प्रादेशिक रूप कौं का प्रयोग तुलसी की रचनाओं में नहीं मिलता । इसके स्थान में सर्वत्र को तथा कहँ का ही व्यवहार मिलता है । जैसे :—

तुलसी है राम को भरोसो दयानिधान ।
भुवन निहारि सब सिर साधु साथ को ॥[5]

तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम न तु भेंट पितरन
को न मूड़ हूँ में बार है ।[6]
सिथरिबे हौं ही पैहौं कलाप को न दैहौं
सो क्यों भट्ट तेरो कहा कहि हम जान ।[7]

---

1 रा० १ ३२६
2 रा० १ ३१४
3 रा० १ २८
4 पार्वती मंगल ११
5 कवितावली ७ १८
6 कवितावली ७ ६७
7 श्री कृष्ण गीतावली ७

सम्बन्ध कारक में भी का पर सर्ग का व्यवहार तुलसी ने ब्रज से ज्यादा पर सम्भवतः ब्रज भाषा व्याकरण का अनुकरण करके ही किया है। इसका प्रयोग मानस जैसे अवधी बहुल ग्रंथ में न मिलकर कवितावली गीतावली विनयपत्रिका और श्री कृष्ण गीतावली जैसे ब्रजभाषा बहुल ग्रन्थों में विस्तार से मिलेगा। अवधी बहुल ग्रन्थों में इसके कम मिलने का कारण यह है कि अवधी में को के स्थान में क अथवा के परसर्ग सम्बन्ध कारक रूपों में अधिक प्रचलित है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखे जा सकते हैं।

बालक बरन बिधि बनई सुहावनो
दसानन को आनन बसन को सिंगार सो।[1]
धरम धुरीन धीर बीर रघुबीर जू को
कोटि राज सरिस भरत जू को राज भो।[2]
पर उपकार सार स्रुति को जो सो धोखेहु न बिचारयो।[3]

पुरुषवाचक सर्वनामों के सम्बन्ध कारक रूपों के अन्तर्गत मेरो तेरो हमारो तिहारो आदि ओकारान्त रूप ब्रज भाषा से ही गृहीत होकर तुलसी की भाषा में आये हैं।

तुलसीदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो।[4]

पंथ परबस परे पौरुषनि थाको कौन हमारो।[5]

कृपा कोरि बनी पद अंबुज परम प्रेम मृदु चारा।
एहि बिधि बधि हरहु मेरा दुख कौतुक राम तिहारो।[6]

संज्ञाओं विशेषणों और सर्वनाम रूपों की भाँति क्रिया रूपों में भी ओकारान्त रूपों का समावेश प्रचुर मात्रा में हुआ है। जो ब्रजभाषा की क्रियाओं के प्रमुख लक्षणों में गिना जाता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में सवारो बिसारो बनायो जगायो और धरो—

जोबन जय जानकी लखन को मरन महीप सवारो।[7]
काहे तैं हरि मोहिं बिसारयो।[8]

---

१ कवितावली ५ १
२ गीतावली २ २१
३ विनयपत्रिका २०२
४ विनयपत्रिका १९१
५. गीतावली २ ६७
६ विनयपत्रिका १०२
७ गीतावली २,६६
८. विनयपत्रिका ९४

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग ।
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है ॥१

इस प्रकार गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा का भी प्रचुर प्रयोग किया है ।

राजस्थानी—

तुलसीदास की रचनाओं में अवध और ब्रज के सिवा अन्य प्रांतों के भी शब्द मिलते हैं । राजस्थान के साधारण शब्द ही नहीं मुहावरे भी गोस्वामी जी की रचनाओं में भरे पड़े हैं । यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं ।

मेली—डाला
गुनाथोसि मेली मुनि चरना ।२

सिय जयमाल राम उर मेली ।३
पूजना—पूरा होना ।
त्वहिवार आसरा पूजी ।४

झरना—भरना (दुलार कर देना) ।
झरहि नत भरि कुंवर विशाला ।५

गुजराती—

राजस्थानी के बाद गुजराती भाषा के शब्दों की संख्या तुलसी की प्रारम्भिक रचनाओं में अधिक मिलती है जैसे—

धूरना—धोड़ना
पासो तेरो हूक को परेहू चूक मूकिये ना ॥६

मींचे—मूंद
मुनिगन कहत पंथ मींची पलु ।
अमुक्ति प्रेम पथ न्यारी ॥७

लाधे—पाया
काहु न इन समान फल लाधे ।८

---

१ कवितावली ७ ८४
२ मा० बा पृ० ५१
३ मा० बा० पृ १८४
४ रा० २—११
५. मा० सुन्दर पृ० १७७
६ कवितावली—बाल काण्ड—१४
७ गीतावली २ ६६
८ मा० बा० पृ० ३१०

बंगला—

कुछ शब्द तुलसी की रचनाओं में बंगला के भी मिलते हैं। जैसे—

पारा—सकता है।
लखन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा।
तुमहि अछत को बरनै पारा॥[1]
बसा—(बोसो)—बैठा
मुनि मन मांझ मगन होई बैसा॥[2]

मराठी—

मराठी भाषा के प्रयोगों का भी तुलसीदास जी की शब्दावली में सर्वथा अभाव नहीं है। यद्यपि परिमाण की दृष्टि से उनका कोई भी विशेष महत्व नहीं है। संभवतः काशी के महाराष्ट्री पंडितों के सम्पर्क में आने से अथवा कतिपय मराठी भक्त कवियों की रचनाओं के अध्ययन के परिणाम स्वरूप इन शब्दों से गोस्वामी जी का परिचय हुआ होगा। इसके उदाहरण के लिए दो शब्द पवारो और अवकलत लिए जा सकते हैं। जिनका प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में हुआ है।

बीर बड़ो बिरदैत बली
अजहुँ जगु जागत जासु पंवारो॥[3]
मोहि अवकलत उपाय न एकू।[4]

यहीं पर यह भी संकेत कर देना आवश्यक है कि इनमें पंवारा शब्द लम्बी भाषा के अर्थ में आज भी अवधी की बोलचाल में बराबर प्रयुक्त होता है। जैसे यहाँ का पंवारा गावत हो इत्यादि। अतः तर्क की दृष्टि से यही उक्ति संगत जान पड़ता है कि तुलसी ने अपनी सुपरिचित बोली अवधी से ही उक्त शब्द ग्रहण किया होगा न कि किसी मराठी जैसी सुदूरवर्ती प्रांतीय भाषा से।

संस्कृत—

तुलसी के पूर्ववर्ती कृष्णोपासक कवियों ने संस्कृत के तत्सम शब्दों से ब्रजभाषा के साहित्य को खूब मधुर बना दिया था। तुलसी ने इसका अनुसरण किया। उन्होंने अवधी संस्कृत के सुमधुर शब्दों को भर कर उसकी नीरसता बिल्कुल कम कर दी।

तुलसी संस्कृत साहित्य के पारंगत विद्वान थे। उनकी हिन्दी कविता में ऐसा ज्ञात होता है कि संस्कृत के शब्द अपना अपना स्थान खोजकर स्वयं आ बैठते थे। कुछ शब्द अपने असली रूप में आये हैं और कुछ वेष बदल कर। नीचे कुछ शब्द संस्कृत के ऐसे दिये जाते हैं। जो संस्कृत में ही मिलते हैं अवधी या ब्रज में नहीं।

---

१ मा० बा० पृ० ११०
२ मा० अरण्य पृ० ५०५
३ कवितावली ६ १८
४ मा० २—२५१

सुखेन—सुख से
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ।[1]

कहीं आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने हिन्दी के साथ संस्कृत शब्दों का प्र
किया है। जैसे —

उमा रमा ब्रह्मादि वंदिता।
जगदम्बा संततं मनिंदिता॥[2]

इसमें संतत अनिन्दिता पाठ रखने पर भी वही अर्थ होता। इस प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में संस्कृत शब्दावली भी कहीं उसी रूप में और कहीं बदलकर बरत कर परम्परा से चली आती हुई संस्कृत की दुरूहता और नीरसता दूर करती हुई आई है।

नई क्रियायें—

शब्दों को आवश्यकतानुसार अपने साँचे में ढाल देने में गोस्वामी जी बड़े ही सिद्धहस्त कवि थे उन्होंने बहुत-सी नई क्रियायें भी बना ली थी। जैसे:—

उपदेसना—समझाना
सुन्दर गौर सु बिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि।[3]
भरना—पूरा करना
नैहर जनम भरब बरु जाई
जियत न करब सवति सेवकाई॥[4]

हिन्दी भाषा में अभी तक क्रियाओं की बहुत कमी है। क्रिया बना लेने की अत्यधिक क्षमता अंग्रेजी भाषा में दिखलाई देती है। मोटर की उत्पत्ति के साथ ही मोटरिंग और पेन्सिल के साथ [illegible] की उत्पत्ति उसमें एक साधारण सी बात है। अवधी और ब्रज भाषा में भी क्रियाओं का काम आसानी से हो जाता है। पर हिन्दी में यह शक्ति नहीं के बराबर है। इस क्रिया बनाने की कला में गोस्वामी जी पटु थे जो उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है। वे बड़ी ही सूझ के कवि थे। जहाँ उन्होंने जैसी आवश्यकता समझी वैसा ही क्रिया काम ली।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ—

तुलसी की भाषा का टकसाली सौंदर्य देखना हो तो वह उनकी रचनाओं में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों में विशेष रूप से मिलेगा। यह मुहावरे और लोकोक्तियाँ प्राय ब्रज और अवधी से तथा कतिपय अन्य बोलियों से उपलब्ध एवं भण्डार में ली गई है। इनमें ठेठ ब्रज भाषा की अनेक रूपात्मक छटा विद्यमान है। उदाहरण

---

१ मा० अयोध्या० पृ० २११
२ मा० उत्तर पृ ४८०
३ मा० अयोध्या० पृ० ५७
४ मा० अयोध्या० पृ० २११

के हेतु कुछ प्रयोग उनकी रचनाओं से उद्धृत किये जाते हैं जिनसे उक्त मुहावरों और लोकोक्तियों की कलात्मकता का दिग्दर्शन हो जायेगा।

१—पेट खलाई—

राम सुभाव सुन्यो तुलसी प्रभु। सो कह्यो बारक पेट खलाई॥[1]

२—ठकुर सोहाती—

हमहु कहब अब ठकुर सोहाती॥[2]

३—बड़े गाल होना—

हँसि कहरानि गाल बड़ तोरे॥[3]

४—गाल करना—मिजाज करना

गालु करब केहि कर बल पाई॥[4]

५—दूजी जीभ करके कहना—

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥[5]

६—बारह बाट जाना—

राज करत बिनु काज ही ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरराज ज्यों जैहैं बारह बाट॥[6]

७—खोंच लगना—

तुलसी चातक प्रेम पट मरतहु लगी न खोंच।[7]

८—मूड़ में बार न होना—

तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम नतु।
भेंट पितरन को न मूड़हू में बार है॥[8]

९—धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को—

तुलसी बनी है राम रावरे बनाय न तो
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को॥[9]

---

१ कवितावली ७ ५७
२ रा० २ १६
३ रा० २, १३
४ रा० २ १४
५ रा० २ ११
६ दोहावली ४१७
७ दोहावली ३ २
८ कवितावली ७ ६३
९ कवितावली ७, ६६

१ —मुँह लाए मूड़ चढ़ना—

मुँह लाये मूड़हिं चढ़ी अंतहु अहीरिनि तू सूधि करि पाई ।[1]

११—अपने बना बनाई हाथ जाहिमत है

गारी देत नीच हरिचन्द हु दधीचहू को

अपने बना बनाई हाथ जाहिमत है ।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों को विचार पूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने अध्यावली तो ब्रज भाषा से चुनी है साथ ही साथ प्रतीक भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित वस्तुओं एवं पदार्थों से ही चुने हैं। उनकी यह प्रवृत्ति ठेठ ब्रज बोली के साथ साथ ग्रामीण वातावरण के भीतर भी गहरी पैठ की द्योतक है। जैसा पीछे संकेत किया जा चुका है। इन मुहावरों और लोकोक्तियों का ग्रहण ब्रज और अवधी बोलियों के क्षेत्र से ही किया गया है। और इसीलिये इनमें रूप की प्रादेशिकता का आ जाना स्वाभाविक ही है। वस्तुतः इसी प्रादेशिकता में इन मुहावरों और लोकोक्तियों का ठेठ माधुर्य अभिव्यक्त होता है। इनमें अनेक तो इतने व्यापक रूप में प्रयुक्त हैं कि आज भी वे उतने ही नवीन प्रतीत होते हैं। जितने कदाचित् तुलसी के समय में रहे होंगे।

वाक्य रचना—

पद्यकार कवि की भाषा के अन्तर्गत वाक्य रचना के क्षेत्र में गद्य प्रणाली का व्याकरणिक बंधन उतना महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता जितना गद्यकार की भाषा में। यहाँ पर वाक्य रचना के प्रसंग में जिस बात पर विशेष रूप से विचार करना है वह यह है कि लम्बे-लम्बे वाक्यों में कई छोटे-छोटे वाक्य पदों की जिन्हें अंग्रेजी में (Clauses) की संज्ञा दी गई है। योजना करने की प्रवृत्ति तुलसी की ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत किस रूप और किस मात्रा में मिलती है। आगामी विवेचन एवं विश्लेषण से यह भली भाँति स्पष्ट हो जायेगा कि व्याकरण की इस दिशा में भी वह कुछ कम सिद्धहस्त न थे। पर्याप्त कौशल के साथ वाक्य रचना की इस पद्धति का अनुसरण करने में भी गोस्वामी जी ने पूरी सफलता प्राप्त की है।

संयुक्त (Compund) और मिश्रित (Complex) वाक्यों की रचना में प्रधान वाक्य पद (Principal Clause) के साथ प्रयुक्त होने वाले सहकारी वाक्य पद (Co-ordinate Clause) संज्ञा वाक्य पद (Noun Clause) विशेषण वाक्य पद (Adjective Clause) और क्रिया विशेषण वाक्यपद (Adverbial Clause) प्रभृति आश्रित वाक्य पद (Subordinate Clause) इन सभी प्रकार के वाक्य पदों के उदाहरण तुलसी ने अपनी भाषा के अन्तर्गत उपस्थित किये हैं और वह भी बड़े स्वाभाविक रूप में। उक्त कथन की पुष्टि में कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

---

१ श्री कृष्णगीतावली ८

२ कवितावली ७ ९९

संयुक्त वाक्य तथा सहकारी वाक्य पद—

> नाथ जथामति भाषेउँ राखेउ नहिं कछु गोइ।[1]
> एक सुख मानि खाये साल कंदमूल फल
> एक भूखे आखुबस तोरि मूल फूल है॥[2]
> रामराज भयो काज सगुन सुभ
> राजाराम जगत विजयी है।[3]

उपर्युक्त तीनों पंक्तियों में 'जथामति भाषेउँ' 'एक भूखे मानि' 'खाये खाने कंद मूल फल' तथा 'राम राज भयो काज सगुन सुभ' प्रधान वाक्य पद तथा शेष सारे वाक्य सहकारी वाक्य पद कहे जायेंगे। जिनकी स्वतन्त्र सत्ता रह सकती है। चाहे वे प्रधान वाक्य पद के अंग बनें, चाहे न बनें। इस प्रकार के वाक्यों का जो संयुक्त वाक्यों तथा सहकारी वाक्य पदों के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये गये हैं। तुलसी ने प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

मिश्रित वाक्य तथा आश्रित वाक्य पद—

संज्ञावाक्य पद—संज्ञा वाक्य पद की योजना प्रधान वाक्य पद की उक्त अथवा अनुक्त क्रिया (क्योंकि पद में कहीं-कहीं क्रिया स्पष्ट कथित न होकर प्रच्छन्न रूप में विद्यमान रहती है।) के कर्त्ता और कर्म दोनों रूपों में उपलब्ध होती है। जैसे—

कर्त्ता रूप में— जो कछु कहेउ सत्य सब होई॥[4]

तू जो हम आदरयो सो तो नव कमल की कानि।[5]

जो कछु करिय सो होई सुभ सुनहिं सुमंगल खानि।[6]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'सत्य सब होई' इस प्रधानवाक्य भेद में निहित क्रिया है का कर्त्ता 'जो कछु कहेउ सो तो नव कमल की कानि' के भीतर स्थित है अथवा 'रही' क्रिया का कर्त्ता 'तू जो हम आदरयो' तथा सो होई सुभ की होई' क्रिया का कर्त्ता जो 'कुछ करिय' है। यह सारे कर्त्ता रूप संज्ञा वाक्यपद कहे जाएँगे।

कर्म रूप में कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूर।[7]

नहिं सिव पद कह सासु विनय मृदु मानवि।

---

१ रा० ७ १२१
२ कवितावली ६ १०
३ विनयपत्रिका १११
४ गीतावली २ ११
५ रा० ४ ७
६ रामाज्ञा० १—१—५
७ गी० २—११

प्रीति सुजीवनि मुनि मोर पिय जानहि ।[1]
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ ।।[2]
कहु बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ ।।[3]

उपर्युक्त वाक्य पदों में प्रथम 'कहौं' क्रिया का कर्म है । शेष वाक्य पद यथा स्थान 'कह' क्रिया के कर्म रूप में प्रयुक्त हैं । इस प्रकार यह सारे वाक्य पद दूसरी कोटि के संज्ञा वाक्य पद हैं ।

विशेषण वाक्यपद—

राम करत त्रिभुवन हो बढ़ोंहु भी भूरि कुआट ।
तुलसी है सुख राम ज्यों बढ़िं बाढ़ बाट ।[4]
तुलसीदास सो भजन महामो जाहि दूसरो नाहिं ।[5]
तुम्ह सो हेतु सरस सिखओई
जो आचरत मोर मत होई ।[6]

उपर्युक्त पंक्तियों के अन्तर्गत रेखांकित शब्दों में अंकित वाक्यपद क्रमशः सघन सघन प्रधान वाक्यपदों में प्रयुक्त हुई है भजन और हित संज्ञाओं के विशेषण होने के कारण विशेषण वाक्यपदों की कोटि में आते हैं ।

क्रियाविशेषण वाक्यपद—

काल स्थान परिमाण कारण रीति और प्रयोजन आदि के आधार पर इस वाक्य पद के कई भेद होते हैं । लगभग इन सभी का समावेश तुलसी के काव्यों में दृष्टिगोचर होता है । यहाँ पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

काल वाचक—

जब तेहि कीन्ह राम कै निंदा । क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा ।।[7]

स्थानवाचक—

बीज महान है आयो जहाँ सो तहाँ । तुलसी बिहुयाइ बहमो है ।।[8]

कारण वाचक—

अब काहे सोचत मोचत जल समय गये पितसूल नई ।।[9]

---

१ पा० मं० १५७
२ बरवै० २२
३ रा० ४७
४ दोहावली ४१०
५ श्री० कृष्ण गीतावली ११
६ रा० २—१७०
७ रा० ६—१९
८ क० ७ ६१
९ श्री कृष्ण गीतावली ५४

परिणाम वाचक—

पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि।[२]

रीतिवाचक—

मो मन कबहुँ तुमहि न लाग्यो।
ज्यों छल छाँड़ि स्वभाव निरंतर रहत विषय अनुराग्यो॥[१]

प्रयोजन वाचक—

बड़ जीवन को करै सचेता। जग माहीं विचरत एहि हेता॥[१]

उपर्युक्त पंक्तियों में रेखांकित अक्षरों में अंकित अंश क्रिया विशेषण वाक्यपदों की श्रेणी में आते हैं। जिनमें यथास्थान काल क्रम परिणाम कारण रीति एवं प्रयोजन आदि विभिन्न परिस्थितियों की व्यंजना हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्य में सुलझे हुये वाक्यपदों का प्रयोग करने वाले तुलसी की शब्द योजना वाक्य रचना के क्षेत्र में भी उतनी ही प्रौढ़ सिद्ध होती है जितनी व्याकरण के अन्य अंगों के क्षेत्रों में। अतः गोस्वामी जी की वाक्य योजना सरस सुलझी हुई ललित कलात्मकता से युक्त स्वाभाविक और प्रवाह पूर्ण है।

तुलसी के शब्द प्रयोग परक कला की विशेषतायें—

तुलसीदास जी ने भाषा का परिष्कृत रूप उपस्थित किया। उसमें न तो वीर गाथा काव्य की कर्कशता है न प्रेम काव्य की ग्रामीणता और न ही असंगति तथा विशृङ्खलता। तुलसी का शब्द चयन पाण्डित्यपूर्ण है। उसमें केशव व सूर वाला चमत्कार भी नहीं। परन्तु उनकी भाषा की भावात्मकता रसानुकूलता, अथवा रूप युक्तता में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता। तुलसी का शब्द प्रयोग अलंकृत होते हुए भी स्वाभाविक है। यही उनकी विशेषता है।

ढूँढने पर गोस्वामी जी की रचना में कहीं-कहीं अंत्य के साथ पद्य की तुक मिली है। कहीं संख्या के साथ क्रिया मिली दिखलाई देती है। कहीं यति भंग का दृश्य है तो कहीं मात्रा की कमी अपना अस्तित्व प्रकट कर रही है। परन्तु कवि की ऐसी स्वच्छन्दता रहते हुए भी मानस की शब्दावली बड़े ही परिमार्जित रूप में एक दम व्याकरण सम्मत होकर निकली है। प्रत्न सरीखे शब्द का स्त्रीलिंग में व्यवहार ऐसी बात है जिसे हम उनकी भाषा का दिठौना मान सकते हैं।

गोस्वामी जी की शब्दावली में भाव जिस सरलता से व्यक्त हुए हैं उस पर तो जितना भी कहा जावे थोड़ा है। थोड़े से शब्दों में गागर-सा भाव भर कर रख देना उनके बायें हाथ का खेल था।

गोस्वामी जी की शब्दावली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गोस्वामी जी

---

२ दोहावली ४९४
१ विनयपत्रिका १७०
१ बा० का० ९

ने जो भी कहा है वह बहुत ही ठीक ढंग से कहा है। ब्रज भाषा और अवधी दोनों ही भाषाओं पर गोस्वामी जी का पूर्ण अधिकार था। इन दोनों भाषाओं को संस्कृत की परिष्कृत शब्दावली का पुट देकर उन्होंने उसे अद्भुत निखार प्रदान की। इन दोनों भाषाओं पर गोस्वामी जी का इतना अधिक अधिकार दिखलाई देता है कि जितना स्वयं सूर का ब्रज भाषा पर और जायसी का अवधी पर न था। भाषा वैचित्र्य तो गोस्वामी जी की शब्दावली में कहीं मिलता ही नहीं। एक शब्द भी अरबी का इनकी रचनाओं में नहीं है। जायसी द्वारा पद्मावत की रचना मानस से पूर्व की है। परन्तु वह अवधी का ग्रामीण रूप था। सुसंस्कृत और परिमार्जित रूप नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अवधी भाषा को परिमार्जन और माधुर्य प्रदान किया।

गोस्वामी जी के शब्द प्रयोग में सबसे बड़ी कला यह थी कि उन्होंने अवधी भाषा को संस्कृत शब्दावली द्वारा नागर रूप प्रदान किया। जैसे :—

राम कृपाँहि सचिव संग जाही। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥[1]

इसमें कृपाँहि शब्द संस्कृत शब्दावली का ग्रहण कर गोस्वामी जी ने अवधी भाषा को नागर रूप प्रदान किया है। इसी प्रकार गुरु वन्दना की यह पंक्ति भी अवधी भाषा की संस्कृत शब्दावली द्वारा कितनी सुन्दरता से नागर रूप को प्राप्त हुई है —

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥[2]

प्रस्तुत उदाहरण गोस्वामी जी की भाषा परिष्कृति का बड़ा ही ललित उदाहरण है इसमें अवधी जैसी ग्रामीण भाषा को गोस्वामी जी ने अनुप्रासात्मक शब्दों की संयोजना द्वारा बड़ी ही सुन्दरता से नागरी रूप प्रदान किया है। साथ ही सुरुचि सुबास सरस आदि शब्दों से अनुप्रास होने के कारण और साथ ही समासबद्धता होने से नाद सौन्दर्य की सृष्टि हो गई है।

अवधी के साथ ब्रज भाषा का सम्मिश्रण तुलसी की शब्द सम्बन्धी कला की उत्कृष्टता का द्योतक है। उनकी भाषा की शब्दावली जितनी ही मौलिक है उतनी ही गाम्भीर्य भी।

गोस्वामी जी की शब्दावली में दुरूहता का नाम भी नहीं है। नीचे देखिये :—

नव रेखी भूतिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर ॥[3]

१२ तत्सम शब्दों का प्रयोग इन दो पंक्तियों में हुआ है। लेकिन भाव-व्यंजना और बोध गम्यता में तनिक भी कमी नहीं आई।

तुलसी के शब्द प्रयोग की एक विशेषता यह भी है कि उनकी रचनाओं में एक शब्द भी ऐसा नहीं मिलता जिसकी जगह हम दूसरा शब्द रख सकें।

---

१ मा० अयो० पृ० २७८
२ मा० बा० पृ० १
३ मा० सु० पृ० ५४८

गोस्वामी जी की शब्द योजना की विशेषता है भाषा की सफाई और वाक्य रचना की निर्दोषता जो हिन्दी के किसी भी कवि में नहीं पाई जाती। यह दो ही बातें न होने से इधर के सारे कवियों की कविता पढ़े लिखे लोगों के काम की न हुई।

अन्त में संक्षेप रूप में गोस्वामी जी की शब्द प्रयोग सम्बन्धी विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

१—गोस्वामी जी की शब्दावली सरल है जिससे पाठक उसे सहज ही में हृदयंगम कर सकते हैं। इस सरल शब्दावली का संकेत गोस्वामी जी ने प्रारम्भ में ही कर दी दिया है। 'सरल कवित कीरति विमल सुनि आदरहिं सुजान। गोस्वामी जी की सरल शब्दावली का ही यह परिणाम है कि एक मूर्ख से मूर्ख भी मानस को जानता है। उनकी सरल शब्दावली का एक उदाहरण लीजिए।

आगे चले बहुरि रघुराई।
ऋष्यमूक पर्वत नियराई॥[1]

२—गोस्वामी जी ने ग्रामीण बोलियों की शब्दावली का परिमार्जन भी किया है। जिसका पीछे विवेचन किया जा चुका है।

३—सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि गोस्वामी जी की भाषा में विभिन्न भाषाओं की शब्दावली व्यवहृत हुई है जिसकी विशद विवेचना पीछे की जा चुकी है। किन्तु फिर भी गोस्वामी जी की शब्दावली कहीं खटकने वाली नहीं है।

४—गोस्वामी जी की भाषा संयत अर्थ-गर्भित और औचित्यपूर्ण है।

५—उनकी भाषा भाव परिस्थिति और पात्रों के अनुरूप प्रयुक्त हुई है। प्रत्येक पात्र अपनी भाषा बोलता है। निषाद ग्रामीण है। अतः वह शिष्ट शब्दावली का प्रयोग न कर ग्रामीण शब्द लोहार का प्रयोग करता है जैसे :—

कहहिं लोहार मर्म में जाना।[2]

६—अन्तिम बात है कि गोस्वामी जी की शब्दावली कथा प्रवाह के अनुकूल है। इसमें किसी प्रकार से कथा के प्रवाह में बाधा उत्पन्न नहीं होती।

अतः गोस्वामी जी के शब्द प्रयोग सम्बन्धी इस काव्यशास्त्रीय एवं कलापक्ष के विवेचन के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गोस्वामी जी की शब्दावली विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से भी उतनी ही समृद्ध एवं महत्वपूर्ण है जितनी अन्य दृष्टियों से।

---

१ मा० कि० पृ० ३१४
२ मा० अयो० पृ० ३११

पाँचवाँ अध्याय



तुलसी के काव्य में संगीत तत्त्व और चित्रात्मकता

संगीत शब्द से भारतीय संगीत में गायन[1] वादन तथा नर्तन तीन कलाओं का बोध होता है। इन तीनों के सम्मिलित रूप को संगीत कहते हैं। अथवा संगीत के यह तीनों अंग माने गये हैं।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।[2]
गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीत मुच्यते।[3]
गीतं वादित्र नृत्यानां त्रयं संगीत मुच्यते।[4]

अंग्रेजी भाषा में संगीत शब्द का अनुवाद करने में म्यूजिक शब्द का व्यवहार होता है। किन्तु योरोपीय देशों में म्यूजिक शब्द मात्र कण्ठ संगीत (Vocal Music) अथवा वाद्य संगीत (Instrumental Music) के लिये ही व्यवहृत होता है। नृत्य अर्थात् हाव भाव तथा ताल (Gesticulation) का अर्थ म्यूजिक शब्द से नहीं निकलता।

संगीत में गाने की क्रिया को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है तत्पश्चात् वादन और नृत्य को। गायन की प्रधानता होने के कारण तीनों को ही संगीत कहा गया है। जो इस प्रकार है :—

गानस्यात्र प्रधानत्वात्तत्संगीतमितीरितम्।[5]

श्री भातखण्डे का कथन है संगीत समुदाय वाचक नाम है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है। यह कलायें गीत वाद्य और नृत्य हैं। इन तीन कलाओं में गीत का प्राधान्य है। अतः केवल संगीत नाम ही चुन लिया गया है।[6] किन्तु जिन

---

१ संस्कृत साहित्य में गायन तथा गान शब्द में सूक्ष्म भेद माना जाता है। वहाँ गायन शब्द प्रशंसा के लिये तथा गान शब्द संगीत के अर्थ में प्रयोग होता है।

२ संगीत रत्नाकर—शार्ङ्ग देव—प्रथम भाग प्रथम प्रकरणम् पृ० ११ सं० २१

३ संगीत दर्पण—पृ० ५—श्लो० सं० ३

४ संगीत पारिजात—पृ० ६—श्लो० सं० २०

५ संगीत पारिजात पृ० ६ श्लो० सं० २०

६ पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे—संगीत शास्त्र-प्रथम भाग-पृ० २

प्रकार साहित्य सत्यं शिवं और सुन्दरम् के सहयोग से निखर उठता है उसी प्रकार संगीत गायन वादन और नृत्य के द्वारा ।

संगीत की व्यापकता—

किसी ने रमणी से कहा Gods rarest blessing is after all a good woman ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान है सुशीला नारी । उस स्त्री ने तत्काल उत्तर दिया Rather that is a good music उससे भी अधिक सुन्दर संगीत ।

अखिल विश्व ही संगीत मय है । संगीत की व्यापकता को लक्ष्य करते हुए पण्डित ओंकार नाथ ठाकुर ने कहा है संगीत पृथ्वी का विषय नहीं है । शब्द आकाश का गुण है जितना आकाश विशाल है नाद संगीत भी उतना ही विश्व व्यापी है ।[1]

न केवल चेतन सृष्टि ही नहीं प्रत्युत जड़ भी संगीत मय है । यह जंगम जगत जहाँ भी दृष्टि डालिये संगीत के सप्त स्वरों का समा सा बँधा हुआ दृष्टिगोचर होता है । कलियों की चिटकन मलयानिल की सुकुमार गति सरिताओं की कल कल ध्वनि वायु के झोंकों से आन्दोलित वृक्ष लताओं के पत्तों की खड़खड़ाहट चपल समीर की सन सनाहट समुद्र गर्जन तथा विशाल आकाश के तारों की झिलमिलाहट में दिव्य संगीत अनुभव कर किसे आनन्द प्राप्त नहीं होता ।

संगीत का महत्व—

संगीत की महत्ता किसी से भी छिपी नहीं है । अनुराग सहित यथार्थ स्वरूप से गायन तथा वादन द्वारा प्रस्तुत किया हुआ संगीत जड़ और चेतन दोनों पर ही समान रूप से प्रभाव डाले बिना नहीं रहता । भागवत में कहा गया है कि श्रीकृष्ण के मुरली वादन से यमुना का चंचल जल भी शान्त और स्थिर हो जाता था ।[2]

संगीत वह कला है जो विकल हृदय में आनन्द का उद्रेक कर देती है । संगीत की स्वर लहरियाँ सुनते ही पाषाण हृदय भी सहसा झूम उठता है । संगीत में वह अलौकिक शक्ति है जो मानव हृदय की कोमलतम भावनाओं को स्पर्श कर उनकी सुप्त आशाओं को जगा देती है और हृदय के किसी नीरव कोने में डूबी स्मृतियों को उभारकर देती है । संगीत की इसी व्यापक महत्ता को लक्ष्य कर ही भर्तृहरि ने संगीत को मानव जीवन का अनिवार्य अंग माना है ।[3] संगीत भगवान प्रदत्त

---

१ उमेश जोशी—संगीत फरवरी १९५५—संगीत की स्वर लहरियों पर मुर्दे भी बोल उठते हैं—पृ० १०

२ श्रीमद् भागवत महा पुराण—महर्षि वेदव्यास प्रणीत अनुवादक मुनि लाल द्वितीय खण्ड दशम स्कंध—इक्कीसवाँ अध्याय—पृ० ३११—श्लोक सं० १५

३ भर्तृहरि—नीति शतकम्—श्लोक सं० ११

की हुई कला है जो मनुष्य के कष्टों को दूर कर उन्हें शान्ति पहुँचाती है।[1] कविवर बिहारी ने तो संगीत की अनुपम मधुरता पर मुग्ध होकर यहाँ तक कह दिया—

तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग। अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग॥[2]

काव्य और संगीत—

जब सम्पूर्ण सृष्टि और मानव ही संगीत से व्याप्त है तो साहित्य में भी संगीत का होना अनिवार्य है। साहित्य का निर्माण भी तो संगीत प्रिय मानवों ने ही किया है। साहित्य अथवा काव्य के समस्त अंगों में किसी न किसी रूप में संगीत का योग अवश्य रहता है।

कविता को सुन्दर बनाने के हेतु उसके सुस्वर पाठ तथा रसास्वादन के लिये भी संगीत अपेक्षित है।

यद्यपि साहित्य और संगीत पृथक् पृथक् भी अपने आनन्द को प्रदान करने वाले हैं। बिना संगीत के काव्य तथा बिना काव्य के उत्तम कोटि के संगीत का सृजन हो जाता है। जिस समय हम किसी सुन्दर कविता को पढ़ते हैं उस समय हमारा हृदय आनन्द विभोर हो जाता है। इसी प्रकार अवश्य सुनकर संगीत की सुमधुर ध्वनि कान में पड़ने से प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। तथापि दोनों का संयोग सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर देता है। दोनों का पारस्परिक विरोध अकल्पनीय है। सहयोग तथा एकता से ही दोनों की प्रगति संभव हो सकती है। अतः काव्य और संगीत की स्वतन्त्र सत्ता रहते हुए भी दोनों का चोली दामन का साथ है। संगीत को तो काव्य ने अपने में ऐसा मिला रक्खा है कि वह काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हो गया।

काव्य और संगीत का सहयोग एक और दृष्टि से भी है। वह यह कि संगीत के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं—

---

1 Music is one of the fairest and most glorious gifts of God, to which satan is bitter enemy for it removes from the heart the weight of sorrow and the fasination of evil thoughts.

"Music is a decipline and mistress of order and good manners, she makes the people milder and gentler more moral and more reasonable

"Music is the art of the prophets. The only art that can claim the agitations of the soul. It is one of the most magnificant and delightful presents God has given us"

—"The New Dictionary of thoughts—Page 413-414

२. बिहारी सतसई—दो० सं० ६६७

१—लय
२—स्वर
३—नाद[1]

यह ही संगीत के उपयुक्त तत्व काव्य में भी आते हैं जिनके कारण वही महत्व काव्य को भी प्राप्त हो जाता है जो संगीत को प्राप्त है। गोस्वामी जी के काव्य में संगीत तत्व पूर्णरूपेण वर्तमान है। जिसकी विवेचना नीचे की जा रही है।

गोस्वामी जी के काव्य में संगीत तत्व—

संगीत से समाविष्ट होने पर काव्य में एक विशेष गति प्रभाव तथा उज्वलता आ जाती है। संगीत काव्य की रचना के हेतु निम्नलिखित तत्वों की आवश्यकता होती है।

स्थूल तत्व—संगीत प्रधान काव्य की रचना करने में संगीत के विविध आरोह, अवरोह, स्वर ताल और राग रागनियों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। उसमें कोमलकांत पदावली और स्वर तारतम्य और नाद सौन्दर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

सूक्ष्म तत्व—गीत काव्य में आत्म कथन की संक्षिप्त प्रणाली को ग्रहण करना चाहिये उसमें समन्वित विषय अथवा सुख की स्थिति का स्पष्ट कथन अपेक्षित है। और उसमें प्रतिपादित भावों को सर्वत्र एक रूप से रहना चाहिये। अनुभूति की गम्भीरता और तीव्रता द्वारा गीति काव्य की भी अभिव्यक्ति में भी स्वाभाविक सौंदर्य और माधुर्य का आयोजन करना आवश्यक है।

महाकवि तुलसी से पूर्व हिन्दी में विद्यापति सूर आदि ने पर्याप्त गीत काव्य की रचना की। तथापि राम भक्ति के गेय पदों को उपस्थित करने का श्रेय तुलसी को ही है। इसी प्रकार दास्य भावना को भी तुलसी ने गीत काव्य की अभिव्यक्ति प्रदान की।

महाकवि तुलसी ने विनय पत्रिका में गेय पदों की पर्याप्त रचना की है। वह संगीत कला के मर्मज्ञ थे। और उन्होंने संगीत के स्थूल तत्वों का अत्यन्त श्रेष्ठ आधार पर नियोजन किया है। उन्होंने अपने गीतात्मक पदों की रचना राग रागनियों के माध्यम से की है। और स्वर ताल का सामंजस्य स्थापित रखने का भी पूर्ण ध्यान रखा है। अपने भावों को राग रागनी के बन्धन में आबद्ध करते समय उन्होंने भाव सृष्टि को राग के अनुरूप ही उपस्थित किया है। इससे यह स्पष्ट है कि संगीत शास्त्र में उनकी पूर्ण और सूक्ष्म गति थी।

तुलसी ने शब्द प्रयोग की दृष्टि से अपने गीत काव्य में सुसंस्कृत एवं कोमल कांत पदावली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इस कारण उनके पदों में संगीत तत्वों का विशेष विकास उपलब्ध होता है। जैसे—

---

१ डा० उषा गुप्त—हिन्दी भक्तिकालीन साहित्य में संगीत—पृ० २००

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणं।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम्॥[1]

इसी प्रकार उन्होंने पत्रिका में सम्बोधन स्तुति और उपमोपम शैली के द्वारा अपने गीत काव्य को विशेष सौन्दर्य प्रदान किया है।

यद्यपि यह सत्य है कि पत्रिका के कुछ पदों में पिंगल शास्त्र की दृष्टि से यति भंगदोष की स्थिति रही है। परन्तु गोस्वामी जी का उद्देश्य विनयपत्रिका को छंदोबद्ध रचना में उपस्थित करना न था। वह उसे संगीत की दृष्टि से प्रवाह पूर्ण रूप में उपस्थित करना चाहते थे। और इसी दिशा में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। यही कारण है कि यति भंगदोष से युक्त पदों में गायन के समय यति तत्व की दृष्टि से कोई भी अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता जैसे —

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिंतामनि उर-कर तें न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं।
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं॥[2]

संगीतात्मक काव्य में प्रभाव की तीव्रता के हेतु मार्मिक भावनाओं की संक्षिप्त अभिव्यक्ति को मुख्य स्थान प्रदान किया जाता है। उनके काव्य में संगीतात्मक काव्य का स्वाभाविक रूप उपलब्ध होता है। पत्रिका के प्रारम्भ में गाइये गनपति जगवंदन कह कर उन्होंने संगीत कवि और भक्ति के उल्लास का उत्कृष्ट परिचय दिया है।

तुलसीदास जी ने अपने संगीत प्रधान काव्य की रचना करते समय रामभक्ति को मूल विषय बनाया है। राम भक्ति के अतिरिक्त उन्होंने गणेश, शिव हनुमान और गंगा आदि देवी देवताओं के प्रति भी अपनी भक्ति भावना को संगीतात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। अन्त में इन सभी देवताओं से उन्होंने रामभक्ति की ही याचना की है। उन्होंने इसमें अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों को भी गेय पदों के रूप में सरस अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसी प्रकार उन्होंने विविध पौराणिक प्रतिकृतियों का आधार ग्रहण कर अपने संगीतात्मक काव्य में दास्य भावना को स्पष्ट करने के हेतु यथास्थान पौराणिक संकेत भी उल्लिखित कर दिये हैं। जैसे:—

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते॥[3]

---

१ तुलसी ग्रन्थावली द्वितीय खंड विनय पत्रिका—पृ ४७७
२ तुलसी ग्रंथावली द्वितीय खंड—विनयपत्रिका—पद १०५—पृ० ५११
३ विनय पत्रिका—पृ० ५५७

तुलसीदास ने अपने संगीतात्मक काव्य को शांतरस की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम बनाया है। उन्होंने अनुभूति और भावना के ठोस संयोजन द्वारा अपने गीत और काव्य को पूर्णतया समृद्ध रक्खा है। इस दृष्टि से उन्होंने अनेक भक्ति पूर्ण पदों की रचना की है। भक्त होने के कारण उनके गेय काव्य में दैन्य आत्म समर्पण आशा उत्साह अनुताप और आत्म ग्लानि आदि विविध भावों का भी रमणीय संयोजन हुआ है। उन्होंने अपना भक्ति के दास्य भक्ति वाले पक्ष को ग्रहण करते हुए पत्रिका में उसको नितांत प्रौढ़ रूप में उपस्थित किया है। उनके गेय पदों में सेवक सेव्य भाव की भी मार्मिक स्थिति रही है। साथ ही उन्होंने इन पदों में दैन्य का भी उल्लेख किया है। आगे हम क्रमशः इन दोनों के ही उदाहरण उपस्थित करते हैं —

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरि पद विमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझु सबेरो।[1]
× × × ×
तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी॥[2]

इस तुलसी के पदों में आत्मा की अभिव्यक्ति और शांत रस की प्रतिष्ठा का पूर्ण ध्यान रखा गया है उन्होंने पदों में प्रगति काव्य के विभिन्न सुन्दर तत्वों को प्रस्तुत किया है।

सम्भवतः कृष्ण काव्य की गीतात्मक शैली का जनता पर प्रभाव देख कर ही तुलसी ने संगीतात्मक रागरागनी से युक्त पदों की रचना गीतावली में की।

महाकवि तुलसीदास कृत विनय पत्रिका में संगीत सौन्दर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। यदि वे उसे भी संगीतात्मक छन्दों में न रचते तो वे अपने हृदय के इतने मनोरम अच्छे भाव व्यक्त न कर पाते और जन साधारण में इन छन्दों का इतना प्रचार भी न हो पाता। क्योंकि पंडित भले ही चाहे न अपनावें किन्तु साधारण जनता गाने की चीजें बड़े चाव से अपनाती है। आज भी हम देहात में लोगों को सूर तुलसी और कबीर के भजन गाते हुए सुनते हैं। यही हाल लोगों के मानस का भी है। मानस का भी इतना अधिक प्रचार संगीतात्मक होने के कारण ही हुआ है।

<u>तुलसी की रचना में गति का सौन्दर्य—</u>

गति संगीत का एक प्रमुख तत्व है। गोस्वामी जी के काव्य में भावानुकूल घटनानुकूल, परिस्थिति के अनुरूप ही गति देखने में आती है। कहीं भी गति में विशृंखलता नहीं आई है। भाव के अनुकूल गति मानस में चाहे जहाँ भी देख लीजिए। ओजोगुण व्यंजक भाव में वैसी ही गति है जो ओज की व्यंजना करे। लक्ष्मण के इन शब्दों में देखिये कितनी गति है। पढ़ते ही ओज मनुष्य के कण कण में व्याप्त हो जाता है। जैसे—

[1] विनय पत्रिका—पृ० २०३ २०४
[2] विनय पत्रिका—पृ०

लसत सकोप बचन जब बोले । डग मगानि महि दिग्गज डोले ।[1]

इन शब्दों में एक ऐसी गति है जो पढ़ते ही दृश्यों के अनसामने रूप का चित्र लाकर हमारे सामने उपस्थित कर देती है । घटना में भी गति प्रमुख घटना के अनुसार ही दिखलाई देती है । जहाँ पराक्रम करने की घटना है वहाँ गोस्वामी जी ऐसे शब्द लाये हैं जिनकी गति वीरता के अनुरूप है । इसी प्रकार परिस्थिति में भी यही गति प्रमुख अमुक परिस्थिति के अनुरूप रखी गई है । राम जानकी को जंगल न चलने के हेतु समझाते हैं किन्तु सीता के समक्ष ऐसी परिस्थिति है कि वह राम के साथ जंगल जायें यही उनका कर्तव्य है । देखिये सीता जी के शब्दों में कितनी शोक की तीव्रता और गति है जिससे प्रेरित होकर राम को उन्हें अपने साथ जंगल ले जाना ही पड़ा ।

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥[2]

इस प्रकार गोस्वामी जी के काव्य में गति की सर्वत्र योजना यह सिद्ध करती है कि गोस्वामी जी के काव्य में संगीत के तत्व पूर्ण रूपेण विद्यमान हैं ।

नाद—

गोस्वामी जी के काव्य में नाद विधान का भी अपूर्व सौन्दर्य देखने को मिलता है । यह नाद सम्बन्धी सौन्दर्य निम्नलिखित प्रकारों से उत्पन्न होता है ।

१—शब्द एवं वर्ण संघटन से उत्पन्न झंकृति
२—प्रवाह
३—राग

शब्द और वर्ण के द्वारा—

गोस्वामी जी ने ऐसे शब्दों और वर्ण संघटन की योजना की है। जो नादात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं । जैसे—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥[3]

इसमें कंकन किंकिनि आदि ऐसे शब्द हैं जिनमें अनुप्रास होने के कारण नादात्मक सौंदर्य की अभिवृद्धि हुई है ।

प्रवाह—

इनकी रचना में भी सर्वत्र एक प्रवाह पाया जाता है । उसमें भी नाद की सहायता मिलती है । इसका एक सुन्दर उदाहरण जानकी और ग्रामवधुओं की वार्ता में मिलता है । ग्राम वनितायें जानकी से राम का परिचय पूछ रही हैं और जानकी उत्तर इस प्रकार दे रही हैं ।

---

१ मा० बा० पृ० १७७
२ मा० अयो० पृ० ३२८
३ मा० बा० पृ० १६१

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥[1]

इसमें गोस्वामी जी ने सीता के लज्जा और संकोच की रक्षा करते हुए परिस्थिति वश उनसे कितना सुन्दर उत्तर दिलवाया है जिससे छन्द योजना में एक प्रवाह आ गया है।

राग—

विनयपत्रिका और गीतावली में जितने भी पद हैं वे सभी राग रागिनियों में गाये जाने योग्य हैं। यह पद ऊँचे रागों में गाये जाते हैं। कौन पद किस राग-रागिनियों में गाया जा सकता है इसका भी पूरा विचार रक्खा गया है। तुलसीदास की गीतावली और विनयपत्रिका में प्रायः भातखण्डे संगीत विद्यालय के सप्तम वर्ष के कोर्स तक के राग रागिनी में गाये जाने वाले पद पाये जाते हैं। नीचे विनयपत्रिका और गीतावली से एक राग रागिनी सम्बन्धी पद का विवेचन किया जा रहा है। इस छन्द में बालक राम की मनोहारी शोभा का वर्णन है।

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी।
नख-जोति मोती मानो कमल दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं ठुमुक ठुमुक चलैं
झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि
मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर॥
उर बघनहा कंठ कठुला झँडूले केस
मेढ़ी लटकन मसिबिंदु मुनि मन-हर।
अंजन रंजित नैन चित चोरै चितवनि
मुख-सोभा पर वारौं अमित असमसर
चुटकी बजावति नचावति कौसल्या माता
बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि किलकि हँसैं द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं
तुलसी के मन बसैं तोतरे बचन बर॥२॥[2]

यह पद ललित राग में गाया जा सकता है। यह मारवा थाट से उत्पन्न होता है। पंचम वर्ज्य होने के कारण इसकी जाति षाड़व मानी जाती है। वादी स्वर शुद्ध

---

१ मा० पयो० पृ १२८

२ तुलसी ग्रंथावली—द्वितीय खण्ड—गीतावली—बाल काण्ड—पद १० पृ० २८१

मध्यम और सम्वादी है षड्ज । उत्तरांग प्रधान होने के कारण गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर माना जाता है । इस राग में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है । म में म में यह स्वर समुदाय बार बार सुनाई देता है । इस स्वर समुदाय तथा नि रे, म म ग इन स्वरों से यह राग तत्काल ही पहचानने में आ जाता है । इसी प्रकार गोस्वामी जी की गीतावली और विनयपत्रिका में बसंत भैरव, रामकली भैरवी, बिभास टोडी सारंग मल्लार आदि रागों की भी योजना मिलती है जिससे यह भली भाँति पता चलता है कि गोस्वामी जी संगीत कला के कितने भारी पण्डित थे । जो सफल गायक होता है वही संगीत संगत छन्दों की रचना में कृतकार्य हो सकता है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ऐसा भान होता है कि जिस राग के उपयुक्त जो पद रचा गया है भाव भी उसी के अनुरूप है ।

तुलसी का संगीतात्मक काव्य दो प्रकार की विशेषताओं को अपने में समेटे है ।

१—लोकसंगीत
२—शास्त्रीय संगीत

जानकीमंगल पार्वती मंगल में जो गीतावली होली आदि से सम्बन्धित गीत हैं वे लोक सांस्कृतिक गीत हैं । इसके अतिरिक्त गीतावली विनयपत्रिका और मानस में भी शास्त्रीय संगीत के तत्त्व सन्निहित हैं । उस समय तत्कालीन नारी समाज में ग्राम्य गीत सोहर का प्रचलन था । तुलसी ने राम लला नहछू में सोहर का व्यवहार कर अपनी लोक रुचि को अभिव्यक्त किया । शास्त्रीय संगीत में कवि कुल कमल रवि ने ध्रुवपद प्रचलन की परिपाटी को मिटा दिया । मानस की यह अभिव्यक्ति कितनी सरस है ।

नाम बसै मधुरि रघुराई । ऋष्यमूक पर्वत नियराई ।[1]

'झूलना' छन्द भी लोकगीत है । संगीतात्मक काव्य में लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत दोनों को अपनाकर कवि ने अपना समन्वयवादी दृष्टिकोण स्थापित किया है ।

कवितावली का झूलना लोकगीत प्रायः बसन्त में गाया जाता है । विष्णु दिगम्बर जी ने मानस को नयी शैली में गाया था । यह मानस के संगीत की नया रूप दिखलाता है । सावन और बारहमासे जिस राग में गाए जाते हैं उस राग में तो मैंने स्वयं स्त्रियों का मानस गाते सुना है । यह भी स्पष्ट है कि संगीत के माध्यम से भक्ति का आंतरिक स्पर्श करने वालों के हेतु तुलसी के गेय पदों का अपार महत्त्व है । गीतावली और विनयपत्रिका के सभी पदों में मधुर संगीत गूंज रहा है । जिसमें विरक्त व्यक्तियों को भी प्रेमोन्मत्त कर सकता है । विनयपत्रिका का संगीत प्रत्येक व्यक्ति के हृत्तंत्री को झंकृत कर एक अपूर्व आनन्द की सृष्टि करता है ।

---

१ मा० कि० पृ० ५१४

यद्यपि गीति Lyrics आधुनिक युग की देन माना जाता है। फिर भी गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका में शुद्ध गीति भावना का नमूना रक्खा है। इतना ही नहीं यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। अतः इसमें गीत काव्य के विकास के हेतु अच्छा अवसर मिला है। मानस की चौपाइयाँ अगणित राग रागनियों से समन्वित हैं।

गोस्वामी जी की कृतियों में हम संगीत का माधुर्य भरा हुआ पाते हैं। वे भक्त थे कवि और साथ ही साथ विनोदी थे। उनमें हमें कोमल कलाओं का एक अद्भुत सामंजस्य देखने को मिलता है।

इनकी गीतावली और विनयपत्रिका में जितने भी राग रागिनियों के उदाहरण हैं वे इनकी संगीत शास्त्र की मर्मज्ञता के द्योतक हैं।

केवल पद बना देना और उस पर किसी राग रागिनी का नाम लिख देना इसका द्योतक नहीं कि उसका रचयिता उन्हें उस स्वर से गा सकता था। यहाँ केवल कहने का अभिप्राय यही है कि तुलसी की संगीतज्ञता प्रमाणित करने के हेतु हमें पदों के ऊपर लिखे हुये रागों के नाम का ही एक मात्र सहारा नहीं लेना चाहिये। हमें उनकी अन्तरंग परीक्षा करके इस प्रश्न को हल करना है। आइये विनय पत्रिका के एक पद की विवेचना करके देखें कि गोस्वामी जी की रचनायें उनकी संगीतज्ञता को कहाँ तक प्रमाणित करती हैं।

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥
दीन सब अंग हीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ॥
बूझि हैं सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरियौ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जन की किए बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुनगन गाइ॥[1]

यह पद केदारा राग में गाया गया है। जो दीपक राग की एक रागिनी है। कबहुँक और कबहुँ पर्यायवाची शब्द हैं। ताल रूपक है व पद सम है। यदि कबहुँक के स्थान पर कबहुँ रख दिया जावे तो राग के प्रवाह में एक अप्रिय रुकावट उपस्थित होगी या स्वर के अभ्यासियों को तत्काल खटकेगी। कबहुँ का कबहुँक किया जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उसके रचयिता राग के रूप से परिचित थे। केदारा गाने का समय अर्द्ध रात्रि है। ऊपर के पद में गाने के समय का भी ध्यान रक्खा गया है। अर्द्ध रात्रि के समय जब राम के समीप केवल सीता ही होंगी और राम जब राज काज करके घरेलू कार्यों के हेतु खाली होंगे। तुलसीदास जी ने राम को अपनी याद दिलाने का यही समय ठीक समझा है।

---

१ विनयपत्रिका पृ० ४०२

मध्यम और सम्वादी है षड्ज। उत्तरांग प्रधान होने के कारण इसका गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर माना जाता है। इस राग में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। म मे म मे यह स्वर समुदाय बार बार सुनाई देता है। इस स्वर समुदाय तथा नि रे, म म ग इन स्वरों से यह राग तत्काल ही पहचानने में आ जाता है। इसी प्रकार गोस्वामी जी की गीतावली और विनयपत्रिका में बसंत भैरव रामकली भैरवी बिलावल टोड़ी सारंग मल्लार आदि रागों की भी योजना मिलती है जिनसे यह भली भाँति पता चलता है कि गोस्वामी जी संगीत कला के कितने भारी पण्डित थे। जो सरस गायक होता है वही संगीत संबंधी ग्रन्थों की रचना में कृतकार्य हो सकता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ऐसा भास होता है कि जिस राग के अनुकूल जो पद रचा गया है भाव भी उसी के अनुरूप है।

तुलसी का संगीतात्मक काव्य दो प्रकार की विशेषताओं को अपने में समेटे है।

१—भावसंगीत
२—शास्त्रीय संगीत

गीतावली पार्वती मंगल में जो सोहर बधावा होली आदि से सम्बन्धित पद हैं वे लोक सांस्कृतिक गीत हैं। इनके अतिरिक्त गीतावली विनयपत्रिका और मानस में भी शास्त्रीय संगीत के तत्व सन्निहित हैं। उस समय तत्कालीन भारतीय समाज में ग्राम्य गीत सोहर का प्रचलन था। तुलसी ने राम जन्म महोत्सव में सोहर का व्यवहार कर अपनी लोक रुचि को अभिव्यक्त किया। शास्त्रीय संगीत से कवि पूर्ण परिचित थे दुरूहता प्रचलन की दीवारों को मिटा दिया। मानस की यह अभिव्यक्ति कितनी सरस है।

गावें बजावें बधुरि रघुराई। भूप्पाभुर पर्वत निधिराई।।[1]

'झूमका छन्द भी लोकगीत है। संगीतात्मक काव्य में लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत दोनों को अपनाकर कवि ने अपना समन्वयवादी दृष्टिकोण स्थापित किया है।

कवितावली का झूलना आकर्षक ताल तरह से पढ़ा जाता है। किन्तु दिगम्बर जी ने मानस का कुछ भाग भी गाया था। यह मानस के संगीत की क्या कम विशेषता है। मानस और बरवैरामायण जिस राग में गाये जाते हैं उस राग में जो मैंने स्वयं दिखा या मानस गाते सुना है। यह भी स्पष्ट है कि संगीत के माध्यम से भक्ति का व्यापक स्पर्श करने वाला के हेतु तुलसी के गेय पदों का अपार महत्व है। गीतावली और विनयपत्रिका के सभी पदों में मधुर संगीत गूंज रहा है। जिसने विरक्त व्यक्तियों को भी प्रेमोन्मत्त कर डाला है। विनयपत्रिका का संगीत प्रत्येक व्यक्ति के हृदयतंत्री को झनझनाकर एक अपूर्व आनन्द की सृष्टि करता है।

---

१ मा० वि० पृ० ११४

यद्यपि गीति Lyrics आधुनिक युग की देन माना जाता है। फिर भी गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका में शुद्ध गीति भावना का नमूना रक्खा है। इतना ही नहीं यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। अतः इसमें गीत काव्य के विकास के हेतु अच्छा अवसर मिला है। मानस की चौपाइयाँ अवश्य राग रागनियों से सम्बन्धित हैं।

गोस्वामी जी की कृतियों में हम संगीत का माधुर्य भरा हुआ पाते हैं। वे भक्त थे कवि और साथ ही साथ विनोदी थे। उनमें हमें कोमल कलाओं का एक अद्भुत सामंजस्य देखने को मिलता है।

इनकी गीतावली और विनयपत्रिका में जितने भी राग रागिनियां के उदाहरण हैं वे इनकी संगीत शास्त्र की मर्मज्ञता के द्योतक हैं।

केवल पद बना देना और उस पर किसी राग रागिनी का नाम लिख देना इसका द्योतक नहीं कि उसका रचयिता उन्हें उस स्वर से गा सकता था। यहाँ केवल कहने का अभिप्राय यही है कि तुलसी की संगीतज्ञता प्रमाणित करने के हेतु हमें पदों के ऊपर लिखे हुये रागों के नाम का ही एक मात्र सहारा नहीं लेना चाहिये। हमें उनकी अन्तरंग परीक्षा करके इस प्रश्न को हल करना है। आइये विनय पत्रिका के एक पद की विवेचना करके देखें कि गोस्वामी जी की रचनायें उनकी संगीतज्ञता को कहाँ तक प्रमाणित करती हैं।

> कबहुँक अंब अवसर पाइ।
> मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥
> दीन सब अंग हीन छीन मलीन अघी अघाई।
> नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ॥
> बूझि है सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ।
> सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
> जानकी जगजननि जन की किए बचन सहाइ।
> तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुनगन गाइ॥[1]

यह पद केदारा राग में गाया गया है। जो दीपक राग की एक रागिनी है। कबहुँक और कबहुँ पर्यायवाची शब्द हैं। ताल कहरवा है व पद सम है। यदि कबहुँक के स्थान पर कबहुँ रख दिया जावे तो राग के प्रवाह में एक अप्रिय रुकावट उपस्थित होगी जो स्वर के अभ्यासियों को तत्काल खटकेगी। कबहुँ का कबहुँक किया जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उनके रचयिता राग के रस से परिचित थे। केदारा गाने का समय अर्द्ध रात्रि है। ऊपर के पद में गाने के समय का भी ध्यान रक्खा गया है। अर्द्ध रात्रि के समय जब राम के समीप केवल सीता ही होंगी और राम जब राज काज करके अनेक कार्यों के हेतु खाली होंगे। तुलसीदास जी ने राम को अपनी याद दिलाने का यही समय ठीक समझा है।

---

१ विनयपत्रिका पृ० ४७२

रागों का सम्बन्ध रसों से भी होता है। केदारा करुण शृंगार और शांत रस का राग है। ऊपर के पद में करुण रस स्पष्ट झलक रहा है।

केदारा हेमन्त ऋतु का राग है। रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से भी होता है। ऋतुओं का प्रभाव मानव के स्वभाव पर पड़ता है। ग्रीष्म ऋतुओं का भी प्रभाव मानव के स्वभाव पर भी पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य प्रायः शांत सुखी और दूसरों से सहानुभूति रखने वाला होता है। ऊपर के पद की शब्द योजना भाव राग रस और ऋतु पर अच्छी तरह ध्यान देने पर यह निश्चित तौर से कहा जा सकता है कि रचयिता केवल गान ही नहीं जानते थे अपितु उसके बाह्य उपकरणों से भी परिचित थे। अब एक पद और लीजिए।

सीय स्वयंवर माई दोउ भाई आए देखन
सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन
प्रेम पुलकि तनु मनहुँ मदन मंजुल पेखन
निरखि मनोहरताई सुख पाई कहैं एक एक सों
भूरि भाग हम धन्य आलि ए दिन ए छन
तुलसी सहज सनेह सुरंग सब
सो समाज चित चित्रसार लागी लेखन ॥[1]

यह कान्हड़ा राग में है। पहले चरण में 'मा' पर दूसरे 'ने' पर सम है। और ई पर हल्का आघात है।

दूसरे चरण में सुनत शब्द से ही उठान है। सुनत चली प्रमदा यह शब्द इस क्रम से बैठाए गये हैं कि वे सब स्वर के उठान में सहायक हो रहे हैं। स्वर शास्त्र से अनभिज्ञ व्यक्ति 'प्रमदा सुनत चलीं' लिख सकता था। जो राग के स्वाभाविक प्रवाह में रुकावट उत्पन्न कर देता। और यह सरसता भी न आती जो 'सुनत चलीं प्रमदा' के द्वारा आई है। एक उदाहरण और लीजिए।

सजनी है कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ।
सील रूप आगार।[2]

यह असावरी राग का पद है। यह तीन ताला है। पहले चरण में है पर सम है और 'नी' पर आघात है और 'मा' पर सम है।

दूसरा चरण अन्तरे का है। अन्तरा प्रथम सम ही से उठा है। 'मा' पर फिर सम है। बीच में लघु वर्णों की आवश्यकता है। कमलनि के 'ल' से स्वर में मधुरता आ गई है। 'कमलनि' का कोमलनि किया जा सकता था पर 'क' से राग के

---

१ गीतावली—पृ० १०८
२ गीतावली—पृ० ११७

स्वाभाविक सुमधुर प्रवाह की स्निग्धता कम हो जाती। इस पद की शब्द योजना में इसके रचयिता की स्वानुभूति प्रतिबिम्बित हो रही है।

जिनको नाद विद्या से परिचय है वे तुलसी के पदों को गाकर सहज में ही अनुमान कर सकेंगे कि तुलसी को संगीत शास्त्र का केवल पुस्तकों का ही ज्ञान न था। वे स्वर ताल और लय से पूर्ण परिचित थे।

संगीत में गान और नृत्य दोनों का ही समन्वय पाया जाता है। तुलसीदास जी ने कुछ ऐसे भी पद लिखे हैं जिन्हें स्वर सहित गाने से गायक और श्रोता दोनों में ही नृत्य की भावना जागरित हो उठती है। जैसे :—

सुनो भैया भूप सकल दै कान।
बज्ररेख गजदसन जनक-पन वेद-विदित जग जान ॥[1]

राग मारू का यह पद ऐसे अवसर का है जब चारों ओर मण्डलाकार बैठे हुये राजाओं से जनक के दूत चारों ओर मुंह फेर कर धनुष तोड़ने के हेतु कह रहे हैं। अतएव जैसा प्रसंग है उसी के अनुरूप यह पद योजना भी है।

शास्त्रीय रागनियों के अतिरिक्त तुलसीदास जी ने लो समाज में गाये जाने वाले गीतों का भी अच्छा खासा अध्ययन किया था। और उन्होंने जानकी मंगल और पार्वती मंगल और राम लला नहछू की रचनायें इन्हीं गीतों में की हैं। अतः गोस्वामी जी संगीतशास्त्र के भी पूर्ण मर्मज्ञ थे।

तुलसी की कला में चित्रात्मकता—

गोस्वामी जी की यह विशेषता है कि वह किसी भी चित्र घटना और भाव का हमारे समक्ष सजीव रूप में उपस्थित कर देते हैं। इस सजीवता के ही कारण उनके काव्य में चित्रात्मकता आ गई है। यह भी उनकी कला सम्बन्धी विशेषताओं में से एक है। निम्नलिखित चार प्रकारों में हम महाकवि की चित्रात्मकता सम्बन्धी कला पर एक-एक करके विचार कर सकते हैं —

१—घटनाओं में चित्रात्मकता
२—पृष्ठभूमि में चित्रात्मकता
३—चरित्र चित्रण में
४—भाव चित्रण में

घटनाओं में चित्रात्मकता—

घटना है विश्वामित्र के आगमन की। वह आकर जैसे ही यह कह देते हैं कि :—

अनुज समेत देहु रघुनाथा।
निसिचर बध मैं होब सनाथा।[2]

---

१ गीतावली—पृ० ११५
२ मा० मा० पृ० १४९

वैसे ही महाराजा दशरथ के इस वचन पर तुषारपात सा हो गया। वह एक दम बोल उठे —

> चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥
> मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
> देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
> सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥[1]

देखिये तो राम के प्रति दशरथ का जो प्रेम था वह इन पंक्तियों में कैसा सजीव हो उठा है। इससे यह वर्णन चित्रात्मक हो गया है। दशरथ के महान वात्सल्य का चित्र हमारे मानस पट पर अंकित हो जाता है।

राज्य के बदले राम को आज्ञा हुई वन की। सीता बन्धु समेत प्रभु सबको प्रबोध करके चल दिये। पर इस घटना के कारण शोक का कैसा सजीव चित्र महाकवि इस प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं।

> लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥
> घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
> बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
> राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥[2]

घर श्मशान कुटुम्बी भूत प्रेत हितैषी और मित्र यमराज के दूत हैं। किस प्रकार कविकुल कमल रवि गोस्वामी जी ने शोक का कैसा सजीव चित्र खींच दिया है।

इसी प्रकार घटना है जानकी के विदा के समय की। सीता के भवन पयान से सभी जनक पुरवासी, मातायें पिता यहाँ तक पशु पक्षी भी दुखी हो रहे हैं। महाकवि इस समय के शोक का चित्रण इस प्रकार कर रहे हैं।

> पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारीं॥
> पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥
> पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥
> सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
> ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥
> भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती॥[3]

जानकी ने जिन तोता और मैना को पाल पोस कर बड़ा किया था और सोने के पिंजड़े में रखकर पढ़ाया था वे व्याकुल होकर कह रहे हैं कि वैदेही कहाँ हो। यह लिख कर महाकवि ने शोक का कैसा जागता चित्र उपस्थित कर दिया है।

---

१ मा० बा० पृ० १२६
२ मा० अयो० पृ० ३०६
३ मा० बा० पृ० २११–२१६

अतएव यहाँ सजीव चित्र होने से ही इसमें चित्रात्मकता आ गई है। यह भी महाकवि की महान विशेषता है।

पृष्ठभूमि में चित्रात्मकता—

पृष्ठभूमि के रूप में गोस्वामी जी के नगर वर्णन भी चित्रात्मक हैं। मानस में हम तीन नगरों —

१—जनकपुर
२—लंका
३—अयोध्या

के प्रशस्त वर्णन पाते हैं। जनकपुर वर्णन में भाषा का सौन्दर्य दृष्टव्य है। गोस्वामी जी जनकपुर का वर्णन करते हुए कहते हैं —

> पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥
>
> × × × ×
>
> बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई॥
> चारु बजारु बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी॥
> धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना॥
> चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥
> अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
>
> × × × ×
>
> सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे॥[1]

यह लिखने के बाद इनके घर भी राज महल सरीखे ही हैं लिख कर कवि ने नगर के वैभव और सौन्दर्य वर्णन की इति श्री कर दी है। यह उपर्युक्त वर्णन पढ़ते ही सारा वर्णन सजीव हो उठता है इसी से उसमें चित्रात्मकता आ गई है। इस वर्णन में नगर की पृष्ठभूमि का अंकन बड़ी सुन्दरता से किया गया है। नगर वर्णन का विशद विवेचन प्रबन्ध सौष्ठव और वर्णन पद्धति के अन्तर्गत किया जायेगा। यहाँ संकेत भर किया गया है।

इसी प्रकार तुलसी के प्रकृति वर्णन भी चित्रात्मक हैं। तुलसी के प्रकृति वर्णन पर भी उक्त अध्याय में विस्तार से विचार किया जायगा। यहाँ पर केवल तुलसी के एक प्रकृति वर्णन परक स्थल पर विचार किया जायगा। वह यह है —

> बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
> कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
> बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
> कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥

---

१ मा० बा० पृ० १५०—१५१

कूजत पिक मानहु गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥
मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठी आई॥

× × × ×

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥[१]

वसंत का कैसा सजीव वर्णन है। विशाल वृक्षों से मतलब उसकी है। ऐसा ज्ञात होता है मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिए गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वज पताका के समान हैं; अनेकों वृक्ष नाना प्रकार के फूलों से फूले हुए हैं। मानो पैदल अनेक नाना बाना लिये हुए बहुत से वीरवान् हों। कहीं कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। कोयल कूज रही है मानो मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी घोड़े हैं। तीतर और बटेर पैदल सिपाहियों के झुंड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नहीं हो सकता। पर्वत की शिलायें रथ और जल के झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं जो गुण समूह विरदावली का बखान करते हैं। भौंरों की गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल मन्द सुगन्धित हवा मानो दूत का काम लेकर आई है। इसमें प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत काम की पृष्ठभूमि बनाकर उसके रूप का अंकन बड़ी ही सजीवता से किया है। इसे पढ़ कर काम का चित्र नेत्रों के समक्ष घूम कर उठता है। अतएव यह प्रकृति-वर्णन चित्रात्मक है।

चरित्र चित्रण में चित्रात्मकता—

गोस्वामी जी के जितने भी पात्र हैं सब उन्हीं के समान और कार्य सजीव हैं। यहाँ तक कि गोस्वामी जी ने राक्षसों के भी कार्यों को इस रूप में रखा है जिनमें पूर्ण सजीवता है। दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि गोस्वामी जी के चरित्र चित्रण में सम्पूर्ण चित्रात्मकता का जो परिचय मिलता है वह यह है कि उन्होंने जिस पात्र का भी चरित्र चित्रण किया उसका स्वरूप हमारे नेत्रों के समक्ष सजीव बना दिया। परशुराम का यह वीर वेश पढ़िये —

गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिसबस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठारु कल काँधे॥[२]

१—मा० अरण्य पृ० ३०४

२ मा० बा० पृ० १०६

परशुराम का वीर रूप सजीव होकर हमारे नेत्रों के समक्ष मूर्त्त कर
है। अतः इसमें सजीवता होने से चित्रात्मकता आ गई है। इस प्रकरण में परशुर
के लिये जो तरकश बांधने का उल्लेख किया है उसमें उनके वीर वेश का बड़ा
रूप नेत्रों के सामने आ जाता है। और इससे पाठक के सामने परशुराम के
वेश का एक चित्र सा आ जाता है।

भाव वर्णन में चित्रात्मकता—

गोस्वामी जी के सभी भाव वर्णन उनकी लेखनी से सजीव होकर आये हैं
जिनका विस्तार आगे के विवेचन 'भाव वर्णन' और 'रस निरूपण' शीर्षक के अन्तर
किया जायगा। यहाँ तुलसी की भाव में चित्रात्मकता सम्बन्धी विशेषता को प्र
करने के हेतु केवल एक भाव को विषाद रूप में उपस्थित किया जायगा।

मर्यादा के क्षेत्र में वर्णों की दृष्टि से चाहे द्विज और निषाद में कितना ही भेद
पर हृदय के व्यापार में उनका कोई भी प्रतिबन्ध नहीं। हाँ तो निषाद राम को पहुँ
कर वापस आ गया है। अब उसे सचिव की सुधि लेनी है। सचिव अब भी आस
चाहता है कि राम लक्ष्मण और सीता ने क्या किया। आशा बलवती होती ही है।
सहसा किसी का भी पिंड नहीं छोड़ती। सचिव भी इसी आशा के सहारे चल रहे
थे। किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनकी अन्तिम आशा पर भी पानी फिर गया
अकेला निषाद ही उनके समक्ष आकर खड़ा हो गया तब उनके विषाद का ठिका
न रहा —

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥
नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब, रघुबर बाजि निहारि॥[1]
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें॥
जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥[2]

× × × ×

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥
भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥[3]

× × × ×

---

१ मा० अयो० पृ० १४४
२ मा० अयो० पृ० १४४
३ मा० अयो० पृ० १४५

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु॥[१]

इस प्रसंग में निषाद सुमन्त और तुलसी की जो वार्ता है उसको अभी प्रसन्न ही रखिये। वह तो और भी गूढ़ है। पहले राम के घोड़ों को देख लेने से उसकी गूढ़ता आपही जानी हो जायेगी। फिर आप उसका सहज ही पार भी पा लेंगे। सम्भवतः इसी हेतु कि उसमें उलझन भी कम नहीं है। मन्त्री ने तो राम राम कहकर सांस ली। और अपनी व्याकुलता को इस प्रकार दूर करना चाहा पर इसका प्रभाव यह पड़ा कि राम के वाजियों ने समझ लिया कि राम आ गये फिर क्या था। उनकी दृष्टि भी दक्षिण दिशा में दौड़ पड़ी। पर माया से उन्हें भी धोखा हुआ। परिणाम यह हुआ।

नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।[२]

उनकी इस दशा का प्रभाव निषाद पर इतना गहरा पड़ा कि वह भी व्याकुल हो गया और किसी प्रकार धीरज धरकर सुमन्त को समझाने में लगा। उसने जैसे तैसे सचिव को उठाकर रथ पर रख दिया पर उसमें लगा रथ कैसे चलाया जाता। चलाना चाहते भी हैं तो—

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥[३]

और जैसे तैसे यदि विवशता के साथ चलना भी चाहते हैं तो —

अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें॥[४]

यदि बात यहीं तक रह जाती तो भी कोई बात न थी उनकी दशा तो यह हो गई —

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥[५]

बस उनका हितु तो वही है जो राम लखन और वैदेही का नाम लेता है। उसके बस उनका ऐसा नाता जुड़ जाता है कि उन्हें यह आशा हो जाती है कि उसके द्वारा फिर हमें राम का दर्शन होगा। सचिव और तुरंग की इस दशा को देखकर निषाद भी विषाद के वश हो गया। उसने यह अनुभव कर लिया कि सुमन्त का साथ देना उसके वश का काम नहीं। अतः—

बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग।[६]

---

१ मा० अयो० पृ० १४७
२ मा० अयो० पृ० १४७
३ मा० अयो० पृ० १४८
४ मा० अयो० पृ० १४८
५ मा० अयो० पृ० १४८
६ मा० अयो० पृ० १४९

यहाँ अश्वों की व्यथा को व्यक्त करने के हेतु जो उपमान लाये गये हैं उन पर दृष्टि डालने के पूर्व उनके अनुभावों पर भी विचार कर लेना चाहिये और यह भी जान लेना चाहिये कि अश्वों की वाणी में हिनहिनाने और हिकरने में क्या अन्तर है। गोस्वामी जी ने स्थिति को स्पष्ट करने के विचार से पहली दशा में 'जिमि बिनु पंख बिहंग अकुलाहीं'[1] का उल्लेख किया है और दूसरी दशा में 'बिनुमणि फणिक बिकल जेहि भाँती।'[2] एक रूप में अधीर दशा की व्यंजना है। दूसरे में असमर्थ की। हैं दोनों ही उपमा के रूप में किन्तु दोनों की व्यथा में बड़ा भेद है। पंख कहीं जाने का साधन मात्र है। किन्तु मणि में यह बात नहीं। साँप का बड़ा सर्वस्व है। बीच में वन मृग समदु धामि रथ जोरे का भी उपमान है। यहाँ उपमा नहीं उत्प्रेक्षा है। वन मृग रथ में तो जुत नहीं सकता। उसका मन भी वन की ही ओर भागने को होगा। निषाद को विषाद में ही छोड़ दीजिये उसका विषाद भी शोक ग्रस्त सुमन्त्र के कारण विशेष है। अतः सुमन्त्र को ही परखिये। सुमन्त्र ने जो कुछ अपने आप सोचा उसे एक ओर रखिये और तुलसी ने उसे जिस रूप में बतलाया उसको रखिये तीसरी ओर और देखिये यह कि अप्रस्तुतों के द्वारा यहाँ कौन सा काम लिया गया है। सुमन्त्र के शोक का प्रारम्भ होता है 'धिग जीवन से' और अन्त होता है 'यातना शरीर' में उनको चिन्ता है कि वे ऐसे अभागी जीव हैं जिन्होंने रघुवीर के वियोग में कोई अर्थ प्राप्त नहीं किया। और वे ऐसे हो पतित प्राणी हैं कि राम के वियोग में उनका हृदय विदीर्ण नहीं हुआ। जब उनको अपने जीवन की सुधि आती है तब उनको आगे और से यही दिखाई देता है कि उनको अपयश प्राप्त हुआ। फिर भी उनका प्राण प्रस्थान नहीं करता। न जाने उसे अभी और क्या प्राप्त करना है। मन से भी तो उस समय कुछ न बन पड़ा जब वह कुछ कर सकता था। किन्तु अब यह मन नाना प्रकार की चिन्ता कर रहा है और हृदय तो वज्र ही निकला जो अब भी फट कर दो टुकड़े नहीं हो जाता। अपनी स्थिति तो यह है और कार्य है अवध में पहुँच कर समाचार सुनाना। अवध में जो भी राम से रहित रथ को देखेगा वह देखने में भी संकोच करेगा किसी प्रकार मुँह छिपा कर यदि नगर में पहुँच भी गया तो लोग व्याकुलता से दौड़ दौड़ कर आगे क्या क्या प्रश्न करेंगे। तब अपनी स्थिति यह होगी कि हृदय पर पत्थर रखकर सबका समाधान करना ही होगा। तो क्या मैं इसी हेतु जीवित हूँ। और जैसे तैसे यदि निकल भी गया तो दीन और दुखारी मातायें आकर जब अपने पुत्र और जानकी के विषय में पूछेंगी तो मैं उनसे क्या कहूँगा। कौन-सा सुखद सन्देश उन्हें सुनाऊँगा। क्या यही कह दूँगा कि राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये। बस अब तो इस जीवन का यही सुफल मानना शेष रह गया है। किन्तु राजा दशरथ के प्रश्न पर कौन-सा उत्तर होगा। यही न कि मैंने

---

१ मा० अयो० पृ० ३४४

२ मा० अयो० पृ० ३४४

कुशलपूर्वक रामपुत्रों को बन भेज दिया । क्या इसी कुशल समाचार को सुनाने के हेतु मैं जीवित हूँ किन्तु इसका परिणाम क्या होगा दशरथ का प्राण त्याग। प्रतीत होता है कि अब यह शरीर यातना के ही रूप में रह गया है। अन्यथा कोई भी उपाय नहीं। यदि होनहार ऐसी न होती तो राम के वियोग में यह हृदय फट जाता और यह शरीर क्या इस रूप में बना रहता। सुमन्त्र के जी में जो कुछ बीत रही है उसके व्यक्त करने के हेतु जो उपमान आये हैं वे हैं कृपण सुभट विप्र कुलीन तिय, महतारी और पापी। उधर हम देखते हैं कि उपमेय के रूप में भी जोह नगर, नारि नर सब माता अवध महतारी राम अवनि और राज हैं। तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी ने अप्रस्तुत के द्वारा सुमन्त्र की चिन्ता को भी रूप देने का प्रयत्न किया है। उपमानों में 'रहइ करम बस परिहर नाहू' का अर्थ है कि यह नाथ से प्रसन्न है और कर्म वश ही जी रही है। चाहे तो इसको यहाँ तक ला सकते हैं कि नाह को उसने अपने आप छोड़ दिया है। पर इसके आगे यह कल्पना करना कि वह किसी की घर बसी हो गई है सर्वथा अनिष्ट और अनर्गल है। बात भी यही है कि सचिव ने राम को छोड़ दिया। यह स्थिति उनकी तब होती है जब उनके सामने सुमित्रा का प्रश्न आता है। यहाँ तक तो कोई भी बड़ी बात नहीं थी यह यातना देखना भी सुमन्त्र सह सकते थे। किन्तु इसके आगे उनकी जो अवस्था हुई उसका वर्णन महाकवि के मुँह से सुन लीजिये।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ॥
बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥[1]

इसमें माता कैकयी के द्वारा पिता दशरथ के मारे जाने का संकेत है। इससे जो हानि और व्याधि मन में व्याप्त हुई है वह दशरथ के निधन से चारों ओर ऐसी फैलती दिखलाई दी कि उसकी उपमा यमपुरी से दी गई। सुमन्त्र जिस यातना शरीर का उल्लेख करते हैं वह भी तो अपना भोग यमपुरी में ही भोगेगा। बस यही है अप्रस्तुत विधान का रहस्य जो सुमन्त्र के हृदय की वेदना को साकार बना देता है और उसकी मूर्ति को हमारी दृष्टि में ऐसा लाकर खड़ा कर देता है कि हम उसे कभी भी भूल नहीं सकते। इसके बाद क्या होगा इसे कौन नहीं जानता। अतः उक्त प्रसंग में शोक का भाव कितनी सजीवता से अभिव्यक्त हुआ है। यह अवर्णनीय है। इसमें तो चित्रात्मकता कूट कूट कर भरी है। गोस्वामी जी के चित्रात्मकता सम्बन्धी इतने विवेचन से यह स्पष्ट है कि गोस्वामी जी के चित्रात्मक स्थलों की सबसे महती विशेषता यह है कि उनके द्वारा अंकित प्रकृति भाव बिम्ब, तथा अलंकारिक चित्रों में बिम्बात्मकता आ गई है। अतः इतने विवेचन से यह पूर्णतः स्पष्ट हो गया कि गोस्वामी जी की काव्य रचना में संगीत और चित्रात्मकता दोनों के ही तत्व प्रचुर मात्रा में बड़ी ही सुन्दरता से उपलब्ध हैं जो उनके काव्य को गंभीर महत्व प्रदान करते हैं।

---

१ मा० अयो० पृ० १४५-१४६

छठा अध्याय



अलंकार और ध्वनि सम्बन्धी विशेषताएँ

अलंकार प्रयोग की विशेषतायें—

अर्थालंकार किसी प्रकार के चमत्कार पर आधारित रहते हैं। यह चमत्कार जिन आधारों पर आधारित रहता है वे साम्य विरोध सम्बन्ध आदि हैं। इन्हीं के आधारों पर अलंकारों के विभिन्न वर्ग किये जा सकते हैं।[1] गोस्वामी जी की रचनाओं में निम्नलिखित वर्गों के अलंकारों का प्रयोग विशेष रीति से हुआ है। जैसे—

(१) साम्यमूलक अलंकार—साम्य-का गुण साम्य से सम्बन्धित होते हैं। जैसे उपमा उत्प्रेक्षा रूपक, भ्रम संदेह आदि।

(२) विरोध मूलक—विषमता या विरोध का चमत्कार पूर्ण प्रभावन इन अलंकारों में रहता है जैसे असंगति विषम विरोधाभास आदि।

(३) क्रम या शृंखला मूलक—कारणमाला, एकावली सार आदि।

(४) न्याय मूलक—यथा संख्या काव्यलिंग तद्गुण लोकोक्ति आदि।

(५) कारण कार्य सम्बन्ध मूलक—विभावना हेतूत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति आदि।

(६) विशेष मूलक—अपह्नुति विनोक्ति व्यतिरेक आदि।

(७) गूढार्थ प्रतीति मूलक—पर्यायोक्ति समासोक्ति मुद्रा व्याज निन्दा व्याज स्तुति आदि इन सभी अलंकारों की विवेचना इसी अध्याय में आगे की जावेगी।

गोस्वामी जी की अलंकार योजना बड़ी ही स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण है। उन्होंने अलंकार प्रयोग कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन के हेतु नहीं किया प्रत्युत उनके अलंकार काव्य में भाव के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले और कलात्मक सौन्दर्य की औचित्य पूर्ण अभिवृद्धि करने वाले हैं। इनकी अलंकार योजना इसी कारण बड़ी ही मनोरम और स्वाभाविक बन पड़ी है। उन्होंने उपयुक्त अलंकारों के वर्गों का समुचित रूप से प्रयोग मानस अथवा अपने अन्य ग्रन्थों में *किया है जिनकी विवेचना नीचे की जा रही है।*

परिस्थिति के अनुरूप अलंकारों का प्रयोग—

गोस्वामी जी ने परिस्थिति के अनुरूप ही अलंकारों का प्रयोग किया है। जैसे क्रोध से भरी कैकई राम को वन भेजने पर उद्यत होकर खड़ी होती है। उस

---

१ डा० भगीरथ मिश्र—काव्यशास्त्र—पृ० १६५

समय उसके मर्म और संकल्प की सारी भीषणता गोचर नहीं हो रही है। देश और काल का व्यवधान पड़ता है। इससे गोस्वामी जी उसे रूपक द्वारा प्रत्यक्ष कर रहे हैं।

> अस कहि कुटिल भइ उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
> पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥
> दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा॥
> ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥[1]

पाप और पहाड़ तथा क्रोध और जल में यहाँ अनुगामी धर्म है। पाप में वस्तु प्रतिवस्तु। जैसे नदी के कूल ढहते हैं वैसे ही उसके क्रोध के दोनों पक्ष दो वर हैं। जैसे धारा में वेग होता है वैसे ही हठ में भी है। जैसे भंवर में मनुष्य का निकलना कठिन कर देता है वैसे ही कूबरी के वचन परिस्थिति को और भी विषम एवं उलझन पूर्ण कर रहे हैं। यह सांगरूपक कैकेयी के मर्म की भीषणता को भली भाँति प्रत्यक्ष कर रहा है।

इसी प्रकार चित्रकूट में अपने भाइयों के सहित रामचन्द्र जनक से मिलकर उन्हें अपने आश्रम पर ले जा रहे हैं। वह समाज ऐसे शोक में मग्न हुआ था जिसका प्रत्यक्षीकरण भी रूपक के द्वारा किया जा रहा है।

> आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
> सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथु॥
> बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
> सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥
> बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अबर्त अपारा॥
> केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥
> बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे॥
> आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥[2]

इसमें शोक का रूपक द्वारा जितना सांगोपांग वर्णन हुआ है उससे करुणा साकार हो उठी है। ऐसा शोक जिसने ज्ञान और वैराग्य को भी आप्लावित कर लिया और जो धैर्य को भी भंग किये दे रहा है। जिसमें ज्ञान विज्ञान आदि सब व्यर्थ हो गए हैं। इसी प्रकार गोस्वामी जी ने सर्वत्र ही परिस्थिति के अनुरूप ही चमत्कारों का प्रयोग किया है।

भाव के अनुकूल और उसका उत्कर्ष वृद्धि के हेतु अलंकार प्रयोग—

भावों का उत्कर्ष दिखलाने और वस्तुओं के रूपगुण और क्रिया का अधिक

---

१ मा० अयो० पृ० ३४८

२ मा० अयो० पृ० ४९६-४९०

तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।[1] शुक्ल जी का यह कथन गोस्वामी जी के अलंकार प्रयोग के लिये सर्वथा सत्य है। यहाँ पर भी हम उनके अलंकार भावों के उत्कर्ष में कहाँ तक योग देते हैं इस दृष्टिकोण से उनकी अलङ्कार योजना पर विचार कर रहे हैं। बरवै रामायण के एक प्रसङ्ग में अशोक के नीचे राम के विरह में सीता को चाँदनी धूप सी लगती है।

दहकनि है उजरिया निसि नहिं घाम। जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम॥[2]

यह निदर्शना अलङ्कार सीता के विरह ताप का उत्कर्ष दिखलाने में सहायक है। इसी कारण सन्ताप की अधिकता असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा द्वारा भी दिखलाई गई है।

जहि बाटिका बसति तँह खग मृग। तजि तजि भजे पुरातन भौन॥
स्वास समीर भेंट भइ भोरेहु। तेहि मग पग न धरयो तेहि पौन॥[3]

सीता की विरह अग्नि यहाँ इतनी तीव्र है कि उनके ताप से विकल होकर जिस वाटिका में वह निवास करती है वहाँ के पशु पक्षी और मृग आदि अपना वह स्थान छोड़ छोड़ कर पुराने घर की ओर भाग गये। इस प्रकार इस उद्धरण में सीता जी की विरह व्यथा साकार हो उठी है। असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा के द्वारा। मरते हुए जटायु से राम कहते हैं कि मेरे पिता से सीता हरण का समाचार न कहना।

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥[4]

यह पर्यायोक्ति राम की वीरता और सुशीलता की व्यंजना में कैसी सहायता करती हुई बैठी है। राम सीता हरण के समाचार द्वारा अपने पिता को स्वर्ग में भी दुखी नहीं करना चाहते। साथ ही अपनी वीरता भी अत्यन्त संकोच और शिष्टता के साथ प्रकट करते हैं। यहाँ राम कैसा अर्थान्तर संक्रमित पद है। प्रस्तुत उद्धरण में दसानन शब्द बड़ा ही कलात्मक और भावपूर्ण है। राम का कथन है कि यदि मैं राम हूँ तो हे जटायु! तुम सीता हरण का समाचार पिता से स्वर्ग जा कर न कहना मैं स्वयं ही रावण के वध का [illegible] और वह शीघ्र ही कुल सहित स्वर्ग में जाकर अपने दसानन दसों मुखों से अपनी करतूत और उसके फलस्वरूप विनाश का हाल दशरथ से कहेगा। दसानन की जगह उसके पर्यायवाची शब्द से भी काम चल सकता था। किन्तु गोस्वामी जी ने यहाँ दसानन लाकर अपनी अलंकार सम्बन्धी कला में एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। दसानन का दूसरा भाव यह भी

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० १२७
२ बरवै—३७—पृ० १६
३ गीतावली—सुन्दर काण्ड—पृ० ३१८ प० सं० २०
४ मा० अरण्य पृ० ४६८

है कि उसको इस मातकों की शक्ति राम के द्वारा उन्हीं के शब्दों में भविष्य में समाप्त हो जायेगी।

राम की बड़ाई का हाल सुनकर इसकी घबराहट हुई उसको आशंका होने लगी कि कहीं यह कवि रावण अधम लंक नहिं लायक कोउ भाल राम्यो' यहाँ आशंका को व्यक्त करने में समस्या और व्यंजना के देश में विशेषोक्ति विचित्र काम दे रही है।

कौशल्या अपने गंभीर वात्सल्य प्रेम का प्रकाश इस पर्यायोक्ति द्वारा जिस प्रकार कर रही है वह अत्यन्त सरल सुबोध होने पर भी बहुत ही स्वाभाविक है।

राघव एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ॥
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाड़िले ते अब निपट बिसारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो॥
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इनको बड़ो अँदेसो॥[1]

जिसके वियोग में घोड़े इतने विकल हैं उसके वियोग में माता की क्या दशा होती यह समझने की बात है।

जासु वियोग विकल पसु ऐसे। कहहु मातु पितु जीवहिं कैसे॥[2]

पर्यायोक्ति का आश्रय लोग स्वभावतः किस अवसर में लेते हैं यह राम का इन शब्दों से आशय सोचना बता रहा है।

नाथ सकल सुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच बर प्रगट न कहहीं।[3]

लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम को जो मानसिक व्यथा या दुःख हो रहा था उसे लक्ष्मण ने उठकर देखा और वे कहने लगे।

हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरे।
पाई संजीवन जागि कहत्यों प्रेम पुलकि बिसराय सरीरे।[4]

इस पर्यायोक्ति से संजीवनी बूटी का प्रभाव भी प्रकट हुआ और राम के दुःख की अधिकता भी। अलंकार का ऐसा प्रयोग सार्थक है।

रावण और अंगद के संवाद में दोनों की व्याज निन्दा बहुत ही अच्छी है। रावण के इस वचन में कुछ बेपरवाही झलकती है।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धरम निपुनाई॥[5]

---

१ गीतावली—अयो० काण्ड—पृ० २०९ सं० नं ८७
२ मा० अयो० पृ० ३४८
३ मा० बा० पृ० १४५
४ गीतावली लंका कांड—पृ० ३९३ सं० नं० १४
५ मा० लं०—पृ० ५०२

शब्दों का आदमी के हाथ में पड़ कर नाचना दुर्गता नित्य प्रति देखी जाने वाली बात है। संशय के इन नीचे लिखे वचनों में कैसा पुष्ट व्यंग्य है।

नाक कान बिनु भगिनि निहारी। क्षमा कीन्ह तुम धरम बिचारी।
लाजवंत तुम सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥[1]

इस प्रकार गोस्वामी जी की अलंकार योजना सर्वत्र भावों के उत्कर्ष में सहायक रही है।

सादृश्य मूलक अलंकारों के प्रयोग में चमत्कार——

सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा उत्प्रेक्षा रूपक भ्रम सन्देह आदि आते हैं। अतएव इस प्रकरण के अन्तर्गत इन्हीं अलंकारों पर विचार करेंगे।

गोस्वामी जी ने उपमा और उत्प्रेक्षा की स्थिति का अन्तर भली भाँति स्पष्ट किया है। जहाँ जहाँ उनका प्रयोग किया है दोनों में क्या भेद है इसे गोस्वामी जी की रचनाओं में देखा जा सकता है। तुलसी ने उत्प्रेक्षा को अधिक महत्व दिया है। उपमायें भी उनकी अनूठी बन पड़ी हैं। जिन्हें देख एक बार हम कालिदास को भी भूल जाते हैं।[2] मानस करक में जो उपमा वीचि विलास मनोरम का उपयोग किया गया है वह निरी उपमा के हेतु नहीं वह तो उपमा मूलक अलंकार के लिये है। उपमा से उत्प्रेक्षा को क्यों अधिक काव्य प्रद गोस्वामी जी समझते हैं इसके चक्कर में पड़ने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने स्वयं दो प्रसंगों में इसका निर्देशन भी किया है। पहले राम के प्रसंग को लीजिए। तुलसी की गीतावली का एक गीत है।[3] इससे जिस बात की ओर हम ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह है 'उपमा एक अभूत भई तहाँ' मनोवांछित छपाने में तुलसी ने मूर्त और अमूर्त उपमा का भेद द्योतन की दृष्टि से 'मनो' का प्रयोग किया है। इसी को सरल ढंग से इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपमा अलंकार में जो रूप उपस्थित किया जाता है वह सृष्टि का अंग होता है। किन्तु उत्प्रेक्षा में यह बात दर्शन नहीं होती। इसमें कवि प्रकृति मात्र से तुष्ट न हो नई प्रकृति वस्तुओं का एकांगत देखना चाहता है। उत्प्रेक्षा में जो 'उत' लगा होता है उसका यही संकेत भी होता है। अच्छा तो उत्प्रेक्षा के 'मनो' और उपमा के 'जिमि' के भेद पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिये। 'जिमि' में जैसा है वैसा मान लेने की आकांक्षा रहती है और 'मनो' में जैसा है नहीं वैसा मान लेने की प्रेरणा सन्निहित

---

१ मा० सं० पृ० ६५

2. "Tulsidas, although not averse to using the conventional language of Indian poets in many passages, it rightly praised because his narrative teems with similes drawn not from the traditions of the Schools but from nature herself and better than Kalidas at his best.

V A Smith—Akbar the Great Moghul—Page 470

३ गीतावली बा० पृ २६२ सं० सं २३

रहती है। अतः कहा जा सकता है कि उपमा मानी हुई बात में होती है और उत्प्रेक्षा बात को मानने के हेतु होती है। जो है नहीं किन्तु जो हो जावे तो कितना बढ़िया और हृदय ग्राही हो यही उत्प्रेक्षा का मूल विषय है।

नील जलद पर उडगन निरखत। तजि स्वभाव मनु तड़ित धसाये ॥[1]

'तड़ित' का स्वभाव क्या है चंचलता ही न। कहा जा सकता है कि स्वभाव को छोड़कर जैसे 'तड़ित' ने छुपा लिया में क्या आपत्ति है। कवियों की यह परिपाटी सी रही है कि उत्प्रेक्षा के साथ साथ वे कहीं उपमा का भी प्रयोग कर जाते हैं। और उपमा के साथ साथ उत्प्रेक्षा का भी। अलंकार शास्त्री उनकी भावना के उदार पक्ष को न समझकर उनकी रचना में भी दोष निकालते हैं। पर ऐसा करना ठीक नहीं एक वितण्डा है। यहाँ भी उपमा मिश्रित उत्प्रेक्षा है। गोस्वामी जी अब क्या किस आँख से देखते हैं इसे देखना हो तो उनकी यह चौपाई पर्याप्त है।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥
अरुन पराग जलजु भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ॥[2]

पराग जलजु ससि और अहि किसके उपमान हैं इसे कहने की अभी आव श्यकता नहीं। तुलसी इस दृश्य में इतने मग्न हैं कि इसे छोड़ कर कहीं जाना ही नहीं चाहते। और यह भी चाहते हैं कि कोई महत्व भी अप्रकट नहीं न जाने पावे। फलतः उपमेय और उपमान को इस रूप में रख देते हैं कि हम उसे रूपकातिशयोक्ति के रूप में झट ग्रहण कर लेते हैं। इतना ही नहीं यह तो तुलसी की प्रतिभा के हेतु बड़ी ही तुच्छ बात है इसमें जो 'लोभ अमी' का विधान किया गया है। वह फल ही इस उत्प्रेक्षा को सफल बना रहा है। और साथ ही आपत्ति कर रहा है कि तुलसी की वाणी कवि की वाणी नहीं सरस्वती की वाणी है। यहाँ जिस अमृत का लोभ दिखलाया गया है वह राम के जीवन से कभी भी पृथक नहीं हुआ। यदि पृथक भी हुआ तो यह साथ घटा नहीं अपितु बढ़ा ही है। वहाँ तो यह कथा थी कि सीता को आशंका हुई थी उनके नूपुरों में भी कवि के हृदय में मुखर होकर कुछ कह दिया। इमहि सीयपद जनि परिहरहीं।[3] और यहाँ यह परिस्थिति आ गई कि हम कहीं और तुम कहीं। अर्थात् सीता हरण के उपरान्त राम और सीता का वियोग हो गया। परिणाम रूप में राम की जो वेदना अपनी उसका विवेचन भाव पक्ष और रस निरूपण वोर्षक के अन्तर्गत किया जावेगा। यहाँ भी तुलसी ने रूपकातिशयोक्ति से विशेष काम लिया है। यहाँ दिखलाना यह है कि अभी माता को बन यात्रि के समय जो चन्द्रमा नूपुरों और रंक दिखलाई देता है वही आज परिस्थिति के प्रभाव से राम को केसरी के रूप में भासित हुआ और राम ने भी उनसे यह पाठ पढ़ा कि मत माना का विश्वास हो

---

1 गीतावली बा० पृ० २८२ पं० सं० ७१
2 मा० बा० पृ० २२१
3 मा० अयो० पृ० २९०

गया और उससे यह मुक्ताहल राम सभी को सीता का शृङ्गार बना पर है यह कथक का प्रसंग ही।

गोस्वामी जी की उपमा मर्यादा की परिधि में बँधी हुई मिलती है। अपने राम के लिए महाकवि ने चन्द्रमा की ही उपमा सर्वत्र चुनी। चन्द्रमा पूर्व दिशा में निकलता है तो राम भी कौशिल्या रूपी पूर्व दिशा से उदय हो रहे हैं।

बंदउँ कौसिल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची।।
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू।।[1]

यह रामचन्द्र उदय तो कौशिल्या रूपी पूर्व दिशा से हुए अब उन्हें प्रकट भी होना चाहिये। प्रकट भी हुए पुष्पवाटिका में।

लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।[2]

जब राम रूपी चन्द्र प्रकट हुआ तो उसे पूर्ण रूप में कहीं उदय भी होना चाहिए पूर्ण उदय भी हुआ। कहाँ? धनुषयज्ञ वाले प्रकरण में—

प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भय तारे।[3]

जब राम विवाह कर आये तब भी गोस्वामी जी अपने रामचन्द्र को नहीं भूले।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचन्द्र मुख चन्द्र निहारी।।[4]

राम लक्ष्मण और सीता तीनों ही वन मार्ग में पैदल चल जा रहे हैं तब भी यहाँ राम के हेतु चन्द्र की उपमा मिलती है।

आगें राम लखन बने पाछें। तापस बेस बिराजत काछें।।
उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही। जनु बिधु बुध बिच रोहिनि सोही।।[5]

तथा रामचन्द्र जब १४ वर्ष उपरान्त अवध में लौट कर आये तब भी महाकवि ने राम के लिए चन्द्र की उपमा लिख कर ग्रन्थ का उपसंहार किया।

नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भय बिगसित भई निरखि राम राकेस।[6]

अवध में राम राज्य रस अंत में भाग लेने वाली दो स्त्रियाँ हैं। मंथरा और

---

१ मा० बा० पृ० १६
२ मा० बा० पृ० १६३
३ मा० बा० पृ० १७१
४ मा० अयो० पृ० २५४
५. मा० अयो० पृ० ३११
६ मा० उत्तर पृ० ६६६

कैकेयी । उपमा सम्राट बाबा के लिये ही अलग अलग उपमाओं का विधान कर रहे हैं। कैकेयी के लिये सांपिनि और मंथरा के लिये 'किराती'।

कैकेयी (उपमा)—

मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई ।[1]

मंथरा (उपमा)—

देखिमातु मनु कुटिल किराती । जिमि गव तकई लेउँ केहि भाँती ।।[2]

किराती शहद लेती है इससे मक्खी दुखी होती है। यह उन मक्खियों की जान नहीं लेने वाली नहीं अपितु व्याकुलता ही उत्पन्न करती है और इसीलिये उसके लिये किराती और कैकेयी चूँकि दशरथ को जान लेने वाली है इस कारण उसके हेतु सांपिनि की उपमा यह है गोस्वामी जी की उपमाओं की सार्थकता। जो भी उपमा दी वह या तो युक्त वस्तु के हेतु नहीं अपितु उनके अन्दर ऐसे गूढ़ विषय हैं जो सोच से ही ज्ञात हो सकते हैं।

इसी प्रकार सीता को जब रावण हरण किये लिये जा रहा है तो गोस्वामीजी ने दो विभिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न उपमायें दी हैं। जब गृद्ध राज जटायु ने जानकी को रावण के द्वारा हरी हुई देखा तो कपिला गाय की और हनुमान आदि वानरों के समीप जानकी ने अपनी वस्तु गिराया तो व्याध के वशीभूत मृगी की उपमा। शिकारी जब शिकार करने जाता है तो उसे कोई रोकता नहीं। सुग्रीव आदि ने भी देखा कि कोई आकाश मार्ग से विलाप करती हुई जा रही है किन्तु हस्ताक्षेप नहीं किया। इसीलिये यहाँ शिकारी और मृगी का उदाहरण है।

करति बिलाप जात नभ सीता । व्याध बिबस जनु मृगी सभीता ।।[3]

कोई सज्जन किसी सीधी गाय को कसाई के हाथ में जाती देख कभी भी मौन न रहेगा। गीध भी जानकी को कपिला गाय के रूप में रावण रूप कसाई के हाथ में देख मौन न रहे और उसकी रक्षा के निमित्त प्राण तक दे दिये। इसीलिये यहाँ कपिला गाय और कसाई का उदाहरण है।

जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई ।[4]

विदाई का दृश्य है जनक बारात को विदा कर रहे हैं। तब महाकवि सम्राट ने उत्प्रेक्षा की —

सदल सकल मुनि सब बिलखाने । मनहु सांझ सरसिज सकुचाने ।।[5]

---

१ मा॰ अयो॰ पृ॰ २६६
२ मा॰ अयोध्या पृ॰ २६१
३ मा॰ अरण्य पृ॰ ४६६
४ मा॰ अरण्य पृ॰ ४६५
५ मा॰ बा॰ पृ॰ ६१२

यहाँ 'सोम सरसिज' को लिया गया वह भी भावपूर्ण है। कमल सूर्य के अस्त होने पर सम्पुटित होता है। दशरथ भी सूर्य वंशी हैं और सूर्य अस्त होता है पश्चिम में और वे सूर्यवंशी दशरथ भी पश्चिम की ओर अयोध्या में जा रहे हैं। जनकपुर से अवध पश्चिम में है। और दशरथ के जाने से कमल रूप जनक पुरवासी बड़े दुखी हैं कैसी सुन्दर उर्ध्व का अमित उपमा है। जो गोस्वामी जी की कला में सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर रही है।

कुशल कवि रूपक के द्वारा ही रस को खड़ा करते हैं। और उसको भली भाँति मन में जमा भी देते हैं। अब उनकी करुणा और स्नेह की सरिता को भी देख लीजिये। प्रसंग चित्रकूट ही का है जो कठोर 'चित्रकूट' पहले कोमल बना था वही अब आकुल अम्बुधि बन गया है।[1] इस सांग रूपक में गोस्वामी जी ने जो 'मगन उठेउ अम्बुधि अकुलाई' की उत्प्रेक्षा कर दी उससे काव्य की गति बढ़ी अथवा मन्द पड़ी इस की मीमांसा में हम नहीं पड़ते। हमारी दृष्टि में कोई भी सहृदय इसे अपने आप ही समझ सकता है कि साहित्य लेखा जोखा का नहीं खाता नहीं उसमें तो बीच-बीच में अनेक भाव भी उठते बैठते और बढ़ते रहते हैं और उनके उल्लास में इतना अवकाश ही नहीं रहता कि हम किसी काल तक चुपचाप किसी आवेग का लेखा जोखा करते रहें और उनकी तरंगों से टकराकर तटस्थ पड़ रहें।

तुलसी ने सरिता का रूपक बहुत बाँधा है और उनको भिन्न-भिन्न रूप में दिखलाया भी खूब है। उन सभी रूपकों पर विचार करना व्यर्थ है। यहाँ अभीष्ट तो यह है कि हम तुलसी के रूपकों के महत्व को समझ लें। राम भवन को छोड़ कर वन में चल पड़े हैं तो तापस वेश में पर भावना राजा की है। इसी से जब वह प्रयाग में पहुँचते हैं तो उन्हें तीर्थराज का वैभव प्राप्त स्वागत होता है।[2] इस रूपक में सिंहासन छत्र और चवर का जो रूप लिया गया है वह देखते ही बनता है। भला जहाँ ऐसा राजा होगा वहाँ दुख दारिद्र्य रह भी कैसे सकता है। राजा जिस सुहावने और अचल गढ़ में बैठा है उस पर तो किसी अन्य का अनुशासन होने से रहा।

क्षितिज पर राम की दृष्टि पड़ी तो मयंक दिखलाई दिया। और उसने कुछ ऐसा उद्दीप्त किया कि राम अपने मंडल के बीच में बोल पड़े।

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक ॥[3]

---

१ मा० अयोध्या पृ० २७६

प्रस्तुत प्रबन्ध में नीचे उद्धरणों में म शब्द राम चरित मानस और टीका के प मादि शब्द टीका के पर्यायवाची हैं और अन्त में पृ० से अभिप्राय पृष्ठ संख्या से है।

२ मा० अयो० पृ० १२०—दो० १५०

३ मा० लं० पृ० २६१

भला राम जैसे वीर को इस उपमा से कैसे सन्तोष हो सकता है। उपमा दूर से देखने की वस्तु है वह अपने आप रूप धारण नहीं कर सकती। किन्तु भाव की पूर्ति तो रूपक से ही खरी उतरती है। अतएव राम ने सतर्क होकर चन्द्रमा पर विचार किया। यहाँ तक तो पुरुष सिंह ने सिंह को देखा और देखा वन चारी सखि केसरी को। किन्तु देखने में सरसता तो इसके आगे आई। जब उन्होंने यह देखा कि यह केसरी मत्त नागों के उन कुम्भों को यों ही नहीं फाड़ता वरन् तो अपनी सुन्दरी रात्रि का शृंगार भी करना होता है और वह रात्रि का ऐसा शृंगार करना चाहता है कि गज मुक्ताओं के बिना उसका काम ही नहीं चलता। आकाश में तारे क्या हैं उन्हीं गज कुम्भ के मुक्ताहल तो। जब मृग अन्धकार का फोड़ कर अपनी प्रिया के हेतु गज मुक्ता निकालता है तो क्या राम भी अपनी प्रिया के हेतु क्या कुछ ऐसा नहीं कर सकते। किया और ऐसा किया कि मत्त गज कुम्भ रावण का विनाश हो गया। तारा का उदय हुआ और सुन्दरी का शृंगार भी हुआ। यह है तुलसी के भाव मग्न रूपकों का भाव सौन्दर्य।

अब हम तुलसी की उपमा की ओर ही रूप में लेंगे और उनके द्वारा यह बतलाना चाहते हैं कि गोस्वामी ने उपमा से भी बड़ा गहरा काम लिया पात्रों को कुंजी उनकी उपमा ही है। वह जो कुछ भी लिखते हैं सोच समझकर ही लिखते हैं उनका कथन है:—

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे।
सेवहिं लखन सीय रघुबीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि॥[1]

इसमें लक्ष्मण को जो अविवेकी पुरुष का उपमेय बतलाया है वह सहसा देखने पर बेतुका-सा प्रतीत होता है पर यदि पूरे चरित्र को लिया जाये तो यह उनके चरित्र में बिल्कुल सत्य उतरता है। लक्ष्मण सीता और राम के सेवक हैं और सेवा उसी रूप में करते हैं जैसे अविवेक पुरुष अपने शरीर की। मानस में न जाने कितने ऐसे स्थल आते हैं जहाँ इस विवेक हीनता के कारण ही राम को उन्हें बरजना पड़ता है। यहाँ तक कि जब राम सीता को छोड़कर मृग वध में निरत होते हैं तब लक्ष्मण को सचेत कर कहते हैं।

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥[2]

पर विचारणीय यह है कि लक्ष्मण ने इसके विपरीत किया गया। जब राम ने उनसे कहा कि तुम जो मेरी बात की उपेक्षा कर यहाँ चले आये यह अच्छा नहीं किया हो सकता है कि मेरे पीछे निशाचरों ने कुछ जाल रचा हो। तब उनसे कुछ कहते ही नहीं बना। हाँ इतना तो अवश्य ही दीनता के साथ कह दिया:—

गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥[3]

---

१ मा० अयोध्या पृ० ३४१
२ मा० अरण्य पृ० ४६२
३ मा० अरण्य पृ० ३६६

इस उपमा के द्वारा तुलसी ने राजा दशरथ और राम के ओजवाले का भी प्रयोग किया है।[1] बस जहाँ कहीं तुलसी में 'ओजमय' दिखलाई है वहाँ सतर्क होकर समझ लेना चाहिये कि तुलसी क्या कहना चाहते हैं। और उनकी उपमा वहाँ क्या कर दिखलाती है। अतः भाव दृष्टि से भी तुलसी की उपमा कुछ कम चोखी नहीं है।

जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय उत्पन्न हो और किसी वस्तु का निश्चय न हो रहा हो वहाँ संदेह अलंकार होता है। अथवा भी धौं इत्यादि संदेह सूचक शब्दों के आने में संदेहालंकार होता है जैसे —

की तुम हरिदासन्ह महं कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥[2]

इसी प्रकार भ्रम अलंकार में भ्रम से किसी वस्तु को मान लेने का वर्णन होता है जैसे —

आरतगिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता ॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥[3]

विरोध मूलक अलंकारों का प्रयोग—

इन अलंकारों में विषमता या विरोध का चमत्कार होता है। जैसे असंगति विषम और विरोधाभास आदि।

जहाँ बेमेल वस्तुओं और घटनाओं का वर्णन हो वहाँ व्याघात अलंकार होता है जैसे —

सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चन्द निसि जैसे ॥[4]

यहाँ चकई और सरद चन्द को बेमल वस्तुओं का वर्णन है अतएव व्याघात अलंकार है।

ऐसे ही असंगति में कारण और कार्य की प्रतिकूलता का वर्णन होता है। जैसे —

और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवंत गति को जग जाने जोग ॥[5]

विरोधाभास में द्रव्य क्रिया गुण अथवा जाति में विरोध की प्रतीति कराई जाती है। जैसे—

गरल सुधा रिपु करहि मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवहि जाही ॥[6]

---

१ मा० अयोध्या दो० २०१
२ मा० सु० पृ० ५४४
३ मा० अरण्य पृ० ४६३
४ मा० अयोध्या पृ० २६३
५. मा० अयोध्या पृ० ३०२
६ मा० सु० पृ० ५४३

शृंखला मूलक अलंकारों के प्रयोग—

इसमें कारण माला, एकावली, और सार आदि अलंकार आते हैं।

जहाँ पर इस प्रकार का वर्णन होता है कि कारण से उत्पन्न कार्य आगे कारण बनता जावे या कार्य का जो कारण है वह कार्य होता जावे वहाँ पर कारण माला अलंकार होता है। जैसे —

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटम्बर रुचिर।

एकावली और सार आदि अलंकारों के उदाहरण गोस्वामी जी की रचनाओं में प्रायः बहुत कम और एकाध ही खोजने पर उपलब्ध हो सकते हैं।

कार्य कारण सम्बन्ध वाले अलंकारों के प्रयोग—

इसमें विभावना हेतूत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति आदि अलंकार आते हैं।

जहाँ किसी घटना के कारण के सम्बन्ध में कोई विलक्षण कल्पना की जावे वहाँ विभावना होती है जैसे :—

सुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥[1]

अतिशयोक्ति में किसी की अतिशय सराहना की जाती है। गोस्वामी जी साधु महिमा के प्रसंग में इस अलंकार का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग कर रहे हैं।

बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥

इसी प्रकार जहाँ किसी वस्तु का हेतु न हो वहाँ उस वस्तु के हेतु की कल्पना की जावे वहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा होती है। इसके दो भेद हैं।

१—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

२—असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है जैसे :—

आवे दलित भरत रिस पागे। मनहु रोष तरवारि उघारी॥[2]

ऐसे ही जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा होती है। जैसे —

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥[3]

न्याय मूलक वर्ग की अलंकार योजना—

इसमें यथा संख्या काव्यलिंग तद्गुण और लोकोक्ति आदि अलंकार प्रयोग प्राप्त हैं।

जहाँ पर युक्ति द्वारा कारण देकर पद या वाक्य के अर्थ का समर्थन किया जाता है वहाँ पर काव्यलिंग अलंकार होता है जैसे —

श्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥[4]

---

१ मा० अयोध्या पृ० ३११

२ मा० अयोध्या पृ० १७९

३ मा० बा० पृ० १८८

४ मा० बा० पृ० ११

ऐसे ही समीपवर्ती वस्तु के गुण को अपना लेने का विशेषता का जहाँ वर्णन होता है वहाँ पर तद्गुण अलंकार होता है।

सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत। हार बेलि पहिरावौं चम्पक होत ॥[1]

इस प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में न्याय मूलक अलंकारों के प्रयोग भी बड़ी ही सुन्दरता से प्राप्त हो जाते हैं।

निषेध मूलक अलंकारों के प्रयोग—

इसमें अपन्हुति विनोक्ति, व्यतिरेक आदि अलंकार आते हैं। जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय उत्पन्न हो और किसी वस्तु का निश्चय न हो रहा हो तो वहाँ सन्देह अलंकार किन्तु जहाँ किसी बात को छिपा कर बहलावे से दूसरी बात कह कर संतोष करा दिया जाता है वहाँ अपन्हुति अलंकार होता है। जैसे —

मोरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥[2]

विनोक्ति अलंकार में प्रस्तुत वस्तु किसी के बिना हीन व रम्य प्रतीत होती है जैसे :—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी ॥[3]

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ विशेषता अथवा न्यूनता का प्रदर्शन किया जावे वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। जैसे :—

कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥[4]

गूढार्थ प्रतीति मूलक अलंकारों के प्रयोग—

इसमें पर्यायोक्ति समासोक्ति व्याज निन्दा व्याजस्तुति आदि अलंकार आते हैं।

जहाँ कोई भी बात सीधे शब्दों में न कह कर हेर फेर अथवा व्यंग्य से कही जावे या किसी बहाने से काम साधा जावे वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है।

---

१ बरवै पृ० १९ छं० सं० १

प्रस्तुत प्रबन्ध में मानस के अतिरिक्त गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थों के सभी उदाहरण तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल भगवानदीन ब्रजरत्न दास प्रकाशक काशी नागरी प्रचारणी सभा तृतीय संस्करण से दिये गये हैं।

२ मा० बा० पृ० १४७

३ मा० अयोध्या पृ० २६४

४ मा० बा० पृ० १६०

राम चरित मानस के जितने उदाहरण इस प्रबन्ध में दिये गये हैं उनमें कुछ उदाहरणों में प्रथम ? उसके बाद कांड की संख्या तथा फिर दोहा की संख्या से अभिप्राय है और ? से अभिप्राय राम चरित मानस से है।

देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥[१]

समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन में अप्रस्तुत का भान होता है जैसे —

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥[२]

इसी प्रकार जहाँ प्रत्यक्ष वर्णन से तो निन्दा की प्रतीति हो पर परोक्ष रूप से स्तुति अभिप्रेत हो वहाँ व्याज स्तुति होती है। उदाहरण —

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवन भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥[३]

इसके विपरीत जहाँ पर स्तुति करने के विपरीत भी वास्तव में निन्दा का ही प्रदर्शन हो वहाँ व्याज निन्दा होती है। जैसे :—

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा ॥[४]

इस प्रकार इन सभी विविध वर्गों के अलंकारों के प्रयोग गोस्वामी जी की रचनाओं में बड़ी सुन्दरता से पाये जाते हैं।

अनेक अलंकारों के बहुरूपी प्रयोग—

गोस्वामी जी की कला में अनेक अलंकारों के बहुरूपी प्रयोग देखते ही बनते हैं। यहाँ इस विषय के एकाध उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पुष्पवाटिका में गोस्वामी जी ने एक स्मरण अलंकार में इस प्रकार से उत्प्रेक्षा का भी सन्निवेश कर उपमा के साथ इस स्मरण को अभिव्यक्त कर अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥[५]

इसी प्रकार कैकयी के कोपभवन के प्रकरण में गोस्वामी जी ने रूपक में उपमा उत्प्रेक्षा अलंकारों का सन्निवेश किया है।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनी बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥[६]

---

१ मा० बा० पृ० १६४
२. मा० बा० पृ० १६३
३ मा० बा० पृ० ६१
४ मा० सु० पृ० ३३६
५. मा० बा० पृ० १६१
६ मा० अयो० पृ० २०८–२०९

इस प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में अनेक अलंकारों के अनूठे प्रयोग मिलते हैं। जैसे उपर्युक्त उदाहरणों में स्मरण के साथ उत्प्रेक्षा और द्वितीय में रूपक के साथ उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों के प्रयोग। इस प्रकार के प्रयोग से गोस्वामीजी की कला सौंदर्य से पूर्ण हो उठी है।

तुलसी के अलंकार प्रयोग की विशेषता—

गोस्वामी तुलसीदास अलंकार शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। जिसका अधिकांश परिचय हमें इस विवेचन में प्राप्त हो चुका है। सारे रामायण में गोस्वामी जी ने बड़े ही ललित ढंग से छोटे छोटे अलंकारों का वर्णन किया है। सीता का सौंदर्य और विरह वर्णन आदि अद्भुत अलंकारिक सौंदर्य से परिपूर्ण है।

गोस्वामी जी की अलंकार योजना के इस विविध उदाहरणों को देखते हुये यह सभी स्वीकार करेंगे कि उन्होंने अलंकारों का प्रयोग कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन के हेतु नहीं किया। प्रत्युत उन्होंने कहीं तो उन्हें भावोत्कर्ष का सहायक बनाया है और कहीं वस्तुओं के रूप गुण क्रिया आदि की अनुभूति को तीव्र और सजग करने का साधन। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात और भी है वह यह कि तुलसी का अलंकार विधान सादृश्य में कहीं भी अद्भुत नहीं रहा है। इसी से उनकी अलंकार योजना प्रायः उपदेश समन्वित ही मिलती है। इस प्रकार गोस्वामी जी का अलंकार विधान बड़ा ही मनोरम बन पड़ा है। वर्ण्य विषय भी इन अलंकारों के कारण खिल उठा है। गोस्वामी जी की रचनाओं में अलंकार लाने का प्रयास नहीं किया गया है। अपितु वह स्वतः ही आ गये हैं। इसी से उनमें स्वाभाविकता भी आ सकी है। उनके अलंकार कथा और भाव वर्णन में बाधा भी नहीं पहुँचाते। और इनसे वर्णन का प्रवाह भी अनवरुद्ध गति से प्रवाहित होता रहता है। लम्बे-लम्बे सांग रूपकों में भी यही बात पाई जाती है।

सब अलंकार आने पर भी गोस्वामी जी की रचना ऐसी नहीं है कि पहले अलंकार का पता लगाया जावे तब अर्थ खुले। जो अलंकार का नाम तक नहीं जानते वह भी अर्थ ग्रहण का पूरा आनन्द प्राप्त करते हैं। तब बिहारी हैं कि पहले नायिका का पता लगाइये और तब कहीं अलंकार निश्चित कीजिए। और तब इन दोनों की ही सहायता से प्रसंग की कल्पना कीजिये। तब कहीं अर्थ से भेंट हो। गोस्वामी जी की इस अद्भुत विशेषता का कारण है उनकी प्रबन्ध पटुता। गोस्वामी जी की अलंकार योजना की विशेषताओं को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं।

१—अलंकार सहज रीति से आए हैं।
२—लोक जीवन और प्रकृति के देखे सुने उपमान लिए हैं।
३—रूप और क्रिया का सजीव चित्रण करने वाले हैं।
४—भाव की तीव्रानुभूति कराने वाले हैं।
५—प्रेरक और स्फूर्ति देने वाले हैं।

६—उक्ति को स्मरणीय बनाने वाले हैं।

७—भाव सौंदर्य का सृजन करने वाले हैं।

अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग—

यह पहले ही कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी की रचनाओं में अलंकार सहज और स्वाभाविक रीति से आये हैं उन्हें किसी भी प्रकार से काव्य में ठूँसने का प्रयत्न नहीं किया गया है। यहाँ इसे सप्रमाण सिद्ध करने के हेतु हम गोस्वामी जी के द्वारा उपलब्ध उनके मानस में स्मरण अलंकार पर ही विचार करेंगे ताकि यह सिद्ध हो जावे कि गोस्वामी जी की रचना में स्वाभाविक ही अलंकार कैसे आ बैठे हैं।

'जहाँ किसी वस्तु को देखकर स्वप्न के द्वारा,कुछ सोचकर अथवा किसी अन्य घटना का स्मरण हो जावे वहाँ स्मरण अलंकार होता है।

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥[१]

एक और भी स्मरण अलंकार का अति विचित्र उदाहरण लीजिये और उसका रसास्वादन कीजिये।

सबरी देखि राम गृह आये। मुनि के बचन समुझि जिय भाये।[२]

मुनि के बचन समुझि जिय भाये में भाव यह है कि महाराज कुमार राम को प्राप्त करके भक्ति रूपा सबरी को महात्मा मतंग ऋषि के उन वचनों का स्मरण हो आया जो कि उन्होंने पहले बाल्यकाल में ही सबरी से कहे थे कि तुझे श्रीराम का दर्शन होगा। इसलिये सबरी ने जैसे ही राम को देखा उसे मुनि के वचनों की याद स्मरण हो आई। इन चार अक्षरों मुनि के बचन समुझि जिय भाये' में महाकवि ने स्मरण अलंकार उठाकर रक्खा है। यह काव्य का बड़ा ही अनूठा अलंकार है। साधार अर्थ अलंकृति माना के आधार पर अलंकार से युक्त कविता की शोभा होती है। हमारा विचार है कि शायद ही ऐसा कोई अलंकार हो जिसका प्रयोग गोस्वामी जी ने न किया हो। इसी सिद्धान्त के अनुकूल यहाँ स्मरण अलंकार अपनी काव्य श्री को बिखेर रहा है। यों तो साहित्यकार महाकवियों ने बड़े ही सुन्दर स्मरण अलंकारों की सृष्टि की है। अर्थात् अनेकों प्रकार से स्मरण हो जाने का दृश्य खींचा है किन्तु गोस्वामी जी ने जैसे सुन्दर अलंकारों का वर्णन किया है वह अद्भुत और सूक्ष्म भी है। एकाध स्थानों पर तो गोस्वामी जी ने इस अलंकार में वह चमत्कार दिखलाया है जहाँ अन्य कवियों की गति होना ही कठिन है। किन्तु यहाँ गोस्वामी जी के स्मरण अलंकार पर तो पीछे से विचार किया जावेगा। पहले अन्य महाकवियों द्वारा रचित एक आध उदाहरण में इस अलंकार की सौन्दर्य छटा का अवलोकन कीजिये।

---

१ मा० बा० पृ० १९९

२ मा० अरण्य पृ० ४००

भगवान कृष्ण द्वारा भेजे सन्देश में ऊधोजी ने गोपिकाओं को ज्ञानोपदेश दिया। इस उपदेश को सुनने के पश्चात् श्रीकृष्ण के प्रेममय रूप धारण करने वाली गोपिकाओं ने जो उत्तर ऊधो को दिया वह बड़ा ही सुन्दर स्मरण अलङ्कार में प्रस्तुत किया गया है। गोपिकायें कहती हैं—

तत् किं मिथः स्मरति यासु तदा प्रियाभि । वृन्दावने कुमुद कुन्द शशाङ्क रम्ये ॥
रेमे क्वणच्चरणनुपुर रास गोष्ठ्या । मस्मा भिरीडित मनोज्ञकथः कदाचित् ॥[१]

अर्थात् जब वृन्दावन में कुमुद, कुन्द आदि के फूल फूले हुए चन्द्रमा की चांदनी छिटी थी तब जिन रात्रियों में रास मंडल बनाकर हम प्रियाओं के साथ उन्होंने विहार किया था। विहार के समय उनके और हमारे चरणों के नूपुर बजते थे और हम उन्हीं की मनोहर गाथायें गाते थे। क्या श्रीकृष्ण चन्द्र भी उन रात्रियों का स्मरण करते हैं। कितना सुन्दर स्मरण अलङ्कार है। अब तुलसी के स्मरण अलङ्कार का एक उदाहरण लीजिये।

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥[२]

दोष बास करि अमुर्नाहि आये । निरखि नीर लोचन जल छाये ॥[३]

यह प्रमाण बड़े ही गूढ़ भाव रखते हैं पर विस्तार भय से इनकी यहाँ विशद व्याख्या नहीं की जा रही है। केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

एक स्मरण अलंकार गोस्वामी जी का यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। जिसके ऊपर हमें गर्व है कि इतनी सूक्ष्म उक्तियों के साथ शायद ही किसी कवि ने स्मरण अलंकार लिखा हो। यहाँ गोस्वामी जी ने अपनी वह कला दिखलाई है जो अपना सानी नहीं रखती। सुमन्त्र राम को वनवास भेज कर वापस आ गये हैं। और दशरथ को इस प्रकार प्रणाम कर रहे हैं।

देखि सचिव जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनाम ।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत कहँ राम ॥[४]

इस दोहे के स्मरण अलंकार के सम्बन्ध में सूक्ष्म भाव यह है कि प्रणाम शब्द के अन्त में म अक्षर आता है और राम का भी अन्तिम अक्षर म है। अतः सुमंत ने दशरथ को प्रणाम किया किन्तु राम रटने वाले महाराज के कान प्रणाम शब्द के अन्त मे म अक्षर को सुनकर विक्षिप्तावस्था में चीख पड़े कहु सुमंत कहँ राम। ध्यान देने के योग्य बात तो यह है कि चौपाई दोहे छन्द की तो बात ही क्या महाकवि सम्राट ने अक्षर राम में स्मरण अलंकार रक्खा है। यह महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी के

१ श्रीमद्भागवत् दशम् स्कंध—अध्याय ४७ श्लोक ४१
२ मा० बा० पृ० १६१
३ मा० अयो० पृ० ३६३
४ मा० अयो० पृ० १४८

अप्रस्तुत विधान की बहुत बड़ी विशेषता है कि उन्होंने एक बहुत बड़ी बात का दृश्य एक प्रसंग में प्रस्तुत कर दिया। अन्य कवियों ने शब्दों और पंक्तियों तथा पूरे छन्द में स्मरण अलंकार रखा है किन्तु गोस्वामी जी ने दो शब्दों में स्मरण अलंकार रखा यही उनकी कला की विशेषता है। प्रसंग में अलङ्कार का आगमन इस बात का परिचायक है कि गोस्वामी जी की रचनाओं में अलङ्कार लाने का प्रयास नहीं किया गया यह सहज और स्वाभाविक रीति से ही आ गये हैं। अलङ्कार लाने का प्रयास पंक्ति में ही सम्भव है। प्रसंग में नहीं। अतः प्रसंग में अलङ्कार आना इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि अलङ्कार महाकवि की कृतियों में सहज ही आ गये हैं। उनके लाने का प्रयास नहीं किया गया।

लोक-जीवन और प्रकृति के देखे सुने उपमान—

गोस्वामी जी ने अपने अलंकार विधान को लोक-जीवन और प्रकृति के देखे सुने उपमान लियों से सजीव किया है। यह भी उनकी अलङ्कार योजना की एक विशेषता है। राम वन मार्ग में प्रयाण करते हैं उस समय के प्रयुक्त उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कार लोक जीवन के देखे सुने चित्र हैं। जैसे अमुक आदि। ऐसे ही गोस्वामी जी ने कौशल्या के गोद भवन में जो सरिता का रूपक बांधा है। जिसकी विवेचना पीछे की जा चुकी है। यह भी प्रकृति का देखा और सुना हुआ ही सजीव चित्रण है। इसी प्रकार महाकवि ने सीता जी की चेष्टाओं की जो विवेचना की है यह भी लोक जीवन के अनुरूप हुई है। उपमा अलङ्कार के माध्यम से—

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥[1]

इसी प्रकार से राम सीता के विवाह में गोस्वामी जी उपमा निमित रूपक के माध्यम से वर द्वारा कन्या के सिन्दूर दान का लोक जीवन का देखा सुना चित्र उपस्थित करते हुए कहते हैं—

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरीं। नेग सहित सब रीति निबेरीं।
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥
अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥[2]

ऐसे ही धनुष भंग में जानकी को धनुष न टूटने के फलस्वरूप जो चिन्ता है उसे का प्रकाश करते हुए गोस्वामी प्रस्तुत दोहे में कहते हैं।

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥[3]

---

१ मा० अयो० पृ० ३२८
२ मा० बा० पृ० २२५
३ मा० बा० पृ० २६०

इस उदाहरण में गोस्वामी जी ने सीता जी के संकोच की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना की है। इसमें सीता जी की चिन्ता को रूप देने के हेतु गोस्वामी जी ने जो उत्प्रेक्षा अलङ्कार के माध्यम से जो उपमान मीन और चन्द्र के लिये हैं वह लोक के देखे सुने प्रकृति चित्र हैं जिनसे काव्य में सहज सरसता और कला में प्रभावात्मकता था गई है।

रूप और क्रिया के सजीव चित्रण—

रूप—रूप और क्रिया दोनों का अनुभव तीव्र करने के हेतु अधिकतर सादृश्य मूलक उपमा आदि अलङ्कारों का ही प्रयोग होता है। रूप का अनुभव प्रधानतः चार प्रकार का होता है।

१—मधुरंजक
२—भयावह
३—आश्चर्यकारक
४—प्रबोधोत्पादक

इस प्रकार के अनुभव में सहायक होने के हेतु आवश्यक यह है कि प्रस्तुत वस्तु और आलङ्कारिक वस्तु में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो अर्थात् अप्रस्तुत (कवि द्वारा लाई हुई) वस्तु प्रस्तुत वस्तु से रूप रंग आदि में मिलती जुलती हो। और उससे उसी भाव के उत्पन्न होने की सम्भावना हो जो प्रस्तुत वस्तु से उत्पन्न हो रहा हो। अब देखिये तुलसीदास जी के प्रयुक्त अलङ्कार कहाँ तक इन बातों को पूरा करते हैं।

सीता के जयमाल पहनाने की शोभा देखिये—

सतानंद सिष सुनि पांय परि पहराई माल।
सिय पिय हिय सोहत सोभई है॥
मानस ते निकसि विसाल सुतमाल पर।
मनहु मराल पाँति बैठी बनिगई है॥[1]

इस उत्प्रेक्षा में श्री राम के शरीर और तमाल में श्यामता के विचार से ही बिम्बप्रतिबिम्ब भाव है। आकृति का सादृश्य नहीं है। पर मराल पाँति और जयमाल में वर्ण और आकृति दोनों के सादृश्य से बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव बहुत पूर्णता को पहुँचा हुआ है। पर सबसे बढ़कर तो बात यह है कि तमाल पर बैठी मराल पंक्ति का नयनाभिरामत्व कैसे प्राकृतिक क्षेत्र में सौन्दर्य संग्रह करके गोस्वामी जी मेल रखने के लिए लाये हैं।

इसी ढङ्ग की एक और उत्प्रेक्षा है। रणक्षेत्र में राम के दूर्वादल श्याम शरीर पर रक्त की जो छींटें पड़ी हैं वे कैसी लगती हैं:—

---

१ गी॰ पु॰ २६४ बाल कांड छं॰ सं॰ ६४
इस प्रबन्ध में गी॰ शब्द गोस्वामी की ग्रन्थ रचित गीतावली रचना का परिचायक है।

सोभित स्रोट छटान जटे तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी ।
मानो मरक्कत सैल बिसाल में फैलि चली बर बीर बहूटी ॥[१]

इसमें भी रक्त की छींटा और बीर बहूटियों में वर्ण और आकृति दोनों के विचार से बिम्ब प्रतिबिम्ब है । इसी प्रकार देखिये तट पर से खड़े होकर देखने वाले को गंगा यमुना के संगम की छटा कैसी दिखलाई पड़ती है ।

सोहैं सितासित को मिलिबो तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरें ।
मानो हरे तृन चारु चरै बगरे सुरधेनु के धौल कलोरें ॥[२]

एक और सुन्दर उत्प्रेक्षा है ।

लता भवन ते प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥[३]

इस उत्प्रेक्षा में मेघ खण्ड के बीच से प्रकट होते हुए चन्द्रमा का मनोरम दृश्य लाया गया है जो प्रस्तुत दृश्य की मनोहरता के अनुभव को बढ़ाने वाला है । मेघ शीतल करने का गुण भी राम लक्ष्मण और चन्द्रमा दोनों में है ।

रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग बहुत से कवियों ने इस ढङ्ग से किया है कि वह एक पहेली सी हो गई है । पर गोस्वामी जी ने उसे अपनी प्रबन्ध धारा के भीतर बड़े ही स्वाभाविक ढङ्ग से बैठाया है । ऐसे ढङ्ग से बैठाया है कि वह अलंकार जान ही नहीं पड़ती । क्योंकि उसमें अप्रस्तुत भी वन के भीतर प्रस्तुत समझे जा सकते हैं । सीता के वियोग में वन वन में फिरते हुए राम कहते हैं ।

खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥[४]

गोस्वामी जी की प्रबन्ध कुशलता विलक्षण है । जिससे प्रकरण प्राप्त वस्तुयें अलंकार सामग्री का काम भी देती चलती हैं । इससे होता यह है कि अलंकारों में कृत्रिमता नहीं आने पाती । अलंकार के निर्वाह का पूरा ध्यान वे रखते थे । हिरन के पीछे दौड़ते हुए राम को पंचशर कामदेव बनाया है । इसी हेतु देखिए वे किस प्रकार शरों की गिनती पूरी करते हैं ।

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि पानि सरासन सायक लै ।
बन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छबि सो बरनै किमि कै ॥

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ १२७
२ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ १२७
३ मा० बा० पृ० १११
४ मा अरण्य पृ० ४६७

अवलोकि अलौकिक रूप मृगीमृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं न भगैं जियजानिसिलीमुख पंच धरे रतिनायक हैं॥[1]

प्रकरण प्राप्त वस्तुओं के भीतर से ही वे प्रायः अलंकार की सामग्री चुनते हैं। इस निदर्शना में उसका एक और सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है विश्वामित्र के साथ जाते हुए बालक राम लक्ष्मण उनको नजर बचाकर कहीं धूल कीचड़ में खेल भी लेते हैं। जिसके दाग कहीं कहीं बदन पर दिखलाई देते हैं।

सिरनि सिखंड सुमनदल मंडन बाल सुभाय बनाये।
केलि अंक तनु रेनु पंक जनु प्रगटत चरित चुराये॥[2]

कवि लोग कभी कभी दूर दूर की उड़ान भी भरा करते हैं। गोस्वामी जी ने कहीं कहीं ऐसा किया है। सीता के रूप वर्णन में यह अतिशयोक्ति देखिये :—

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥[3]

रूप सम्बन्धी एकाध उक्तियाँ और प्रस्तुत की जा रही हैं —

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर। सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥[4]

× × ×

केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत। हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥[5]

जहाँ वस्तु या व्यापार अगोचर होता है वहाँ अलंकार उसके अनुभव में सहायता गोचर रूप प्रदान करके करता है। जैसे यदि कोई आगे आने वाली विपत्ति या अनिष्ट का कुछ भी ध्यान न करके अपने रंग में मस्त रहता है और कोई उसको देखकर कहे। चरै हरित तृन बलि पसु जैसे।[6] तो इस कथन से उसकी दशा का प्रत्यक्षीकरण कुछ अधिक हो जायेगा। जिसमें भय का संचार पहले से कुछ अधिक हो सकता है।

---

१ कवितावली— अयोध्या कांड—छं० सं० २७—पृ० १४१
सब जगह इस प्रबन्ध में आया 'क' शब्द कवितावली से अभिप्राय रखता है।
२ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी दास—पृ० १२२
३ मा० बा पृ० १७१
४ बरवै पृ० १६
५ बरवै ९—पृ० १६
६ मा० अयो० पृ० २६०

अब बाधा कहने से कोई विशेष रूप सामने नहीं आता। सामान्य अर्थ ग्रहण मात्र हो जाता है। इससे गोस्वामी जी उसे व्याल का गोचर रूप देते हुए परिकरांकुर का अवलम्बन देते हुए कहते हैं।

तुलसीदास भवव्याल ग्रसित तव शरण उरग रिपुगामी।[1]

क्रिया—क्रिया की तीव्रता का अनुभव कराने हेतु इस ललितोपमा का प्रयोग हुआ है।

मारुत नन्दन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो।[2]

नीचे लिखे रूपक में उपमान और उपमेय का अनुगामी एक ही धर्म बड़ी सुन्दर रीति से आया है।

नृपन केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥[3]

इसमें ध्यान देने की पहली बात यह है क्रिया का सादृश्य है। दूसरी बात है कि यद्यपि यहाँ सकुचना और लज्जित होना आदि हैं। पर रूपक का उद्देश्य इन भावों का उत्कर्ष दिखलाना नहीं है। बल्कि एक साथ इतनी भिन्न क्रियाओं का होना ही दिखलाना है।

एक ही क्रिया का सम्बन्ध अनेक पदार्थों से दिखाती हुई यह तुल्ययोगिता भी बड़ी ही सटीक बैठी है।

सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥
संभु चाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥[4]

एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें सहोक्ति द्वारा एक ही क्रिया (धनुर्भङ्ग) का कैसा विशद प्रभावक रूप दिखलाया है।

गहि करतल मुनिपुलक सहित कौतुकहि उठाइ लियो।
नृपगन मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो॥

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० १९९
यह उद्धरण विनयपत्रिका का है। इस प्रबन्ध में जहाँ पर उद्धरणों में वि० शब्द आया है वह विनयपत्रिका का द्योतक है।
२ क० पृ० १६४ संख्या सं० २४
क० शब्द से अभिप्राय कवितावली से है।
३ मा० बाल० पृ० १७८
४ मा० बा० पृ० १८१

भाकरयो सियमन समेत हरि हरयो जनक हियो।
भञ्ज्यो भृगुपति गर्व सहित तिहुं लोक विमोह कियो ॥[१]

परिणाम का स्वरूप आगे रखकर कर्म की भयंकरता अनुभव कराने का कैसा गहन प्रयत्न इस अप्रस्तुत प्रशंसा में दिखलाई पड़ता है।

मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीप किसोर ॥[२]

इसी प्रकार कर्म के स्वरूप को एकबारगी नजर के सामने लाने के हेतु ललित अलंकार द्वारा उसका यह गोचर रूप सामने रक्खा गया है।

यहि पापिनिहि बूझि का परेउ। छाइ भवन पर पावकु धरेउ ॥[३]

इस प्रकार गोस्वामी जी की अलंकार योजना में रूप और क्रिया कलाप का सजीव चित्रण हुआ है।

भाव की तीव्रानुभूति—

गोस्वामी जी के अलंकार भाव की तीव्रानुभूति कराने में पूर्ण सफल रहे हैं। जैसा कि हम पीछे विस्तार से स्पष्ट कर चुके हैं। अतएव यहाँ एकाध उदाहरण दो देकर यह प्रकरण को समाप्त किया जा रहा है।

यह रूपक रति भाव की अनन्यता को कितनी सुन्दरता से दिखला रहा है।

मुदित तुम्हरे दरस कारन चतुर तुलसीदास।
मधुप बारित बरषि सुबिमल हृदय लोचन प्यास ॥[४]

दो भावों के द्वन्द्व का कैसा सुन्दर और स्पष्ट चित्र इस रूपक से मिलता है।

मनमगहुड़ तनुपुलक सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मनु सकुच पंक महँ कढ़त प्रेम बल धीर ॥[५]

इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी के अलंकार प्रेरक और स्फूर्ति देने तथा शक्ति को स्मरणीय बनाने वाले हैं। इसके अतिरिक्त उनके अलंकार विधान की एक यह भी विशेषता है कि वह नाद सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले हैं। जैसे —

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥[६]

इसमें कंकन किंकिन और धुनि आदि में एक प्रकार का नाद है और अनुप्रास दृष्टव्य है। अतः गोस्वामी जी की अलंकार योजना इस प्रकार सभी विशेषताओं से युक्त है और सर्वगुणों से सम्पूर्ण है।

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० ११२
२ मा० बा० पृ० १४६
३ मा० अयो० पृ० १८२
४ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० ११२
५ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० ११२
६ मा० बा० पृ० १६१

ध्वनि—

काव्य शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वाच्य से अधिक उत्कर्ष वास्ता प्रतिपादक व्यंग्य को ध्वनि कहते हैं।[1] दूसरे शब्दों में जिस काव्य में व्यंग्यार्थ ही मुख्य रहता है वही उत्तम काव्य अथवा ध्वनि काव्य कहा जाता है। गोस्वामी जी ध्वनि के मर्म से पूर्ण परिचित थे। अतः उन्होंने अपने काव्य में ध्वनि के भी यथोचित प्रयोग किये हैं। यदि यों ध्वनि का क्षेत्र विस्तृत है और इसके अनेकों भेदोपभेद माने जाते हैं। पर हम यहाँ विशद विवरणों में न जाकर ध्वनि के प्रधान भेदों में से कुछ दृष्टान्तों द्वारा तुलसी की कला में ध्वनि का उत्कर्ष दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि—

अविवक्षित वाच्य ध्वनि के द्वितीय भेद अर्थात् अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि का यह उदाहरण देखिये।

नाथ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥[2]

यह परशुराम के प्रति लक्ष्मण की उक्ति है। यहाँ कृपा अनुकूल और मूर्ति फूल अपने अपने वाच्यार्थ को छोड़ तद्विपरीत अर्थ का बोध कराते हैं। अर्थात् लक्ष्मण के क्रोध को व्यंजित करते हैं। इतना सुन्दर व्यंग्य सम्भवतः दृष्टिगोचर न हो। इसी प्रकार —

गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँहि। देखहु आपनि मूरति सिय की छाँह॥[3]

छाँह कारी होती है। राम का स्वरूप भी श्याम वर्ण है। अतएव व्यंग्य है कि राम का सुन्दर से सुन्दर स्वरूप सीता की छाँह के ही सदृश है।

आर्थी व्यंजना—

आर्थी व्यंजना में अर्थ शब्द पर निर्भर नहीं रहता अतः व्यंग्यार्थ होता है जो शब्द शक्ति वक्ता बोद्धव्य वाक्य अन्य सन्निधि वाच्य प्रकरण देश काल काकु आदि की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती है वह आर्थी व्यंजना कहलाती है। इनमें से एकाध के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

वाच्यार्थ से (वक्ता बोद्धव्य)—

पति देवता सुतीय महुँ। मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि। सहस सारदा सेष॥[4]

यहाँ सीता के कहने के कारण व्यंग्यार्थ महत्वपूर्ण।

---

१ विश्वनाथ—साहित्यदर्पण ४।१
२ मा० बा० पृ० १६४
३ तुलसी ग्रंथावली द्वितीय खण्ड—बरवै रामायण—पृ० १०
४ मा० बा० पृ० ११२

काकु की विशेषता से—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुमहि उचित तप मो कहु भोगू ॥[1]

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि—

जिस ध्वनि में वाच्यार्थ अपना पूर्ण तिरोभाव न करके अपना अर्थ रखते हुए भी अन्य अर्थ में संक्रमण करता है वह अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है जैसे—यह घर अच्छा है। यहाँ पर घर का तात्पर्य केवल घर नहीं कुल समृद्धि आदि से भी है। जो उपादान लक्षणा से सिद्ध होता है। व्यंग्यार्थ हुआ सम्बन्ध करने लायक है। इसी प्रकार :—

सीताहरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जौ मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥[2]

यहाँ पर राम शब्द का अर्थ शङ्कर का धनुष तोड़ने वाले राक्षसों का नाश करने वाले अद्भुत पराक्रमी है। व्यंग्यार्थ हुआ कि रावण का नाश भी शीघ्र होगा। यह व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण होने से अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। इस ध्वनि में व्यंग्यार्थ उपादान लक्षणा पर आधारित है।

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि—

जिस ध्वनि में वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग अथवा तिरस्कार हो जाता है वह अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यह लक्षण लक्षणा पर आधारित है। उदाहरण —

अवधि हौं आयसु पाइ रहौंगो।
जन्म कैकयी कोख कृपानिधि क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥
भरत भूप सिय राम लखन बन सुनि सानन्द सहौंगो।
पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख सन्तोष लहौंगो ॥[3]

यहाँ पर भरत का सानन्द रहना और सुख सन्तोष लहना पूर्णतया बाधित है। व्यंग्यार्थ यह हुआ कि मुझे इन सभी कारणों से बड़ा दुःख हुआ। फिर भी आपकी आज्ञा है तो मैं इसे भी झेलूँगा। अतः यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

अनुरणन ध्वनि—

जहाँ पर वाच्यार्थ निकालने पर फिर व्यंग्यार्थ का बोध होता है। वहाँ अनुरणन ध्वनि होती है। इसके तीन भेद हैं।

१—स्वतः सम्भवी
२—कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध
३—पात्र प्रौढ़ोक्ति सिद्ध

---

१ मा० अयो पृ० २६५
२ मा० अरण्य पृ ४६८
३ गीतावली पृ १५८ ५६ अयो० पं० नं० ७३

इन में से प्रत्येक के ४ भेद होते हैं।

१—वस्तु से वस्तु
२—वस्तु से अलङ्कार
३—अलङ्कार से वस्तु
४—अलङ्कार से अलङ्कार

इसके बाद भी प्रत्येक के पद गत वाक्य गत प्रबन्धगत यह तीन भेद हैं। इनमें से कुछ के उदाहरण गोस्वामी जी की कृतियों से यहाँ दिये जा रहे हैं।

अथ शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि (स्वतः सम्भवी)

इस ध्वनि के भी कई भेद हैं जिनमें वाक्यगत स्वतः सम्भवी अर्थ मूलक वस्तु ध्वनि का उदाहरण निम्नलिखित है :—

कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन मँह मुसकानी॥[1]

इन पंक्तियों में मार्ग की ग्राम वधुओं का प्रश्न सुनकर सीता जी का सकुचाना और मन ही मन मुस्काना इस वाक्य से बोधक वाक्य के वाच्यार्थ द्वारा राम उनके पति हैं यही व्यंजित है। पति बोध का व्यंग किसी एक पद द्वारा न होकर सकुची सिय मन मँह मुसकानी इस पूरे वाक्य के द्वारा होता है। यहाँ पर शब्द परिवर्तन के पश्चात् भी व्यंग्यार्थ का बोध होता रहेगा। इन्हीं कारणों से यहाँ उक्त ध्वनि की स्थिति सम्भव हुई है।

कवि प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि

इसके भी कई भेद होते हैं। जिनमें केवल वाक्यगत कवि प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

सिय वियोग दुख केहि बिधि कहौं बखानि।
फूलबान ते मनसिज बेधत आनि॥
सरद चाँदनी संचरत चहुँ दिसि आनि।
बिधुहि जोरि कर बिनवति कुल गुरु जानि॥[2]

उपर्युक्त पंक्तियों के अन्तर्गत अपने फूल के बाणों से कामदेव का सीता जी को बेधना शरद चाँदनी का चारों दिशाओं में फैलकर धूप के समान जलना और चन्द्रमा को कुल गुरु (सूर्य) समझकर सीता जी का विनय करना इत्यादि से सीता जी की तीव्र विरह वेदना ध्वनित होती है। जो वाक्यगत है। इसीलिये इसके भीतर वाक्यगत वस्तु से कवि प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि की स्थिति मानी जावेगी।

---

१ रा० २-११७
२ बरवै ४०

गुणीभूत व्यंग्य—

वाच्य की अपेक्षा गौण व्यंग्य को गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं।[1] तात्पर्य यह है कि जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा कम चमत्कारक हो अथवा उसी के समान हो वहाँ गुणीभूत व्यंग्य की स्थिति मानी जाती है। इसके भी कई भेद माने गये हैं जैसे अगूढ़ व्यंग्य, अपरांग व्यंग्य, वाच्यसिद्धि व्यंग्य, अस्फुट व्यंग्य, संदिग्ध प्राधान्य व्यंग्य, तुल्य प्रधान व्यंग्य, काक्वाक्षिप्त व्यंग्य और असुन्दर व्यंग्य इत्यादि जिसमें केवल दो का विवेचन नीचे किया जाता है।

काक्वाक्षिप्त व्यंग्य—

जहाँ काकु द्वारा आक्षिप्त होकर व्यंग्य प्रकट होता है वहाँ गुणीभूत काक्वाक्षिप्त व्यंग्य होता है।[2] जैसे —

तुलसी जस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये।
नर ते खर सूकर स्वान समान कहौ जग में फल कौन जिये॥[3]
है दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनुमान से पायक॥[4]

पहले उदाहरण के अन्तर्गत तुलसीदास जी कहते हैं कि राम ऐसे शिशु के प्रति यदि स्नेह नहीं है तो जप जोग और समाधि करने से क्या। अर्थात् कुछ भी नहीं। वे मनुष्य गधे, सूकर, और स्वान के समान हैं उनके संसार में जीने का भी फल क्या है। अर्थात् कुछ भी नहीं। यह काक्वाक्षिप्त व्यंग्य है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण के अन्तर्गत काकु से यह व्यंग्य आक्षिप्त होता है कि राम सामान्य बालक नहीं हैं। वे सामान्य मानव भूमि से परे साक्षात् भगवान के अवतार हैं।

अगूढ़ व्यंग्य—

अगूढ़ व्यंग्य उसे कहते हैं जो वाच्यार्थ के समान स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।[5] उदाहरण के लिए :—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुबर भगत जासु सुत होई।[6]

वाच्यार्थ यह है कि वही युवती पुत्रवती है जिसका पुत्र राम भक्त है। यहाँ वाच्यार्थ में बाधा है। क्योंकि ऐसी भी अनेक स्त्रियाँ पुत्रवती हैं जिनके पुत्र राम भक्त नहीं हैं। अतः इसका लक्ष्यार्थ यह हुआ कि उन युवतियों का पुत्रवती होना न

---

१ अपरन्तु गुणीभूतं व्यंग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये ॥
विश्वनाथ—साहित्य दर्पण—४ १३
२ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण— पृ० २४७
३ कवितावली १–६
४ मा० ६ ६३
५ रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण—पृ० १४४
६ मा० २ ३५

होने के तुल्य है। जिसके पुत्र राम सदृश नहीं है। व्यंग्यार्थ यह निकला कि संसार में वही युवती प्रशंसनीय है जिसका पुत्र राम सदृश हो। यह व्यंग्य वाच्यार्थ के समान स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है और वाच्यार्थ का ही अर्थान्तर में संक्रमण हो गया है।

असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि—

जहाँ पर वाच्यार्थ ग्रहण करने का क्रम लक्षित नहीं होता हम यह अनुभव नहीं करते कि यह वाच्यार्थ है और इसके बाद यह व्यंग्यार्थ है। वहाँ यह ध्वनि होती है। इसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के आगे पीछे का ज्ञान नहीं रहता। वाच्यार्थ के ग्रहण करते करते ही वह व्यंग्यार्थ से अभिभूत हो जाते हैं। यों कहने के लिये तो क्रम अभी जरूर रहता है, पर असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि में भेद भाव इससे आच्छन्न हो जाते हैं। भाव भेद से यह ध्वनि आठ प्रकार की मानी गई।

१—रस
२—भाव
३—रसाभास
४—भावाभास
५—भावोदय
६—भावशान्ति
७—भावसंधि
८—भावशबलता।

इनमें से प्रत्येक के उदाहरण काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। नीचे इन पर क्रमानुसार विचार किया जा रहा है।

रस ध्वनि

जहाँ वर्णन से रस व्यंग्य हो वहाँ पर रस ध्वनि होती है जैसे :—

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥
जो सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥[1]

यहाँ पर वाच्यार्थ के साथ ही व्यंग्यार्थ रूप रस का प्रभाव प्रकट है। आलम्बन सीता है। उद्दीपन उनकी सुकुमारता स्निग्धता भीरुता अल्पवयस्कता आदि है। स्थायी प्रिय के अनिष्ट के कारण शोक है। संचारी, चिन्ता मोह स्मरण, तर्क दैन्यादि हैं। अनुभाव आसक्ता देख चिन्ता आदि है। इस प्रकार यहाँ करुण रस की निष्पत्ति पूर्णरूपेण हुई है।

---

१ मा० अयो० पृ० २११

भाव ध्वनि—

जहाँ पर प्रमुख स्थायी अथवा प्रमुखता से प्रकट संचारी भाव का प्रकाशन होता है वहाँ भाव ध्वनि होती है। जैसे :—

खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें।
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥[1]

यहाँ पर आलम्बन अनुभव संचारी आदि के होते हुए भी विश्वामित्र के शील के कारण क्रोध स्थायी उद्बुद्ध मात्र होकर रह गया। पूर्ण परिपाक को प्राप्त नहीं हो सका। अतः यहाँ भाव ध्वनि है।

रसाभास—

जब रस परिपाक होते हुए भी सहृदय जनों की दृष्टि से उसमें किसी प्रकार का अनौचित्य हो वहाँ पर रसाभास होता है। जैसे शृंगार में पर स्त्री प्रेम। यह रसदोष है किन्तु आभास रूप में भी आनन्द दायक होने के कारण इसे ध्वनि के भीतर माना जाता है। अन्य रसों में भी अनौचित्य आ जाने से रसाभास होता है। जैसे वीर रसाभास का एक उदाहरण है।

उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥
लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।
तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई। जीवत हमहि कुअँरि को बरई॥
जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥[2]

यहाँ पर धनुष न उठा सकने वाला (पराजित) का यह राम के प्रति युद्ध करने का उत्साह अनुचित है। अतः रसा भास है।

भावा भास—

जहाँ पर भाव में कोई अनौचित्य हो वहाँ भावाभास माना जाता है। मानस से प्रताप भानु की कथा से इसका एक उदाहरण दिया जा सकता है।[3] अवतरण से प्रकट है कि कपट मुनि ने अपनी कार्य सिद्धि के हेतु राजा के प्रति अपना कपट रूप प्रेम प्रदर्शित किया है। अतः यहाँ राजा विषयक रति भावाभास हुआ।

भावोदय—

जहाँ पर किसी प्रसंग में भाव के उदय होने में आकर्षण हो वहाँ भावोदय होता है। परशुराम का गर्व[4] संचारी भाव जब राम ने रमापति वाले धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दी तो विस्मय में परिवर्तित हो गया।

---

१ मा० बा० पृ० १११
२ मा० बा० पृ० १८५
३ मा० बा० प्रताप भानु की कथा—दोहा १६१—१—४
४ मा० बा० पृ० २८९—४—६

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटै संदेहू।
देत चाप आपहु चलि गयऊ। परशुराम मन बिसमय भयऊ॥[1]

अतः यहाँ भावोदय हुआ।

भाव सन्धि—

जहाँ पर दो भावों के सम्मिलित के कारण चमत्कार आ जाता है वहाँ पर भाव सन्धि होती है। भाव सन्धि मानस की निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ी सुन्दरता से उपलब्ध होती है।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर।
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥[2]

इसमें एक साथ ही हर्ष और विषाद भावों का संचार वर्णित है अतः भाव सन्धि है।

भाव शान्ति—

जहाँ पर किसी उठे हुए भाव का समाप्ति में विशेषता देखी जाती है वहाँ पर भाव शान्ति होती है। धनुर्भंग की ध्वनि सुनते ही परशुराम कुपित हुए और जब वह जनक की सभा में आये तो वह क्रोध की मूर्ति ही धारण किये हुए थे। पर यह क्रोध का भाव विश्वामित्र के आकर मिलने और दोनों भाइयों राम लक्ष्मण की मूर्ति के दर्शन व जानने से शान्त हो गया है और वे—

रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥[3]

इस प्रकार यहाँ भाव शान्ति हुई।

भावशबलता—

जहाँ पर एक के बाद अनेक भावों के आने से एक साथ ही अनेक भावों के सम्मिलन का सौन्दर्य दृष्टव्य हो वहाँ भाव शबलता होती है जैसे—

सुनत समीर को धीर सुवीर धार बहोर।
देखि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यों दिया रोइ॥
चकित चतु बानी कुटिल की कोप चित्त बढ़ोइ।
सकुचि सम भयी ईस मानसु-जससुमन जिय जोई॥
बुद्धि बल साहस पराक्रम अद्भुत गाथे जोइ।
सरस ताप समाज मानक समझ चाहे सब जोइ॥
उतरि तरु तें नमन पद सकुचात सोचत ठाढ़।
जुड़े अवसर समुझि सुजानहि सुमन समसुप हाद।

---

१ मा० बा० पृ० १६६
२ मा० सु० पृ० ५४८
३ मा० बा० पृ० १८७

कहे बचन बिनीत प्रीति प्रतीति निहोर ।
सीय सुनि हनुमान जान्यो भली भाँति भरोर ॥
देखि बिभु करतूति कहिबो जानि हैं सबु जोर ।
कहौंगो मुख की समरसरि कालि कारिख भोर ॥
करत कछु न बनत हरिहिय हरष सोक समोर ।
कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोर ॥[1]

इसमें समान चमत्कारक अनेक भावों का सम्मिलन होने से अपूर्व भाव शबलता है। अतः गोस्वामी जी की रचनाओं में वस्तु और अलंकार ध्वनि के भी सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं। स्थानाभाव से यह प्रकरण यहीं समाप्त किया जाता है।

---

१ गीतावली सुन्दर कांड—पद सं० ९ पृ० ३०१-०४

सातवाँ अध्याय

तुलसी का प्रबंध सौष्ठव और वर्णन पद्धति

प्रबंध सौष्ठव—

कथावस्तु का संगठन और सौष्ठव का सम्पादन

मानस की कथावस्तु के संगठन पर प्रकाश डालने के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि उसमें आधिकारिक कथा प्रथम सोपान के १७५ वें दोहे से (रावण के अत्याचार वर्णन से) प्रारम्भ होता है। और सप्तम सोपान के १७६ वें दोहे में राम राज्य वर्णन तथा राम के विविध उपदेशों के बाद रामचरित महाकाव्य से समाप्त होती है। प्रारम्भ के १७२ दोहे और अन्त के ७० दोहे ग्रन्थ की भूमिका और उपसंहार के रूप में हैं और उनमें से अधिकांश बातों का कथा से भी सम्बन्ध नहीं है। कथावस्तु की दृष्टि से उनका अधिक महत्व नहीं है। मानस पौराणिक शैली का महाकाव्य है इस शैली के महाकाव्यों में भूमिका और उपसंहार का विस्तार होता ही है। अतएव मानस के कथानक को शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

मानस की कथावस्तु का संगठन न तो बिल्कुल पौराणिक ढंग का है। न बिल्कुल शास्त्रीय रूप के महाकाव्यों जैसा। इसमें कथान्तर कथायें भी आ गई हैं। यह कथान्तर कथायें प्रथम और सप्तम सोपान में अधिक आई हैं। मुख्य कथा प्रसंग सप्तम सोपान के १८४ वें दोहे से लेकर सप्तम सोपान के २२ वें दोहे तक है उसमें कोई भी कथान्तर कथा नहीं है और जो प्रासंगिक कथायें हैं उनसे कथावस्तु के संगठन में योग मिलता है। कथावस्तु के प्रवाह में यदि बाधा होती है तो उपदेशात्मक वर्णन महात्म्य और स्तोत्र आदि प्रारम्भिक और अन्तिम अंशों की योजना तुलसी ने इसी हेतु की है। क्योंकि वह मानस को महाभारत के साथ धर्म ग्रन्थ भी बनाना चाहते थे। इसी कारण उसमें पौराणिक प्रभाव है। यद्यपि वह पुराण नहीं है।

तुलसी ने जो वृत्त अपने काव्य के हेतु चुना वह भारतीय साहित्य में चिरकाल से वर्तमान था। वह रामायण महाभारत वृहत् कथा और पुराणों में तो था ही। साथ ही महाराष्ट्र में भी बहुत दिनों से उसका उपयोग होता चला आ रहा था। महाकाव्य के हेतु कथानक था जिसका विकास परिचित है वह उसमें समुचित रूप से वर्णित है। मानस का आधिकारिक कथावस्तु सुव्यवस्थित और सुसंगठित है।

घटनाओं की अधिकता उसके सुशृंखलित विकास क्रम और पात्रों की सक्रियता के कारण मानस में नाटक जैसी सजीवता भी पूरी मात्रा में मिलती है। भारतीय काव्याचार्यों के मतानुसार महाकाव्य के कथा संगठन में मुख्य और प्रासंगिक कथाओं का समुचित संगठन होना चाहिए और कथा के उद्देश्य का सुन्दर विकास भी आवश्यक है। इसके हिसाब से महाकाव्य में नाटक की सन्धियों का होना भी आवश्यक माना गया है।[1] हम देखते हैं कि गोस्वामी जी के कथा विकास में इन बातों और नाटक की संधियों का बड़ा ही सुन्दर निर्वाह हुआ है।

नाटक की पाँच कार्य अवस्थायें मानस में भी दृष्टिगोचर होती हैं। जो इस प्रकार हैं।

१—प्रारम्भ
२—प्रयत्न
३—प्राप्त्याशा
४—नियताप्ति
५—फलागम

अब क्रमानुसार मानस से इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रारम्भ—रावण के अत्याचार वर्णन से लेकर लक्ष्मण व विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा करने जाने तक की घटनायें।[2] इनमें रावण वध और राम राज्य की स्थापना के हेतु औत्सुक्य उत्पन्न होता है।

प्रयत्न—राम वनवास से लेकर शूर्पणखा प्रसंग तक की कथायें।[3] इसमें कथा अत्यन्त तीव्र गति से फलागम की ओर अग्रसर होती है।

प्राप्त्याशा—खरदूषण वध और सीताहरण से लेकर हनुमान के लंका से खबर लाने तक की कथायें।[4] इसमें एक ओर तो राम द्वारा रावण का अन्त किये जाने का विश्वास होता है दूसरी ओर जटायु मरण और सीता हरण आदि से आशंका भी बनी रहती है। सुग्रीव मैत्री से आशा बढ़ती है।

नियताप्ति—राम की युद्ध यात्रा सेतु बंधन विभीषण मैत्री मेघनाद और कुम्भकर्ण का वध आदि घटनायें नियताप्ति के भीतर आती हैं।[5]

फलागम—रावण वध और राम राज्य की स्थापना।

---

१ शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः॥
विश्वनाथ—साहित्य दर्पण—छं० सं० ३१७

२ मा० बा० पृ० १२८ से १४५ तक

३ मा० बा० अयो० अरण्य पृ० १०७ से ४८२ तक

४ मा० अरण्य० सु० पृ० ४८३ से ५१२ तक

५ मा० सु० लंका पृ० ५११ से ६४१ तक

सातवाँ अध्याय



तुलसी का प्रबन्ध सौष्ठव और वर्णन पद्धति

प्रबन्ध सौष्ठव—

कथावस्तु का संगठन और सौष्ठव का सम्पादन

मानस की कथावस्तु के संगठन पर दृष्टि डालने के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि उसमें आधिकारिक कथा प्रथम सोपान के १७१ वें दोहे से (रावण के अत्याचार वर्णन से) प्रारम्भ होता है। और सप्तम सोपान के १०६ वें दोहे में राम राज्य वर्णन तथा राम के विविध उपदेशों के बाद रामचरित महाकाव्य से समाप्त होती है। प्रारम्भ के १७२ दोहे और अन्त के ७० दोहे ग्रन्थ की भूमिका और उपसंहार के रूप में हैं और उनमें से अधिकांश बातों का कथा से भी सम्बन्ध नहीं है। कथावस्तु की दृष्टि से उनका अधिक महत्व नहीं है। मानस पौराणिक शैली का महाकाव्य है। इस शैली के महाकाव्यों में भूमिका और उपसंहार का विस्तार होता ही है। अतएव मानस के कथानक को शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

मानस की कथावस्तु का संगठन न तो बिल्कुल पौराणिक ढंग का है। न बिल्कुल शास्त्रीय ढंग के महाकाव्यों जैसा। इसमें अवान्तर कथायें भी आ गई हैं। यह अवान्तर कथायें प्रथम और सप्तम सोपान में अधिक आई हैं। मुख्य कथा प्रसंग प्रथम सोपान के १८४ वें दोहे से लेकर सप्तम सोपान के २१ वें दोहे तक है उसमें कोई भी अवान्तर कथा नहीं है और जो प्रासंगिक कथायें हैं उनसे कथावस्तु के संगठन में योग मिलता है। कथावस्तु के प्रवाह में यदि बाधा होती है तो उपदेशात्मक वर्णन महात्म्य और स्तोत्र आदि प्रारम्भिक और अन्तिम अंशों की योजना तुलसी ने इसी हेतु की है। क्योंकि वह मानस को महाकाव्य के साथ धर्म ग्रन्थ भी बनाना चाहते थे। इसी कारण उसमें पौराणिक प्रभाव है। यद्यपि वह पुराण नहीं है।

तुलसी ने जो वृत्त अपने काव्य के हेतु चुना वह भारतीय साहित्य में चिरकाल से वर्तमान था। वह रामायण महाभारत, वृहद कथा और पुराणों में तो था ही। नाटकों महाकाव्यों में भी बहुत दिनों से उसका उपयोग किया जाता आ रहा था। महाकाव्य के हेतु कथानक का जितना विस्तार अपेक्षित है वह उसमें समुचित रूप से उपस्थित है। मानस की आधिकारिक कथावस्तु सुसंगठित और सुव्यवस्थित है।

घटनाओं की स्वाभाविकता उनके सुश्रृंखलित विकास क्रम और पात्रों की सक्रियता के कारण मानस में नाटक जैसी सजीवता भी पूरी मात्रा में मिलती है। भारतीय काव्याचार्यों के मतानुसार महाकाव्य के कथा संगठन में मुख्य और प्रासंगिक कथाओं का समुचित संगठन होना चाहिए और कथा के उद्देश्य का सुन्दर विकास भी आवश्यक है। इसके हिसाब से महाकाव्य में नाटक की संधियों का होना भी आवश्यक माना गया है।[1] हम देखते हैं कि गोस्वामी जी के कथा विकास में इन बातों और नाटक की संधियों का बड़ा ही सुन्दर निर्वाह हुआ है।

नाटक की पांच कार्य अवस्थायें मानस में भी दृष्टिगोचर होती हैं। जो इस प्रकार हैं।

१—प्रारम्भ
२—प्रयत्न
३—प्राप्त्याशा
४—नियताप्ति
५—फलागम

अब क्रमानुसार मानस से इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रारम्भ—रावण के अत्याचार वर्णन से लेकर लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा करने जाने तक की घटनायें।[2] इनसे रावण वध और राम राज्य की स्थापना के हेतु औत्सुक्य उत्पन्न होता है।

प्रयत्न—राम वनवास से लेकर शूपणखा प्रसंग तक की कथायें।[3] इसमें कथा अत्यन्त तीव्र गति से फलागम की ओर अग्रसर होती है।

प्राप्त्याशा—खरदूषण वध और सीताहरण से लेकर हनुमान के लंका से खबर लाने तक की कथायें।[4] इसमें एक ओर तो राम द्वारा रावण का अन्त किए जाने का विश्वास होता है दूसरी ओर जटायु मरण और सीता हरण आदि से आशंका भी बनी रहती है। सुग्रीव मैत्री से आशा बढ़ती है।

नियताप्ति—राम की युद्ध यात्रा सेतु बन्धन विभीषण मैत्री मेघनाद और कुम्भकर्ण का वध आदि घटनायें नियताप्ति के भीतर आती हैं।[5]

फलागम—रावण वध और राम राज्य की स्थापना।

---

१ अंगु मारवीरयोरकतमोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे नाटक सन्ध्य ॥
विश्वनाथ—साहित्य दर्पण—पं० सं० ३१७

२ मा बा० पृ० १२८ स १४५ तक

३ मा० बा० अयो० अरण्य० पृ० १०७ से ४८२ तक

४ मा० अरण्य० सु० पृ० ४८३ से ५६२ तक

५ मा० सु० लंका पृ० ५६३ से ६८१ तक

कार्यान्विति के हेतु कथानक में जो नाटक की संधियां हैं वे मानस में इस प्रकार हैं।

मुख संधि—इसमें रावण के अत्याचार वर्णन से लेकर राम के जन्म के कुछ समय तक पूर्व की घटनायें आती हैं। मुख संधि—
यहाँ से

अतिशय देखि धरम की ग्लानी।

× × ×

गिरि कानन जहँ तहँ भरपूरी।
रहे निज निज अनीक रचिरूरी॥[1]

प्रतिमुख संधि—प्रतिमुख संधि में राम वनगमन से लेकर सुमंत के वापस लौटने तक की घटनायें आती हैं। फल के बीज का यहाँ कुछ लक्ष्य और अलक्ष्य रूप में विकास रहता है।[2]

गर्भ संधि—
से लेकर

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा।
क्रोधवंत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाय।[3]

तक।

अर्थात् राम के पंचवटी में निवास करने के उपरान्त रावण द्वारा सीता के अपहरण तक की घटनायें इसमें आयेंगी। इसमें गर्भ संधि है क्योंकि यहाँ दंडकवन में राम के वास के कारण मुनियों का सुखी होना तथा खरदूषण वध आदि घटनाओं द्वारा पूर्व संधियों में निक्षेपित फल प्रधान उपाय का विकास और सीताहरण जटायु मरण आदि में इसका ह्रास दिखलाई देता है।

विमर्श संधि—
से लेकर

कोसलेस दसरथ के जाये।
उठि बैठे लछिमन हरषाई॥[4]

तक

अर्थात् किष्किंधा में हनुमान मिलन से लेकर लक्ष्मण के शक्ति से मुक्त होने तक की घटनायें विमर्श संधि के अन्तर्गत आती हैं। यद्यपि इसमें गर्भ संधि की अपेक्षा फल प्रधान विकास का कार्य अधिक हुआ है।

निर्वहण संधि—रावण वध के बाद रामराज्य वर्णन तक की कथा में विमर्श संधि है।[5] क्योंकि यहाँ फलागम होता है और विभिन्न संधियों में बिखरे हुए अर्थों का उस कार्य या प्रधान प्रयोजन में समाहार हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मानस में नाटकों के ढंग की संधि योजना है। किन्तु यह नाटकीयता उसकी आधिकारिक कथा में ही है। प्रकरी कथायें जो छोटी और प्रासंगिक हैं उनके उत्कर्ष में सहायक हैं। ऐसी प्रकरी कथायें यह हैं।

---

१ मा० बा० पृ० ११० १११ तक
२ मा० अयो० पृ० २७१ ३४४
३ मा अरण्य पृ० ५०८ ५६४
४ मा० कि सं० पृ० ५१४ से ६६६ तक
५ मा० लं० उत्तर पृ ६६७ से ७११ तक

१—अहिल्या उद्धार
२—ताड़का वध
३—रावण जटायु युद्ध
४—हनुमान कालनेमि प्रसंग
५—शबरी मिलन

अवांतर कथायें जो सबकी सब आधिकारिक कथा के भीतर बाहर आदि और अन्त भाग में हैं। वह यह हैं।

१—शिव चरित
२—जय विजय की कथा
३—कश्यप अदिति की कथा
४—नारद मोह
५—मनु चरित
६—प्रतापभानु रावण चरित

इन्हें प्रासंगिक कथाओं के रूप में भी माना जा सकता है। इस प्रकार से मानस का कथानक महान सुन्दर सुसंगठित और महाकाव्य के अनुरूप है।

कथा संगठन में उपयुक्त प्रकारों के अतिरिक्त राम चरित मानस का प्रबन्ध अत्यन्त सुसंगठित और मनोरम है जैसा कि उन्होंने स्वयं ही कहा है।

भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति।[1]

इस मंजुलता का संपादन गोस्वामी जी ने अनेक प्रकारों से किया है। राम कथा के मुख्य स्रोत वाल्मीकीय रामायण महाभारत रघुवंश प्रसन्न राघव हनुमान नाटक और जैन रामायण हैं। परन्तु जो प्रबन्ध सौष्ठव गोस्वामी जी के मानस में उपलब्ध होता है उसका सौंदर्य विलक्षण है। अपने इस प्रबन्ध शिल्प की सम्पन्नता के हेतु उन्होंने विभिन्न पूर्ववर्ती स्रोत अपनाया व कहीं विस्तार कहीं संक्षेप कहीं क्रम परिवर्तन और कहीं वर्णन और कल्पना का त्याग आदि विविध उपायों से काम लिया है। उनकी इस प्रबन्ध शिल्प सम्बन्धी कला का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

राम कथा काव्य की परम्परा में वाल्मीकीय रामायण को आदि काव्य माना गया है। जब रामचन्द्र सिंहासन पर बैठ चुके तो भगवान ऋषि वाल्मीकि ने उनका चरित बनाया। जिसमें २४००० श्लोक ५०० सर्ग तथा ६ काण्ड और उत्तर कांड मिलाकर सात कांड हैं जिनके नाम क्रमशः यह हैं।

१—आदि कांड
२—अयोध्या कांड
३—अरण्य कांड

---

१ मा० बा० पृ० २

४—किष्किन्धा कांड
५—सुन्दर कांड
६—युद्ध कांड
७—उत्तर काण्ड

इस प्रकार वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ७ कांडों में विभक्त है। परन्तु 'अध्यात्म रामायण' में आदि काण्ड को बालकांड और युद्ध काण्ड को लङ्का काण्ड कहा गया है। गोस्वामी तुलसी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में भी सात काण्ड हैं। और नाम वे ही हैं जो अध्यात्म रामायण में हैं। 'पद्म पुराण' में भी राम कथा मिलती है। लेकिन उस कथा का विभाजन कांडों में नहीं है। स्वयं पद्म पुराण ५ खंडों में विभाजित है। जिसके सृष्टि खण्ड पाताल खण्ड और उत्तर खंड में रामचरित का वर्णन है। कथा का विभाजन विषयानुसार हुआ है। जैसे सूत शौनिक संवाद शिव के प्रति वात्स्यायन का रामचरित विषयक प्रश्न रावण को मार कर राम का अयोध्या की ओर जाना सीता सहित नन्दि ग्राम दर्शन इत्यादि।

'पद्म पुराण' में रामायण की मूल कथा नहीं के बराबर है। इसमें तो उस समय का वर्णन है जब राम रावण को मार कर अयोध्या लौट आते हैं उनका राज्याभिषेक होता है। राम गर्भवती सीता का परित्याग करते हैं। वाल्मीकि के आश्रम में सीता के दो पुत्र पैदा होते हैं। लव और कुश। इधर अयोध्या में अश्वमेध यज्ञ होता है। यज्ञ का घोड़ा छोड़ा जाता है। उसके साथ शत्रुघ्न और भरत के पुत्र पुष्कल जाते हैं। उनके साथ विशाल चतुरंगिणी सेना है। विभिन्न देशों के राजाओं को वे पराजित करते जाते हैं। अन्त में कुश उस अश्व को पकड़ लेते हैं युद्ध होता है। लव और कुश सारी वाहिनी को परास्त कर देते हैं। अन्त में वाल्मीकि उन्हें राम के दरबार में ले जाते हैं। उधर [illegible] सीता को भी ले जाते हैं सभी वहाँ मिलते हैं। रावण वध का वर्णन भी सृष्टि खंड में आता है।

महाभारत के वन पर्व में भी रामोपाख्यान है जो २० अध्यायों में विभाजित है।

अद्भुत रामायण में किसी भी प्रकार का कांड विभाजन नहीं है। यह कथा ही रामायण की मूल कथा से भिन्न है।

'श्रीमद्भागवत' में भी नवम् स्कंध के दशम् अध्याय में भगवान श्रीराम की लीलाओं का वर्णन है। किसी प्रकार के कांड का विभाजन यहाँ भी नहीं है। महाभारत की भाँति यहाँ भी कथा प्रसंगवश ही आई है। इसमें संक्षेप में राम जन्म से राज्याभिषेक तक की कथा है। इसमें राम के जीवन की मुख्य मुख्य घटनायें ही आ पाई हैं पूरा कथानक नहीं आ सका।

महात्मा सूरदास ने भी राम कथा को लिखा है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर में प्रथम खंड के नवम् स्कंध में यह कथा वर्णित है।

'विष्णु पुराण' के चतुर्थ अंश में सगर और खट्वांग के साथ राम के चरित्र का वर्णन मिलता है। इसमें तो किसी प्रकार का विभाजन हो ही नहीं सकता क्योंकि यहाँ पुराणकार ने राम के जीवन के विभिन्न पक्षों को नहीं लिया है बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भूले हुए को याद दिलाने के लिए राम कथा पर सरसरी नजर दौड़ाई हो। 'पद्म पुराण' में १२० अध्याय तथा १८८२१ श्लोक हैं।[1] जिसमें अधिकतर राम कथा तथा उनके जीवन से सम्बन्धित पात्रों की ही कथा है।

'अध्यात्म रामायण' में कथा का विभाजन तो उन्हीं सात कांडों में है लेकिन कथा की गति किसी कांड में नहीं है। उसमें अधिकतर दर्शन और धर्म की बातें हैं। जिनकी संक्षिप्त विवेचना आगे यथास्थान की जायगी। इसकी कथा वाल्मीकीय रामायण का अनुसरण करके ही विभाजित की गई है। वाल्मीकि कथावस्तु से सम्बन्धित है। अंतिम उत्तर कांड में वाल्मीकीय रामायण की कड़ी हमें फिर मिल जाती है।

जैन पुराणों में भी राम कथा विस्तारपूर्वक कही गई है। इसमें कथा यत्र-तत्र बिखरी हुई मिलती है। कथा का विभाजन पर्वों में है। इसमें १२३ वें पर्व में राम की मोक्ष प्राप्ति के वर्णन के पश्चात् राम कथा समाप्त हो जाती है।

'वाल्मीकीय-रामायण' में राम की कथा पहले पहल नारद जी महर्षि वाल्मीकि से कहते हैं।[2] फिर महर्षि स्वयं अपनी दिव्य दृष्टि से राम के चरित्र को जान लेते हैं और उसका वर्णन करते हैं। परन्तु अध्यात्म रामायण में पार्वती के राम के अलौकिक रूप पर शंका करने पर शिव जी उनकी शङ्का निवारणार्थ राम कथा सुनाते हैं। शिव राम के अनन्य भक्त माने गए हैं। पहले वे संक्षेप में पार्वती को सारी कथा सुना जाते हैं। लेकिन पार्वती को इससे सन्तोष नहीं होता और वे कहती हैं प्रभु राम गुण गान रूप अमृत को सुना रहे हैं इससे मेरा मन तृप्त नहीं हुआ। अतएव अब आप विस्तार से मुझे राम कथा सुनाने की कृपा कीजिये। यह सुनकर शङ्कर जी बोले कि मैंने गुप्त रीति से परम श्रेष्ठ आध्यात्म चरित्र राम के ही मुख से सुना है यह चरित्र तीनों तापों को नाश करने वाला है वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

एक समय में रावणादि राक्षसों के दुःख से दुःखी भी भार धारण की हुई पृथ्वी को सम्पूर्ण देवताओं और मुनीश्वरों को लेकर मैं ब्रह्मा जी के पास गया वहाँ देवताओं ने विष्णु की स्तुति की। तब भगवान प्रकट हुए। ब्रह्मा ने रावण के समस्त अत्याचार भगवान को सुना दिये तब भगवान ने कहा कि कश्यप और अदिति जिन्होंने पूर्व जन्म में घोर तप किया है। मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करने लिए वह आजकल कौशलपुरी अयोध्या में महाराज दशरथ और कौशिल्या के रूप में प्रकट हैं। मैं उन्हीं

१ हिन्दुत्व—पृ० ४२९

२ वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण आदि कांड—श्लोक ७ से लेकर श्लोक ८६ तक।

के घर पुत्र रूप में अवतार हुआ। इसके बाद सम्भवत अवतार होने तक का वही प्रकरण है जो गोस्वामी जी के मानस में मिलता है।

प्रस्तुत 'रामायण' में वर्णित राम जन्म की कथा कुछ भिन्नता लिये हुए है। इसमें भी राम की उत्पत्ति का हेतु नारद का शाप बतलाया है किन्तु नारद के शाप देने के हेतु वह मानस से भिन्न है।

पद्म पुराण में भी राम जन्म का प्रसंग है यह ऊपर लिखे प्रसंगों से कुछ भिन्न है। इसमें राम और राम जन्म का हेतु मनु और सतरूपा की तपस्या का हेतु बतलाते हैं जैसा कि गोस्वामी जी ने लिखा है।[2]

'महाभारत में जो 'रामोपाख्यान' है उसमें राम जन्म की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। वाल्मीकि की भांति इसमें भी राम को विष्णु का अवतार माना है।[3]

श्रीमद्भागवत में तो पूरी राम कथा ही अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें भी राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न को भगवान श्री हरि का अंशावतार माना है। इसका आधार वाल्मीकीय रामायण है।

विष्णु पुराण की राम कथा ठीक 'श्रीमद् भागवत' की ही भांति है। इसमें याज्ञवल्क्य जी द्वारा याज्ञवल्क्य और भरद्वाज संवाद जो वर्णित है उसकी झलक है। इसमें लिखा है कि एक बार सब देवताओं को जलंधर दैत्य से युद्ध में हार जाने के कारण दुखी होकर शिव जी ने उसके साथ बड़ा भारी युद्ध किया। पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था। इस दैत्यराज की स्त्री परम सती थी उसी के प्रताप से असुर को उसे नहीं मार पाते थे। प्रभु ने छल से उस स्त्री का व्रत भङ्ग कर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना तो क्रोध करके भगवान को शाप दिया। उसी के शाप से भगवान ने अवतार लिया। इसमें नारद मोह की वही कथा आई है जो गोस्वामी जी ने 'मानस' में वर्णित की है। यह नारद शाप की कथा गोस्वामी जी ने इसी से ली।

गोस्वामी तुलसीदास ने अनेक स्थानों से लेकर राम जन्म की कथाओं को अपने मानस में बड़े ही सौष्ठव पूर्ण ढङ्ग से एकत्रित किया और उन कथाओं की 'मानस में एक वृहत भूमिका की सृष्टि की। गोस्वामी जी ने जो मानस' की भूमिका प्रस्तुत की वह वाल्मीकि रामायण' में उपलब्ध नहीं होती। सती को मोह होता है तब शंकर को उन्हें राम कथा सुनाने की बात उन्होंने अध्यात्म रामायण से ली है शंकर पार्वती के विवाह का विवेचन है वह 'शिव पुराण' से तथा 'कुमार सम्भव' से प्रभावित है। इसी प्रकार भरद्वाज और याज्ञवल्क्य का जो संवाद गोस्वामी जी लाये हैं वह 'विष्णु पुराण के आधार पर है। कश्यप और अदिति की बात भी

---

१ अध्यात्म रामायण—बा० कांड—पृ० १२ से १० तक

२ पद्म पुराण—उत्तर खण्ड

३ महाभारत वन पर्व

महाभ दिन की है वह अध्यात्म रामायण से ही है। इसके बाद मानस की भूमिका में नारद मोह की कथा आती है वह विष्णु पुराण के आधार पर है। इसके अनन्तर प्रबन्ध में मनु और शतरूपा की कथा आई है जो पद्म पुराण के आधार पर आधारित है। प्रतापभानु की कथा की योजना है इसके पश्चात् रावण के अत्याचार का वर्णन और पृथ्वी को गौ रूप में ब्रह्मा के पास जाना और सब देवों की प्रार्थना से भगवान का अवतार है यहीं राम चतुर्भुज मूर्ति में ऐसा यह अध्यात्म रामायण के आधार पर रक्खा गया है।

इस प्रकार बड़ी विस्तृत भूमिका रच कर तब गोस्वामी जी ने राम को अवतरित करवाया है। इस भूमिका के विस्तार में भी गोस्वामी जी की बड़ी सूक्ष्म दृष्टि काम कर रही है। वह यह कि गोस्वामी जी अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। वह निराकार ब्रह्म साकार कैसे हुआ। इस विषय में चिरकाल से शंकायें चला आ रही थी। यही तर्क गोस्वामी जी ने भरद्वाज और पार्वती से करवाया है। कि निर्गुण ब्रह्म साकार कैसे हुआ। फिर उसका समाधान जिस सौष्ठव के साथ मानस की कथा में हुआ है वह देखते ही बनता है। इस भूमिका में कथा की सरलता से अवतार वाद की प्रतिष्ठा की गई है। प्रस्तुत रूप में भूमिका से [illegible] दुरूहता को मिटाकर जो सरलता की प्रवृत्ति दिखाई है उसमें गोस्वामी जी के प्रबन्ध में सरलता के माध्यम से सर्व जन सुलभ का जो गुण आया है वह उनके प्रबन्ध के सौष्ठव सम्पादन में योग दे रहा है।

इस भूमिका में गोस्वामी जी के प्रबन्ध सौष्ठव की जो सबसे बड़ी बात है वह यह है कि प्रारम्भिक कथा चार वक्ता और श्रोताओं के साथ चलती है वे हैं —

१—याज्ञवल्क्य और भरद्वाज संवाद

२—शंकर और पार्वती संवाद

३—काकभुशुण्डि और गरुड़ संवाद

४—तुलसी और सन्त-समाज

किन्तु कथा की प्रबन्ध धारा में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती तथा स्वाभाविक रीति से चलती रहती है और उसके समझने में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।

इसके बाद 'रामचरित मानस' बाल काण्ड में विश्वामित्र के आगमन की घटना आती है यद्यपि यह घटना आध्यात्मिक महत्व लिये है किन्तु इसमें फिर भी भक्ति की भावनाओं को अधिक स्थान दिया गया है। अध्यात्म रामायण की भाँति शंका समाधान की प्रणाली को नहीं अपनाया गया है।

इसमें भी विश्वामित्र जी यह जानकर कि पृथ्वी का भार उतारने के लिये प्रभु ने जन्म लिया है राजा दशरथ के पास यज्ञ रक्षार्थ राम को मांगने आते इसका एक कारण भगवान के चरणों का दर्शन करना भी था।

इसके बाद सारा कथानक वाल्मीकीय रामायण जैसा है लेकिन यहाँ ऋषि विश्वामित्र राजा पर क्रोधित नहीं हुए। राजा अपने प्यारे राम को देना नहीं चाहते। किन्तु उन्होंने ऋषि से विनती करते हुए कहा —

मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा॥[1]

राजा की इन बात को सुनकर ऋषि विश्वामित्र न तो विस्मित हुए और न कुपित हुए। बल्कि वे तो राजा के प्रेम रस से सनी वाणी सुनकर मन कुछ मुग्ध भये। उनकी स्थिति का वर्णन गोस्वामी जी ने किया है।

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी॥
तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥[2]

तब वशिष्ठ ने राजा को धर्म और कल्याण की अनेक बातें समझाईं तो राजा ने अपने हृदय में प्रसन्न होते हुए बड़े आदर से दोनों पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगाकर उन्हें बहुत प्रकार की शिक्षा दी और ऋषि से कहा।

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं काऊ॥[3]

इसके बाद :—

सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥[4]

यहाँ बड़ी चातुरता की बात है वह यह है कि जाते समय राम न तो राजा दशरथ को प्रणाम करते हैं और न माता से आज्ञा ही लेते हैं। क्योंकि इसमें पूर्वापर का संबंध है। अभी अभी ऊपर राजा यह कह चुके हैं कि —

तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥[5]

इसके आधार पर राम अपने दूसरे पिता विश्वामित्र के साथ हैं। अतएव उन्होंने अपने पिता से आज्ञा लेने की आवश्यकता न समझी।

गोस्वामी जी के इस प्रसंग में विश्वामित्र कुपित क्यों न हो हुए। क्योंकि वे तो भक्त रूप में राम के दर्शन करने राजा दशरथ के यहाँ आये थे। वे जानते थे कि राजा दशरथ का राम के प्रति मोह माया का ही रूप है राजा के इस लौकिक प्रेम को उन्होंने अलौकिक दृष्टि से देखा। तभी तो वे राजा की प्रेम रस में सनी वाणी पर

---

१ मा० बा० पृ० १४६
२ मा० बा० पृ० १४७
३ मा० बा० पृ० १४७
४ मा० बा० पृ० १४७
५ मा० बा० १४७

मुग्ध हो गये। जबकि 'वाल्मीकीय रामायण' में इन्हीं शब्दों ने उन्हें चिढ़ा दिया था। गोस्वामी जी ने अपनी कथा को भक्ति के माध्यम से लेकर सर्व जन-मंगलकारी बना दिया।

'अध्यात्म रामायण' में बला अति बला नामक विद्याओं का नाम मिलता है। मानस' में तो इतना ही कहा गया है।

तब रिषि निज नाथहि जियं चीन्ही। विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्ही ॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥[1]

इसके बाद ऋषि ने सब अस्त्र शस्त्र राम को समर्पण किये। अध्यात्म रामायण' तथा मानस बनने के समय इन अस्त्र शस्त्रों का महत्व काफी कम हो चुका था इसी कारण कथाकार ने उन्हें अधिक महत्व नहीं दिया।

इसके उपरांत मानस में जो राम कथा में ताड़का की कथा आई है वह भी अध्यात्म रामायण' के आधार पर है वाल्मीकि के नहीं। 'अध्यात्म रामायण' में कथा तो बिल्कुल वाल्मीकि की भाँति है, ऋषि का शाप भी वही है। लेकिन ऋषि ने यह और कहा कि तेरे आश्रम की शिला पर जब राम पैर रक्खेंगे तब तेरा उद्धार होगा। इसी शिला स्पर्श द्वारा अहिल्या उद्धार की ओर संकेत करता है। 'मानस' में गौतम की पत्नी अहिल्या शाप वश पत्थर का देह धारण करती है। तुलसी ने लिखा है —

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ॥[2]

श्री राम के पवित्र और शोक के नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहिल्या प्रकट हो गई। वह हाथ जोड़ कर उनके चरणों से चिपट गई। और उसके दोनों नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। प्रभु की अनेक प्रकार से वह विनती करके अपने पति गौतम ऋषि से जा मिली। प्रस्तुत प्रसंग गोस्वामी जी ने मर्यादा के अनुरूप में बड़ा ही सौष्ठव पूर्ण प्रस्तुत किया है गौतम नारि श्राप बस कह कर उन्होंने कितने सौष्ठव के साथ गौतम के शाप की ओर संकेत किया है। उस शाप का पूर्ण उल्लेख नहीं किया। इसमें गोस्वामी जी की मर्यादा का पालन है। इसी से यह अश्लील न होकर मर्यादा से पूर्ण होने के कारण सौष्ठव संपादन में योग दे रहा है। पूर्ववर्ती कथाओं के प्रसंगों में ऐसे ही कई स्थलों में घटनाओं को संक्षिप्त कर गोस्वामी जी ने अपनी प्रबन्ध कथा शिल्प में जो सौष्ठव की सृष्टि की है वह अभिनन्दनीय है।

अध्यात्म रामायण में अहिल्या उद्धार की कथा के बाद राम लक्ष्मण और

---

१ मा० बा० पृ० १४७
२ मा० बा० पृ० १४८

विश्वामित्र के गंगा पार उतरने का प्रसंग आता है। अर्थात् अहिल्या का आश्रम मिथिला में न होकर गंगा के इसी पार था। इसी प्रकार मानस में है।[1]

धनुष यज्ञ के बारे में 'वाल्मीकीय रामायण' में यह एक बात मिलती है। वह कि यह यज्ञ कोई एक दिन का नहीं था बल्कि यह एक तो एक वर्ष से चल रहा था। राजा जनक स्वयं विश्वामित्र से कहते हैं। हे मुनि अनेक राजा लोग आ आ कर मुझसे सीता को मांगने लगे। उन्हें मैं यही उत्तर देता कि यह कन्या वीर शुल्का है। तब सब राजा इकट्ठे होकर अपने बल की परीक्षा के लिए मिथिला में आये। उस समय शिव के धनुष को लाकर मैंने उनके सामने रख दिया। परन्तु वे उसे उठा भी न सके। इसलिये मैंने उन्हें निर्बल जानकर अपनी कन्या नहीं दी। उस समय राजा लोगों ने मिथिला को घेर लिया और मुझे बड़ी पीड़ा दी। इस घेरा घेरी में एक बरस बीत गया। तब मैंने दुखित हो देवताओं को प्रसन्न कर लिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर मुझे सेना दी। मैंने उस सेना की सहायता से सब को मार भगाया।[2]

अध्यात्म रामायण में तो यह मिलता है कि सब राजा उस धनुष को देख चुके थे और उस पर पुरुष करके चले गये थे। राजाओं से जनक का युद्ध हुआ था इसका वर्णन नहीं मिलता।

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित 'मानस' में धनुष यज्ञ एक दिन हुआ। उस दिन अनेक राजा राक्षस आदि अपने अपने बल को आजमाने धनुष यज्ञशाला में आये। वे सब महारणधीर राम के रूप को देखकर अपने मन में डर गये। लेकिन जब राम ने धनुष को तोड़ दिया उस समय सीता जी को देख कर कुछ राजा बलबला उठे। वे अभिमान उठकर कवच पहन कर जहाँ तहाँ गाल बजाने लगे। कोई कहते थे कि सीता को छीन लो और राजकुमारों को पकड़ कर बाँध लो हमारे जीते जी राजकुमारी को कौन विवाह सकता है। यदि जनक कुछ सहायता करें तो युद्ध में दोनों भाइयों सहित उसे भी जीत लो। इस प्रसंग में राजाओं के धनुष न उठा सकने पर जनक जी अत्यन्त दुखी होकर राजाओं से निराशा पूर्ण उत्तर देते हैं।

कुमरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥
कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥[3]

---

१ अध्यात्म रामायण—बाल कांड—पृ० ८०
२ वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—बाल कांड षट्षष्ठितम सर्ग
१ से २७—पृ० सं० ११६ ११८
३ मा० बा० दृ० २५१

वाल्मीकीय रामायण' में जनक देवताओं की सेना से मिलने में पहले असहाय से लगते हैं। गोस्वामी जी ने जनक से उपर्युक्त वचन कहलाकर प्रबन्ध धारा में एक अद्भुत मौलिकता ला दी है।

इन सबके अलावा मानस में एक प्रसंग बिल्कुल नया है जो अन्य रामायणों में नहीं मिलता। जब राम और लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ मिथिला आये थे तो वे एक भव्य आश्रम में ठहरे। लक्ष्मण ने जनकपुर देखने की अभिलाषा प्रकट की। राम उनके भाव को ताड़ गये और ऋषि से आज्ञा लेकर जनकपुर देखने चले।

गोस्वामी जी ने जनकपुर की शोभा का एक भव्य चित्र उपस्थित किया है। इसके बाद राम लक्ष्मण को देखकर वहाँ पुरवासियों के हृदय में जो भाव उठे हैं उनको भी कवि ने अति सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपनी काव्यमयी भाषा में कलात्मक ढंग से प्रकट किया है।

सभी पुरवासी इनके रूप लावण्य को देखकर मोहित हो गये और अपने हृदयों में यह कामना करने लगे कि सीता जी का विवाह राम के साथ हो।

दूसरे दिन प्रातः काल राम लक्ष्मण को साथ ले। वाटिका में पूजन के लिए फूल लेने गये। सौभाग्य से सीता जी भी अपनी सखियों को साथ लेकर गौरी पूजन के हेतु आई थी। राम के अनुपम रूप को देखकर सीता जी अकबक खड़ी रह गईं। राम भी सीता जी की ओर आकर्षित हुए। सीता जी की सखियाँ राजकुमारों को देख मुस्कराने लगीं। सीता जी ने अपने हृदय में पूर्ण रूप से राम को बसा लिया। इसके बाद वह गिरिजा के मन्दिर में गईं। वहाँ उन्होंने गिरिजा से अनेक प्रकार की प्रार्थना की कि वे उनके मन की कामना को पूर्ण करें। यह पूरा दृश्य अन्य रामायणों में नहीं मिलता। यह दृश्य भी गोस्वामी जी की अपनी मौलिकता से पूर्ण है। कठोर मर्यादा के पालक तुलसी की लेखनी से इस भाँति का सुन्दर प्रसंग का प्रयुत उनकी महान उदारता का द्योतक है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने काव्य में माधुर्यीय तत्व को प्रसन्न राघव के आधार पर महत्व दिया है। जो अध्यात्म रामायण में अपने न्यून रूप में मिलता है। इस प्रसंग में गोस्वामी जी की अपनी मौलिकता यह है कि उन्होंने अपने इस प्रसंग में राम और सीता जी का प्रेम-वर्णन जो किया है वह पुनीत है। जिसका संकेत इस स्थल पर मिलता है।

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीता।[1]

सांसारिक वासना वाला प्रेम का चित्रण नहीं। इसका प्रमाण भी है वह यह कि गोस्वामी जी ने राम और सीता दोनों के ही हेतु चन्द्रमा और चकोर का उदाहरण रखा है।

---

१ मा० बा० दो० १९९

राम— अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥[1]

सीता— अधिक सनेहँ देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥[2]

चकोर चन्द्रमा को कभी भी छू नहीं पाता। उसका प्रेम चन्द्रमा के प्रति निष्कपट और पवित्र है। वह अपना सर्वस्व त्याग कर प्रियतम से मिल जाने की भावना रखता है —

पिय सों मिलो सुमति कहि ससि सेखर के पास।
यह विचार संसार मित चहै चकोर चकास॥

अतः राम और सीता जी के हेतु भी चन्द्रमा और चकोर का उदाहरण रख कर गोस्वामी जी उनके पवित्र प्रेम को प्रकट कर रहे हैं। कौन है ऐसा महाकवि जो प्रेम जैसे प्रकरण को इतनी पवित्रता और सौष्ठव पूर्ण ढंग से अभिव्यक्त कर सके।

गिरिजा की पूजा भी मानस में करवाई गई है, अन्यत्र नहीं। इसका कारण यही हो सकता है कि गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थ में शिव को महत्व दिया है। इस प्रसंग में जो गोस्वामी जी ने प्रेम की मार्मिक अनुभूतियों को कलात्मक तूलिका से चित्रित किया है उससे भी उनके प्रबन्ध तथा शैली में सौष्ठव उत्पन्न हो गया है। ऐसी पंक्तियाँ प्रबन्ध सौष्ठव में काव्य श्री बिखेरती हुई पाई हैं।

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेहकुमारी॥
सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि॥
तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥[3]

गोस्वामी जी ने प्रबन्ध 'मानस' में कलात्मक शब्दों के द्वारा भी कथा धारा में सौष्ठव लाने का प्रयास किया है और इसमें वह पूर्ण सफल भी हुए हैं। प्रस्तुत प्रकरण में मार्मिक शब्दों की काफी विवेचना पूर्व प्रकरणों में की जा चुकी है। यहाँ प्रस्तुत उद्धरण में जो दो मात्रों के पूर्व 'सोई' शब्द आया है वह गोस्वामी जी की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है और साथ ही कलात्मक सौंदर्य की अभिवृद्धि करने वाला

---

१ मा० मा० पृ० १९१
२ मा० मा० पृ० १९२
३ मा० मा० पृ० १९९

है। लक्ष्मण से राम अपने मन की बात कहते रहे हैं। और यह कहते हैं कि लक्ष्मण यह जनक की वही कन्या है जिसके लिए धनुष यज्ञ हो रहा है। ध्यान दें महाराज जनक की सीता के अलावा उर्मिला भी एक कन्या थी। गोस्वामी जी ने सोचा कि यह जनक की कन्या है कहना यह कह देने से हो सकता है कि इससे भाव स्पष्ट न हो जनक के एक और कन्या होने के कारण। अतएव राम ने कहा कि यह वह कन्या है जिसके लिये स्वयंवर हो रहा है। स्पष्ट है राम का संकेत सीता की ओर है। यदि गोस्वामी जी केवल जनक की कन्या का ही उल्लेख करके छोड़ देते तो बड़ा अनर्थ उपस्थित हो जाता। क्योंकि राम जनक की कन्या को ही जिस प्रेम पूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं और उर्मिला तो आगे लक्ष्मण की पत्नी होने से उनकी पुत्री तुल्य ही हो सकती है। अतः यहाँ गोस्वामी जी ने कोई शब्द लाकर मर्यादा पूर्ण ढंग से जो प्रकरण को स्पष्ट किया है उसका सौष्ठव दर्शनीय है।

'वाल्मीकीय रामायण' में धनुष यज्ञ का वर्णन एक व्यवस्थित सभा के रूप में नहीं मिलता। तुलसीदास कृत मानस में सभा का भव्य वर्णन हुआ है। जिससे उनके प्रबन्ध के कथानक में रमणीयता आ गई है।

'वाल्मीकीय रामायण' में परशुराम राम को उस समय रास्ते में मिलते हैं जब वे मिथिला से सीता को पाणिग्रहण के बाद अयोध्या ले जा रहे थे।[1]

अध्यात्म रामायण में परशुराम सम्बन्धी घटना ठीक इस प्रकार है। लेकिन रामायण का विषय से अध्यात्मिक रूप होने के कारण परशुराम से राम की स्तुति कराई है।

'मानस' में परशुराम धनुष यज्ञ के समय ही मिथिला में आ जाते हैं और सभा मंडप में आकर लाल लाल नेत्रों से राजा जनक से कहते हैं।

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू॥[2]

जब परशुराम के क्रोध से राजा जनक भयभीत हो गये तब राम ने अति विनीत भाव से कहा है मुनि आप क्रोध न कीजिये। शिव का धनुष आपके किसी सेवक ने ही तोड़ा है। इस पर परशुराम का क्रोध और भी बढ़ गया। लक्ष्मण से नहीं सहा गया उन्होंने परशुराम से कहा—

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू॥[3]

इस प्रकार महर्षि का क्रोध और भी भभक उठा। और बहुत समय तक

---

1 वाल्मीकि—वाल्मीकि रामायण—त्रिसप्ततितमस्सर्गः ७३—श्लोक संख्या १ से २४ तक—१४० १४२

2. मा० बा० पृ० १८७

3 मा० बा० पृ० १८८

लक्ष्मण और परशुराम में वाद विवाद होता रहा। मुनि बार बार चिढ़ कर लक्ष्मण को मारने के लिए अपना परशु दिखलाते और दुहाई देते हैं कि कोई यह न कहेगा कि मैंने बालक की हत्या की। यह बालक अति नीच और ढीठ है।

लक्ष्मण अति व्यंग्यपूर्ण वाणी में परशुराम को उत्तर दे रहे हैं। परशुराम बार बार अपने शौर्य का बखान करते तो लक्ष्मण उत्तर देते हैं।

अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।[1]

लक्ष्मण हर बात में उनका उपहास कर रहे हैं। पूरा परशुराम लक्ष्मण संवाद तुलसीदास जी की अनुपम मौलिकता पूर्ण रचना है। जिसकी समता किसी भी रामायण में नहीं मिलती।

जब बात बहुत बढ़ गई और परशुराम जी बार बार अपना परशु तेज करने लगे तब राम उठे और उन्होंने अति विनीत स्वर में मर्यादानुकूल वचन कहे—

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना।।
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।।
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई।।[2]
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के।।

यह सुनकर परशुराम को ज्ञान हो गया और उन्होंने अपना संदेह मिटाने के हेतु कहा।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू।।
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ।।[3]

इसके बाद परशुराम अनेक तरह राम की स्तुति करके चले गए। इस प्रसंग में परशुराम का तेज राम ने नहीं छीना। बल्कि धनुष को छूने से ही अपना प्रताप दिखला दिया। सम्भव हो सकता है कि तुलसीदास जी अपनी मर्यादा की सीमा के भीतर एक अवतार की शक्ति को दूसरे अवतार से नष्ट नहीं करना चाहते थे बल्कि उसका तात्पर्य तो केवल इतना ही था कि परशुराम को राम के अलौकिक रूप का ज्ञान करा दें। इसके अलावा उपर्युक्त प्रसंग में ज्ञान वर्ण ब्राह्मण गौरव आदि की मर्यादाओं को भी तुलसीदास जी ने अपनी लेखनी से पूरी तरह निभाया है।

प्रस्तुत प्रसंग गोस्वामी जी के प्रबन्ध सौष्ठव का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करता है। क्योंकि इसमें एक तो विवाह के बाद न लाकर रंगभूमि में ही परशुराम का आगमन दिखलाया है इससे राम का महत्व सब राजाओं के बीच में जब बढ़ा साथ ही परशुराम द्वारा दूसरे दिये हुए धनुष को राम चढ़ा देते हैं यह दिखला कर राम की योग्यता का प्रभाव चित्त में छा गया। दूसरे परशुराम ने राम की स्तुति

---

१. मा० बा० पृ० ११०
२. मा० बा० पृ० १११
३. मा० बा० पृ० १११

जो गोस्वामी जी ने करवाई है वह भी राम के महत्त्व को और उनके शौर्य को प्रद- र्शित कर रहा है अतः गोस्वामी जी ने वाल्मीकि जी के आधार पर परशुराम का आगमन विवाह के उपरान्त न दिखला कर मध्य भाग में दिखला कर अपनी प्रबन्ध धारा में सौष्ठव का संपादन किया है।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित विवाह का वर्णन ईसा से पूर्व के समाज में प्रचलित यज्ञादि को अधिक महत्त्व देता है। जबकि तुलसीदास के 'मानस' में वर्णित विवाह वर्णन में मध्यकालीन राजपूत प्रशासी के विवाह की पूरी छाप है। अन्य राम कथाओं में विवाहोत्सव का वर्णन इतना विस्तार पूर्वक नहीं है।

मानस' के अयोध्याकाण्ड में अध्यात्म रामायण की भाँति सरस्वती मंथरा की बुद्धि भ्रष्ट करती है। लेकिन सरस्वती देवताओं की नीच बुद्धि पर तथा पृथ्वी के भावी कल्याण को सोच कर यह काम करने के हेतु तैयार हो जाती है।

इसके बाद मंथरा की कुमन्त्रणा का वर्णन उसी वाल्मीकीय रामायण की भाँति है लेकिन इसमें मौलिकता यह है कि मंथरा कोरे भावावेश में ही यह सब षड्यन्त्र पूरा नहीं करती। बल्कि वह बड़ी कुशलता से अनेक उतार चढ़ाव देकर कैकेयी के हृदय को बदलती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जितना तुलसी का कथन मंथरा के बारे में पूर्ण है। उतना अन्य किसी भी कथाकार का नहीं। मंथरा जब अपनी बात का प्रभाव कैकेयी के हृदय पर जमते नहीं देखती है तो एक तरफ तो बहुत गहरी चाल से अपने मन्तव्य को पूरा करने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर वह रानी की सहानुभूति का पात्र भी बनती है।

वाल्मीकीय रामायण में राजा दशरथ ने विभिन्न राज्यों के राजाओं को बुला कर उनकी अनुमति से राम के राज्याभिषेक की घोषणा की थी।[1] लेकिन 'मानस' में ऋषि वसिष्ठ की सलाह से राजा इस विषय पर राज सभा में विचार करते हैं और अन्त में कहते हैं।

जौं पंचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥[2]

इसमें वाल्मीकीय रामायण से अधिक स्वाभाविकता है। इसके अलावा मानस के वर्णन में हर एक स्थल पर मर्यादा और राम के भगवान रूप में आदर्श का हमेशा ध्यान रखा गया है। वाल्मीकीय में कथाकार स्वाभाविक चित्रण में इतना सचेत नहीं है।

वाल्मीकीय रामायण में तमसा नदी पार करने के पश्चात राम पुरवासियों को सोता ही छोड़ कर चल दिये। जब पुरवासियों की निद्रा खुली तो वे अनेक प्रकार से विलाप करने लगे और निराश होकर अयोध्या लौट आये।

---

१ वाल्मीकि—वाल्मीकि रामायण—अयोध्या काण्ड—श्लोक १ से ५२ तक—द्वितीय सर्ग।

२ मा० बा० पृ० २११

अध्यात्म रामायण में तो भगवान और भक्त के सम्बन्धों को ही जनता की भावनाओं से व्यक्त किया गया है और मानस में राम के प्रति जनता का अनन्य प्रेम है। जिसमें कुछ तो उनके भगवान स्वरूप के कारण और कुछ कैकेयी के द्वारा किये अन्याय की प्रतिक्रिया के कारण जनता को उनके विरह में रोता हुआ दिखाया गया है।

इसके बाद मानस में अयोध्या काण्ड में केवट का प्रसंग आता है। 'वाल्मीकीय रामायण' में तो वह राम का सखा नहीं है बल्कि स्वतन्त्र राजा है।

तुलसी के 'मानस' में भी तमसा नदी पार करने के पश्चात राम के शृंगवेरपुर पहुँचने तक मार्ग में किन्हीं नदियों का वर्णन नहीं है। शृंगवेरपुर में निषाद राज गुह राम को अपने बन्धु बान्धवों के साथ फल कन्दादि की भेंट देने गया। राम के दर्शन पाकर वह कहने लगा कि आज मैं धन्य हो गया। मेरी गिनती भाग्यवान पुरुषों में हो गई। जो आपके दर्शन प्राप्त हुए। यह पृथ्वी धन और राज्य आपका है। मैं तो परिवार सहित आपका नीच सेवक हूँ।

'मानस' की यह अन्तिम पंक्ति महत्वपूर्ण है। 'वाल्मीकीय रामायण' में गुह एक स्वतन्त्र राजा के गौरव से राम से मिला था। उसके साथ वृद्ध मन्त्री और निषाद गण आये। अध्यात्म रामायण में वह पहले से राम को सखा सम्बोधित करता है। मानस में वह पहले अपनी नीचता प्रदर्शित करता है। इस कथन में तुलसी का अपना सामाजिक दृष्टिकोण सन्निहित है। अपने मानस में कवि ने उसको नीच वर्ण का माना है। जहाँ अपने काव्य में नीच कहा है और उच्च वर्णों के प्रति उसकी अनन्य भक्ति भी प्रदर्शित की है। यही तो उनकी मर्यादा की रेखा है। दूसरी तरफ उच्च वर्णों का संरक्षणात्मक दृष्टिकोण दिखलाया है। जिससे राम जब निषाद राज गुह को सखा कहते हैं।

शृंगवेरपुर एक रात ठहर कर सबने प्रातःकाल गंगा नदी पार की। राम ने सुमन्त को अयोध्या वापस भेज दिया। इसके पश्चात वन मार्ग में उन्हें अनेकों गाँव मिले। मानस में ग्रामीण पुरुषों और स्त्रियों के हृदय में राम सीता लक्ष्मण के प्रति जो सद्भावनायें उठती हैं उनका बड़ा ही रोचक वर्णन है। ऐसा वाल्मीकि रामायण में भी नहीं है।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित प्रसंग के अनुकूल जब राम लक्ष्मण और सीता ऋषियों के आश्रमों पर पहुँचते हैं तो ऋषि उनका यथोचित स्वागत सत्कार करते हैं लेकिन 'अध्यात्म रामायण' में ऋषि यह कहकर कि भगवान राम आये हैं उनकी पूजा करते हैं। इसी प्रकार 'मानस' के प्रसंग में भी जब राम वाल्मीकि जी से अपने ठहरने योग्य स्थान के बारे में पूछते हैं तो अध्यात्म रामायण में वाल्मीकि उत्तर देते हैं कि हे भगवन आप सर्वज्ञ हैं। मुझसे नाहक उपहास क्यों करते हैं। आप तो स्वयं त्रिकालदर्शी हैं। मैं आपको क्या स्थान बतलाऊँगा। इसी प्रकार का भाव मानस में भी व्यक्त है। परन्तु मानस में जो १४ स्थानों के विचार व्यक्त कर उनमें

राम का निर्वासन बतलाया है वह बड़ा ही स्वाभाविक तथा मौलिक है। 'वाल्मीकीय रामायण में राजा अन्तःपुर में पड़े हुए राम के वियोग में शोक से व्याकुल हैं। तभी कौशिल्या न उनसे कटु वचन कहे।[1] मानस में तो कौशिल्या कोई भी कटु नहीं बोलती बल्कि वे तो इन सबको धर्म कह कर स्वीकार कर लेती हैं। तभी तो जब उन्होंने राम के वनवास का समाचार सुना था तो उनकी गति साँप छछूंदर की सी हो गई थी कि पिता की आज्ञा के सामने मैं क्या करूँ। राजा जब अधिक व्याकुल होते तो कौशिल्या यों कहती हैं —

धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू।
जौं जिय धरिय बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥[2]

तुलसीदास जी अपने मानस में दशरथ के एक मर्यादा युक्त परिवार का वर्णन करते हैं। वाल्मीकि जीवन की स्वाभाविकता लिए एक राजा के परिवार का यथार्थ चित्रण करते हैं।

जब भरत ने अयोध्या में आकर यह सुना कि पिता का स्वर्गवास हो गया और राम लक्ष्मण सीता वन को चले गये तो उन्हें अपार दुःख हुआ।

वाल्मीकीय रामायण में कौशिल्या भरत को अनेक कठोर शब्द कहती हुई उन्हें दोषी ठहराती हैं।[3] मानस में दोषी भरत नहीं हैं। बल्कि विधाता ही वाम हो गया है। मानस के वर्णन में आध्यात्म का सहारा लेकर एक आदर्श एवं मर्यादा का पालन किया है। वाल्मीकि रामायण में भी स्वभाव एवं वात्सल्य प्रेम में निहित मानवोचित स्वार्थ की ओर पूरी दृष्टि रखकर चरित्र का विकास किया गया है। मानस में पारिवारिक धर्म की मर्यादा तथा अभिन्न भ्रातृ प्रेम के वशीभूत होकर ही भरत राज्य नहीं सम्भालते। अध्यात्म रामायण में भगवान की अनुपस्थिति में भरत कैसे राज्य संभाल सकते थे।

शृङ्गवेरपुर पहुँचने पर वह गुह से मिले। वाल्मीकीय रामायण में गुह के हृदय में थोड़ा शोक कैसे उत्पन्न होता है जिससे वह अपने मल्लाहों को सावधान रहने के लिए कह कर भरत को भेंट देने जाता है जिससे सारा राज मालूम हो सके।[4] परन्तु मानस में तो एक बार ऐसा भाव होता है कि उसने लड़ाई की सारी तैयारी कर ली और कूच करने वाला है। कोई अचानक छींक उठा। तभी किसी

---

१ वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—चत्वारिंशस्सर्ग ४२ पृ० २७८ २८०—अयोध्या काण्ड

२ मा० अयो० पृ० ३५१

३ वाल्मीकि—वाल्मीकीय—रामायण—अयोध्या कांड—सर्ग ७५ श्लोक संख्या १ से १६ तक।

४ वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या—कांड—सर्ग ८४ श्लोक संख्या १ से १० तक।

साधु पुरुष ने कहा कि भरत की बात पहले जान लो फिर आक्रमण करो । तब गुह भेंट लेकर भरत के पास जाता है ।

'वाल्मीकीय रामायण' में जब भरत भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे तो ऋषि का हृदय सशंकित हुआ । उन्होंने भरत से पूछा कि हे राजकुमार ! तुम तो राज्यशासन कर रहे थे । भला यहाँ तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है ।[1] 'मानस' में जब भरत भरद्वाज के यहाँ पहुँचे तो वे मन में सोचने लगे कि जब महर्षि कुछ पूछेंगे तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा । लेकिन ऋषि ने तो कुछ शंका नहीं की बल्कि सबका शोता होकर कहा :—

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । विधि करतब पर कछु न बसाई ॥[2]

'अध्यात्म रामायण' में भरद्वाज भरत के ऊपर सन्देह तो नहीं करते हैं । भरत के आने पर वह कौतूहलवश प्रश्न अवश्य पूछते हैं कि हे भरतमुनियों के वन में इस प्रकार यहाँ वल्कलादि युक्त आने का क्या तात्पर्य है ।

बातचीत के पश्चात भरद्वाज मुनि ने अपनी कामधेनु गाय के प्रभाव से भरत को सेना और परिवार सहित दावत दी । 'मानस' में भरद्वाज ने ऋषि तथा सिद्धियों की सहायता से यह काम किया । 'वाल्मीकीय रामायण' में दावत में माँस मदिरा का भी वर्णन है ।[3] अन्य राम कथाओं में नहीं ।

'मानस' में एक घटना को इस स्थल पर और विस्तार दिया गया है वह है चित्रकूट में जनक के आगमन की जो अन्य कथा काव्यों में नहीं मिलती । गोस्वामी जी का यह प्रसंग बड़ा ही मौलिक और स्वाभाविक है । क्योंकि राम को ऐसी विपत्ति में सभी देखने जायें और उनके श्वसुर जनक ही उन्हें देखने वहाँ न जायें यह कुछ स्वाभाविक नहीं लगता । गोस्वामी जी ने इस घटना को जोड़ कर अपने प्रबन्ध सौष्ठव में और भी चार चाँद लगा दिये हैं ।

चित्रकूट में भरत मिलाप का दृश्य प्रायः सभी रामायणों में एक-सा है । 'वाल्मीकीय रामायण' में व्यवस्थित सभा के बारे में नहीं लिखा है । 'मानस' व 'अध्यात्म रामायण' में पूरी सभा चित्रकूट में बैठती है और सभा तुल्य ही कार्यवाही वहाँ होती है । यह सभा 'मानस' की अपनी विशिष्ट महत्व रखने वाली है । शुक्ल जी ने तो इसे एक आध्यात्मिक घटना माना है ।

भरत विनय करके भी जब राम को नहीं लौटा सके अन्त में उनकी चरण पादुका लेकर वे अवध वापस आ गये । भरत मिलाप का वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण'

१—वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या कांड—सर्ग ८६—श्लोक संख्या ८ से १४—तक—पृ० ३८६ ३९०

२ मा० अयो० पृ० ३८४

३ वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या कांड—सर्ग ९१ श्लोक संख्या ६९—पृ० सं० ३९५

से 'मानस' का अधिक मर्म स्पर्शी है। गोस्वामी जी ने अपनी गहरी अनुभूति से इस चित्र को अति कुशल लेखनी से चित्रित किया है।

मानस की भांति अन्य रामायणों में भी भरत का नन्दि ग्राम में मुनिव्रत धारण कर रहने का उल्लेख है। उन्होंने चरण पादुकायें सिंहासन पर रख दी थीं और शत्रुघ्न को अपनी तरफ से राज्य का नियंता नियुक्त कर दिया था।

अरण्य कांड में वाल्मीकि जी ने लिखा है कि विराध ने सीता जी को अपने कंधों पर चढ़ा लिया। गोस्वामी जी ने इस घटना का सर्वथा त्याग कर इसे केवल संकेत रूप में इस प्रकार लिखा :—

मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता ॥[1]

गोस्वामी जी की सीता को विराध अपने कंधों पर चढ़ाये इसे वह कभी भी सहन न कर सकते थे। इसी हेतु उन्होंने 'मानस' में इस घटना का सर्वथा बहिष्कार कर दिया। इससे मर्यादा की भी रक्षा हो गई और साथ ही राम ने आते ही उसे मार दिया। इससे राम की वीरता भी प्रकट हो गई। इसी दृष्टिकोण के आधार पर गोस्वामी जी ने सीता के कटु लक्ष्मण के कटु वचन वाली घटना भी 'मानस' में नहीं आने दी। इसके उपरान्त सीता के हरण की घटना आती है। शूपनखा के कुरूप होने के कारण खरदूषण १४००० सेना के सहित राम पर आक्रमण कर देते हैं किन्तु गोस्वामी जी ने इसे ऐसे देखा :—

देखहि परस्पर राम मय संग्राम रिपु दल लरि मर्यो।[2]

इससे गोस्वामी जी के प्रबन्ध कथा शिल्प में एक चमत्कार आ गया है। इसके अनन्तर राम सीता को अग्नि प्रवेश करा कर माया की सीता बनाते हैं जो 'अध्यात्म रामायण' की ही भांति है। रावण की जो भक्ति भावना है वह भी अध्यात्म रामायण की भांति है। किन्तु उनके इस प्रकरण में रावण की भक्ति भावना को अधिक दृढ़ता है।

जब राम मृग मार कर लौटते हैं तो उसके बाद जब गीध राज उन्हें मिलता है तो 'वाल्मीकीय रामायण' के आधार पर वह उसे राक्षस समझ कर मारने दौड़ते हैं।[3] किन्तु मानस के राम को ऐसा भ्रम नहीं होता। वह गीध को परम धाम प्रदान करते हैं।[4]

इसके बाद राम शबरी के आश्रम में जाते हैं। वह निम्न वर्ण की महिला थी। उसने राम का इस प्रकार सत्कार किया मानों भगवान उसके आश्रम में आये हों।

---

१ मा० अरण्य पृ० ४७२

२ मा० अरण्य—पृ० ४८७

३ वाल्मीकि—वाल्मीकीय रामायण—अरण्य कांड—सर्ग ६७—श्लोक संख्या ८ से ११ तक। पृ० सं० ६६७-६६८

४ मा० अरण्य पृ० ४९६

उसने अपने को नीच कहा है। अध्यात्म रामायण तथा 'मानस' में राम ने शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दिया है।

वाल्मीकीय रामायण में शबरी को कहीं भी बूढ़ा या नीच नहीं कहा गया। इसमें वह एक वृद्धा तपस्विनी थी जो सिद्ध लोगों की पूज्या भी है। 'वाल्मीकीय रामायण' में जब हनुमान राम से परिचय प्राप्त करने आते हैं तो राम को किसी प्रकार का देवी अवतार मान कर के उनकी स्तुति करने नहीं लग जाते हैं। जैसा अध्यात्म रामायण और 'मानस' में तो राम के सच्चे भगवान स्वरूप को पहचान कर हनुमान को अत्यधिक हर्ष हुआ। किष्किंधा कांड में आता है :—

प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना।।
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही।।
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं।।[1]

अध्यात्म रामायण में तो पहले ही सुग्रीव राम के बारे में अनुमान लगाकर हनुमान से कहता है—हे हनुमान! यह पथिक का सा रूप धारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष साक्षात् नारायण हैं। प्रकृति से परे जगत के हेतु हैं और यह राक्षसों से भक्तों की रक्षा के हेतु अवतरित हुए हैं।

'मानस' में हनुमान को इतना विद्वान नहीं बतलाया गया है। जैसाकि 'वाल्मीकीय रामायण' में। बल्कि उन्हें भक्त बतलाया गया है वह कहते हैं :—

तव माया बस फिरउँ भुलाना। ता तें मैं नहिं प्रभु पहिचाना।।[2]

अपनी अज्ञानता प्रकट करते हुए हनुमान कहते हैं।

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान।।[3]

वे कहते हैं कि आपकी कृपा से ही मेरा निर्वाण हो सकता है क्योंकि—

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई।।[4]

'अध्यात्म रामायण' और वाल्मीकीय रामायण को छोड़ कर अन्य राम कथाओं में भी हनुमान को एक वानर के रूप में लिया गया है। उनके बारे में विद्वता की कल्पना नहीं की गई। उनके दृष्टिकोण से यह ठीक भी है। क्योंकि उन्होंने हनुमान तथा सुग्रीव के साथ सब वानरों को प्रायः पाये जाने वाले बन्दरों के रूप ही देखा है जो पेड़ पर चढ़कर उछल कूद कर सकते हैं। भला एक बन्दर के लिए वेदज्ञ पण्डित की कल्पना कैसे की जा सकती है।

---

१ मा० कि० पृ० ५११
२ मा० कि० पृ० ५११
३ मा० कि० पृ० ५११
४ मा० कि० पृ० ५११

'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार सुग्रीव राम के मित्र हैं और मित्रोचित व्यवहार ही दोनों करते हैं। लेकिन 'मानस' में सुग्रीव नाम मात्र के राम के मित्र हैं। और हैं भी तो अज्ञानवश। मोहवश प्रभु के असली रूप को न पहचान कर ही ऐसी गलती करते हैं। भला परम ब्रह्म रूप राम का कौन मित्र हो सकता है। उनका तो केवल भक्त ही हो सकता है। और भक्ति से ही सब कार्यों की सिद्धि होती है। इसी तरह राम के दर्शन पाकर जब सुग्रीव को ज्ञान प्राप्त हुआ तो वे कहने लगे —

उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥[1]

क्यों—

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥[2]

शत्रु मित्र यह तो सब माया है। सुग्रीव अब भगवान राम से एक वरदान माँगते हैं।

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥[3]

इस पर भगवान श्री राम सुग्रीव की वैराग्य युक्त वाणी सुनकर बोले —

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥[4]

इसके बाद जब सुग्रीव पिटकर राम के पास आता है तो 'मानस' में सुग्रीव राम को कोई भी उलाहना नहीं देता। बल्कि इतना ही कहता है —

मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥[5]

इसमें राम भी सुग्रीव के सामने वाल्मीकि की भाँति ऐसे दीन शब्द नहीं कहते कि हम तुम्हारे शरणागत हैं। परम भगवान होकर इतने दीन स्वर में कैसे बोल सकते थे। उन्होंने तो सुग्रीव को हाथ से स्पर्श करके वज्र के समान कर दिया और सुग्रीव की सारी पीड़ा भी इससे जाती रही।

अध्यात्म रामायण में तारा बालि को युद्ध में जाने से रोकता है। लेकिन उसमें राम के हेतु भगवान शब्द कहा गया है। बालि कहता है कि हे प्रिये मुझको कोई भी भय नहीं। राम तो साक्षात नारायण हैं। जिन्होंने पृथ्वी का भार दूर करने के लिए ही अवतार धारण किया है। उन परमात्मा राम का जिनका न कोई मित्र है न शत्रु। मैं चरणारविन्द में नमस्कार करके लिवा लाऊंगा।

जब घायल बालि के सामने राम गए तो बालि ने राम से अनकों वचन कहे।

---

१ मा० कि० पृ ५११
२ मा० कि० पृ० ५११
३ मा० कि० पृ० ५११
४ मा० कि० पृ० ५११
५ मा० कि० पृ० ५१०

'वाल्मीकीय रामायण' बालि के प्रसंग अपने लौकिक रूप में ही है। राम ने सनातन धर्म का विवेचन करके बालि को समझा दिया है कि उसका वध अधार्मिक काम न था। बल्कि राम जैसे धर्म के रक्षक राजा को तो उस दुराचारी का वध करना ही चाहिए था। क्योंकि पुर्वोक्त अपने छोटे भाई सुग्रीव की स्त्री रूमा को उससे पत्नी बना लिया था और सुग्रीव का राज्य छीन लिया था।

अध्यात्म रामायण में भी छोटे भाई की स्त्री के अपहरण का दोष बालि के सिर पर है।

'रामचरित मानस' में भी अधिकांश अध्यात्म रामायण का ही दृष्टिकोण है। उसमें तो बालि राम से कुछ ही नहीं पाता। राम की धर्म अधर्म की व्याख्या सुनकर मूक बन्द हो गया। और वह अपने हृदय में भगवान राम के सामने प्रत्यक्ष प्रीति होकर बोला,—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंत काल गति तोरि॥[1]

इसके बाद राम ने बालि के सिर पर हाथ रखकर कहा। हे बालि मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ। तुम अपने प्राणों को रखो। इस पर बालि ने कहा:—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥[2]

'वाल्मीकीय रामायण' में बालि की मोक्ष प्राप्ति का वर्णन नहीं है। और न इसमें राम बालि से फिर जीवित होने की बात करते हैं। अतः बालि वध में गोस्वामी जी की अपनी प्रभावात्मक प्रतिभा और विपुल कल्पना सन्निहित है।

अध्यात्म रामायण' में तारा अपने पति के शव पर रोती हुई राम से कटु वचन कहती है। कि हे राम! जिस बाण से आपने मेरे पति को मारा है उससे मुझे भी मारिए। इसके बाद भी तारा तीन चार वाक्यों में अपनी व्यथा कहती है। लेकिन इसमें वह हृदय विदारक दृश्य तारा के विलाप में प्रस्तुत नहीं होता जैसाकि वाल्मीकीय रामायण में।

'रामचरित मानस' में तारा राम से कोई भी कटु वचन नहीं कहती। वह विलाप करती हुई अपने पति के शव के पास आती है। तब उसको व्याकुल देखकर राम उसको तत्व ज्ञान का उपदेश देते हैं।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥[3]

यह सुनकर तारा का अज्ञान नष्ट हो गया। तुलसीदास जी कहते हैं—

---

१ मा० कि० पृ० २२१
२ मा० कि० पृ० २२१
३ मा० कि० पृ० २२४

उपजा ज्ञान चरन तब लागी। दीन्हेसि परम भगति वर मागी ॥[२]

इसमें खग पक्षी में भक्ति भावना को दिखलाकर गोस्वामी जी अपने प्रतिपाद्य राम भक्ति को ही सुगमता से प्रतिष्ठित करते चलते हैं। इससे भी प्रबन्ध में उनके विषय प्रतिपादन संबंधी कलात्मक दृष्टिकोण के अभिव्यक्त होने से प्रबन्ध में सौष्ठव उत्पन्न हो गया है।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार हनुमान ने लंका का पूरा वैभव देखा और मन में चकित होकर विचार करने लगे। इस लंका में आकर तो वानरों से कुछ भी नहीं बन पायेगा। क्योंकि युद्ध में इन राक्षसों के जीतने की सामर्थ्य तो देवताओं में भी नहीं। इस महा विषम दुर्गम लंका में आकर राम क्या करेंगे। फिर साम दाम दण्ड भेद इन चारों में से एक की भी चाल इन राक्षसों में नहीं चल सकती। यहाँ तो केवल चार वानरों की गति दिखलाई देती है। अंगद नील मेरी और सुग्रीव।

इस प्रकार की शंका अन्य राम कथाओं में हनुमान के हृदय में नहीं उठती। 'मानस' में गोस्वामी जी को इस नगरी का इतना वैभवशाली वर्णन करना मंजूर नहीं था। उन्होंने तो इन दुष्टों को भैंसे मनुष्य गाय गोरु गधे आदि भक्ष्य अभक्ष्य खाने वाला बताया है और अन्त में स्पष्ट शब्दों में यह कह गये हैं कि मैंने तो इन की कथा इस हेतु थोड़ी-सी कही है कि यह निश्चय ही राम के बाणों से अपने शरीर को त्याग कर परमगति पावेंगे।

अब कपि कुंजर हनुमान उस पर्वत के शृंग पर पल भर ठहर कर राम के कार्य के लिए फिर आप विचार करने लगे कि मैं किस तरह नगर में प्रवेश करूँ जिससे मुझे कोई भी पहचान न सके। वाल्मीकीय रामायण में वे सूर्यास्त के पश्चात् बिडाल के सदृश छोटा स्वरूप धारण करके प्रदोषकाल में कूदे। और उस समय सुन्दर राजमार्गों से भूषित लंका में जा घुसे। 'मानस' में वे केवल एक मशक मच्छर के समान रूप बनाकर नगर में घुसे। यह बात भी गोस्वामी जी के प्रबन्ध कथा शिल्प में चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।

जब हनुमान लंका में घुसे तो उन्हें लंकिनी नामक एक राक्षसी मिली उसने उन्हें रोका तब हनुमान ने उसका वध कर दिया। वाल्मीकीय रामायण में साक्षात् लंका पुरी को ही राक्षसी का वेश बनाकर आता दिखलाया गया है। 'मानस' में उस लंकिनी राक्षसी को वेश बनाकर इस तरह दिखलाया है मानों वह लंका के द्वार पर पहरा देती रहती थी। 'अध्यात्म रामायण' में भी 'वाल्मीकीय रामायण' का समर्थन है। अन्य राम कथाओं ने तुलसी के मत को स्वीकार किया है। लंका का राक्षसी बनकर आना चमत्कारी कल्पना है। ऐसा ज्ञात होता है कि यह लंकिनी या तो कथा में अद्भुतत्व का सृजन करने के लिए या राम का अवतार रूप में प्रस्तुत करने के हेतु ही कवि कल्पना की सुन्दर अभिव्यक्ति बनी।

---

२ मा० कि० पृ० ५२८

'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार हनुमान ने विभीषण का घर साधारण रूप में ही देखा। लेकिन गोस्वामी जी ने अपने प्रबन्ध की कथा में सौष्ठव उत्पन्न करने के हेतु इस प्रसंग को भिन्न रूप दे दिया है। मानस में हनुमान ने देखा कि—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥[1]

यह भवन कैसा था—

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥[2]

इस प्रकार हनुमान जी से मिलकर हर्षित हुए विभीषण ने उन्हें सीता के रहने का स्थान बताया। अध्यात्म रामायण में लंकिनी ने स्वयं हनुमान को सीता के निवास स्थान अशोक वाटिका का पता दिया था। वाल्मीकीय रामायण में हनुमान स्वयं सीता जी को नहीं जानते हुए पहुँचे थे।

तुलसीदास जी ने जो विभीषण का वर्णन किया है वह एक राम भक्त विभीषण का वर्णन है। 'वाल्मीकीय रामायण' में विभीषण राम के भक्त तो नहीं हैं। बल्कि वह एक सत्य प्रिय और न्यायवादी व्यक्ति हैं। जो समय समय पर रावण को नेक तथा धर्म युक्त सलाह देता है। 'अध्यात्म' रामायण में भी विभीषण एक न्यायानुकूल मन्त्रणा देने वाले के रूप में वर्णित है। पद्म पुराण में मानस की भाँति वह भगवद्भक्त है।

'वाल्मीकीय रामायण' में राक्षस राज रावण के भवन का अत्यन्त सजीव तथा काव्यमय वर्णन है। वैसा हमें अन्य काव्यमय कथाओं में प्राप्त नहीं होता। गोस्वामी जी ने तो इस विस्तृत विवेचन को काव्य में स्थान न देकर केवल इतना भर ही कह दिया।

गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥[3]

गोस्वामी जी राम के दिव्य रूप से उत्पन्न चमत्कारों से प्रभावित थे। इसीलिये हनुमान का एक मच्छर रूप में लंका में प्रवेश करना भी कवि की कल्पना का चमत्कार है। 'वाल्मीकीय रामायण' में भी हनुमान के छोटे रूप का वर्णन है।

'रामचरित मानस' में रावण द्वारा सीता को कहे गये मन को लुभाने वाले वचनों का उल्लेख नहीं। उसमें तो केवल संक्षिप्त रूप में निम्न चौपाइयाँ हैं —

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥[4]

---

१ मा० सु० पृ० ५४१
२ मा० सु० पृ० ५४४
३ मा० सु० पृ० ५४१
४ मा० सु० पृ० ५४६

यहाँ गोस्वामी जी ने नैतिकता एवं मर्यादा का विरोध समझ कर ही 'वाल्मीकीय रामायण' के रावण द्वारा कहे गये कामोत्तेजक एवं विलास पूर्ण शब्दों को यहाँ नहीं दिया। क्योंकि फिर उन्हें भी 'अध्यात्म रामायण' की भाँति उसके गूढार्थ की विवेचना करनी होती है।

पूर्ववर्ती कथा स्रोतों में आगत घटनाओं को गोस्वामी जी ने संक्षिप्त रूप से मानस में रखा है। जिसका काफी विवेचन पीछे हो चुका है। इससे भी उनकी प्रबन्ध सम्बन्धी कला में सौष्ठव आया है।

रावण वध के पश्चात विभीषण का लंका की राज गद्दी पर अभिषेक होता है। यह घटना प्रायः सभी राम कथाओं में एक सी मिलती है। इसके बाद सीता का राम के पास आने का वर्णन है। यह वर्णन सब जगह एक सा ही है। अन्तर केवल इतना है कि 'मानस' में सीता का अग्नि प्रवेश राम द्वारा उनकी परीक्षा तथा यह सब भगवान की लीला के अन्तर्गत आते हैं। यही 'अध्यात्म रामायण' में होता है लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' में राम एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं। वे सीता से कटु वचन कहते हैं। गोस्वामी जी ने मर्यादा की दृष्टि से इन वचनों का उल्लेख नहीं किया केवल संकेत भर दिया —

तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।[1]

इसके बाद राम अग्नि परीक्षा के बाद सीता को लेकर विभिन्न देशों से प्रशंसित होकर अवध आकर राज्य करने लगते हैं।

इसके बाद 'मानस' के उत्तर कांड में रामभक्ति सम्बन्धी बातें ही अधिक हैं। तुलसीदास जी भक्ति की महिमा का बखान करते हैं और साथ-साथ उसका एक निश्चित पथ भी निर्धारित करते हैं। इस विषय पर काक भुशुंडि और गरुड़ जी का संवाद काफी प्रकाश डालता है। समन्वय के आधार भी बहुत कुछ इससे स्पष्ट होते हैं। देखा जाय तो उत्तर कांड एक तरह का निष्कर्ष सा है। इसमें स्वाभाविकता होने से प्रबन्ध सौष्ठव निखर उठा है। कथा के पश्चात् कथा का महात्म्य इसमें हमें मिलता है। वाल्मीकीय रामायण में इस विस्तार के साथ भक्ति की महिमा का वर्णन नहीं मिलता। इस कांड को गोस्वामी जी ने सब रामायणों से अलग अपना समाज दर्शन का क्षेत्र बनाया है और वे विभिन्न कथाओं के उल्लेख करने के फेर में नहीं पड़े।

अतः इतने विवेचन से पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि राम कथा के मुख्य स्रोत जिनका विवेचन पीछे हो चुका है उनमें जो प्रबन्ध सौष्ठव नहीं वह गोस्वामी जी के मानस में उपलब्ध होता है। 'मानस' का प्रबन्ध सौष्ठव वास्तव में विलक्षण है। सत्य में उनकी इस प्रबन्ध कथा शिल्प सम्बन्धी कला का सौन्दर्य अप्रतिम और निस्संदेह गोस्वामी जी की काव्य कला की अभिनन्दनीय सफलता है।

---

1 मा० स० पृ० १७२|

वर्णन और काव्य—

कथानक काव्य मूलतः वर्णनात्मक होता है। पर यहाँ हमारा उद्देश्य विशेष वर्णन वस्तुओं का अध्ययन है। वर्णन के कई भेद हो सकते हैं।

१—सौन्दर्य वर्णन
२—प्रकृति वर्णन
३—वस्तु वर्णन

अब हम नीचे उपर्युक्त वर्णन सम्बन्धी सभी कसौटियों की विवेचना करेंगे। और यह देखेंगे कि गोस्वामी जी उसमें कहाँ तक सफल हुए हैं।

सौन्दर्य वर्णन—

भारत की शस्य श्यामला भूमि में उत्पन्न होने वाले सरल निरीह शिशु ने प्रारम्भ से ही अपने चारों ओर एक विचित्र आकर्षण और मादकता से भरा हुआ संसार पाया। प्रकृति के हरित कोमल मृदुल पालने में झूलते झूलते उसने रमणीय पदार्थों में रमण करने वाली शक्ति को पहचानना प्रारम्भ किया। शनैः शनैः प्रकृति से उसका रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होने लगा। उसे लगा जैसे वन के पक्षी तरु लता सुमन सरिता तड़ाग सभी उसके आत्मीय हैं। तपोवनवासी निर्लिप्त मुनिवृन्द भी इस मोहक वस्तु से दूर न छूट सके। और उन्होंने इसे अपने शब्दों में रमणीय चारु और सुन्दर कह कर पुकारा। उषा की अरुणाभा से आलोकित प्राची की शोभा ने भ्रमरों की गुनगुन के साथ कमल वन की मुस्कान में उसे उल्लास से भर दिया। इस प्रकार यहीं से सौंदर्य की रमणीयता का श्रीगणेश हुआ।

राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न के जन्म के पश्चात् यथा विधि उनके नाम करण यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए। वाल्मीकीय रामायण में राजकुमारों की बाल क्रीड़ा का उल्लेख नहीं है। आश्चर्य होता है कि वाल्मीकि ऐसा सरस कवि जीवन के इस कोमल पक्ष को छोड़ कर कैसे आगे बढ़ गया। इसका कारण यही हो सकता है कि वाल्मीकि ने राम के वीर रूप को ही अधिक महत्व दिया है।

अध्यात्म रामायण में कुछ श्लोकों में ही राम की बाल लीला का वर्णन है। अद्भुत रामायण में ही राम के जीवन की यह झाँकी मिलती ही नहीं है। पद्म पुराण में भी राम की लीला का वर्णन नहीं मिलता। इसी प्रकार महाभारत 'रामोपाख्यान' में बाल लीला के लिए एक भी शब्द नहीं है। 'श्रीमद्भागवत' की राम कथा में भी राम के बाल रूप का वर्णन नहीं मिलता है। 'विष्णु पुराण' के चतुर्थ अंश में वर्णित राम चरित में बाल लीला का वर्णन नहीं है।

राम की बाल लीला का जितना सरस वर्णन गोस्वामी जी के 'रामचरित मानस' में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। राम जन्म लेने की घड़ी से ही गोस्वामी जी के मानस से करुणा की धारा कलकल करती हुई बह निकलती है। बाल कांड में वे कहते हैं।

सो अवसर विरंचि जब जाना । चले सकल सुर साजि बिमाना ।।
गगन बिमल संकुल सुर जूथा । गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा ।।
बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी । गहगहि गगन दुंदुभी बाजी ।।
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा । बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा ।।[1]

बच्चे के रोने की प्यारी ध्वनि को सुनकर सब रानियां उतावली होकर दौड़ी चली आई । दासियां हर्षित होकर जहाँ तहाँ दौड़ी । सारे पुरवासी आनन्द में मगन हो गये ।

राजा दशरथ भी पुत्र जन्म की बात सुनकर मानों ब्रह्मानन्द में समा गये मन में अतिशय प्रेम लिए उनके शरीर का रोम रोम पुलकित हो गया । इसके बाद अनेक संस्कार हुए । ब्राह्मणों को सोना गौ वस्त्र और मणियों का दान दिया गया । अनेक उत्सव मनाये गये । राम जन्म के समय जो उत्सव राजभवन में मनाया जा रहा था उसे देख सूर्य भी अपनी चाल भूल गए । गुसाईदास ने राजकुमारों के बाल रूप का भी अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है ।

काम कोटि छवि स्याम सरीरा । नील कंज बारिद गंभीरा ।
अरुन चरन पंकज नख जोती । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा । नाभि गंभीर जान जेहिं देखा ।।
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी । हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ।।
उर मनिहार पदिक की सोभा । बिप्र चरन देखत मन लोभा ।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित मदन छबि छाई ।।
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे । नासा तिलक को बरनै पारे ।।
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ।
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे । बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ।।
पीत झगुलिया तनु पहिराई । जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ।।
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा । सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा ।।[2]

यह राम का वह मनोहर बाल रूप है जिस पर राजा दशरथ और कौशिल्या मन ही मन मुग्ध हो रहे हैं । बालरूप का यह सजीव चित्रण ऊपर लिखित रामायणों में कहीं नहीं है ।

राम की बाल क्रीड़ाओं का वर्णन 'मानस' में लुभाने वाला है । भोजन करने का समय आता है तो राजा दशरथ राम को बुलाते हैं । उस दृश्य का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं ।

धूसर धूरि भरें तनु आए । भूपति बिहसि गोद बैठाए ।।

---

१ मा० बा० पृ० ११६
२ मा० बा० पृ० १४०—१४१

मोचन करत चपल चित इत-उत अवलत पाइ ।
माखि बदे किलकत मुख दधि मोचन लपटाइ ॥[1]

इसके बाद जैसे जैसे राम किशोर अवस्था को प्राप्त हुए तब भी उनकी शोभा का वर्णन करने के हेतु तुलसी की लेखनी शिथिल नहीं हुई है । लेकिन इन सबमें भी तुलसी की एक मर्यादा है । उनका एक बन्धन है जो उन्हें काव्य की विशाल भूमि में स्वच्छन्द गति से विचरण करने से रोकता है । वह है राम का दिव्य रूप । इसकी चेतना उन्हें हर समय रहती है और इसीलिये वे रामायण के भीतर पात्रों को भी समय समय पर उसकी याद दिलाते रहते हैं ।

इसके अनन्तर तुलसी ने अनेक सौन्दर्यमय स्थलों का वर्णन किया है । केवल उपयुक्त सौन्दर्य लाने के हेतु उनके रूप यदि राम भानु के साथ :—

सरद मयंक बदन छबि सींवा । चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा । बिधु कर निकर बिनिंदक हासा ॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी । चितवनि ललित भावँती जी की ॥[2]

-- --सा नवीन सौंदर्य प्राप्त कर लेते हैं । उसी समय उनमें शक्ति का भी समन्वय हो जाता है । भूमि का भार उतारने की मंगलमयी शक्ति का रूप निखर आता है —

केहरि कंधर चारु जनेऊ । बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा । कटि निषंग कर सर कोदंडा ॥[3]

रूप और लावण्य के बीच प्रतिष्ठित होने से शक्ति और शील को अधिक सौंदर्य प्राप्त हो गया है । इससे एक अपूर्व मनोज्ञता भी आ गई है । सूर तुलसी के पूर्व कविता में सौंदर्य परखन की वह दृष्टि न थी जिसमें लोक मंगल की अमर अभिलाषा छिपी हो । कामुकता की मुग्धता सन्निहित हो । सहज मोह लेने की शक्ति हो । सौंदर्य वहीं अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है जहाँ निष्काम सहज आनन्द प्रदान करे । सहज सुन्दर बालक को देखकर हृदय की ईर्षा द्वेषपूर्ण ग्रन्थि खुल जाये यह शत्रु का है यह मित्र का है भेद भाव मिट जाये स्वार्थ पर आवरण पड़ जाये उनके समय सुन्दरता का सरल स्वरूप स्थापित हो सकता है ।[4]

राम लक्ष्मण के लावण्य पर साधारण जन तो मोहित ही हैं । किन्तु विदेह राज वैरागी जनक को भी यह अपरिमित सौन्दर्य आकृष्ट कर रहा है । आनन्द की भी आनन्द प्रदान करता है ।

---

१ मा० बा० पृ० १४३—१४४
२ मा० बा० पृ० १०७
३ मा० बा० पृ० १०७
४ बाल राम की मोहक छवि द्युति देखकर ठगा-सा रह जाना उतना आश्चर्य जनक नहीं जितना जो न ठगे हुए हैं उन विरक्त ज्ञानों का हृदय ।

सुन्दर स्याम गौर दोउ भ्राता । आनंदहू के आनंद दाता ॥[1]

सभी नन्हें बालक इनकी शोभा देखकर पुलकित हो रहे हैं । उनके कोमल शरीर स्पर्श का सुख पाने के हेतु मृदुल गात का परस करके पुरी रिझा रहे हैं ।

सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात ।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात ॥[2]

आबालवृद्ध वनिता सब पर उनका सम प्रभाव है तभी तो उनका वर्णन करते समय गिरा अनयन नयन बिनु बानी[3] की अवस्था आ जाती है । रूप शील गुण आगरी सीता का लावण्य और भी पुनीत है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी के राम शक्ति शील और सौन्दर्य के निधान हैं । उन के इन तीनों गुणों का विशद चित्रण ही 'मानस' की दृढ़ भित्ति है । राम सौन्दर्य से उत्प्रेरित आकर्षण उसकी प्रमुख कुंजी है । पुस्तक की द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि शक्ति और शील सौन्दर्य के विराट वपु के दो अंग हैं और 'मानस' है उसी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तुलसी ने संसार के बाह्य और अन्तस दोनों ही चक्षुओं से देखा है । किन्तु उनके बाह्य चक्षु अतिरिक्त चक्षुओं को खोलने के लिये ही कला के अनुराग से अनुरंजित हुए हैं । मानस में जहाँ वह निर्गुण निराकार की अप्रत्यक्ष छवि अंकित करते हैं वहाँ सौन्दर्य की साकार प्रतिमा भी उपस्थित कर देते हैं ।

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥[4]

सूर और तुलसी दोनों ही सौन्दर्य के कवि हैं । एक के सौन्दर्य में सुकुमारता और क्रीड़ा है । दूसरे के सौन्दर्य में सुन्दरता और साधना । तुलसी का सौन्दर्य सहज सलोना है ।

सहज मनोहर मूरति दोऊ । कोटि काम उपमा लघु सोऊ ॥[5]

गौरी और शोभा का वर्णन करते समय कवि की लेखनी बार बार रुक जाती है । उपमायें शक्तिहीन प्रतीत होने लगती हैं । दूसरे कवि मर्यादा की रेखा मुक्त छुर कर चलना चाहता है । तभी तो :—

सुन्दरता मरजाद भवानी । जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी ॥[6]

कवि कल्पना '[illegible]' की शोभा का भी अतिक्रमण कर गई है और होना भी चाहिए । जिसके नूपुरों की ध्वनि मात्र से भुवन विमोहन

---

१ मा० बा० पृ० १२१
२ मा० बा० पृ० १२८
३ मा० बा० पृ० ११०
४ मा० बा० पृ० १०६
५ मा० बा० पृ० ११६
६ मा० बा० पृ० ७६

राम का चित्त चंचल हो उठा । वह सौन्दर्य अवश्य ही अलौकिक होगा । इसीलिए कवि की उपमायें झूठी प्रतीति होती हैं । वह तो साधारण उपमाओं के ही विषय में फीकी पड़ चुकी हैं । तुलसी को सूर के सदृश :—

भृकुटी विकट नैनन के राजत अतिवर नारि ।
मनहुमदन जग जीति करि राखेउ धनुष उतारि ।।

उपमा खोजने की न आवश्यकता पड़ती है न रीति कवियों के समान दर दर भटकने की । वे तो सरलता से कह देते हैं ।

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ।।[1]

विधि ने सीता का निर्माण कर अपना कला कौशल्य प्रतिष्ठित किया है । वे लावण्य को भी लावण्यमय कर देती है —

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई । छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई ।।[2]

छवि के स्वत दीप गृह को प्रकाशित करने के हेतु सीता दीपशिखा ही है । कवि की इस सौन्दर्य विवेचना में सीता की कम्पक कृति, तनु अंग लतिका सभी एक साथ साकार हो उठी है । एक ओर यदि राम आनन्द देते हैं तो सीता सुन्दरता को भी सुन्दर बना रही है ।

तभी तो :—

सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहि पटतरौं बिदेह कुमारी ।।[3]

कहना पड़ता है इसमें भी भाव है । उपमा तो प्राकृत शरीर से उत्पन्न नारियों के हेतु दी जाती है यह जनक की कन्या तो विदेह जिसका शरीर ही नहीं पृथ्वी से उत्पन्न हुई है इस हेतु इनका सौन्दर्य तो किसी की तुलना में आ ही नहीं सकता । तभी सीता के रूप के समक्ष गोस्वामी जी अलौकिक लक्ष्मी की उद्भावना करते हुए कहते हैं ।

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छप सोई ।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ।।
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ।।[4]

'तूल' कहने में भी संकोच हो रहा है । इस प्रकार उत्पादित लक्ष्मी भी सीता के समक्ष ठहर नहीं पाती । इन पंक्तियों में सौन्दर्य का आदर्श स्थापित कर दिया है । आगे के सौन्दर्य वर्णन इसी के अनुकरण इनमें न्यून अथवा समीप में आते जान पड़ते हैं । इससे अधिक कहने की क्षमता नहीं ।

---

१ मा० बा० पृ० १६१
२ मा० बा० पृ० १६१
३ मा० बा० पृ० १६१
४ मा० बा० पृ० १७१

प्रकृति वर्णन—

यह सत्य है कि गोस्वामी तुलसीदास के प्रकृति चित्रण में आधुनिक काव्य सा मानवीकरण एवं संस्कृत कवियों की जैसी आलम्बन का संश्लिष्ट योजना सर्वत्र नहीं पाई जाती किन्तु इस तथ्य को इस सीमा तक घसीटा नहीं जा सकता कि प्रकृति चित्रण की ओर से वे सर्वथा निरपेक्ष थे। निस्सन्देह गोस्वामी जी के प्रति लोगों के इस दृष्टिकोण में अतिरंजना व एकांगिता के साथ हृदयहीनता का भी हाथ है। गोस्वामी जी प्रकृति के कवि न होते हुए भी प्रकृति सौन्दर्य से प्रभावित कवि अवश्य थे। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि प्रकृति के प्रति उनका अनुराग था ही नहीं। आलम्बन रूप में भी उन्होंने यत्र-तत्र प्रकृति को देखने की चेष्टा की है। अस्तु, अब हम गोस्वामी जी की रचनाओं में प्रकृति चित्रण के जितने भी रूप प्राप्त होते हैं उन की एक एक करके विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

शुद्ध उद्दीपन कोटि में आने वाला प्रकृति चित्रण—

गोस्वामी तुलसीदास जी का अधिकांश प्रकृति वर्णन इसी के अन्तर्गत आता है। यहाँ कवि ने संयोग और वियोग की सुख दुख मयी दशाओं के चित्रणार्थ ही प्राकृतिक उपादानों की सहायता ली है। इस प्रकार के चित्रण में कवि का आन्तरिक भावोल्लास भी लक्षित नहीं होता। संयोग अथवा वियोग को उद्दीप्त करने के हेतु ही यह प्रकृति चित्रण किया गया है। यही कारण है कि यहाँ वस्तु परिगणन की परम्परा को अधिक प्रश्रय मिला है। जनक वाटिका के प्रसंग में वसंत ऋतु के समस्त चर अचर उपादानों को संग्रहित करने में कवि ने सतर्कता से काम लिया है। चातक कोकिल कीर, चकोर मृग पुग बेलि विटप मानवेतर जगत के लगभग सभी विविध उपकरणों की सहायता से कवि ने रम्य आराम की आभा बढ़ाई है। हमें प्रसन्नता के साथ यही कहना होता है कि जनक की भेंट से पूर्व जनक की इस वाटिका का निरीक्षण राम ने हृदय के उमड़ते हुए उद्दीप्त अनुराग से पराभूत होकर किया है। वे पुष्प चयन की जिस उमंग से यहाँ तक आये थे उसी उमंग के साथ उन्होंने इस वाटिका के प्राकृतिक वैभव व रूप माधुर्य का भी मधुपान किया है। 'बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु हरषे बन्धु समेत।'[1] में सानुज राम के हर्षातिरेक की ही नहीं प्रत्युत उनके पीछे सूत्रधार के रूप में बैठे हुए कवि तुलसी के गूढ़ आत्मोल्लास की गहरी छाप देखी जा सकती है। यहाँ तक तो प्रकृति भी कवि के सूक्ष्मानुराग से अनुप्राणित दीख पड़ती है न तो मानवीकरण की प्रचुरता से ही वह शिथिल होते दिखलाई देती है और न उद्दीपन क्षेत्र की अलंकारिक मुद्रा से। उपदेश एवं तत्व दर्शन की बोझिलता का तो यहाँ स्पर्श मात्र भी होने नहीं पाया है। रहा प्रश्न वस्तु परिगणन का वह भी यहाँ नहीं खटका। क्योंकि प्रकृति के अनेकानेक उपकरणों पर तन्मय भाव से मुग्ध होकर उनका उल्लेख करना परम्परा पालन के हेतु नाम गिना देने की परम्परा से भिन्न होता है। इसके

---

१ मा० बा० पृ० १२१

उपरान्त जनक वाटिका की यह प्राकृतिक मुग्धता समाप्त हो जाती है। मृगनयनी सीता की छवि माधुरी के समक्ष राम प्रकृति की इस निष्काम भाव उपासना को एकदम छोड़ देते हैं। साथ ही उन्हें सारा प्रकृति वैभव उद्दीपन के रूप में फीका भी दिखाई देने लगता है। फलतः सीता की अप्रतिम सुन्दरता की तुलना में हिमकर को बढ़ाकर प्रतीप का आश्रय लेते हुए वे उसकी [illegible] करने में भी नहीं हिचकते।

जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥[1]

विचारणीय है कि ऊपर की पंक्तियों में महाकवि सूर की विजयनी मुरली की ही भाँति सौन्दर्य प्रतिस्पर्धा में सीता को विजयी बनाने के प्रयास में कवि की प्राकृतिक सहृदयता बहुत कुछ तिरोभाव हो गई है। आगे चलकर 'वैदेही मुख पटतर दीन्हें'[2] वाली पंक्ति में तो आकर उसकी प्रकृति सम्बन्धी सहृदयता का सर्वथा लोप हो जाता है। प्रकृति वैभव पर मानव सौन्दर्य की यह हठात् विजय घोषणा यदि प्रकृति के स्वच्छन्द उपासकों का अतिरिक्त भी अनुभव हो तो इसमें कोई भी आश्चर्य का कारण नहीं। किन्तु इस प्रसंग में भी इतना कह देना आवश्यक होगा कि प्रकृति के प्रति सर्वत्र गोस्वामी जी का ऐसा ही दृष्टिकोण रहा है। सम्भव उनकी यह धारणा भी केशव की उस हृदयहीनता से भिन्न कही जायेगी। जिससे प्रभावित होकर उन्होंने कमल व चन्द्र जैसे प्राकृतिक उपादानों की सौन्दर्य सत्ता को ही खंडित करार देने की चेष्टा की थी। और कहा था —

देखे मुख भावे अनदेखे कमल चन्द।
ताते मुख मुखै सखी कमलौ न चन्द री॥ —केशव

मानव की मध्यस्थता हो जाने से सीता के रूप में हमारे कवि ने जिस प्रकार चन्द्र के प्रति अपनी अश्लिष्टता का परिचय दिया है। उसी प्रकार अन्यत्र उसने मानव मध्यस्थता को सुरक्षित रखते हुए भी समुद्र चन्द्र कल्पतरु, आदि प्राकृतिक उपादानों के प्रति अपनी सहानुभूति का सम्बन्ध स्थापित किया है। सच्चे सहृदयों की भावुकता एकांगी नहीं रहा करती। आचार्य शुक्ल जी तुलसी को सच्चा भावुक मानते हैं। अतः होने के कारण उनके प्रकृति वर्णनों में भी उनके उपास्य राम के व्यक्तित्व की अनिवार्य रूप से छाप पड़ती है। यह बात और है किन्तु प्रकृति के प्रति उनकी भावुक दृष्टि का विकसित रूप ही हमें नहीं दिखाई देता। जनक वाटिका के मधुर मिलाप को छोड़कर जब हम उन्हीं राम का वटना चक्र की प्रेरणा से वन पथ पर भाई व प्रिया सहित बटोही के रूप में देखते हैं दूसरे ही क्षण हमारा विन्ध्यवासी वन ग्राम मधुर की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहता जिसकी भावुकता की वेगवती धारा में मा

१ मा० वा० पृ० १६६
२ मा० वा० पृ० १६६

चेतर जगत के प्रति मानव की अगाध करुणा का उत्साह भी तरंगित होता हुआ दिखाई देता है। कवि की भावात्मक सत्ता के महान विस्तार का परिचय देने वाली यह पंक्तियाँ इस प्रकार हैं।

सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं।
निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥[1]

दृष्टव्य है कि उपर्युक्त पंक्तियों में आया हुआ चन्द्रमा और जनक वाटिका में अप्रस्तुत रूप लाया गया में चन्द्रमा दोनों ही एक हैं। किन्तु दोनों ही स्थलों में कवि के दृष्टिकोण में आकाश पाताल का अन्तर है। जनक वाटिका में हिमकर के प्रति हमें मानवीय सहृदयता से बसी अनुभव होती है। ग्राम वधुओं के द्वारा वर्णित वार्ता में हमें कवि की संवेदनशील भावुकता का इतना ही मधुर रूप दृष्टिगोचर होता है। एक ओर चन्द्रमा की कला क्षीणता एवं उसकी सकलंकता ही उसकी पराजय व मानवीय उपेक्षा का कारण बनती दीख पड़ती है। किन्तु दूसरी ओर उसके यह दोष ही उसे मानव हृदय की करुणा-सम्पदा से आवृत होने को बाध्य करते हैं। जनक वाटिका के उपर्युक्त प्रसंग में अन्तिम रूप से जो बात विचारणीय है वह यह है कि कवि का यह प्राकृतिक चित्रण भी पूर्ववर्ती परम्परा से अधिक प्रभावित है। कहना न होगा कि इससे भी पूर्व प्रेम मार्गाकार जायसी ने अपनी पद्मावती की भी प्राकृतिक उपादानों पर ऐसी ही विजय घोषित करते हुए कहा था।

का सरवरि तोहि देहुँ मयंकू। चांद कलंकी वा निकलंकू॥
औ चांदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥

—पद्मावत

इसी वियोगोद्दीपन की कोटि में आने वाले प्रकृति चित्रण का श्रेष्ठ रूप हमें आगे चलकर अपने कवि की रचना में सीता हरण के उपरान्त देखने को मिलता है। अभिलाषा चिन्ता स्मृति मरण आदि दिन १० वियोगजन्य अवस्थाओं का उल्लेख हमारे यहाँ के आचार्यों ने बहुत पहले से कर दिया है और कवि परिपाटी गतानुगति से जिसका अनुकरण करती आई है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस क्षेत्र में इसी परम्परा को सुरक्षित रखा है। अभिलाषा, स्मृति आवेग और प्रलाप की अवस्था तक उन्होंने अपने राम को अरण्य कांड में पहुंचाकर दिखाया है। वियोगोद्दीपन करने वाले विभिन्न प्राकृतिक उपादानों में सीता के नख-शिख सौन्दर्य का आभास पाकर उनके राम भी उन्माद के स्वर में कह उठते हैं।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग नयनी॥[2]

नख शिख चित्रण से संयुक्त कवि के इस प्रकृति चित्रण में हनुमन्नाटक की

---

१ मा० अयोध्या पृ० ३९६
२ मा० अरण्य० पृ० ४६७

कुछ पंक्तियों का हाथ है।¹ इसकी भी सहज ही कल्पना की जा सकती है। इसी प्रसंग में आगे चलकर वियोगोद्दीपन के क्षेत्र में प्रकृति के प्रतिकूल भाव से व्याप्त होकर जब हम तुलसी के राम को समुद्र तटस्थल से मग मृग वृन्द की शिकायत करते देखते हैं कि —

नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा।
हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥²

तब हमें महर्षि वाल्मीकि की निम्न पंक्तियों का उपर्युक्त प्रकृति चित्रण पर पड़ा हुआ प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।³

मानसान्तर्गत प्रकृति के प्रतिकूल प्रभाव की व्यंजना करने वाली ऐसी ही कुछ परम्परायुक्त पंक्तियाँ हमें सीता और राम के निजी विरह निवेदन में भी दिखलाई देती हैं। अशोक वाटिका में धर्म की माता त्रिजटा से अपने वियोग की पीड़ा का परिचय देती हुई सीता कहती है।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥⁴

उधर सीता के वियोग जन्य कष्टों पर मरहम पट्टी लगाने का भी थोड़ा परिश्रम करते हुए हनुमान राम के वियोग का जैसा चित्र खड़ा करते हैं वह इस प्रकार है।

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥

---

१ रे भृङ्गाः पक्षलेखा गिरिनिकुञ्जतटा वायवोऽम्य मानाः यमोऽहं व्याकुलात्मा दशरथ तनयः शोक पूर्णे समस्त बिम्बोष्ठी ... मृगपुत्रनयना ... हा सीता देव सीता मम हृदयस्था को भवान् केन दृष्टा।

—हनुमान नाटक

२ मा० अरण्य० पृ० ५०३

३ श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियां पद्मनिभेक्षणाम्।
पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान्॥
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम्।
व्यथयन्तीव मे चित्तं संचरन्तस्ततस्ततः॥

देखिये श्लोक १०२, १०३ वाल्मीकीय रामायण, प्रथम सर्ग, किष्किंधा कांड। आशय यह है कि मधुर क्रीड़ा में संलग्न हिरण झुण्ड मुझे (राम को) चन्द्रमुखी कमल नयनी सीता की याद दिलाते हैं और मुझे दुखी करते हैं।

४ मा० सु० पृ० ५४८

जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त प्रयास में हनुमान को कहाँ तक सफलता मिली या नहीं किन्तु प्रकृति के प्रतिकूल प्रभाव की व्यंजना[2] गोस्वामी जी ने यहाँ कुशलता के साथ अवश्य कर दी है। सच पूछा जाय तो उद्दीपन कथा में आने वाले प्रकृति के इस प्रतिकूल प्रभाव की व्यंजना में सबसे अधिक दुर्दशा बेचारे हिमकर की ही हुई है। यह भी ठीक इसी प्रकार जैसे कि नख शिख चित्रण में बेचारे कमल की। जनक वाटिका में अप्रस्तुत रूप में इसी हिमकर को घसीट कर विकलांग एवं हीन बनाया गया है और लंका काण्ड तक तो पहुँचते पहुँचते उस पर मनमाने आरोपों की जैसे मूसलाधार वर्षा होने लगी। राम ने उसे एक आरसी मयंक करार देने के बाद जब अपने अनुगमन कर्ताओं से उसकी मेचकताई के सम्बन्ध में पूछ ताछ करनी चाही तो मौलिक भावनाओं के स्वतन्त्र विचारों की एक झड़ी-सी लग गई। उनके सामने भूमि अथवा राज्य वंचित अंगद ने कहा कि यह तो भूमि की भर्राई है। कुछ ही समय पूर्व भाई का पदाघात सहकर आने वाले विभीषण ने फरमाया कि यह तो राहु के मारने की श्यामता है। बेचारे सुग्रीव ही भला इस स्थल पर अपने विचार व्यक्त करने की धृष्टता क्यों न करते। दूर की कौड़ी के उछालने का प्रयत्न करते हुए बोले कि रति के निर्माण के समय चूँकि ब्रह्मा ने शशि के सार भाग का अपहरण कर लिया था अतएव उसमें एक छिद्र का हो जाना स्वाभाविक था और यह मेचकता और कुछ न होकर उस छिद्र भाग में से दीख पड़ने वाली आकाश की छाया मात्र है। अत इन समस्त स्थलों में हिमकर जैसे कोमल प्राकृतिक उपादान को लेकर कवि ने जो अपनी भावनायें व्यक्त की हैं वह उसके पक्ष में अधिक अनुरंजनकारी नहीं सिद्ध हो सकता है। प्रकृति के विपरीत प्रभाव की एक ऐसी ही अतिशयोक्ति पूर्ण मुद्रा हमें बरवै की निम्नलिखित पंक्तियों में देखने को मिलती है। किन्तु यहाँ प्राकृतिक उपादान (अंधेरी रात) की अधिक छीछालेदर नहीं की गई। राम के वियोग से सारे संसार को ही अग्निवत बताकर कवि ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन किया है। यह वर्णन बिहारी के 'भरो भाव भजु भीतरें बरसत आजु अंगार' के मुकाबले में कहीं अधिक स्वाभाविक है। देखिये—

बहकनु न है उजरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागत मोहि बिनु राम॥[3]

हाँ प्रकृति की तो नहीं किन्तु वियोगोद्दीपन की व्यंजना उस स्थल पर निश्चय

---

१ मा० सु० पृ० ६६०

२ प्रसन्न राघव के प्रणेता ने भी बहुत पहले ऐसी ही कल्पना की थी। हिमांशुरयदा पुनर्नवसत नाम राम वहन्। सखी भीमात्क्वुपितः कठिनः स्याम वपन् नवाम्भस्ता कुवलय वर्ग कुम्भ महन्ने ममत्वद्विलेपात मम्मुखि विपरीतं वमीद्रम्।

३ बरवै रामायण सं० सं० १७

ही शृंगार कालीन अतिशयोक्ति से होड़ लेते देख पड़ती है। यहाँ कवि ने सीता की विरह जन्य व्याकुलता का वर्णन करते हुए कहा है।

कनगुरिया की मुंदरी कंगन होय।[1]

बिहारी की यह प्रोषित पतिका नायिका अनुपात में भले ही कवि की उक्त नायिका से अधिक दुर्बल दिखलाई देती है जिसे उन्होंने श्वास प्रश्वास की गति के साथ आगे और पीछे जाते हुए दर्शाया।[2] हमारे कवि ने भी यहाँ उसी भाव को पकड़ने की चेष्टा की है। हाँ सुख एवं सन्तोष का विषय है कि विरह क्षेत्र की ऐसी अतिरंजना हमें कवि की विशाल प्रबन्ध रचना में नहीं वरन् उस की मुक्तक रचना में ही यत्र-तत्र देखने को मिल सकती है। साथ ही वह रीतिकालीन वातावरण से कुछ अंशों में भी मुक्त देखी जा सकती है।

उपदेश एवं तत्त्व दर्शन से युक्त प्रकृति वर्णन—

व्यापक रूप से तो गोस्वामी तुलसीदास के इस प्रकृति चित्रण का श्रेय श्रीमद्भागवत को दिया जाता है। थोड़े बहुत हेर फेर के साथ कहीं-कहीं तो भागवत के शब्दों का अविकल अनुवाद जैसा उनकी रचना में देख पड़ता है। उदाहरण के हेतु उनका प्रसिद्ध 'लछिमन देखहु मोर गन नाचत वारिद पेखि' भागवत के निम्नांकित श्लोक का ही अविकल अनुवाद कहा जायेगा।

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युत जनागमे॥[3]

इतना तो हमें अनिवार्य रूप से स्वीकार करना होगा कि कवि के ऐसे प्राकृतिक चित्रणों में उसके कवित्व की अनुभूति नहीं उसके महात्म्य की छाप अधिक दिखलाई देती है। किन्तु इस क्षेत्र में भी तुलसी के प्रकृति वर्णन से निराश होकर लौटने वाले विद्वानों से मुझे एक बात विनम्रता से कह देनी है कि अपने निराशपूर्ण निर्णय देने से पूर्व उन्हें एक बार यह भी विचार कर लेना होगा कि कवि के व्यक्तित्व का विकास भी कई दिशाओं में हुआ है। वह कोरे कवि या साहित्यिक नहीं। प्रत्युत एक महान संत एवं कट्टर मर्यादावादी समाज सुधारक भी थे। अतएव समाज सुधारक के नाते उनकी रचनाओं में उपदेश और नीति की प्रधानता है। इस कारण उनके काव्य में गहरे तत्त्व दर्शन की छाप है। यही कारण है कि यह दोनों ही तत्त्व (उपदेश और तत्त्व दर्शन) उनके प्रकृति चित्रण में यत्र तत्र दिखलाई देते हैं। विशेष रूप से तो इसका श्रेय 'मानस' के उन्हीं काण्डों को है जिनकी संज्ञा किष्किन्धा एवं अरण्य

---

१ बरवै रामायण—छं० सं० ३८

२ देखिये बिहारी सतसई दोहा—
इत आवति चलि जात उत चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै लगी उसासन साथ॥

३ भागवत १०।२०।२०

है। किन्तु इसके अतिरिक्त भी कहीं-कहीं उनकी प्रकृति उपदेशिका रूप लेकर हमारे सामने प्रस्तुत होती है। अरण्य कांड में गोदावरी के उपकूल पर बैठे हुए 'मानस' के राम अनुज लक्ष्मण से ज्ञान विराग एवं भक्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥[1]

अतएव होना क्या चाहिये यह यही—

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥[2]

इसी प्रकार पंपा सरोवर के निकट आकर भी सरोवर की ऊर्मिल लहरों से सर्वथ अछूते रहकर उनके राम सादृश्य मूलक उत्प्रेक्षाओं को ही गिनाने में व्यस्त दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

संत हृदय जस निर्मल बारी। बांधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥[3]

और अन्त में—

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्म सीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं॥[4]

तात्पर्य यह है कि गोदावरी एवं पंपा सरोवर दोनों के उपकूल पर आकर भी कविता। सरोवर के स्वतन्त्र रूप रंग का अवलोकन न गोस्वामी जी ने स्वयं ही किया और न अपने उपास्य राम को ही कराया। चित्रकूट एवं पंचवटी के इन्हीं प्रसंगों में तपोभूमि के अनन्य सहचर महर्षि वाल्मीकि का हृदय, पद पद पर्णों में फूटा-सा पड़ता है। ऐसा प्रकट होता है कि प्रकृति नदी की कमनीय कलाओं उसके वन पर्वतों निर्झरों नदी और निर्झरों के साथ अनुरक्त होकर महर्षि का हृदय भी एक हो जाना चाहता है और यही एक कारण है कि जब महात्मा तुलसीदास के राम अनुज लक्ष्मण को 'सब तजि हरि भजि' का उपदेश दे रहे हैं तब कवि वाल्मीकि के लक्ष्मण राम से हेमन्त के प्राकृतिक वैभव की हृदयानुरंजनी चर्चा में संलग्न हैं। न केवल इतना ही अपितु उसकी अमित विभूति पर एकांत भाव से मुग्ध भी हो रहे हैं। दूसरी ओर हम देखते हैं कि हमारे कवि आगे चल कर किष्किन्धा कांड के वर्षा व शरद वर्णन को भी उपदेश बहुल बनाने में संलग्न हैं। प्रकृति चित्रण यद्यपि हमें यहाँ भी प्राप्त होता है किन्तु उपदेश तत्वों से मिश्रित होने के कारण मुक्त प्रकृति का आह्लादकारी रूप हमें यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होता। शुभ्र स्फटिक शिला पर बैठे हुये राम ने जब वर्षा कालीन मेघों पर अपना पहला दृष्टिविक्षेप किया तब तो उनके

---

१ मा० अरण्य पृ० ४८०
२. मा० अरण्य० पृ० ४८२
३ मा० कि० पृ० ५०५
४ मा० कि० पृ० ५०५

हृदय के प्राकृतिक मल्हार की स्फूर्ति से अनुप्राणित यह छन्द अनायास फूट पड़े। 'वर्षा काल मेघ नभ छाये।' किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी यह शुद्ध प्राकृतिक अनुभूति नीति एवं उपदेश की बौद्धिक शृंखलाओं में उलझ गई। यह ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कभी उद्धव की सारी ज्ञान गुरुता यमुना तटों एवं ब्रज के करील कुंजों में बिरमा गई थी। अन्तर केवल इतना रहा है कि उद्धव तो बौद्धिकता के शुष्क मरुस्थल से निकल कर हृदय की सरस अनुभूति की ओर अग्रसर हुए और तुलसी के राम हृदय में उपदेश की भावुक अनुभूति से विरत होकर बौद्धिकता में प्रवेश कर गये।

परिणामतः उन्हें दामिनी की दमक में दुष्ट जन की अस्थिर प्रीति, भूमि स्पर्शी घन मालाओं में बुधि विशारदों की उदारता एवं विनम्रता धूलि धूसरित जल में माया लिप्त मानवता क्षुद्र नदियों की बाढ़ में खलों की विक्षिप्तता दादुरों की ध्वनि में आमसमाजी ब्रह्मचारियों की अध्ययन शीलता तृणावृत पन्थों में सद्ग्रन्थ गुप्तता महावृष्टि से फूटी हुई क्यारियों में नारियों की चरित्र हीनता और हिम शिखरों पर पड़ने वाली वर्षा की बूँदों में सन्तों की क्षमा शीलता का आभास मिल कर रह गया।[1] इसी प्रकार से और आगे आने पर शरद ऋतु के वर्णन में पहले तो यह महाकवि राम के हृदय में उमड़ने वाले सहज उल्लास का परिचय देता दिखलाई देता है। किन्तु बाद में वह और उनके राम दोनों ही शरद ऋतु के आँगन में लोभ, मोह माया ममता ज्ञान भक्ति निवृत्ति एवं मुमुक्षु के तात्त्विक उपकरणों का ढेर लगा देते हैं तब उनके राम का ध्यान एक बार फिर खोई हुई सीता की ओर आकर्षित होता है। तब वे एक बारगी कह उठते हैं —

बरषागत निर्मल ऋतु आई। सुधि न तात सीता कर पाई॥
एक बार कैसेहु सुधि पावौं। कालहु जीति निमिष महं आवौं॥[2]

वर्षा एवं शरद के उपर्युक्त प्रसंगों पर विचार करने के बाद हम इन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचने के हेतु बाध्य हैं कि कवि अपने सहज आत्मोल्लास का परिचय में यहाँ भी नहीं दे सका। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इस दिशा की ओर उन्मुख होते हुए भी उसे सफलता नहीं मिली। वस्तुतः वह इस ओर प्रवृत्त ही नहीं हुए। असफलता का प्रश्न तो तब उठता जब प्रवृत्त होते हुए भी सफलता उनसे दूर रहती। इस प्रसंग में हमें यही कहना होगा कि प्रकृति को नीति एवं उपदेश का माध्यम बनाकर कवि अपने लक्ष्य पथ की ओर जिस उत्साह के साथ आगे बढ़ा है, उसका वह उत्साह अन्त तक भी सुरक्षित रहा है। वस्तु के परिगणन की प्रधानता होते हुए भी इस क्षेत्र में हमें कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का भान होता है। बिम्ब ग्रहण का उत्कृष्ट रूप भले ही हमें यहाँ दृष्टिगोचर न हो किन्तु स्वनिरीक्षण का वह अभाव भी जो महाकवि केशव की रचना में पाया जाता है हमें यहाँ न मिलेगा।

---

१ मा कि० पृ० १२४ १२७
२ मा कि० पृ १२७

पम्पा सरोवर के वर्णन में जब हम अपने कवि को कमल पत्रों की प्रधानता से सरोवर के स्वच्छ जल से ढका हुआ और वर्षा के प्रसंग में मार्गों को हरित तृणा से मुंदा हुआ बताकर अपने स्वानुभूति ज्ञान का परिचय देते देखते हैं और जब हम उन्हें तुषारों की घटकाहट पलाशादिकों के पुष्पित उल्लास चपला की चमक वह-वार्तों की कल्पित केलि के मध्य भी जीवन विहीन आक और जवासों का उल्लेख करते पाते हैं तो प्रकृति के प्रति हमें उनके अनुराग की सूक्ष्मता का अनुभव हुए बिना नहीं रह पाता। यद्यपि उन्होंने प्रकृति का यथा तथ्य चित्रण किया है किन्तु केन्द्रीय भावना उपदेश की रही है तो भी इस चित्रण में कवि का प्रकृति के प्रति कुछ अनुराग व स्नेह भी प्रकट होता है। क्योंकि उन्होंने जहाँ वर्षा ऋतु में नवीन पल्लव और हरित भूमि का वर्णन किया है वहाँ वे आक और जवास के पत्र विहीन सूखे वृक्षों का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं।[१]

एक बात हमें और भी नहीं भूलनी चाहिये कि कबीर जायसी सूर रहीम आदि कवियों के काव्यों में भी हमें उपदेश बहुधा प्रकृति के ही दर्शन होते हैं और इस बात को तो यहाँ तक स्वीकार करने में हमें आपत्ति नहीं होगी कि सम्पूर्ण भक्ति युग की प्रकृति उपदेश बहुलता होकर ही सामने आई है। रासों के युग में तो हमें अधिकांश चारण कवियों की प्रकृति निरपेक्षता का ही आभास मिलता है। रीति युग में भी प्रकृति का उपयोग नख शिख चित्रण वियोगोद्दीपन के ही हेतु अधिकतर किया गया है। पवित्र आध्यात्मिक भावों की कथा सकने में भी हमारी वाणी प्रकृति का भी कितना बड़ा हाथ हो सकता है।[२] इसकी ओर शायद ही किसी रीतिकालीन कवि ने ध्यान देने की चेष्टा की हो। कृष्णोपासक कवियों में चाहे वह रीति युग के हों अथवा भक्ति युग के राधा कृष्ण की केलि स्थली रूप में ही विशाल प्रकृति को बन्दिनी बनाने की चेष्टा की है। एकाध स्थलों पर महात्मा सूर आदि की रचनाओं में प्रकृति के उपदेशक रूप की झलक हम भले ही मिल जाती है यह बात और है किन्तु अधि काँश स्थल इससे शून्य ही हैं।

प्रकृति में परम तत्व का आभास—

प्रकृति में जहाँ तक परम तत्व के आभास का प्रश्न है इस दिशा में तो हमें इतना ही निर्देश करना है कि यह भारतीय वाङ्मय की वेदकालीन परम्परा है। समस्त चराचर ही उस महाकवि की लीलाभूमि है। इसी विचार धारा की ओर संकेत करते हुए कबीर ने कहा —

१ डा० किरण कुमारी गुप्ता—हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण—पृ० १११

२ देखिए सूर सागर पद—"जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।

जा दिन तेरे तनु तरुवर के सबै पात झरि जैहैं॥

—सूरदास

लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल ।

—कबीर

सूफी कलाकार जायसी ने भी इसी मूल भावना को अनुभव करते हुए कहा

गगन नखत जो जाहि न गने । वै सब रोवँ पाहन के हुने ।।

—जायसी

हमारे महाकवि ने समस्त जग जीवन में उसी एक महामानव की परिव्याप्ति देखी । उसी की विभक्त व्यापी प्रसार की भावुक अनुभूति की ओर अपने काव्य में भी इस भावना को इस प्रकार उठा कर रक्खा :—

अवधपुरी प्रभु आवत जानी । भई सकल सोभा कै खानी ।
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा । भइ सरजू अति निर्मल नीरा ।।[1]
कंद मूल फल पत्र सुहाए । भये बहुत जब ते प्रभु आये ।।

अथवा

मंगल रूप भयो बन तब ते । कीन्ह निवास रमापति जब ते ।।[2]

आत्मानुरंजन की भावना से युक्त प्रकृति वर्णन—

हम कह सकते है कि अंग्रेजी में इस प्रकार के पर्यवेक्षण को ही "Simple delight in Nature की संज्ञा दी गई है। वस्तुनिष्ट होने के कारण उसमें वस्तु परिगणन की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है । केवल सुलभ उल्लास की छाया भी यहाँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है । पम्पा सरोवर के निकटवर्ती प्राकृतिक सुषमा का सिंहावलोकन करने वाली कवि की यह पंक्तियाँ उनके सहज प्राकृतिक उल्लास का ही परिचय देती हुई दिखलाई देती है ।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ।।
चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस पलास रसाला ।।[3]
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ।।[4]

× × ×

देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ।।[5]

इस प्रकार से गोस्वामी जी का अधिकांश प्रकृति चित्रण इसी प्रकार का है । उसमें नामोल्लेख की प्रधानता होते हुए भी कवि के सामान्य उल्लास (Simple Delight)की निर्झरिणी भी बहती हुई दिखलाई देती है ।

---

१ मा० उत्तर पृ० ६११
२ मा० उत्तर पृ० ६२१
३ मा० अरण्य पृ० ५०६
४ मा० अरण्य० पृ० ५०६
५ मा० अरण्य० पृ० ५०६

आत्मोल्लास से युक्त प्रकृति वर्णन—

गोस्वामी तुलसीदास का प्रकृति वर्णन समष्टि रूप में तो वस्तु परिगणन प्रधान ही है किन्तु सामान्य उल्लास की भावना के अतिरिक्त उसमें कहीं-कहीं कवि के उत्कृष्ट अनुराग व तीव्र आत्मोल्लास की छाया भासित होती है। यह सत्य है कि ऐसे प्रकृति चित्र महाकाव्य 'मानस' में नहीं गीतावली में उपलब्ध हो जाते हैं। वे भी मुख्यतः चित्रकूट व बसन्त आदि के वर्णनों में। चित्रकूट की प्राकृतिक रमणीयता पर हमारे कवि का मानस जिस उत्साह की उर्मियों से तरंगित होता लक्षित होता है उसके आवेग में हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनमें प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण की पूरी क्षमता थी। थोड़ी देर के लिये यदि हम कारण पर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होगा कि उनके भी इष्टदेव राम ही थे। उनके प्रकृति वर्णन पर भी यही बात लागू होती है। वहाँ भी उनके इष्टदेव का माध्यम ज्यों का त्यों सुरक्षित रहता है। हाँ उन्हें राम के प्रति तुलसी जैसे पावन अनुराग की प्राप्ति न हो सकी। यह बात और है। इस माध्यम की उपस्थिति में भी वे अपने प्रकृति चित्रण को अस्वाभाविकता को दूर कर उसे संश्लिष्ट रूप प्रदान करने में क्यों असमर्थ रहे। अतः हमें पूर्ण निरपेक्षता के साथ यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि प्रकृति से निरपेक्ष न तो तुलसी ही थे और न उनके राजा राम हो। प्रस्तुत वे दोनों ही थे प्रकृति प्रेम की तरलता से तरंगित होने वाले सहृदय प्रकृति निरीक्षक।

मानवीकरण—

मानवीकरण में मनुष्य का उस सृष्टि के साथ एक रागात्मक संबंध स्थापित हो जाता है कि वह जड़ और चेतन सभी में मानव भावनाओं का सा आदान-प्रदान पा जाता है। कवि प्रकृति में कभी उन्माद कभी उत्साह कभी आनन्द और कभी शोक की छाया देखता है। प्रकृति उसकी मानसिक अवस्था के साथ पूर्ण सहयोग प्रदान करती सी प्रतीत होती है। वियोगावस्था में तो प्रकृति की संवेदना प्रकट करती है और कभी क्षोभ उत्पन्न करता है। और कभी भयभीत बना देती है। इस प्रकार कवि अपनी मनःस्थिति के अनुसार प्रकृति में मानव भावनाओं का आरोप तो कर ही लेता है साथ ही उसमें मानव क्रियाओं का भी अवलोकन करता है।

तुलसी ने जड़ और चेतन प्रकृति में मानव व्यापार का सुन्दर दिग्दर्शन कराया है।

> आली! हौं इन्हें बुझावौं कैसे।
> लेत हिये भरि भरि पति को हित मातु हेतु सुत जैसे।
> बार बार हिनहिनात हेरि उत जो बोले कोउ द्वारे॥

× × ×

लोचन सजल सदा सोवत से खान पान बिसराये ।
चितवत चौंकि नाम सुनि सोचत राम सुरति उर आये ॥[1]

राम के वियोग में घोड़ों की यह दशा है कि वे अपना खाना पीना भूल कर उदास और सजल नैन रहते हैं । राम का नाम सुनकर चौंक कर देखने लगते हैं । इस प्रकार सजीव प्रकृति में हमें मानव के प्रति प्रेम के भाव लक्षित होते हैं । किन्तु तुलसी की दृष्टि पशु पक्षियों तक ही सीमित नहीं रही । उन्होंने जड़ प्रकृति को भी मानव के सुख में हँसते और दुख में मलिन होते देखा है । सीता हरण के पश्चात विषाद और दुःख से पूर्ण प्रकृति का चित्र देखिये ।

धरनि बसन मलिन सरनि सूखे नलिन ।
अलि न गुंजत कल कूजै न मराल ॥
दसन दै आनरी लाये स्याम हरि कठि कपि ।
हेरें न हेरि भरें फल न रसाल ॥[2]

सीता विरह में सरिताओं का जल मलिन हो गया सरोवर सूख गये और पक्षियों ने अपना कूजन बन्द कर दिया । रसाल के फल भी नहीं लगते चेतन प्रकृति में तो हर्ष शोक प्रेम की भावना विद्यमान रहती है । किन्तु सरिता वृक्षादि का शोकानुभव करना तो वास्तविक तथ्य नहीं है । मानव को अपने मन की मध्यमस्थित दशा के कारण इस प्रकार की संवेदना प्रकृति में प्राप्त होती है और अपनी मानसिक स्थिति का प्रतिबिम्ब उसे प्रकृति में दृष्टिगोचर होता है । कवि इस वास्तविक तथ्य को कल्पना से रंजित कर उसे नवीन रूप प्रदान कर काव्य में वर्णन कर देता है । तुलसी के राम का वियोग इतना व्यापक हो जाता है कि उसमें जीव और वृक्षादि ही नहीं वरन् समस्त पृथ्वी ही व्याप्त हो जाती है ।

सुनि पितु बचन चरन गहे रघुपति भूप अंक भरि लीन्हे ।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हे ॥[3]

राम के वन गमन का दृश्य इतना अधिक करुणोत्पादक था कि उसके स्मरण से भी पृथ्वी का हृदय दरार के बहाने से अब भी विदीर्ण हो जाता है ।

गोस्वामी जी की रचनाओं में उपर्युक्त प्रकृति सम्बन्धी विविध रूपों के अलावा निम्नलिखित प्रकृति के अंगों का भी पूर्ण विवेचन उनकी रचनाओं में मिलता है ।

१—सूर्योदय
२—चन्द्रोदय
३—ऋतु
४—नदी
५—सरोवर आदि

---

१ गीतावली—अयोध्या कांड—पद सं० ८६
२ गीतावली—अरण्य कांड—पृ० १२७

इनमें से प्रायः सभी के वर्णन तुलसी के काव्यों में प्रसंगानुसार मिलते हैं। जिनकी क्रमानुसार विवेचना नीचे की जा रही है।

संध्या—राम के जन्म लेने के समय गोस्वामी जी ने संध्या का बड़ा ही सुन्दर दृश्य खींचा है। इस प्रकार —

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती।
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥[1]

संध्या का यहाँ नारी रूप में कवि ने कितना सुन्दर चित्र खींचा है।

सूर्योदय—तुलसी के मानस के बाल काण्ड में सूर्योदय का एक चित्र देखिये।

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।
बिकसे सन्त सरोज सब हरषे लोचन भृंग।

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥[2]

यहाँ पर गोस्वामी जी ने राम को बाल पतंग लिखा इसमें भी भाव है। चाहते तो गोस्वामी जी अपने राम को पूर्ण सूर्य लिख सकते थे किन्तु राम को पूरा सूर्य न लिखने का कारण है। आगे परशुराम आने वाले हैं जिनको कवि पूर्ण सूर्य लिख रहे हैं।

तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥[3]

राम को बाल सूर्य और परशुराम को पूर्ण सूर्य लिख कर भी तुलसी अपने राम का महत्व ही बढ़ा रहे हैं। बाल सूर्य बराबर बढ़ता रहता है। और पूर्ण सूर्य १२ बजे दिन का होता है जो बाद में ढलने लगता है। यहाँ परशुराम राम से परा जित होंगे। अतः परशुराम का तेज घट जायेगा और राम का तेज अभी और आगे बढ़ेगा। दूसरे पूर्ण सूर्य राहु से छूट कर ही प्रकाशित होता है और राम का अभी रावण रूपी राहु (जैसे जहाँ रावन रूपी राहु) पर विजय पाना बाकी है। इस कारण कवि उन्हें यहाँ बाल पतंग की उपाधि से विभूषित कर रहे हैं। जब राम रावण पर विजय पा अयोध्या में आ गए तब कवि ने उन्हें पूर्ण सूर्य लिखा।

जब तें राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥[4]

रात्रि—'मानस' में गोस्वामी जी ने रात्रि का वर्णन किया है। जरा एकाध स्थल देखिये।

---

१ मा० बा० पृ० १३८
२ मा० बा० पृ० १७८
३ मा० बा० पृ० १८६
४ मा० उत्तर पृ० ७१४

बिथुर नभ मुकुताहल तारा । निसि सुन्दरी केर सिंगारा ॥[1]
कासति प्रबल महामद भारी । मानहु काल राति अँधियारी ॥[2]

अन्धकार—अन्धकार का तो बहुत विवेचन कवि ने इसी एक पंक्ति में कर दिया —

मानहु काल राति अँधियारी ॥[3]

प्रातःकाल—लक्ष्मण से प्रातःकाल का वर्णन राम करते हैं :—

उयउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ॥[4]

सूर्य के उदय होने के व्याज से ही गोस्वामी जी ने प्रभात का वर्णन कर दिया और भी —

प्रातकाल सरयू करि मज्जन । बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन ॥[5]

मृगया—मृगया का भी इस प्रकार वर्णन 'मानस' में हुआ है :—

बंधु सखा संग लेहिं बुलाई । बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥
पावन मृग मारहिं जिय जानी । दिन प्रति नृपहि दिखावहिं आनी ॥[6]

और भी राम को मृगया कितनी प्रिय थी वे स्वयं कहते हैं ;

हम छत्री मृगया बन करहीं । तुम से खल मृग खोजत फिरहीं ॥[7]

पर्वत—मानस के अयोध्याकांड में तुलसी ने बड़ी ही विशदता से चित्रकूट का वर्णन किया है :—

सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या । मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना । मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू । मंदर मेरु सकल सुरबासू ॥
सैल हिमाचल आदिक जेते । चित्रकूट जसु गावहिं तेते ॥
बिंधि मुदित मन सुख न समाई । श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई ॥
चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति ।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ॥[8]

समुद्र—समुद्र कवियों को अत्यन्त प्रिय रहा है । तुलसी ने अपने मानस

---

१ मा० लंका पृ० ६६२
२ मा० अयो० पृ० ३०६
३ मा० अयो० पृ० ३०६
४ मा० बा० पृ० १६७
५ मा० उत्तर पृ० ७६०
६ मा० बा० पृ० १४४
७ मा० अरण्य० पृ० ५४२
८ मा० अयो० पृ० ३४१

को अछूता नहीं छोड़ा है। उनकी कल्पनायें संस्कृत के किसी भी कवि के समक्ष ठहर सकती हैं। चन्द्रोदय का एक वर्णन देखिये। राम का यौवन काल है। सीता के सौन्दर्य को वह स्वत एक बार देख चुके हैं। अत मानस जगत में सीता का ही सौन्दर्य व्याप्त हो रहा है। उनके नेत्र संसार के अणु परमाणु में सीता की छवि खोजने में लगे हैं। देखिये चन्द्रमा के उदय काल में वे सीता का स्मरण किस प्रकार कर रहे हैं:—

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥[1]

देखिये अपने प्रेम पात्र की प्रशंसा के हेतु हिमकर में कितने दोष एकत्रित किये हैं। तुलसी ने चन्द्रमा और उसके कलंक दोनों को ही अपनी मनोहर उक्तियों से स्मरण किया है। लंका में राम और उनके परिषदों के बीच चन्द्रोदय के अवसर पर उन्होंने जो कथोपकथन कराया है। वह बहुत ही मनोरंजक है। चन्द्रोदय की इस वर्णन की आड़ में काव्य कला में निपुण तुलसी ने एक और भी चमत्कार उत्पन्न किया है। चन्द्रमा की मेचकता पर भिन्न भिन्न विद्वानों ने अपने भाव व्यक्त किये हैं उनमें उनके हृदयों में उपस्थित भावनायें साकार हो उठी हैं। जिन्हें हम पीछे ही व्यक्त कर चुके हैं।

ऋतु—अब ऋतु वर्णन का भी आनन्द अनुभव कीजिये। सीता हरण के पश्चात् राम और लक्ष्मण पर्वत पर निवास कर रहे हैं। वर्षा ऋतु का समय है। तुलसी ने इस अवसर पर राम के मुह से वर्षा का आनन्द वर्णन करते हुए उपदेशों की झड़ी लगा दी है। मानस में यह वर्णन बहुत प्रसिद्ध है। तुलसी के काव्यों में वसन्त वर्षा और शरद के ही वर्णन अधिक हैं। ग्रीष्म और शीत ऋतु को उन्होंने पीड़ित व्यक्तियों और जड़ पदार्थों के दुख के साथ ही स्मरण किया है।

समुद्र—समुद्र का तो बड़ा ही विषद वर्णन है। राम और रावण के युद्ध का प्रमुख स्थान ही उदधि है। हनुमान जी इसी समुद्र का वर्णन इसी प्रकार करते हैं।

सीतहिं नाघउ जलनिधि खारा।[2]

नदी—तुलसी को जलाशय बहुत प्रिय लगते थे। नदी सरोवर और झरने आदि से उन्होंने कितने ही रूपक और उपमाओं की संयोग किया है। एक रूपक में उन्होंने नदी का आदि से लेकर अन्त तक जीवन लिख दिया है

रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥[3]

---

१ मा० बा० पृ० १६६
२ मा० कि० पृ० २३६
३ मा० अयो० पृ० १५४

नदी का एक सुन्दर रूपक अयोध्या कांड में उस स्थल पर भी मिलता है। जब चित्रकूट में राम जनक की अगुवानी करके उन्हें ले आ रहे हैं।

आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथ।
सेन मनहु करुना सरित लिये जाहिं रघुनाथ ॥[1]

सरोवर—सरोवर का सबसे सुन्दर रूपक तो बाल कांड के प्रारम्भ में है पर अरण्य कांड में पम्पासर का वर्णन कम ललित नहीं है।

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गम्भीरा ॥[2]

उपसंहार—

हिन्दी आलोचना के दिशा निर्देशक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के प्रकृति चित्रण की ओर अंगुलि निर्देश करते हुए जो कुछ कहा था मूल रूप में उसका आशय इतना ही है कि गोस्वामी जी का प्रकृति चित्रण प्राचीन संस्कृत कवियों जैसा सूक्ष्म नहीं है। किन्तु इतना होते हुए भी उनकी काव्य रचना में कहीं-कहीं प्रचलित संस्कृत कवियों का जैसा सूक्ष्म निरीक्षण भी पाया जाता है। वस्तुतः प्राचीन संस्कृत कवियों की शैली पर किया गया उनका न्यूनाधिक प्रकृति चित्रण ही उन्हें हिन्दी कवियों में सर्वोच्च स्थान देने की क्षमता रखता है। निस्सन्देह आचार्य शुक्ल के अभिमत को ही दृष्टि पथ में रखकर अब तक तुलसीदास जी के प्रकृति की समीक्षा होती आई है। किन्तु खेद का विषय है कि समीक्षकों ने आचार्य शुक्ल के अभिमत को उसके सम्पूर्ण रूप में ग्रहण करने की उदारता नहीं बरती है। किसी ने वाल्मीकि के प्रकृति चित्रण के सामने तुलसी के प्रकृति चित्रण को बच्चे का जामा पहनाया है। किसी ने उन्हें प्रकृति निरपेक्ष बताने की चेष्टा की। डा० श्रीकृष्ण लाल जी को तुलसी के काव्य में केशव से भी दो अंगुल ऊँची हृदय हीनता का आभास मिला है। फलतः प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में भी उन्हें कवि की उसके हृदयहीनता का आभास मिलता है।[3] किन्हीं लोगों का आरोप है कि तुलसीदास जी के काव्य में आधुनिक छायावादी कवियों का सा प्रकृति स्पंदन व मानवीकरण नहीं पाया जाता। इन अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर में मैं सबसे पहले यही कहूँगी कि तुलसीदास जी की हृदय हीनता से कहीं अधिक हृदयहीन रहा है आलोचकों का यह आरोप जिन्होंने शुक्ल जी के अभिमत को एक जरीब बनाकर अपने निर्णय देने की कृपा की है। यह ठीक है कि तुलसी के काव्य में सर्वत्र संस्कृत कवियों जैसा सूक्ष्म पर्यवेक्षण नहीं पाया जाता। किन्तु हम यह भी स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं कि सर्वत्र उन्होंने रीति परम्परा का ही अन्धानुकरण किया है। प्रकृति निरपेक्ष तो उन्हें किसी भी प्रकार से माना ही नहीं जा सकता। संस्कृत कवियों के अनुरूप भी

---

१ मा० अयो० पृ० ४९९
२ मा० अरण्य० पृ० ६०६
३ डा० श्रीकृष्ण लाल—मानस दर्शन—पृ० १९९

उनकी कृतियों में संश्लिष्ट चित्रण देखने को मिलते हैं। जिसमें अर्थ ग्रहण की भी पूरी क्षमता देखी जा सकती है।

जहाँ तक प्रकृति में चेतन व्यक्तित्व के आरोप अथवा मानवीकरण का प्रश्न है। अंतिम रूप से इस प्रसंग में इतना ही निवेदन करना है कि हमारे कवि की रचना में छायावादी मानवीकरण की छाया नहीं दीख पड़ती। मेघ को संदेश वाहक बनाकर कालीदास ने पहले ही मानवीकरण की नींव डाली किन्तु प्रतीक विधानमयी लाक्षणिक शैली सरस शब्द संगिमा ध्वन्यात्मकता अमूर्त की मूर्त योजना आदि उपकरणों के अभाव में हिन्दी व संस्कृत दोनों ही साहित्यों की पूर्ववर्ती रचनाओं में आधुनिक युग जैसी चित्रात्मकता नहीं पाई जाती। महाकवि निराला की 'बादल राग' व पंत की 'अल्मोड़े का बसंत' शीर्षक रचनाएं शैली और वस्तुवर्णन के अनुकरण पर भी लिखी जाने पर वे अपनी किन्हीं कतिपय विशेषताओं के कारण मौलिक ही कही जाएंगी। मौलिकता के इस नवीनतम मापदंड पर हमारे कवि का प्रकृति चित्रण निश्चय ही सफल नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस प्रसंग में यह भी कह देना असंगत न होगा कि छायावादी युग की इस नवीनतम कसौटी पर भक्ति युग के चित्रण की विवेचना करना प्रारम्भ से ही निराशा को निमन्त्रण देना व युग सापेक्षता की अवहेलना करना होगा। तुलसी के प्रकृति चित्रण की विवेचना शैली कीट्स वर्ड्सवर्थ प्रसाद पंत निराला आदि की दृष्टि पथ पर रख कर नहीं की जा सकती। युग विधान की सीमाओं को सामने रख कर की गई निर्णयात्मक आलोचना का ही महत्व हुआ करता है। सन्त व समाज सुधारक होने के नाते किसी भी कवि के प्रकृति चित्रण में उपदेशात्मक तत्वों का आ जाना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि बन्द कोठरी से निकल कर किसी वाटिका के मुक्त वातावरण में नवीन स्फूर्ति की अनुभूति।

गोस्वामी तुलसीदास के इस प्रकृति चित्रण की इस विस्तृत विवेचना के उपरान्त हम एक बार अपने विज्ञ पाठकों का ध्यान वाशिंगटन इर्विंग के इन शब्दों[1] की ओर आकर्षित करना चाहेंगे। जिनका स्पष्ट आशय यह है कि आज के अमर्यादित युग में यद्यपि सुधारवादियों आलोचकों का अभाव नहीं है। किन्तु इनमें सभी सफल शिल्पी नहीं कहे जा सकते। अधिकांश तो उनमें विध्वंस के ही गुण हैं। इस दशा में हमें अपने प्राचीन मन्दिर को तब तक सुरक्षित रखना है जब तक वह नियाम के सर्वथा

---

1 I should almost tremble to see it meddled with during the present conflict of tastes and opinions, Some of the advisors are no doubt good architects that might be of service but many of them, I fear are mere levellers, who when they had once got to work with Mettocks on this Venrable edifice, would never stop until they had brought it to the ground and perhaps burried thems-lves amongst ruins.

दिवाकर मणि त्रिपाठी—कवि परिपाटी पृ० १

अयोग्य सिद्ध नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा निर्मित प्रकृति मन्दिर के सम्बन्ध में भी अन्तिम रूप से ही यह ज्ञात किया है कि आधुनिक विद्वानों द्वारा किये हुये सिद्धान्तों की कसौटी पर उसका मूल्यांकन कभी नहीं किया जा सकता।

वस्तु वर्णन—

वस्तु वर्णन के अन्तर्गत किसी उपवन या नगर का वर्णन आता है। इस वर्णन में भी गोस्वामी जी अद्भुत क्षमता रखते हैं। तुलसीदास जी कथा की स्वाभाविक गति को वस्तु व्यापार के वर्णन के मोह में कहीं भी नष्ट होने नहीं दिया है और न अनावश्यक वस्तुओं और व्यापारों के वर्णन की ओर ही ध्यान दिया है। उनके वस्तु वर्णन में विविधता स्वाभाविकता मर्मस्पर्शता और रसात्मकता का पूर्ण सामंजस्य है। मानस' में इतने अधिक वस्तु व्यापारों का वर्णन हुआ है कि उन सबका उल्लेख करना यहाँ कठिन है। उनका लक्ष्य वस्तु वर्णन द्वारा कथा में रस सृष्टि करना है। वस्तु वर्णन में तुलसी ने महाकाव्यों की प्रबन्ध रूढ़ियों का एक सीमा तक पालन करते हुए भी स्वतन्त्र प्रवृत्ति का परिचय दिया है। तुलसी के काव्य में नगरों उपवनों और प्रासादों के वर्णन भी सर्वतः पाये हैं। राम कथा तीन नगरों में चलती है। अयोध्या

१—अयोध्या
२—जनकपुरी और
३—लंका।

'मानस' में इन तीनों का वर्णन इस प्रकार है।

अयोध्या—

अवधपुरी सोहइ एहि भाँति। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥
अगर धूप बहु जनु अँधिआरी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥
भवन बेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥[1]

कितना सुन्दर अवध का वर्णन है। और भी देखिये:—

पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥
गलीं सकल अरगजाँ सिंचाईं। जहँ तहँ चौकें चारु पुराईं॥
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥
सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी॥[2]

---

१ मा० मा० पृ० ११८
२ मा० मा० पृ० ११८

भूप भवनु तेहि अवसर सोहा । रचना देखि मदन मनु मोहा ॥
मंगल सगुन मनोहरताई । रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई ॥
जनु उछाह सब सहज सुहाए । तनु धरि धरि दसरथ गृहँ छाए ॥[1]

जनकपुर—

पुर रम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिसेषी ॥
बापी कूप सरित सर नाना । सलिल सुधासम मनि सोपाना ॥[2]
सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास ।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास ॥[3]

× × ×

हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल ।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल ॥
मंगल कलस अनेक बनाए । ध्वज पताक पट चमर सुहाए ॥
दीप मनोहर मनिमय नाना । जाइ न बरनि बिचित्र बिताना ॥
जनक भवन कै सोभा जैसी । गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी ॥
जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी । तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी ॥
जो संपदा नीच गृह सोहा । सो बिलोकि सुरनायक मोहा ॥[4]

जनक भवन की शोभा जैसी । गृह गृह प्रति पुर देखिए तैसी' । में यथा राजा तथा प्रजा वाली कहावत कितनी सुन्दरता से चरितार्थ हो उठी है ।

लंका—

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना ।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना ॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै ।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै ।
बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं ।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ।
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं ।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं ॥
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं ।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं ॥[5]

---

१ मा० बा० पृ० २१८
२ मा० बा० पृ० १५
३ मा० बा० पृ० १५०
४ मा० बा० पृ० १६८-१६९
५ मा० सु० पृ० ५४२

कितना स्वाभाविक वर्णन है। इसमें वन बाग उपवन वाटिका, सर कूप बापी सोहहीं। वाली पंक्ति में कवि वन बाग उपवन वाटिका ही गिन रहे हैं, किन्तु उसमें फल का विवेचन नहीं है। इसी प्रकार सर कूप बापी में महाकवि द्वारा जल की विवेचना नहीं की गई। फल और जल का विवेचन न करने का विशेष कारण है। वह यह कि तुलसी दिखलाते हैं लंका में न तो भगवान को फलादिकों का भोग ही लगाया जाता है और न जल के द्वारा भगवान के विग्रह को स्नान ही कराया जाता है। अतः तुलसी ने सोचा कि जब लंका का जल व फूल प्रभु के चरणों में उनके निमित्त प्रयोग में नहीं आते तो हम ही उनके राक्षस नगर में फूल और जल की विवेचना क्यों करें।

वस्तु वर्णन के अन्तर्गत उपवन का भी वर्णन आता है। जनक वाटिका का वर्णन देखिये कितना सुन्दर है जो राम जैसे सुख राशि को भी सुख प्रदान कर रहा है।[1]

अतः गोस्वामी जी के वर्णन न तो अनावश्यक रूप से इतने विस्तृत हो पाये और न इतने संक्षिप्त हो पाये कि उससे काव्य के कलात्मक चमत्कार में बाधा आती। तुलसी में वर्णन शक्ति अद्भुत थी। बाह्य जगत का सूक्ष्म निरीक्षण किये बिना कवि में ऐसी वर्णन शक्ति का विकास नहीं हो सकता। तुलसी ने जिस विषय को लिया उसका जीता जागता स्वरूप खड़ा कर दिया। इससे उनकी सुरुचि और प्रत्येक विषय का सांगोपांग रखने और उसमें निहित सौन्दर्य को चित्रण करने की अद्भुत कलात्मक क्षमता प्रकट होती है।

---

१ मा० बा० पृ० १२१

आठवाँ अध्याय



तुलसी के चरित्र चित्रण की कला

पं० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार सात्विक, राजस और तामस इन तीनों प्रवृत्तियों के अनुसार चरित्र विभाग करने से दो प्रकार के चित्रण हम गोस्वामी जी में पाते हैं।

१—आदर्श
२—सामान्य

आदर्श चित्रण के भीतर सात्विक और तामस दोनों ही आते हैं। राजस को हम सामान्य चित्रण के भीतर ले सकते हैं। इस दृष्टि से सीता, राम भरत हनुमान और रावण को आदर्श चित्रण के भीतर ले सकते हैं, तथा दशरथ, लक्ष्मण विभीषण सुग्रीव कैकेयी सामान्य चित्रण के भीतर आदर्श चित्रण में हम या तो यहाँ से वहाँ तक सात्विक वृत्ति का निर्वाह पायेंगे या तामस का। अनेकरूपता उनमें न मिलेगी। सीता राम भरत हनुमान यह सात्विक आदर्श हैं। रावण तामस आदर्श है।[1]

चरित्र चित्रण सम्बन्धी शुक्ल जी का यह विभाजन निस्सन्देह माननीय है किन्तु रावण को हम आदर्श पात्र के रूप में नहीं ले सकते। शुक्ल जी के इस विभाजन के आधार पर हम मानस के सभी पात्रों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं।

आदर्श चरित्र में—

आदर्श चरित्र में हम केवल सात्विक प्रवृत्ति को ही लेंगे। जिसमें निम्न लिखित पात्र आते हैं।

सात्विक—

१—राम
२—सीता
३—भरत
४—हनुमान

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—काशी नागरी प्रचारिणी सभा षष्ठ संस्करण—सं० २००५ शील निरूपण और चरित्र चित्रण पृ० सं० [illegible]

५—कौशिल्या
६—जटायु
७—सुमित्रा
८—शरभंग
९—लक्ष्मण

तामस अथवा चमत्कारी चरित्र—

यह चमत्कारी चरित्र हैं। अर्थात् इनके कृत्य असाधारण हैं। जिसे हम माने स्पष्ट करेंगे। जैसे —

१—रावण
२—मेघनाद
३—कुम्भकर्ण

सामान्य चरित्र—

सामान्य चरित्रों में यह हैं —

१—उर्मिला
२—मांडवी
३—शत्रुघ्न
४—श्रुति कीर्ति
५—दशरथ
६—कैकेयी
७—मंथरा
८—जनक
९—सुनयना
१०—मंदोदरी
११—सुलोचना
१२—विभीषण
१३—त्रिजटा
१४—सुमंत
१५—पुरवासी
१६—वशिष्ठ
१७—विश्वामित्र
१८—नारद
१९—शंकर
२०—अत्रि
२१—सुतीक्ष्ण

२२—वाल्मीकि
२३—भारद्वाज
२४—अगस्त्य
२५—खर
२६—दूषण
२७ मारीच
२८—काकभुशुंडि
२९—गरुड़
३०—सुग्रीव
३१—बालि
३२—कबंध इत्यादि ।

अब नीचे गोस्वामी जी की चरित्र चित्रण सम्बन्धी कला पर विचार किया जा रहा है। इसमें हर एक-एक प्रमुख पात्र को लेकर उसमें गोस्वामी जी की कला पर प्रकाश डालेंगे। सामान्य पात्र जिनका चरित्र चित्रण अधिक नहीं मिलता उनका ऊपर नामोल्लेख ही पर्याप्त होगा।

आदर्श चरित्र चित्रण कला—

नीचे हम आदर्श कोटि में आने वाले एक-एक चरित्र पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

सात्विक राम—

किसी भी जाति की काव्य प्रतिभा में कभी भी जिन उदात्त गुणों की कल्पना की होगी कदाचित हम उनका एक महान आदरणीय रूप राम के चरित्र में देखने को मिलता है। उन्हें भव्य शारीरिक गठन भी हम प्राप्त है। उनका चरित्र सत्य प्रियता दृढ़ता लोकहितैषी इत्यादि स्निग्ध हृदयता एवं विश्राम माधुर्य उत्साह अन्तःकरण की पवित्रता गम्भीरता धीरता क्षमाशीलता काम शीलता सबसे अधिक एक निष्ठावान व्यक्तित्व अव्यवस्था अनैतिकता अधार्मिकता और नास्तिकता के स्थान पर व्यवस्था नैतिकता धार्मिकता और आस्तिकता की संस्थापना करने के हेतु एक ऐसे ही पूर्ण चरित्र को ईश्वर रूप में दिव्य कल्पना कीजिए। यही तुलसी के पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य के राम हैं। इसी पूर्ण चरित्र में जैसे और भी पूर्णता भरने में गोस्वामी जी की प्रतिभा लीन होती है।

हिन्दू जाति के आचार विचार पर इस महान आदर्श चरित्र का कितना गम्भीर प्रभाव पड़ा है यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है। राम का आचारण और स्वभाव इस भांति का निर्मल और उज्ज्वल चित्रित किया है जिस प्रकार एक दैवी पुरुष में हो सकता है। प्रधान पात्र राम के कारण जितनी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उनका जीवन दिखलाया गया है उतना अन्य का नहीं।

श्री राम का जन्म उस पवित्र कुल में हुआ है जिसमें महाराजा रघु जैसे प्रतापी राजा उत्पन्न हुए थे। महाराज दशरथ ने बड़ी तपस्या की तब राम को पुत्र रूप मे प्राप्त किया। बचपन से ही राम धीर वीर और गम्भीर थे। विश्वामित्र के साथ जाकर राम ने तपोवन में उनके यज्ञ की रक्षा की। वहाँ ताड़का जैसी भयंकर राक्षसी का संहार किया और श्री सुबाहु आदि का वध किया। जनकपुर में पहुँचकर शिवजी के भारी पिनाक के दो टुकड़े कर दिये। धनुष भंग के बाद सुन्दरि शिरोमणि जानकी से पाणिग्रहण किया। मार्ग में ही २१ बार पृथ्वी पर से क्षत्रियों को परास्त करने वाले परशुराम को हराया। इसके उपरांत राम अयोध्या पहुँच कर सुख से रहने लगे। एक दिन दशरथ ने सोचा कि अब मेरी अवस्था काफी हो गई है और उनके राम भी सब विधि और सब लायक हो गए हैं। अतः अब उन्हें युवराज बना देना उचित है। उन्होंने मन्त्रियों को बुलाया और उनसे कहा कि मेरा पुत्र राम अब राज्य करने के योग्य हो गया है। मेरा विचार है कि मैं राज्य का भार उसे सौंप दूँ। आप लोग अपनी अनुमति दें। मन्त्रियों ने कहा महाराज! आपके पुत्र राम सर्व गुण सम्पन्न हैं। हम लोग उनके राजा होने में अपना सौभाग्य समझते हैं। राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी। वन जाने की आज्ञा पर राम को हर्ष ही हुआ। राम को सीता का अपने प्रति अगाध प्रेम देख उन्हें भी अपने साथ वन ले जाना पड़ा। राम राज्य से विरत हो मुनि के रूप में वन-वन में प्रिया व बन्धु के साथ भ्रमण करने लगे। सभी कष्टों को राम ने सहन कर लिया किन्तु सीता हरण का कष्ट उन्हें असाध्य था। अन्त में रावणादि राक्षसों का वध कर और सीता को ग्रहण कर अवध पुनः वापस आये और राज्य कार्य करने लगे।

'मानस' के राम में हमारे कवि थोड़ा सा परिवर्तन करते हैं। इसमें उनकी कला का उदात्त रूप देखने को मिलता है। वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड के तीसरे सर्ग में राम सीता से कहते हैं।

> ऋद्धि युक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्।
> तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम॥[1]

अर्थात् ऋद्धि सिद्धि से युक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सह सकते। इसीलिए तुम कभी भी मेरी प्रशंसा भरत के सामने न करना। गोस्वामी जी ऐसे स्थलों का उल्लेख न कर संकेत से ही काम लेते हैं। इसी में तो गोस्वामी जी की कला पूर्णता को पहुँची है। इसी प्रकार रावण विजय के उपरान्त जहाँ 'वाल्मीकीय रामायण' में स्वयं राम सीता को लांछित करते हैं। यहाँ तक कि वे अपनी स्त्री के रूप में उन्हें स्वीकार नहीं कर सकते हैं। वे अन्त में यहाँ तक कह गये हैं कि तुम्हें अपूर्व सुन्दरी देख रावण की भी इच्छा होगी उसने किया होगा। ऐसी अवस्था में मैं तुम्हें कैसे

---

१ वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड तीसरा सर्ग।

ग्रहण कर सकता है।[1] यहाँ तुलसी ने 'कहे बहुकटु बचन'[2] कह कर राम के शील सौजन्य की रक्षा की है। इसका फल हुआ कि तुलसी के चरित्रों का गठन स्वाभाविक होते हुए भी आदर्श और कलात्मक हुआ है।

एक बालक की सरलता का राम सीता के प्रति अपने अंकुरित प्रेम को न केवल भाई लक्ष्मण पर वरन् अपने गुरु विश्वामित्र पर भी प्रकट कर देते हैं। अतुलनीय नम्रता—शिवधनुष के तोड़ने वाले को जानने के हेतु परशुराम द्वारा किये प्रश्न के उत्तर में राम द्वारा कहे शब्द तथा आगे के महान कथन सभी एक महान चरित्र की इस विशेषता से ओत प्रोत हैं। राम छोटा पर जितना स्नेह करते थे इसका जो चित्र गोस्वामी जी ने खींचा है वह अनुपम है और सजीव भी है। इसी में गोस्वामी जी की कला देखने को मिलती है। कदाचित ही अन्यत्र ऐसा चित्र उपलब्ध हो सके। राज्याभिषेक के पूर्व शुभ अंगों के फड़कने पर राम तरसा करते हैं कि वे भरत के अनिहास लौटने के ही सूचक हैं।

अनन्त शक्ति के साथ वीरता गम्भीरता और कामलता राम का प्रधान लक्षण है। राम में अपने गुरु जनों के प्रति आदर की भावना भी पूर्ण रूप से उपस्थित है। राज्याभिषेक के पूर्व शुभ अंगों के फड़कने के उपरान्त दशरथ के अनुरोध पर वशिष्ठ जब राम को उपदेश करने जाते हैं। उस समय राम उनका जिस प्रकार स्वागत करते हैं वही इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। राम में साहस भी कूट कूट कर भरा है। बाल्यावस्था में ही जिस प्रसन्नता के साथ दोनों भाइयों ने घर छोड़ा और विश्वामित्र के साथ रह कर अस्त्र शिक्षा प्राप्त की तथा विकट राक्षसों पर पहले पहल अपना बल आजमाया। उदारता और निःस्वार्थता राम में कूट कूट कर भरी है। जब वशिष्ठ राम को उपदेश करके चले जाते हैं तो राम का यह विचार कितना उदार और निःस्वार्थता का द्योतक है —

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा ॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥[3]

राम के इस कथन में गोस्वामी जी स्वयं बोलते प्रतीत होते हैं। राम के यह वाक्य उनके भ्रातृ स्नेह का कितना सजीव चित्रण करने वाले हैं। इस स्थल पर जब राम का अभिषेक होने वाला है उनके मुख से उपर्युक्त वाक्य कहलाकर उन्होंने पाठक के समक्ष राम के भ्रातृ प्रेम का एक चित्र सा खींच दिया है। इस सजीवता की दृष्टि से यह प्रकरण बड़ा ही कलात्मक है। राम की वीरता और गम्भीरता जो हम परशुराम के साथ देखने पाते हैं इतना देख कर ही हम कह सकते हैं कि राम का स्वभाव

---

१ वाल्मीकीय रामायण—युद्ध कांड- सर्ग ११२
२ मा० बाल० पृ० ६७२
३ मा० अयो० पृ० २१६

धीर और गम्भीर था। धीर और गम्भीर हृदय की भारी विशेषता यह होती है कि वह क्षोभ युक्त भाव का दूसरे में आरोप नहीं कर पाता। राम से मिलने जब भरत चित्रकूट के सन्निकट पहुँचे तो उनकी सेना को आती हुई देख कर लक्ष्मण को शंका होती है और वे नाना प्रकार के कटु वचन भरत के हेतु राम से कहते हैं।

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई ॥[1]

पर राम के मन में ऐसा जरा-सा भी सन्देह नहीं होता। वे तुरन्त कहते हैं :—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥[2]

अपनी सुशीलता के बल पर ही उन्हें भरत पर पूरा विश्वास है :—

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥[3]

राम कर्तव्य पालन में भी बड़े ही दृढ़ हैं। पिता का वचन मानकर वे वन गमन करते हैं वह उनकी कर्तव्य निष्ठता का द्योतक है।

जब सुमन्त्र राम को वन में छोड़ कर लौटते हैं तब राम कितनी सुशीलता से भरा सन्देशा पिता के लिये कहते हैं —

सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें ॥[4]

इसके बाद लक्ष्मण ने कुछ कटु शब्द पिता के लिए कहे जिसे राम सह न सके और वे तुरन्त लक्ष्मण को रोक कर कहने लगे —

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥[5]

यहाँ संकुचि शब्द कितना भावगर्भित है। यह कवि की सूक्ष्म कलात्मक अन्तर्दृष्टि सूचित करता है। मनुष्य समाज में रहने वाला प्राणी है। उसे अपने ही हृदय पर लज्जा नहीं आती। वरन वह अपने कुटुम्बी के भी आचरण से लज्जित होता है। राम का यह संकोच उनकी सुशीलता और लोक मर्यादा को व्यंजित करता है।

राम का स्नेही स्वभाव इस बात से उस समय ज्ञात होता है जबकि वे यहाँ अपने सम्बन्धियों के वियोग में दुखी होते हैं।

प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं।[6]

---

१ मा० प्रयो० पृ० १९६
२ मा० प्रयो० पृ० ४०१
३ मा० प्रयो० पृ० ४०१
४ मा० प्रयो० पृ० ३१४
५ मा० प्रयो० पृ० ३१५
६ मा० प्रयो० पृ० ४२६

इसके साथ ही वन में लक्ष्मण व सीता को अपने दुःख में विकल देखते हैं तो वह शोक हो जाते हैं। यह भी उनके स्नेही स्वभाव का द्योतक है। राम के स्वभाव की सबसे असाधारण विशेषता यह है कि वे अन्यायियों और शत्रुओं के प्रति भी प्रेम की भावना रखते थे। चित्रकूट में वे कैकेयी से अपनी सगी माता के ही तुल्य मिलते हैं और सारा द्वेष अपने स्नेह की अजस्र वर्षा से धो कर देते हैं। चौदह वर्ष बाद राम अवध लौट कर पहले कैकेयी के ही घर जाते हैं और उनका अपनी माता से भी बढ़कर सम्मान करते हैं।

काव्य के माध्यम से गोस्वामी जी ने राम की जो कैकेयी के प्रति क्षमाशीलता दिखलाई है उसे पाठक कभी भी विस्मृत नहीं कर सकते। अतः यह स्थल भी सजीव होने के कारण कलात्मक है।

शत्रुओं के प्रति राम कितने उदार थे। उसे स्मरण कर राम के प्रति हृदय श्रद्धा से नत हो जाता है। वह वे अपने शत्रु रावण की भी कुशल और हित कामना करते हैं। इस प्रकार —

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥[1]

× × ×

काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करहु बतकही सोई॥[2]

यहाँ पर गोस्वामी जी ने शत्रुओं की कुशल भी राम के द्वारा पुछवाई है वह उनकी सूक्ष्म कलात्मक दृष्टि की परिचायक है।

सुमन्त ने अयोध्या लौट कर राजा से लक्ष्मण की कही हुई बातें तो न कहीं पर इस घटना का उल्लेख किये बिना उनसे न रहा गया। राम के शील का जो अद्भुत परिचय उन्होंने प्राप्त किया वह उसे अपने हृदय तक ही सीमित न रख सका सुशीलता के मनोहर रूप का प्रभाव अन्तःकरण पर ऐसा ही पड़ता है। सुमन्त को राम की आज्ञा के विरुद्ध कार्य का दोष अपने ऊपर लेना कबूल हुआ। पर इस शील सौन्दर्य की झलक वह अपने तक ही सीमित न रख सका। दशरथ को भी उसने दिखलाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अन्तिम झलक ने राजा को मृत्यु के निकट और भी पहुँचा दिया होगा जो आगे चल कर दिखलाई पड़ी है।

राम इन गुणों के साथ साथ बड़े ही संकोची थे। चित्रकूट में जब भरत आदि उन्हें चित्रकूट से अयोध्या लौट चलने को विनय करते हैं तब समस्या का निराकरण वे स्वयं न कर दूसरों पर ही छोड़ देते हैं। यहाँ तक वे अन्त में यह निराकरण भरत पर ही छोड़ देते हैं जो कि स्वयं उन्हें लौटाने के हेतु आये थे।

---

१ मा० सु० पृ० २७१
२ मा० लंका पृ० २९६

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्य सीम रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥[1]

राम एक दृढ़ आशावादी थे। उनकी यही आशावादिता विभीषण के हेतु संजीवन का रूप धारण कर लेती है। जैसे ही विभीषण उनके निकट आता है वह निश्चिन्त बना देते हैं।

जब विभीषण पर रावण शक्ति से प्रहार करता है तो राम विभीषण को पीछे कर स्वयं ही उस शक्ति को सहन कर लेते हैं। यह उनकी असाधारण भक्त वत्सलता का द्योतक है।

आकाश मार्ग से वानरों को अयोध्या दिखलाते समय राम ने जो अवध के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं वह उनकी असाधारण मातृ भूमि के प्रति प्रेम के द्योतक हैं। इतना सब होते हुए भी राम को तुलसी मानवीय धरातल पर ही रखते हैं। इसी उद्देश्य से वे राम को इस प्रकार चित्रित करते हुए दिखलाई देते हैं कि उन्होंने पिता के वचन का भी उल्लंघन किया होता और पत्नी का भी वियोग सह लिया होता। यदि उन्हें इसका भान होता कि इसका मूल्य एक सच्चे भाई से चुकाना होगा।

तुलसी ने अपने नायक के चरित्रांकन में काव्य के समस्त गुणों का समावेश कर अपनी कला का ज्वलंत रूप उपस्थित किया है। सूर के नायक सुन्दरम् के प्रतीक होकर हमारे सामने आते हैं। वे अपनी एकत्र प्रेम क्रीड़ाओं द्वारा लोक का रंजन करते हैं पर गोस्वामी जी की कला यह है कि उनके राम सुन्दरम् के प्रतीक तो हैं ही साथ ही साथ लोकरंजनकारी भी हैं। पर इससे भी बढ़कर वे शिवम् के ही प्रतीक हैं। अर्थात् लोक कल्याण के साधक व जन कल्याण के प्रतिनिधि हैं। राम ही वह वृक्ष है जिसको कवि सींचता है और उसके फल स्वरूप सीता दशरथ कौशिल्या आदि के भी चरित्र सामने आते हैं। कवि ने इन सभी को कलात्मकता से चित्रित किया है।

इस उच्च चरित्र के जीवन में केवल दो प्रसंग ऐसे हैं :—

१—शूपणखा का विरूप करना।

२—बालि का छुपकर वध

जो राम की चरित्र सम्बन्धी महत्ता के साथ सामंजस्य नहीं कर पाते।[2] डा० गुप्त के इस कथन से हम सहमत नहीं हैं। शूपणखा ने राम से केवल विवाह प्रस्ताव ही नहीं किया अपितु वह सीता को भक्षण करने के अभिप्राय से भयंकर रूप धारण करके राम के पास आई।

---

१ मा० अयो० पृ० ४२२

२ डा माता प्रसाद गुप्त—गोस्वामी तुलसीदास—अध्याय कला चरित्र चित्रण—पृ० २७७

कम भयंकर प्रकट भई ।[1]

राम ने जब देखा कि वह सीता जी का भक्षण कर लेगी तब उन्होंने लक्ष्मण जी से शूर्पणखा की नाक व कान काट लेने का संकेत किया । इसमें राम के चरित्र की महत्ता इस बात में और भी बढ़ जाती है कि उन्होंने ताड़का की भाँति उसका वध नहीं किया वरन् उसे केवल उसे विरूप करके ही छोड़ दिया ।

रही सुग्रीव के हेतु बालि का वध करना । यह भी कृत्य राम की महत्ता का कम नहीं करता । राम का स्वभाव ही ऐसा था कि वह अपने प्रेमियों का दुख सहन नहीं कर सकते थे । जब दण्डकवन में ऋषियों ने राम को दुखी होकर राक्षसों द्वारा खाया हुआ हड्डी का पहाड़ दिखलाकर राम से कहा कि —

निसिचर निकर सकल मुनि खाये ।[2]

सुनते ही राम ने कुपित होकर कहा वे अपने प्रेमी जनों का दुःख सहन न कर सकेंगे —

निसिचर हीन करौ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह ।[3]

इसी प्रकार जब बालि के कर्म रोकर सुग्रीव ने इस प्रकार बतलाया —

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी ।
हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी ।।[4]

राम सुग्रीव को अपना मित्र बना चुके थे । अपना दुख समरज करि जाना । मित्र के दुख रज मेरु समाना ।[5] के आधार पर राम ने अपने मित्र की रक्षार्थ बालि को मारा । कुछ विद्वानों की धारणा है कि राम ने छुप कर बालि का मारा । वास्तव में ऐसी बात नहीं । वैसे ही बालि मरा तुरन्त ही —

पुनि उठि बैठ देख प्रभु आग ।[6]

इससे ज्ञात होता है कि राम बालि क पास ही थे तभी तो बालि क गिरते ही तुरन्त उसके सामने आ गये । यदि वास्तव में उन्होंने छिपकर मारा होता तो बालि के पास आने में थोड़ी देर अवश्य लगती । बालि जब राम बाण से आहत होकर गिरा तो उसने राम को पहचाना और कह उठा ।

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि ।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि ।।[7]

---

१ मा० अरण्य पृ० ४८३
२ मा० अरण्य पृ० ४७१
३ मा० अरण्य पृ० ४७४
४ मा० कि० पृ० ५१८
५ मा० कि० पृ० ५१८
६ मा० कि० पृ० ५२१
७ मा० कि० पृ० ५२१

इस पर राम का यह कथन उनके चरित्र की उदारता की महत्ता को कोसों ऊपर उठा देता है।

मंगल करौं तनु राखहु प्राना।[1]

राम को स्वयं तुलसी ने पूर्ण ब्रह्म हरि के रूप में चित्रित किया है। उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयत्न करने की बात को कही गई है। इसमें भी गोस्वामी जी की कलात्मक दृष्टि काम कर रही है। वह यह है कि यदि उपर्युक्त चौपाई गोस्वामी जी न लाते तो राम की क्षमाशीलता का विवेचन जिस उदारता से गोस्वामी जी ने किया था उसमें कमी आ जाती।

गृहस्थ-जीवन के दाम्पत्य भाव के भीतर सबसे अधिक मनोहर वस्तु है। उनकी एक पत्नी की मर्यादा। जो तुलसी की कला को बड़ा उदात्त रूप प्रदान करती है। भक्तों को सबसे अधिक वश में करने वाला राम का गुण है अपने शरणागत की रक्षा। शरणागत की चिन्ता राम के मन से भयानक युद्ध के समय भी दूर न हुई। लक्ष्मण की अचेतावस्था में पड़े देख रो रहे हैं राम। उस समय भी वहाँ अपने शरणागत की रक्षा का ध्यान है।

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिन करौं भरोसो काको।
सुनु सुग्रीव साँचेहु मो पर फेर्‌यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता।
गिरि कानन जैहैं साखा मृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
होइ है कहा बिभीषन की गति रही सोच भरि छाती।।[2]

अपने अस्तित्व को भाड़ कर यदि कोई अपने शरणागत की इतनी रक्षा कर सकता है तो वह राम ही है। राम का स्वभाव तो बस राम का ही स्वभाव था। उनकी तुलना में तो और कोई आ ही नहीं सकता। राम रावण का वध इसलिये नहीं करते कि उसने उनकी पत्नी का अपहरण किया है। बल्कि उनके एक भक्त का अपमान हुआ। इस कारण वह उसका वध करते हैं। यह भाव इस पद में बड़ी सजीवता से अभिव्यक्त हुआ है।

बेद बिरुद्ध मही मुनि साधु। ससोक किये सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी। तबहूँ करुना कर कोप न धारयो।
सेवक छोह ते छाड़ी छमा। तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौ न दाप दल्यो दसकंधर। जौं लौं बिभीषन लात न मारयो।[3]

यह है राम का स्वभाव। जिसका सजीव चित्रण गोस्वामी जी ने अपनी

---

१ मा० कि० पृ० ५२१
२ गीतावली—लंका काण्ड—पद सं० ७ पृ० १११
३ कवितावली—उत्तर कांड—पद सं० ६—पृ० सं० १६०

कृतियों में प्रस्तुत किया है। राम के उपर्युक्त शरणागत के व्यवहार को पढ़कर पाठक उसमें एक दम लीन हो जाता है। इस प्रकार चित्रण द्वारा ही गोस्वामी जी ने राम के चरित्र चित्रण में कलात्मकता अथवा चमत्कार प्रस्तुत किया है।

सीता—

भारतीय ग्रंथों की सीता में हम यह गुण पाते हैं—निश्चयात्मक बुद्धि वाली निष्कपट सरल हृदया आत्म सम्मान के भाव से सम्पन्न तथापि अतिशय स्नेहमयी महत्वकांक्षा रहित विनीत विनम्र धीरा शयम शीला मुखमण्डल पतिव्रत की आभा से युक्त और अपने स्वामी से वियुक्त होने पर क्षीणकाया। हमारे कवि इसी सीता को ग्रहण करते हैं।

सीता के चरित्र को हम यहाँ संक्षेप में ही लेंगे। क्योंकि तुलसी की कला में मर्यादा और औचित्य शीर्षक के अन्तर्गत हम सीता के चरित्र सम्बन्धी गुणों पर प्रकाश डाल चुके हैं।

तुलसी की सीता महाकाव्य की नायिका महाराज जनक की कन्या तथा अनुपम सुन्दरी हैं। वह पुष्पवाटिका से ही राम की ओर आकर्षित होती है और उनका यह प्रेम आगे विवाह में परिणत हो दाम्पत्य जीवन के आदर्शों को लेकर बड़े ही स्नेह से व्यतीत होता है।

जब वह वन गमन की बात सुनती है तो व्याकुल हो उठती है। वह अपनी सास के समीप जाकर बैठ जाती है। उनका अपनी सास का चरण छू मस्तक नीचा कर बैठना उनकी लज्जाशीलता और विनयशीलता का द्योतक है। इसमें जानकी के इस दृश्य से पाठक के समक्ष सीता की लज्जा और विनम्रता का सजीव चित्र आ जाता है। इस स्थल में भी गोस्वामी जी ने सीता के चरित्र में कलात्मकता की सृष्टि की है। वह अपने वन जाने से सम्बन्धित कुछ भी नहीं कहती केवल अश्रु धारा प्रवाहित करती हुई अपने चरणों के सुन्दर नखों से जमीन कुरेदने लगती हैं। इसमें गोस्वामी जी के द्वारा सीता जी के शोक की भावना कितने सजीव रूप में मुखर हुई है यह देखते ही बनती है। इसके द्वारा जमीन को नखों से कुरेदना जो दिखाया गया है वह शोक की भरपूर व्यंजना और गोस्वामी जी की कला में चमत्कार उत्पन्न करने के हेतु पर्याप्त है। सीता स्वयं राम से नहीं कहतीं कि मैं भी आपके साथ वन में चलूँगी। राम की माता ही राम से जानकी का यह अभिप्राय प्रकट करती हैं। कि जानकी भी हे राम तुम्हारे साथ वन जाना चाहती है। राम जब जानकी को नाना प्रकार के कष्ट दिखलाकर वन जाने से रोकते हैं तब जानकी उत्तर देने को बाध्य होती है। राम से कुछ भी वार्ता करने के पूर्व वह अपनी सास कौशिल्या के चरण छूती है और इस धृष्टता के हेतु कि वे सास के सामने पति से बात करेंगे। कौशिल्या से क्षमा माँगती है। सीता की यही लज्जाशीलता व सुशीलता उसमें फिर इस वन समय दिखाई देती है जब वह सुमन्त द्वारा लाये गये दशरथ के सन्देश का

उत्तर देने को प्रस्तुत होती हैं । उनका यह कथन कितनी लज्जा शीलता से भरा है ।

मारत मग सन्मुख भयउँ बिलम न मानव तात ।[1]

सीता के चरित्र की यह विनय और लज्जा उन्हें मानस में एक महान् स्थान प्रदान करती है । सचिव के प्रति गोस्वामी जी ने सीता की आदर भावना और लज्जा को दिखलाकर वास्तव में सीता के चरित्र चित्रण में वह कलात्मकता प्रस्तुत की है जो अन्यत्र मिलना दुर्लभ है ।

वन जाने के समय माता से विदा लेते समय उनके यह शब्द सास, ससुर, सेवा की आंतरिक लालसा के व्यंजक हैं ।

सेवा समय दैअ बनु दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥[2]

चित्रकूट में वे माताओं की वरणानुकूल सेवा करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं ।

सीयँ सासु प्रति बेष बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥[3]

इन प्रकरणों से सीता की जो सेवा भावना जो बड़ों के प्रति है उसके रूप का एक सजीव चित्रण हो जाता है । अतएव वह रूप भी कलात्मक है ।

लक्ष्मण सीता को छोड़ राम के पास जाना नहीं चाहते तो सीता उस समय लक्ष्मण से बहुत कटु शब्द कहती हैं । यहाँ तक कि उन्हें अनार्य पापी और लोलुप तक कह डालती हैं ।[4] किन्तु तुलसी केवल यही कहते हैं :—

मरम बचन सीता जब बोला ।[5]

यह भी गोस्वामी जी की कलात्मक प्रतिभा का नमूना है ।

जब वह वन से लौट कर घर आती है । तो अपने घर का समस्त भार अपने ऊपर ले लेती हैं । अपने पति की आज्ञाकारिणी हैं वे महान् पतिव्रता हैं । लंका जैसे शत्रु में रह कर रावण को तृण वत समझे, अपने पति के ध्यान में मग्न, अपने को पति वियोग में शुष्क किये, अपनी जान को हथेली पर रक्खे । नाना प्रकार के कष्टों का सामना करती हुई । पहले ही पति प्रेम की महान् कसौटी पर वे खरी उतर चुकी हैं ।

'मानस' की सीता के अद्भुत गुणों से यह कदाचित् सरलता से अनुमान किया जा सकता है कि कवि की कला में कौशल का पूर्ण आदर्श क्या है ।

गीतावली की सीता के चरित्र में मानस की अपेक्षा कोई भी विशेषता नहीं है । 'गीतावली' में सीता के चरित्र से सम्बन्धित एक प्रसंग ध्यान देने योग्य है । वह

---

१ मा० अयो० पृ० ३६५
२ मा० अयो० पृ० २९६–९७
३ मा० अयो० पृ० ४१४
४ वाल्मीकीय रामायण—अरण्य कांड सर्ग ४५
५ मा० अरण्य० पृ० ४६३

है उनके निर्वासन का प्रसंग। जो मानस में नहीं आता। उसमें हमें एक निराशापूर्ण मग्न हृदय के दर्शन होते हैं जो बड़ा ही दैनीय है। सीता वन में पहुँच कर लक्ष्मण को विदा देते समय केवल यही प्रार्थना करती है।

लखन लाल कृपाल निपटहि डारिबो न बिसारि।
पालबी सब तापसनि ज्यौं राजधर्म बिचारि॥[१]

इसमें गोस्वामी जी ने सीता जी की करुण अथवा शोक भावना का जो सजीव अंकन किया है। इस प्रकरण में सीता पहले तो राम से यह प्रार्थना करती हैं कि यद्यपि कृपालुराम ने मेरा परित्याग कर दिया है किन्तु हे लक्ष्मण! मेरी प्रार्थना यह है कि तुम उनसे जाकर कहना कि वह मुझे एकदम भुला न दें। प्रश्न है कि किस रूप में स्मरण करें क्या पत्नी रूप में नहीं इसकी मुझे कामना नहीं मैं तो केवल यही चाहती हूँ कि वह सब तपस्वियों की भाँति अपना राज धर्म समझ कर मेरी पालना और मेरा स्मरण करें। यह भी मैं अपने मन से नहीं कहती। उन्होंने स्वयं ही वाल्मीकि जी से मेरे सामने कहा था:—

मुनि तापस जिन ते दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥[२]

ऐसी अवस्था में अपना कहा ही विचार कर अपना राजधर्म समझ कर मेरा पालन व स्मरण करें। यहाँ 'पालबी सब तापसनि ज्यौं राजधर्म बिचारि पढ़कर कोई भी सहृदय दो चार आँसू न्यौछावर किये बिना न रहेगा। इसे पढ़ते ही सीता की वेदना का साकार रूप सामने आ जाता है। अतएव ऐसे स्थलों द्वारा गोस्वामी जी ने सीता जी के चरित्र में कलात्मक प्रतिभा द्वारा विभिन्न भावों का चमत्कार प्रस्तुत किया है। यहाँ 'पालबी सब तापसनि ज्यौं' वाला उदाहरण बड़ा ही सूक्ष्म भाव पूर्ण और कलात्मक है। जिसकी विवेचना ऊपर की जा चुकी है।

इसके बाद जानकी का मानस में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है।
दुइ सुत सुन्दर सीता जाये। लवकुश बेद पुरानन्ह गाये।[३]

इसमें 'दुइ सुत सुन्दर सीता जाये' वाली पंक्ति बड़ी ही भावपूर्ण है। किसी भी स्त्री के जब बालक होता है तो यह कहा जाता है कि अमुक की स्त्री के पुत्र हुआ कोई भी प्रायः स्त्री का नाम नहीं लेता। इसी प्रकार जब मायके में किसी स्त्री के बच्चा होता है तो वहाँ उस बच्चे के पिता का नाम न लेकर माता का ही नाम लिया जाता है। यहाँ गोस्वामी जी राम के पुत्र वर्णन में राम का नाम न लेकर यह लिख रहे हैं कि जानकी ने दो पुत्र उत्पन्न किए। भाव है जानकी के पुत्र अपने पिता के घर की भाँति वाल्मीकि के स्थान पर हुए थे। क्योंकि वाल्मीकि और जनक घनिष्ठ मित्र थे।

१ गीतावली—उत्तर कांड पृ० ४१३ सं० नं० २६
२ मा० अयो० पृ० ३३३
३ मा० उत्तर पृ० ७१०

अतः गोस्वामी जी ने कितनी कलात्मकता और भावुकता से उक्त चौपाई में सीता के निष्कासन की बात कह दी।

भरत—

आधार ग्रंथों में भरत का चरित्र आदर्श रूप में अंकित है। गोस्वामी ने तो राम को भी भरत के सामने न्यून ठहराया जिसे हम आगे स्पष्ट करेंगे। भरत के चरित्र में कौशल का राज्य त्याग जिसे उनके हेतु प्राप्त करने में कैकेयी को पति खोना पड़ा और मानव सृष्टि के तीन परमोत्कृष्ट रत्नों को निर्वासन की आज्ञा माननी पड़ी। तथा माता के अनौचित्य पूर्ण आचरण करने के हेतु प्रायश्चित रूप में अपनाया उनका एक विरक्त जीवन मानव जीवन के इतिहास में एक अनूठा उदाहरण है। इन्हीं प्रकरणों में गोस्वामी जी की कलात्मक प्रतिभा निखरी है।

गोस्वामी जी इस चरित्र को और भी महानता प्रदान करते हैं। राम के प्रति भरत का अस्वाभाविक प्रेम ही कवि के इस चित्रण की विशेषता है। कई स्थलों पर राम के प्रेम की प्रतिमूर्ति तक भरत को कह दिया है।

भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही।

× × ×

और —

तुम तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू।[1]

× × ×

यह भी :—

साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥[2]

इस स्नेह के लिये कवि इतना तक कह देते हैं कि यह प्राकृतिक नहीं अलौकिक है और यह विधि हरि हर की भी चिन्ता से परे है।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को॥[3]

और भरत समस्त पुरुषार्थ यहाँ तक कि निर्वाण के स्थान पर भी इसी प्रेम की ओर लक्ष्य करते हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार —

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन॥[4]

इन उदाहरणों में भरत का प्रेम जो राम के प्रति अभिव्यक्त हुआ है वह बड़ा ही प्रभावपूर्ण और सरस है। वाल्मीकि जी ने जहाँ भरत पर अत्याचार के द्वारा लांछन तक लगवा दिया वहाँ गोस्वामी जी ने भरत और राम के इतने पवित्र प्रेम का अंकन

---

१ मा० अयो० पृ० २१५
२ मा० अयो० पृ० ४१८
३ मा० अयो० पृ० ३८३
४ मा० अयो० पृ० ४०७

कर अपनी कला में प्राण फूंक दिये हैं। यही यहाँ महाकवि की कला की मौलिकता तथा उत्कर्ष का मूल है।

एक स्थल पर भरत अपने इस प्रेम के आदर्श को भी व्यक्त करते हैं। स्पष्ट रूप से यह एक पक्षीय प्रेम है जो कि बदले में कोई स्नेह पूर्ण संकेत भी नहीं चाहता।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ।
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद प्रेम निबाहें॥[1]

इस स्थल पर गोस्वामी जी ने भरत को राम के प्रति एकांगी प्रेम का मूर्त रूप बनाकर रखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी भले ही सेवक को भूल जावे। उस पर अत्याचार करे किन्तु सेवक की तो भलाई इसी में है कि उसका प्रेम दिनोंदिन बढ़ता ही जावे। यही भरत का आदर्श साथ ही तुलसी की भी भक्ति का आदर्श और गोस्वामी जी की कला का प्रेरक तत्व भी यही है।

राम की वन यात्रा के पूर्व भरत के चरित्र की गुरुता समर्थित करने वाली कोई भी बात हम नहीं पाते। भरत की अनुपस्थिति में राम के अभिषेक की तैयारी हुई। राम वन को गये। ननिहाल से लौटने पर ही उनके शील स्वभाव का स्फुरण प्रारम्भ होता है। ननिहाल में जब बुरे स्वप्न और कुशकुन देखते हैं तब वह माता पिता और भाई का मंगल मनाते हैं। कैकेयी के षड्यन्त्र में उनका लेश मात्र भी हाथ है इस सन्देह की जड़ यहीं से समाप्त हो जाती है। कैकेयी के मुख से पिता के मरण का सम्वाद सुन व शोक कर ही रहे थे।

तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥[2]

कि राम वन गमन की बात उनके सामने आ जाती है। राम वन गमन के साथ वे जरा सा अपना कारण जान स्तम्भित रह जाते हैं। ऐसे बुरे कार्य से सम्बन्ध रखने वाली माता उन्हें शत्रु रूप में दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में भरत जैसा गौर उज्ज्वल अन्तःकरण ऐसी भयंकर कालिमा का स्पर्श कैसे कर सकता है। भरत के हृदय का यह संताप बिना राम के सामने हुये दूर नहीं हो सकता। वे चट विरह व्यथित पुरवासियों को लिये चित्रकूट जा पहुँचते हैं और राम के समक्ष सारी सभा के बीच अपना शुद्ध अन्तःकरण ही खोल कर रख देते हैं। उस भावों के अन्दर राम को अपने प्रति निर्मलता देख कर वे शान्त हो जाते हैं।

भरत ने यह सब संसार के दिखलाने के निमित्त नहीं किया। उनके हृदय में सच्ची आत्मग्लानि थी। उनका हृदय भ्रातृ प्रेम की भावना से लबालब भरा था। भरत की यह ग्लानि इस मानस में व्यक्त हुई है।

---

१ मा० अयो० पृ० ३८३
२ मा० अयो० पृ० ३२२

डर न मोहि जग कहिहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी ॥
जीवन लाहु लखन भल पावा । सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन लागी । झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥
आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ॥[1]

संसार की भी धारणा उनके प्रति बुरी न हो इसकी भी चिन्ता उन्हें पूर्ण रूप से थी।

परिहरि राम सीय जग माहीं । कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ॥[2]

चित्रकूट की सभा के बीच भरत जब अपने हृदय की बात निवेदन करने खड़े होते हैं, तो भ्रातृ स्नेह उमड़ पड़ता है। बाल्यावस्था की बातें नेत्रों के सामने नृत्य करने लगती हैं।

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी । खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ॥[3]

और साथ ही भक्ति भावना और स्नेह भी कितना प्रबल है।

गुर गोसाइँ साहिब सिय राम । लागत मोहि नीक परिनामु ॥[4]

चित्रकूट के संवाद भरत तथा राम के चरित्र की विशेषताओं को और भी अद्भुत रूप से प्रकट कर देते हैं। तुलसी की कला इन सम्वादों में और भी अधिक चमक उठी है।

इन गुणों के साथ भरत अद्भुत विद्वान भी हैं। वशिष्ठ की बुद्धि भी उनके सामने चकरा रही है :—

भरत महा महिमा जलरासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥
गा चह पार जतनु हियँ हेरा । पावति नाव न बोहितु बेरा ॥[5]

आज जिन वशिष्ठ की बुद्धि भरत के सामने चकरा रही है वह महान ज्ञानी हैं। वह विज्ञानी भी हैं राजनीतिज्ञ और राम के गुरु हैं। ऐसे वशिष्ठ की बुद्धि भी जो आज भरत के सामने चकरा रही है इसमें भी भाव है। भरत ने अपनी बुद्धि से लौकिक और पारलौकिक दोनों ही क्षेत्रों में वशिष्ठ को अपनी विज्ञता से परास्त कर

---

१ मा० अयोध्या पृ० ३३६
२ मा० अयो० पृ० ३३६
३ मा० अयो० पृ० ४२०
४ मा० अयो० पृ० ४२०
५ मा० अयो० पृ० ४२७

दिया। भरत की परीक्षा लेने के अभिप्राय से वशिष्ठ ने भरत से कहा कि राम एक उपाय से अवध लौट सकते हैं। वह यह है कि राम और लक्ष्मण की जगह तुम दोनों भाई जंगल चले जाओ।

तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअसीय सहित रघुराई ॥[1]

भरत एकदम बोल पड़े कि गुरुदेव आप तो केवल १४ वर्षों के हेतु जंगल में रहने को कहते हैं मैं तो राम यदि लौट आवें तो यहाँ तक तैयार हूँ।

कानन करौं जनम भरि बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥[2]

भरत की यह असाध्य साधना देख वशिष्ठ विस्मित हो गये। इस प्रकार से लौकिक क्षेत्र में भरत वशिष्ठ से विजयी हुए।

पारलौकिक क्षेत्र में तो भरत की महिमा और बुद्धि और भी सुन्दरता से वशिष्ठ को इस प्रकार पराजित कर रही है। वशिष्ठ भरत से पूछ रहे हैं कि उपाय बतलाओ जिसमें राम को जंगल से लौटा ला पावें।

केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ।
कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ।।[3]

भरत बड़ा ही मार्मिक उत्तर दे रहे हैं।

भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना ॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥
बूझिअ मोहि उपाउ अब तो मोर अभागु ॥[4]

इसमें अब शब्द विचारणीय है क्योंकि यह भाव पूर्ण और कलात्मक है। भरत की कह रहे हैं गुरु जी माता कलंकिनी और विधवा हो गई। पिता मर गये। क्या अब आपके उपाय पूछने से इस क्षति की पूर्ति हो सकेगी।

उपाय तो तब सोचना था जब राम-वनवास की योजना बनाई गई थी। आपने तो ननिहाल में हमें पिता की मृत्यु का समाचार भी नहीं दिया। केवल दूतों से इतना ही कहलाया —

इतना कहेहु भरतसन जाई। गुर बोलाइ पठये दोउ भाई ॥[5]

आज आप मुझसे उपाय पूछते हैं यह मेरा अभाग्य है। उपाय तो आपके हाथ

---

१ मा० अयो० पृ० ४१७
२. मा० अयो० पृ० ४१९
३ मा० अयो० पृ० ४१७
४ मा० अयो० पृ० ४१७
५. मा० अयो० पृ० २११

हाथ । जब हमारे पिता आपसे राम के अभिषेक के लिये आज्ञा लेने आये थे तो आप कह देते कि कल नहीं दो या तीन दिन बाद राम गद्दी पर बैठेंगे।

पहले कैकेयी ने राम को वनवास नहीं अपितु हमारे हेतु गद्दी माँगी थी। ऐसी अवस्था में यह उचित था कि पहले आप मुझे गद्दी देने के हेतु बुला लेते तब राम को जंगल जाने देते। मैं जब राम के जंगल जाने के पूर्व ही आ जाता तो राम कभी भी वन नहीं जा सकते थे। अतः उपाय तो तब आपके हाथ में था। अब उपाय पूछने से क्या लाभ। भरत की इस। न्यायोचित तर्क पूर्ण बुद्धि के समक्ष वशिष्ट जैसे ज्ञानी की बुद्धि चकरा गई और महाकवि ने लिखा।

भरत महा महिमा जलरासी। मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी।।[1]

किसी भी महाप्रतिभाशाली कवि के हेतु यह बायें हाथ का खेल है कि वह जिस वस्तु को भी चाहे जैसा भी रूप अपनी काव्य कला में प्रदान करे। गोस्वामी जी ने उपर्युक्त विवेचन में वशिष्ट के समक्ष जो भरत को इतना महान स्थान प्रदान किया है वही उनकी कला का चमत्कार है। जिस पर हमें गौरव होना चाहिये।

यदि कोई यह जानना चाहता है महाकवि इन दो अमर चरित्रों के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से किस प्रकार से सोचते हैं। तो उसे ध्यान देना होगा साधारण जनता के उन कथनों पर जो भरत के नन्दीग्राम के जीवन की व्याख्या करते समय व्यक्त किये गये हैं।

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बस तप तनु कसहीं॥
दुहुँ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥[2]

इसी में कवि कई गुना ऊँचा राम से भरत को उठा रहे हैं। जिसे हम आप स्पष्ट कर रहे हैं। इन पंक्तियों में कवि ने पहले लखन लिखा तब राम। इसमें भी भाव है। भरत और लक्ष्मण दो स्वेच्छा से तप कर रहे हैं और राम को जंगल में रहने की आज्ञा हुई है।

प्रश्न है कि जब लक्ष्मण और भरत दोनों ही तपस्या करते हैं तब लक्ष्मण को छोड़ भरत की सराहना करने के योग्य क्यों है। लक्ष्मण क्यों नहीं। जरा लक्ष्मण और भरत के तप की तुलना तो करें। तभी यह निश्चय हो सकेगा कि भरत लक्ष्मण के मुकाबले क्यों सराहना के योग्य है। लक्ष्मण राम के रूप के साथ हैं और भरत के पास राम का नाम है और साथ ही रूप भी। इस-प्रकार—

जीह नाम जप लोचन नीरू। पुलक गात हिय सीय रघुबीरू॥[3]

---

१ मा० अयो० पृ० ४१७
२ मा० अयो० पृ० ४६२
३ मा० अयो पृ० ४६२-४६३

रूप से नाम श्रेष्ठ है जिसे महाकवि ने बाल कांड में नाम महात्म्य के प्रकरण में नाम रूप की तुलना स्वीकार करते हुए कहा है।[1]

लक्ष्मण क्या राम भी तप में भरत की समता नहीं कर सकते। क्या राम तो पिता की आज्ञा से तप कर रहे हैं और भरत स्वेच्छा से।

साक्षात् रूप राम के साथ रहने पर भी लक्ष्मण का क्रोध नहीं गया। राम ने उपदेश भी किया—

कोमल मनहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥[2]

लक्ष्मण स्वयं भी इसे इस प्रकार स्वीकार करते हैं—

क्रोध पाप कर मूल।[3]

पर स्वयं क्रोध में आ गये—

धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।[4]

लक्ष्मण क्रोध के आवेश में भरत के हेतु यहाँ तक कह गये—

जैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥[5]

भरत को तो लक्ष्मण मार रहे हैं और भरत उनके प्रति कितना प्यार के शब्द कह रहे हैं।

लालन जोगु लखन लघु लोने।[6]

राम ने भी भरत की इस महत्ता को स्वीकार किया—

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥[7]

यही भरत की महानता भी तभी तुलसी कहते हैं—

सब बिधि भरत सराहन जोगू॥[8]

इसके अतिरिक्त संत और भगवान दोनों की वाणी भरत की महानता को स्वीकार कर रही है। संत वाणी भारद्वाज कहते हैं—

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा॥[9]

भगवान की वाणी—

---

१ मा० अयो० पृ० २१ २५
२ मा० कि० पृ० ५२५
३ मा० बा० पृ० ११२
४ मा० कि० पृ० ५२८
५ मा० अयो० पृ० ४००
६ मा० अयो० पृ० १८०
७ मा० अयो० पृ० ४०१
८ मा० अयो० पृ० ४१२
९ मा० अयो० पृ० ३४६

धौं न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥[1]

संत और भगवान दोनों की ही धारणा भरत के विषय में पुरवासी सुन चुके थे तभी यह कहते हैं कि भरत सभी प्रकार सराहने योग्य हैं। भरत और लक्ष्मण की समता ही क्या। लक्ष्मण तो राम के चरणों की सेवा करते हैं और भरत उनके चरणों की नहीं उनके पादुका की पूजा करते हैं।

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ ॥[2]

एक जगह तो तुलसी की कथा में राम से भी भरत की उपमाओं में ऊँचा उठाने का प्रयास कर दिया है। तुलसी राम व भरत दोनों के ही लिये भौंरे का उदाहरण दे रहे हैं। किन्तु राम को केवल भ्रमर और भरत को चंपा के बाग का भौंरा।

१ राम— निरखि राम मन भवरु न भूला ।[3]
२ भरत— तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा ।
चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥[4]

राम का भंवर इस कारण लिखा। पुष्प पर भौंरा कभी न कभी आकर बैठ ही जाता है। इस प्रकार राम भी १४ वर्ष बाद कभी न कभी इस राज्य रूपी पुष्प पर भ्रमर बन कर बैठेंगे ही। अतएव उनके हेतु तो भौंरे का उदाहरण। किन्तु भरत के लिये चंपा के बाग का भौंरा लिख कर महाकवि यह सूचन करा रहे हैं कि जिस प्रकार चंपा के बाग में भौंरा कभी भी नहीं जाता।[5] उसी प्रकार से भरत कभी भी इस राज्य लक्ष्मी को न लेंगे। इससे भरत की महानता यह है कि जिस राज्य लक्ष्मी का राम ने त्याग कर पुनः ग्रहण किया किन्तु भरत ने कभी भी उसको ग्रहण नहीं किया। अन्त तक भरत की यही भक्ति चलती है। १४ वर्ष बाद हनुमान आकर उन्हें इसी अवस्था में देखते हैं।

---

१ मा० अयो० पृ ४०२
२ मा० अयो० पृ० ५६६
३ मा० बालो० पृ० २६७
४ मा० अयो० पृ० ४६१
५ चंपा में गुण और अवगुण तथा यह भौंरा चंपा के बाग में क्यों नहीं जाता इस पर एक कवि बड़ी सुन्दरता से लिखते हैं—

चंपा तोहि में तीन गुण रूप रंग अरु बास ।
अवगुण तोहि में एक है भ्रमर न आवै पास ॥
चंचल बरनो राधिका भ्रमर कृष्ण कर दास ।
ताते यह आवै नहीं कबहुँ वाके पास ॥

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥[1]

संक्षेप में आधार ग्रंथों से भरत के आदर्श चरित्र में हमारे कवि इस प्रकार से कलात्मक चमत्कार उत्पन्न करते हैं। उनका यह चरित्र कितना हृदयग्राही है यह कहने की आवश्यकता नहीं। मानस के इन भरत में गोस्वामी जी इस प्रकार एक भव्य चरित्र की सृष्टि करते हैं।

हनुमान—

महाकाव्य के हनुमान बलवान तथा समर्थ साहसी वीर, दृढ़ तथा निर्भीक कलाओं एवं विद्याओं में दक्ष तथा विवेकशील जितेन्द्रिय सरल तथा मात्सर्य हीन धार्मिक एवं भावावान गुण संयुक्त एक अत्यन्त स्वार्थ हीन और कर्तव्य परायण सेवक हैं। सदैव स्वामी के कल्याण तथा स्वामी के कार्य के साथ तादात्म्य स्थापित किये हुये दिखलाई पड़ते हैं। 'मानस' में हमारे कवि ने उन्हें दास्य भक्ति के रूप में तथा राम के परम प्रिय सेवक के रूप में स्वीकार किया है। हनुमान को तुलसी ने शंकर का अवतार माना है। इसकी चर्चा उन्होंने बार-बार की है।

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्र देह तजि नेह बस बानर भो हनुमान ॥[2]

हनुमान जी राम के परम प्रिय थे। ऐसे वैसे नहीं मानस में राम स्वयं ही कहते हैं।

सुनु कपि जिय जनि मानेसि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥[3]

अर्थात् राम यह कह रहे हैं कि हे कपि तुम अपना मन छोटा न करो क्योंकि तुम मुझे लक्ष्मण से दून प्रिय हो। लोग इसमें शंका करते हैं कि क्या राम लक्ष्मण से दूना हनुमान को चाहते हैं। कुछ विद्वानों ने इसका समाधान इस प्रकार किया है कि तुम व लक्ष्मण मेरे लिये दो नहीं हो। यह अर्थ शब्द का अध्याहार करके किया गया है। जो सर्वथा अप्रामाणिक है प्रामाणिक नहीं। वास्तव में हनुमान जी से राम यही कहते हैं कि तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्रिय हो जो सत्य भी है, कुछ निम्न लिखित प्रामाणिक तथ्य भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनके आधार पर यह बात सिद्ध की जा सकती है।

१—लक्ष्मण ने भक्ति-रूपा जानकी को खो दिया। यदि यह राम के कहे अनुसार :—

---

१ मा० उत्तर पृ० ६८९

२ दोहावली—दोहा १४२—पृ० ६६

३ मा० कि० पृ० ३१५

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥[१]

सेवा की रक्षा करते और सीता के कहने से न जाते तो सीताहरण न होता लक्ष्मण के कारण जो जानकी दूरस्थ हुईं हुआ पर फिर इस जानकी की खबर लाने वाले यही हनुमान जी थे। इसीलिये राम हनुमान से कहते हैं।

तै मम प्रिय लछिमन ते दूना।

२—प्रश्न है दूना ही प्रिय क्यों कहा। भाव है शक्ति तथा जानकी का विरहावस्था भी लक्ष्मण के द्वारा ही अन्तिम समय में हुआ पर फिर दोबारा भी जानकी को राम से मिलाने वाले यही हनुमान जी थे। क्योंकि यदि रण युद्ध के समय में उनके द्वारा संग कर जानकी के पास हनुमान न जाते तो राम का सीता से पुनर्मिलन न होता। अर्थात् प्रेम रूपी जानकी को दो बार राम से वियुक्त कराने वाले लक्ष्मण थे और दोनों बार उन्हें पुनः राम से मिलाने वाले हनुमान ही थे। इसीलिये राम हनुमान से कहते हैं कि हे कपि! तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्रिय हो।

३—अभिप्राय भाव तो अत्यन्त सुन्दर है। कारण भी सुन्दर ही मौजूद है। हनुमान के लक्ष्मण से दूने प्रिय होने का। शंकर का आभूषण है सर्प और हनुमान को तुलसी ने शंकर का अवतार माना है। सर्प का अवतार है लक्ष्मण स्वभावतः आभूषण से उस वस्तु की महत्ता अधिक होती है जो उसे धारण करता है। राम यही जानकर हनुमान को ये कहते हैं कि शङ्कर के अवतार हो और लक्ष्मण शेष। वह सर्प के रूप में तुम्हारा आभूषण है। इसीलिये स्वभावतः ही तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्रिय हो। यही गोस्वामी जी की चरित्र चित्रण के अन्तर्गत शब्दों में कलात्मकता। जिसमें एक चौपाई में कितने सुन्दर भाव गुंथे हैं। सभी विस्मय रहे हैं।

हनुमान जी वास्तव में राम के परम प्रिय सेवक थे। तभी तो लिखा कि वह राम जिन्हें जनक देखते हैं तो :—

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू।[२]

और यहाँ राम जब हनुमान को देखते हैं तो कैसी सुन्दरता से तुलसी उन्हीं शब्दों में हनुमान की महानता व्यंजित करते हैं।

पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥[३]

जरा दोनों ही उदाहरणों में शब्दों का साम्य देखिये। इससे गोस्वामी जी का शब्दों पर असीमित अधिकार था। इसका भी प्रमाण मिल जाता है। जनक और हनुमान के प्रकरण में एक ही शब्दों में 'पुनि' पुनि की आवृत्ति गोस्वामीजी की सूक्ष्म कलात्मक दृष्टि की सूचक है।

---

१ मा० अरण्य० पृ० ४६९
२ मा० बा० पृ० १३३
३ मा० सु० पृ० ५६२

अब पूरा हनुमान की वीरता पर विचार कर लें तुलसी लिखते हैं —

जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।[1]

टीकाकारों ने इस पंक्ति का अर्थ किया कि जिसके हृदय रूपी आगार में राम धनुष बाण धारण करके निवास करते हैं। पर ऐसी बात नहीं। महाकवि ने मानस के प्रारम्भ में लिखा है।

ध्वनि अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।।[2]

अतः उक्त पंक्ति अवरेब-काव्य के अन्तर्गत आती है। अवरेब काव्य की परिभाषा है कि जो वाक्य सीधे अर्थ से वास्तविक अर्थ की अभिव्यक्ति न करे वक्रता लाने पर ही जिसका अर्थ लिया जा सके। इसीलिए यह पर सब का अर्थ धारण करना नहीं है अपितु अर्थ है जिसके हृदय रूपी आगार में राम धनुष बाण अलग रख कर निवास करते हैं। ऐसा इसी हेतु है क्योंकि राम को स्वयं हनुमान जी की वीरता पर इतना बड़ा भरोसा है कि जब राम अन्य भक्तों के हृदय में निवास करते तो धनुष बाण धारण करके। पर जब हनुमान के हृदय में धनुष बाण धारण करने का प्रश्न आता है तो वह धनुष बाण को अलग धर कर उनके हृदय में निवास करते हैं। वास्तव में हनुमान की वीरता इतनी ही बड़ी चढ़ी थी। गोस्वामी हनुमान की वीरता के कुछ स्थल प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

१—कवितावली में हनुमान की वीरता के हेतु स्वयं तुलसी कहते हैं —

मारुत नंदन मारुत को मन को खगराज को वेग लजायो।[3]

२—मानस में सुन्दर कांड के प्रारम्भ में हनुमान जी को गोस्वामी जी बल का धाम बतलाते हुए कहते हैं।

अतुलितबलधामं स्वर्ण शैलाभदेहम्।[4]

३—जब युद्ध में रावण ने अमर राक्षस छोड़ जिनका विजय करना राम के हेतु भी दुर्लभ था उस समय हनुमान की वीरता का वर्णन तुलसी के ही मुख से सुनिये।

जे रजनीचर वीर विसाल करास बिलोकत काल न खाये।

ते रन रीर कपीस किसोर बड़े बरजोर परे फग पाये।।

लूम लपेटि अकास निहारि कै हांकि हटी हनुमान चलाये।।

सूखि कै गात चले नभ जात परे भ्रम बात न भूतल आये।।[5]

४—गोस्वामी जी ने परम आराध्य राम के ही मुख से हनुमान जी की वीरता का वर्णन सुनिये।

---

१ मा० बा० पृ० १८

२ मा० बा० पृ० १४

३ कवितावली लंका कांड छं० सं० २४ पृ० १६२

४ मा० सु० पृ० ७३६

५. कवितावली लंका कांड छं० सं० ३७ पृ० १६१ १६२

हाथिन सों हाथी मारे घोरे घोरे सों सँहारे।
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें।
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की।
बार बार सेवक सराहना करत राम।
तुलसी सराहै रीति साहब सुजान की।
लाम्बी लूम लसत लपेटि पटकत भट।
देखो देखो लखन लरनि हनुमान की॥[1]

इसे पढ़ते ही हनुमान की वीरता का चित्र पाठक के सामने सजीव हो उठता है। यही तुलसी के चित्रण की कला है।

गीतावली में राम जो परम वीर हैं वे तो यह कहते हैं :—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।[2]

पर उसी समय हनुमान के द्वारा वीरता से भरे वचन सुनिये :—

जो हौं अब अनुसासन पावौं।
तो चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं।
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं।
बिबुध बैद बरबस गहि आनौं तो प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यों सबहि को पापु बहावौं॥[3]

हनुमान पर तुलसी की अटूट श्रद्धा थी। राम भी हनुमान के ऋणी थे।

मानस के हनुमान में हमें सेवक सेव्य भाव का पूर्ण स्वरूप मिलता है बिना किसी पूर्व परिचय के राम का देखते ही उनके शील स्वभाव पर मुग्ध हो आत्म सम र्पण करने वाले हनुमान ही थे। इसी राम भक्ति के प्रभाव से वे सब राम भक्तों की भक्ति के अधिकारी हुये। सेवक में तो जो गुण अपेक्षित हैं वे सभी हनुमान में थे। सबसे प्रथम विशेषता यह है कि हनुमान प्रत्येक क्षण राम का प्रत्येक कार्य करने को प्रस्तुत रहते थे। समुद्र के किनारे एक बार जब वानर समुद्र पार करने की चिन्ता कर ही रहे थे कि वे समुद्र पार कर गये। लक्ष्मण को शक्ति लगी तब वैद्य भी हनुमान ही लाये और औषधि लेने भी वही गये। सेवक को अमानी चाहिये। अशोक वाटिका से पकड़ कर जब राक्षस उन्हें रावण के सामने ले जाते हैं इस पर उन्हें क्रोध नहीं आया। अंगद की भांति वे —

---

१ कवितावली लंका कांड छं० सं० ८० पृ० १६१ १६२
२ गीतावली लंका कांड छं० सं० ७ पृ० ३११
३ गीतावली लंका कांड छं० सं० ८ पृ० ३११

है तब दसन तोरिबे लायक।[1]

नहीं करते। ऐसा करने से प्रभु के कार्य में हानि हो सकती थी। अपने मान का ध्यान करके अपने स्वामी का काम बिगाड़ना उनका काम नहीं था। वे रावण से साफ कहते हैं।

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु काजा।।[2]

यह है हनुमान की स्वामि भक्ति। वास्तव में हनुमान राम के सबसे बड़े कार्य साधक थे। राम स्वयं कहते हैं:—

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।
सुनु कपि तोहि उरिन मैं नाहीं। करि बिचार देखेउँ मन माहीं।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।[3]

राम का भी अपने समक्ष नत मस्तक करा देने वाले हनुमान ही थे। निश्चय है हनुमान जी के चरित्र का जिस सफलता के साथ गोस्वामी जी ने अंकन किया है। वह उनकी कला की अद्भुत पूर्ण सफलता है। इस चरित्र में गोस्वामी जी ने राम को हनुमान जी का ऋणी बनाकर हनुमान के चरित्र में अद्भुत कलात्मक चमत्कार की सृष्टि की है।

कौशिल्या—

आधार ग्रन्थों की कौशिल्या में हम पति द्वारा उचित सम्मान से वंचिता रहते हुए क्षीण काया जिस ममता पर क्षमा त्याग और धीरता और पति परायण नारी का चित्र पाते हैं। जो अपने निर्वासित पुत्र के वियोग में अपने अन्दर और भी सद्गुणों का विकास करती है। हमारे कवि मानस में इस चरित्र को अपनाकर एक विशेष प्रकार से उत्कर्ष प्रदान करते हैं। 'वाल्मीकीय रामायण' में जहाँ भरत शपथ खाकर ही कौशिल्या को संतुष्ट कर पाते हैं वहाँ तुलसी की कौशिल्या में कहीं कोई भी ऐसा साधन दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी में कौशिल्या का चरित्र अधिक उज्ज्वल रहा है। यही गोस्वामी जी की कला भी है और या 'वाल्मीकीय की रामायण' की कौशिल्या भी कहती है।

यथैव राजा प्रजयस्ते गौरवेण
तथाहं माहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम्।
यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।।
अहं प्राय मिहासे मिष्ये न च शक्ष्यामि जीवितुम्।

---

१ मा० लं० पृ० ६०८
२ मा० सु० पृ० ५५५
३ मा० सु० पृ० ५६२

तत्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोक विश्रुतम् ॥
ब्रह्महत्यामिवासह्यमति समुद्रः सरितांपतिः ।[1]

'अध्यात्म रामायण' की कौसिल्या कहती है—

पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका ततः ।
पित्राज्ञप्तो वनं गन्तु वारयेयमहं सुतम् ॥
तदा प्राणान् परित्यज्य गच्छामि यम सदनम् ॥[2]

परन्तु मानस की कौसिल्या कहती है—

जो केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेवी ॥[3]

इन रामायणों में कौसिल्या देवी अपने मातृत्व का अधिकार स्थापित करके और आत्म हत्या का भय दिखलाकर राम को पितृ आज्ञा से विमुख करने का प्रयत्न करती हैं। बाल्मीकीय की कौसिल्या तो एक कदम आगे बढ़ गई हैं। वह राम को घोर नर्क में भी डालने को प्रस्तुत हो जाती हैं। राम की माता समझ कर लोग उनका आदर करेंगे ही। पर इन दोनों ही रामायणों की कौसिल्या को कोई प्रेम नहीं कर सकता। परन्तु लोक मयांद के हनु गोस्वामी जी का यह कौसिल्या देवी चाहती हैं जो राम में और अपने सब अधिकार कैकेयी के चरणों में शान्ति और स्वेच्छा से अर्पित कर दें और स्वयं भरत की भी माता बन जायें। भला ऐसा चरित्र विश्व के साहित्य में कहाँ मिलेगा जो अपने पुत्र की ही भाँति सबके पुत्र से प्यार करें। इसमें भी गोस्वामी जी की कला का चमत्कार है।

तुलसी की कौसिल्या कर्त्तव्य परायण विवेक को सूक्ष्म भावना को प्रदर्शित करने वाली हैं। पुत्र के निर्वासन का कारण बतलाया जाता है तो वे विषम असमंजस में पड़ जाती हैं। एक ओर कर्त्तव्य और दूसरी ओर मातृ स्नेह उन्हें व्यथित करने लगता है। पर कर्त्तव्य की विजय होती है। राम को इस समय का उनका दिया हुआ उपदेश विवेक सम्पन्न बुद्धि कर्त्तव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ पर गोस्वामी जी ने कौसिल्या को एक कर्त्तव्य परायण नारी के रूप में चित्रित किया है। वह राम को इस प्रकार कैसा कर्त्तव्य से भरा हुआ उत्तर देती हैं।

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौं कानन सत अवध समाना ॥[4]

---

1 बाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड सर्ग २१ श्लोक २८
2 अध्यात्म रामायण—अयोध्या कांड सर्ग ४ श्लोक ११
3 मा० अयो० कांड पृ० २८८ २८६
4 मा० अयो पृ २८८

कौशिल्या के रूप का चयन करा कर गोस्वामी जी ने भारतीय नारी समाज में उदारता का एक रूप खड़ा कर दिया है। जिसे पढ़ते ही पाठक में सहज ही कौशिल्या के प्रति आदर भावना का उदय हो जाता है। ऐसे ही प्रसंग हैं जिनमें गोस्वामी जी की कला का उज्ज्वल रूप देखने को मिलता है।

कौशिल्या के दयालु हृदय का परिचय उस समय मिलता है जब भरत के आने पर वह सभा के बीच में उन्हें राज्य करने का उपदेश देती है। आगे वह अपने करुण स्वभाव के ही कारण भरत को अपना ही पुत्र समझ कर हठात पैदल चलने से रोकती है। चित्रकूट में वे एक विलक्षण आकृति उत्पन्न करती हैं। कथा का कोई भी पात्र इतनी बुद्धिमत्ता पर आंतरिक अनुभूति के साथ नहीं बोलता। जितना कौशिल्या। जब वह सीता की माता से कहती हैं।

देवि मोह बस सोचिय बादी। विधि प्रपंचु अस अचल अनादी ॥[1]

यह वास्तव में राम की आदर्श माता है। कौशिल्या भरत को राम की ही भांति प्यार करती है। उनका व्यवहार भी जो राम के साथ होता है वही भरत के साथ नीचे देखिये। जब राम और भरत मिलने आये तो दोनों को ही कौशिल्या ने गोद में बैठाया।

भरत— माता भरत गोद बैठारे।[2]

और राम का भी भरत के ही समान—

गोद राखि पुनि हृदय लगाये ॥[3]

राम को कौशिल्या ने बच्छ कह कर [illegible]

कहहु बच्छ कहँ तात कहि रघुपति रघुबर नाम।

भरत के ननिहाल से आने पर माता इसी शब्द से इन्हें भी सम्बोधित करती है।

कहहु बच्छ बलि आरज पाहू।[5]

राम को माता ने वन जाते समय जब गोद में बैठाया तब तो उनके स्तनों में वात्सल्य से दूध बहने लगा था।

गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये ॥[6]

और जब भरत को कौशिल्या ने गोद में लिया था उस समय उनकी भी यही अवस्था हो गई।

---

१ मा० अयो० पृ० ४१४
२ मा० अयो० पृ० १२८
३ मा० अयो० पृ० २८६
४ मा अयो० प० २६६
५ मा० अयो० पृ० १२८
६ मा० अयो० पृ० १८६

माता भरत गोद बैठारे। धन धन अवधहि मगन मन भाये ॥[1]

यह तो राम की माता का ही आदर्श है कि वह अपनी सवत के पुत्र को अपने पुत्र के बराबर मान रही है। जिसके कारण उनका निर्दोष पुत्र निर्वासित किया गया। यही है कौशिल्या के चरित्र चित्रण में गोस्वामी जी की कला। जिसमें भरत और अपने दोनों पुत्रों के साथ एक ही व्यवहार किया जा रहा है। ऐसा आदर्श कदा चित ही कहीं देखने को मिले।

गीतावली में उपयुक्त कोटि के उदाहरणों का काफी अभाव है। पर इसमें इसकी पूर्ति एक अन्य प्रकार से हुई है। उसमें मातृ पक्ष का सुन्दर और मौलिक विकास हुआ है। यहाँ पर कौशिल्या का चित्रण एक स्नेहमयी माता के रूप में हुआ है। मानस में चरित्र के इस पक्ष का विकास नहीं हुआ है। इसी हेतु गीतावली का यह चरित्र निश्चय ही महत्वपूर्ण और कलात्मक है।

सुमित्रा—

आचार्य शुक्ल जी की सुमित्रा कथा में एक अत्यन्त उपेक्षित और दीन जीवन व्यतीत करती हैं। वे अपने पुत्र को सपत्नी के पुत्र के साथ भेजती हैं। किन्तु हमारे कवि उनके चरित्र की उदारता मात्र से संतुष्ट न होकर उसमें एक आध्यात्मिकता का विकास करते हैं यही उनकी कलात्मकता है।

यह वीर शत्रुघ्न की माता हैं। वे लक्ष्मण को राम के साथ वन जाने का उपदेश देती हुई कहती हैं।

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥[2]
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।

यह है आदर्श सुमित्रा। जो परम सुशीला गुणवती उपकारी और पतिव्रता है। जिनका लक्ष्मण को यह उपदेश उनकी त्याग भावना का सजीव चित्रण है। यह तो कौशिल्या से भी बहुत आगे बढ़ गई हैं। क्योंकि कौशिल्या धर्म के पालनार्थ माता तो राम को वन जाने की दे देती हैं। किन्तु उनका हृदय राम को विदा करते समय महान वेदना से भर जाता है। जो उनके इस कथन से प्रकट होता है।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके ॥[3]

इसके ठीक विपरीत सुमित्रा एक कर्त्तव्य शीला और त्याग की प्रतिमा के रूप में कितने धैर्य के साथ उपयुक्त उपदेश देती हैं। यह उनके उक्त कथन से पता

१ मा० अयो० पृ० १९९
२ मा० अयो० पृ० २९९–३००
३ मा० अयो० पृ० २८७

भाँति प्रकट हो जाता है। इस प्रकरण में उनकी त्याग और कर्त्तव्य परायणता मुखर हो उठी है। यही तो तुलसी की कलात्मकता है जिसके कारण यह कहा जाता है कि गोस्वामी जी के पात्र काठ के टुकड़े नहीं जो कवि द्वारा गढ़ कर खड़े कर दिये जायें। वरन् वे सजीव हैं।

गीतावली में कवि इन्हें एक वीर माता के रूप में चित्रित करते हैं। जो दूसरे पुत्र शत्रुघ्न को भी रणक्षेत्र में जाने का उपदेश करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। गीतावली में हमारे कवि सम्राट ने जो एक वीर माता के चित्रण में सजीवता उत्पन्न की है वही उक्त प्रकरण की कलात्मकता है।

लक्ष्मण—

लक्ष्मण में राम और भरत दोनों ही चरित्रों से कुछ मौलिक अन्तर है। यद्यपि वे इन दोनों की ही भाँति दृढ़ और निर्भय, उत्साही निश्चय निष्ठ और निष्कपट हैं। किन्तु इन चरित्रों की विनम्रता गम्भीरता संकोच शीलता दृष्टिकोण की व्यापकता तथा समाधीनता आदि कुछ भी इन चरित्रों के समान नहीं है। वे निडर उत्साही साहसी स्पष्टवादी और तुरन्त कर्म करने वालों में हैं। वे वचनों की अपेक्षा करनी में अधिक विश्वास रखते हैं। राम के लिए वह एक मित्र और सेवक की भाँति हैं। यही उनके चरित्र की सुन्दरता है। महत्वाकांक्षा से हीन लक्ष्मण राम में अपने व्यक्तित्व की भावना को इस प्रकार मलहित किये हैं कि उनकी समता का और कोई चरित्र ही नहीं मिलता। तुलसी ने इस चरित्र को लेकर ही उसे स्वाभाविक कलात्मकता से चित्रित करने का प्रयास किया है और यहाँ उन्हें अन्य कवियों की अपेक्षा सफलता भी मिलती है।

लक्ष्मण की उग्रता को वाल्मी तथा गोस्वामी जी ने की है। उन्हें मर्यादा से बाहर जाना प्रिय नहीं था। लक्ष्मण पिता के पास सुमन्त द्वारा यह सन्देश भेजते हैं।

अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये।[1]

अर्थात् हम महाराज में पिता होने का कोई भी लक्षण नहीं देखते। गोस्वामी जी ने इस प्रकार लिखा :—

पुनि कछु लखन कही कटु बानी।[2]

सुमन्त पहुँचा कर राजा से लक्ष्मण की कही बात इस प्रकार कहते हैं :—

पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी।।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिय जनि जाई।।[3]

यहाँ पर गोस्वामी जी ने लक्ष्मण की कही बात को छिपाने पूर्ण और मर्यादित रूप में कह दिया यही उनकी कला है।

---

१ वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या कांड—सर्ग ३

२. मा० अयो० पृ० ११८

३ मा० अयो० पृ० ११४

सम्पूर्ण कथा में जहाँ कहीं भी राम के अपमान का प्रश्न आया लक्ष्मण तुरन्त आवेश में आ गए। मिथिला की राज सभा में जैसे ही जनक के मुँह से —

बीर बिहीन मही मैं जानी।[1]

जो बात सुनते हैं अपने नहीं राम के अपमान से लक्ष्मण क्रोध से भड़क उठे। और वे कहने लगे।

कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी।
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥[2]

इसमें लक्ष्मण का अटूट भ्रातृ प्रेम व्यक्त हुआ है। यहाँ पर ध्यातव्य बात यह है कि क्रोध में भी गोस्वामी जी लक्ष्मण को मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करने देते। अस्तु इस प्रकरण में 'धावौं' शब्द बड़ा कलात्मक और भाव पूर्ण है। इसमें भाव यह है कि लक्ष्मण कहते हैं कि धनुष तोड़ कर सीता से विवाह करने की आज्ञा मैं नहीं चाहता। बल्कि मैं तो केवल खिलवाड़ करने की यह आज्ञा चाहता हूँ। यही है गोस्वामी जी की कला जो क्रोध में भी पूर्णरूपेण मर्यादा की रक्षा की जा रही है। इसके आगे वह राम के जंगल जाते समय —

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥[3]

कह कर वह आत्म समर्पण करते हैं। यह भी गोस्वामी जी की कला में भ्रातृ प्रेम के अन्तर्गत चमत्कार उत्पन्न कर देने के हेतु पर्याप्त है। आगे राम के राज्य न मिलने से क्षुभित हो वे सुमन्त के द्वारा पिता तक को कटु शब्द कहला देते हैं। जिसका उल्लेख गोस्वामी जी ने नहीं किया। इससे मर्यादा की भी अवहेलना नहीं हुई और साथ ही उन्हें गोस्वामी जी ने उच्छृङ्खल होने से भी बचा लिया जिसे हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं। इससे भी गोस्वामी जी की कला में उदारता आई है। आगे वह राम के ही कारण भरत व शत्रुघ्न के प्रति भी चित्रकूट में कुपित हो जाते हैं और अन्त में मार डालने की भी कह देते हैं। उनकी समुद्र को सुखा देने की सम्मति राम को देना भी उनके इस उत्साही स्वभाव की द्योतक है। लक्ष्मण प्रत्येक परिस्थिति में राम के साथ रहे इस कारण उनके चरित्र का बड़ा महत्व है। वह महान वीर भी थे। जो

---

१ मा० बाल० पृ० १७९
२ मा० बाल पृ० १७६ १७७
३ मा० अयो० पृ २६८

भगवान के वध से स्पष्ट है। लक्ष्मण की उग्रता ऐसी न थी जो क्षमा व करुणा पर भी कोमलता न आने दे। सीताजी को जब वाल्मीकीय आश्रम पर छोड़ने गये तब वह करुणा के भाव में मग्न थे। लक्ष्मण एक आदर्श भाई सेवक और आज्ञाकारिता के आदर्श थे। इस चरित्र को गोस्वामी जी ने बड़ी ही विचित्रता से प्रस्तुत किया है। यही उनकी कलात्मकता है। वह यह कि उन्होंने लक्ष्मण और राम के चरित्रों को लाकर एक में इतना अधिक मिला दिया है कि वे दोनों एक दूसरे का योग मात्र बन कर रह गये हैं जिसका प्रारम्भ में ही गोस्वामी जी ने संकेत किया है।

रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका[1]

ऐसे चरित्र चित्रण में गोस्वामी जी की कला भी सफल हो गयी है।

तामसी अथवा चमत्कारी चरित्र

रावण—

रावण के चरित्र में एक प्रवृत्ति की प्रमुखता है। रावण का चरित्र आदर्शवादी नहीं अपितु वस्तुवादी, सत्यवादी नहीं वरन् मिथ्यावादी कल्पनावादी नहीं प्रत्यक्षवादी निराशावादी नहीं वरन् आशावादी और संघर्षवादी का है। रावण के दस सिर और बीस भुजा थी उसमें अपरिमित शक्ति थी यही आदि काव्य के रावण का स्वरूप था।

दक्षिण के ऋषियों के दुःख से द्रवीभूत हो राम राक्षस समूह को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। शूपनखा को नकटी व कनकटी देख कर रावण क्रुद्ध हो जाता है। और वह राम की रानी को चुराकर इसका बदला लेता है। आदि कवि इस प्रकार आध्यात्मिकता का समावेश करते हैं कि रावण को राम के अवतार का पता था। और वह जानता था कि राक्षस के तमोगुणी शरीर से मोक्ष प्राप्ति के हेतु कोई भी साधन सम्भव नहीं है। फलतः इसके हेतु राम के हाथों से प्राण त्यागने के अतिरिक्त कोई भी मार्ग नहीं था। अतः राम के हाथ से प्राण त्यागने के अभिप्राय से ही रावण ने सीता का अपहरण किया था। तुलसी रावण के इसी रूप को लेकर अपनी भावना के अनुकूल रावण का चित्रण करते हैं।

जिस प्रकार राम राम थे उसी प्रकार रावण रावण था। वह भगवान को भी ललकारने वालों में से था। जिसकी ललकार पर ब्रह्मा को भी आना पड़ा। बाल काण्ड में गोस्वामी जी ने उनके उग्र अत्याचारों का वर्णन करके राम का अवतार होना कहा है। वह राक्षसों का सरदार था जो गौएं उजाड़ते और खेती बताते थे चौपाये नष्ट कर देते थे मुनियों को यज्ञादि भी नहीं करने देते थे। किसी की भी कोई अच्छी चीज देखते तो ले जाते थे। जिनकी खाई हुई हड्डियों से दक्षिण का वन भरा था। रावण में सहिष्णुता नहीं थी वह बड़ा भारी तपस्वी था। यहाँ तक कि

---

[1] मा० बा० दृ० १८

उसने शंकर की पूजा में अपने सर तक काट कर शंकर को अर्पित कर दिये । इस पर गोस्वामी जी ने रावण के हेतु लिखा ।

कर सरोज सिर करषि उतारी । पूज्येहु अमित बार त्रिपुरारी ।

इससे रावण की भक्ति भावना का सजीव चित्र खड़ा हो जाता है । हम सोचने लगते हैं कि वह रावण जो अपने हाथों से सर काट कर शंकर को चढ़ा सकता था वह सबल कितना था और वह रावण कितना बड़ा भक्त होगा और सहज ही हम रावण को एक भक्त मान लेने को प्रस्तुत हो जाते हैं । गोस्वामी जी की कला का यही चमत्कार है जहाँ एक ओर हम रावण को सीता हरण करते देख घृणा से भर जाते हैं वहाँ दूसरी ओर उस की उपयुक्त भक्ति भावना से भरा स्वरूप देख श्रद्धा से विनत हो जाते हैं ।

उसकी वीरता में भी कोई सन्देह नहीं । परिवार के सभी व्यक्तियों के मारे जाने के उपरान्त भी वह उत्साह से बढ़ता है । रावण पण्डित था विद्वान था, उसने वेदों पर भाष्य किया था । उसने अपने गुणों का सदुपयोग किया ।

तुलसी का रावण इन बातों के साथ भक्त भी था । वह सीता के हरने के पूर्व अकेले में विचार कर रहा है । देखिये सीता हरण जैसे कृत्य में भी उसकी कितनी भक्ति भावना है ।

खर दूषन मोहि सम बलवंता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ।
सुर रंजन भंजन महि भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥
होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥[1]

आगे जब सीता हरण करता है तो भी उसकी यह भक्ति भावना खण्डित नहीं होती । सीता तो उसे कटु वचन कहती हैं ।

कह सीता सुनु जती गोसाईं । बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ।
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा । आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ।[2]

किन्तु रावण सीता के इन कटु शब्दों का उत्तर न दे इसके विपरीत रावण जानकी का हरण करने से पूर्व उन को माता महामाया समझ कर उनके चरणों की वन्दना करता है ।

मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥[3]

रावण जब हरण करता है तब जानकी को वह मातृ भाव से ही रथ पर

---

१ मा० अरण्य पृ० ४८६
२ मा० अरो० पृ० ४६४
३ मा० अरण्य० पृ ४६४

बैठाल देता है। तुलसी ने इस स्थल पर जरा सा भी इस बात का उल्लेख नहीं किया कि रावण ने रथ पर बैठालते समय उसका स्पर्श किया —

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ॥[1]

इसके अनन्तर रावण जानकी को लेकर अपने महल में न टिका पवित्र अशोक वाटिका में टिकाता है। तुलसी का रावण भक्त नहीं परम भक्त है। पुष्प वाटिका में जाकर वह जानकी से कहता है।

एक बार बिलोकु मम ओरा।[2]

कुछ लोगों की धारणा है कि रावण जानकी की प्रेम दृष्टि चाहता है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं वह चाहता है। जानकी की मातृ दृष्टि से कृपा चाहता है। वह जानकी से कहता है कि यदि आप मातृ दृष्टि से कृपा कर दें तो फिर मैं देखूँगा कि राम शत्रु होकर भी मुझे कैसे विजय कर सकेंगे। क्योंकि आप शक्ति हैं आपकी शक्ति की प्राप्ति के बाद मैं अजय हो जाऊँगा। दूसरे यह ब्राह्म मुहूर्त का समय जबकि वह जानकी से ऐसी प्रार्थना करता है। प्रातः का है जो प्रेम का समय है ही नहीं यह तो देवी की पूजा का समय है। अतः इस समय का जाना भी रावण का जानकी के प्रति पूज्य भावना को अभिव्यक्त करता है। इस पूज्य भावना के साथ ही वह जानकी को मारने चलता है।

काटिहौं तव सिर कठिन कृपाना।[3]

और मंदोदरी के रोक देने से रुक जाता है। इसमें भी भाव है। रावण परम विद्वान है। वह अपनी भविष्य की बात को जानता है कि मेरी मृत्यु होगी। वह यह भी जानता है कि मेरी मृत्यु के बाद लंका में विभीषण का राज्य होगा। हो सकता है मेरी मृत्यु के बाद मेरी स्त्रियों पर भी राम के द्वारा अत्याचार हो। अतएव आज के मंदोदरी के कहने से सीता के मारने से निवृत्त होने में भी उसकी राजनीति है। वह यह कि जब मेरी मृत्यु के बाद मेरी स्त्रियों पर अत्याचार होगा तो जानकी भी यह अवश्य कहेंगी कि रावण की तलवार के नीचे से बचाने वाली उसकी स्त्री मंदोदरी है। अतएव रावण की स्त्रियों पर अत्याचार न किया जायेगा। रावण की यह भक्ति भावना अन्त तक गुप्त रूप से चलती है। अपने जीवन में उसने राम के लिये सदैव ही तपसी शब्द का प्रयोग किया।

लघु तापस कर बाण बिलासा।[4]

× × ×

---

१ मा० अरण्य० पृ० ४२४
२ मा० सु० पृ० ५४९
३ मा० सु० पृ० ५४९
४ मा० सु० पृ० ५७१

जे मद मोहेहु बहुत या ही। सुनु तापस मैं तन सब माही॥[1]

किन्तु मरते समय उसने बड़ी ही चतुरता से मोक्ष पाने के उद्देश्य से उसने नहीं राम कह कर पुकारा।

मरती बेर घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतौं प्रचारी॥[2]

अन्त में राम ने उसके तेज को अपने मुख में लेकर उसे मन इच्छित मोक्ष प्रदान की—

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥[3]

वास्तव में रावण का चरित्र एक ऐसा चरित्र है जो राम को भी रामत्व प्रदान करने वाला था। रावण के ही कारण आज हम राम की महत्ता का मान करते हैं और साथ ही में गोस्वामी जी ने इसे अपनी कथा के माध्यम से ऐसा चित्रित किया है जो अन्त में हमारी सहानुभूति का विषय बन जाता है। जहाँ आदि कवि ने रावण के चित्रण में सीता हरण के समय यहाँ तक लिखा कि उसने सीता के बाल पकड़ कर घसीटा था और उनका मूल रावण के दंड में था वहाँ गोस्वामी जी ने इसे कितने मर्यादित ढंग से सुन्दर कलात्मक उक्तियों के द्वारा अभिव्यक्त किया है जिसे पढ़ कर हम वाल्मीकि के रावण को एक दम विस्मृत कर देते हैं। और तुलसी के रावण की भक्ति भावना ही हमारे सामने शेष रह जाती है। यही गोस्वामी जी की कला का चमत्कार तथा उसका प्रवाह तथा उदात्तता है।

सामान्य चरित्र चित्रण

दशरथ—

यह एक वृद्ध से प्राकृत चरित्र हैं। यह एक राष्ट्र के अधिपति हैं। इनमें राम के प्रति यथार्थ भक्ति और प्रेम है। इसके साथ ही साथ वे अपने वचन पालने में भी बड़े दृढ़ हैं। 'वाल्मीकीय रामायण' के दशरथ कहते हैं।

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥[4]

'अध्यात्म रामायण' के दशरथ कहते हैं।

स्त्रीजितं भ्रान्त हृदयं उन्मार्ग परिवर्तिनम्।
निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पाप न विद्यते।
एवं चेदनृतं नैव मामस्पृशेद्रघूत्तम।[5]

---

१ मा० सं० पृ० ६२७
२ मा० सं० पृ० ६६७
३ मा० सं० पृ० ६६७
४ वाल्मीकीय रामायण—अयोध्या कांड—सर्ग—३४—श्लोक २६
५ अध्यात्म रामायण—अयोध्या कांड—सर्ग ३—श्लोक ६६

और 'मानस' के दशरथ भी कहते हैं —

सुनि सनेह बस उठि नरनाहां।
बैठारे रघुपति गहि बाहां।।
और करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु।।[1]

ऊपर के दोनों दशरथों का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर देख पड़ेगा कि उनका सत्य प्रेम पुत्र प्रेम के सामने लज्जित हो गया है। किन्तु गोस्वामी जी के दशरथ में मन सच्चा सत्य प्रियता पिता पुत्र की मर्यादा राम के प्रति आदर और प्रेम कैकेयी से चिढ़ जाने आदि के भाव कैसी मनोहर रीति से दिखलाए गए हैं जो उनकी कथा में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। यह सत्य और प्रेम दोनों की ही एक साथ रक्षा करने वाले थे। वे राम को वनवास देने में सत्य और प्रतिज्ञा का पालन हृदय पर पत्थर रखकर उमड़ते हुये स्नेह और वात्सल्य भाव को दबाकर करते हुए पाये जाते हैं। इसके उपरान्त हम उन्हें स्नेह के निर्वाह में तत्पर और प्रेम की पराकाष्ठा के चरम उत्कर्ष में उस समय पाते हैं जब कि वे कहते हैं —

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते।।[2]

सत्य की रक्षा उन्होंने प्रिय पुत्र को वनवास देकर और स्नेह की रक्षा प्राण देकर की। यही उनके जीवन का महत्त्व और चरित्र की विशेषता है। रामचन्द्र जी भरत को समझाते हुए इस विषय को और भी स्पष्ट करते हैं —

राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी।।[3]

देखिये किस प्रकार उन्होंने राम के मुख से उपर्युक्त विवेचन का सार बड़े कलात्मक ढंग से चौपाई के दो ही चरणों में कहला दिया।

रामायण की कथा के भीतर तो दशरथ का ही महत्त्व सामने आता है। पर कथोपकथन रूप से जो कवि वर्णित चित्र हैं उनमें वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों ने दशरथ की मनःप्रवृत्ति का और भी कुछ आभास दिया है। विश्वामित्र जी जब बालक राम लक्ष्मण को मांगने लगे तब दशरथ ने बहुत आनाकानी किया। वह सब कुछ यहाँ तक अपना शरीर भी दे सकते थे पर राम को नहीं दे सकते थे। वृद्धावस्था में पाये हुए पुत्रों पर इतना स्नेह स्वाभाविक था। वे मुनि से कहते हैं।

चौथेपन पायउं सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी।।[4]

इस स्थल पर गोस्वामी जी ने दशरथ के मुख से वृद्धावस्था में प्राप्त पुत्र स्नेह की और स्वाभाविक अभिव्यक्ति कराई है। वह बड़ी ही सहज और मर्मात्मक है।

---

१ मा० अयो० पृ० ३०२
२ मा० अयो० पृ० ३२२
३ मा० अयो० पृ० ३२२
४ मा० बा० पृ० १४६

इस वृद्धावस्था में वे अपनी छोटी रानी के वशीभूत थे जो उनकी इस पदावली से स्पष्ट होता है —

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासौं देसू ॥[1]

प्रायः, पुत्र परिजन प्रजा सबको कैकेयी के वश में कहना स्वयं राजा का कैकेयी के वशीभूत होने की अभिव्यंजना करता है। कैकेयी के सामने आने पर उनमें न्याय और विवेक विश्राम ले लेते थे।

इस स्थल पर हमारे महाकवि ने राजा को कैकेयी के वशीभूत दिखलाकर बहु विवाह की निर्बलता की ओर मानव का ध्यान आकर्षित करा मानव की सहज मत्स्य से पुष्ट प्रवृत्ति का उद्घाटन कर अपनी सूक्ष्म कलात्मक अन्तर्दृष्टि की सूचना दी है।

दशरथ के हृदय की इस दुर्बलता के कोष के भीतर प्रचलित दाम्पत्य विधान का वह दोष झलकता है। जिसे भविष्य में महाराज राम ने दूर किया। कैकेयी ने एक बार पति के साथ जाकर रथ के पहिये में उंगली लगायी थी तो उसके बदले में दो वरदान भी मांग लिये थे। सीता भी १४ वर्ष तक राम के साथ वन भ्रमण करती रहीं और इस वन भ्रमण को भी उन्होंने उससे अधिक महत्वपूर्ण समझा था। राम के सामने अन्त में जब राज्य धर्म की विकट समस्या सामने आती है तो हम राम को ठीक दशरथ के विपरीत करते हुए पाते हैं। दशरथ ने कैकेयी को प्रसन्न करने के हेतु कहा था कि मैं तुम्हारी प्रसन्नता के हेतु किसी भी निरपराध राजा को देश के बाहर निकाल दूँगा।

कहु केहि रंकहि करौं नरेसू ।[2]

पर राम प्रजा को प्रसन्न करने के हेतु प्राणों से भी अधिक प्रियतमा को बिना किसी अपराध के निकाल देते हैं। दशरथ अपनी रानी के कहने से एक राजा को निकालने को प्रस्तुत हैं पर राम ने एक धोबी के कहने से अपनी प्राण वल्लभा को बाहर निकाल दिया। राम के द्वारा सीता को निकाल देने पर भी वन वासों का स्नेह भंग नहीं होता जब कि दशरथ कुपित हो अपनी रानी से यहाँ तक कह देते हैं।

लोचन ओट बैठु मुहु मोरी ।[3]

दशरथ रानी के कहने से अपने बड़े पुत्र को निर्वासित करते हैं, यह भी सत्य है। पर राम के राज्य में उन पापों को दण्ड देने के बजाय उन की रक्षा की जाती है।

सिय निंदक अघ ओघ नसाए । लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥[4]

---

१ मा० अयो० पृ० १६६
२ मा० अयो० पृ० २६६
३ मा० अयो० पृ० २७६
४ मा० उ० पृ० १६

दशरथ वीर भी बहुत बड़े थे। उनके चरित्र की अपूर्व विशेषताओं का विमर्शन करता हुआ यह दोहा बड़ा सुन्दर और महत्त्वपूर्ण है —

दस हजार रवि कर करै दसों दिसा रथ जाइ।
दस सिर भरि प्रकटै सुजस दसरथ कहिये ताइ॥

यह है गोस्वामी जी द्वारा चित्रित दशरथ का चरित्र जिसमें राम ने जो किया उसके ठीक विपरीत हम दशरथ को करते पाते हैं। इसी में गोस्वामी जी की कला पूर्ण रूप से समर्थ हुई है।

कैकेयी—

आदि काव्य की कैकेयी में हम रावण का प्रतिरूप पाते हैं। उसमें हम कौशिल्या के विपरीत पति से अधिक सम्मानित अपनी सौत के प्रति अनुदार असहिष्णु स्वच्छन्द परमाप महत्त्वाकांक्षी तथा उद्दंड स्वभाव वाली नारी का चित्र पाते हैं।

कैकेयी महाराज दशरथ की पतिव्रता स्त्री है। गोस्वामी जी ने इसका चरित्र बड़े ही सुबोध और कलापूर्ण ढंग से रचा है। वह विदुषी भी है और रण कुशल भी है तभी तो वह अपने पति के साथ युद्ध में जाती है और रथ के पहिये की जगह अपनी उँगली लगा देती है। तभी महाराज दशरथ उसे दो वर देने के निमित्त कहते हैं। वह राम के प्रति अगाध स्नेह रखती थी। जिसका परिचय उसने मंथरा को इस प्रकार दिया है।

प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली॥[1]

और जब मंथरा ने अधिक विरोध किया तब वह उसे फटकारती हुई कह उठी।

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥[2]

भला राम को इतना अधिक प्यार करने वाली कैकेयी इतनी कठोर कैसे हो सकती थी। फिर प्रश्न है कि राम को वनवास भेजने के लिए कैकेयी इतना हठ कैसे पकड़ गई। इसका कारण तो गोस्वामी जी ने कैकेयी को इस क्षेत्र में लाने के पहले ही बता दिया कि देवों ने सरस्वती को भेज मंथरा की मति पलटवा दी। उसी का प्रभाव कैकेयी पर भी पड़ा। कैकेयी का अन्तिम जीवन अनुताप व ग्लानि से पूर्ण है।

इस चरित्र में गोस्वामी जी की कला यह है कि यदि वे इस चरित्र में सरस्वती को ला कर न खड़ा कर देते तो कैकेयी के चरित्र की मोड़ बिल्कुल दूसरी ही धार होती। सरस्वती का प्रकरण आ जाने से प्रत्येक पाठक कैकेयी के कार्यों को पढ़ कर यह बरबस

---

१ मा० अयो० पृ० २६२—२६१
२ मा० अयो० पृ० २६२

कहेगा कि कैकेयी ने यह जो भी किया उसमें उसकी अपनी बुद्धि नहीं अपितु दैवी शक्ति की प्रबलता थी। यही इस विषय में गोस्वामी जी की कला है।

मंथरा—

आदि काव्य में कैकेयी की परम विश्वास पात्र दासी मंथरा है। जो अपनी स्वामिनी की भाँति कुछ निश्शंक सी है। इसके अतिरिक्त वह अत्यन्त चतुर और स्वामीभक्त है। वह अपनी प्रबल स्वामि भक्ति के ही कारण कैकेयी के पुत्र को राज मुकुट न मिलते देख विरोध की भावना जाग्रत करती है।

तुलसी अपनी कला का ऐसा उत्कर्ष इस चरित्र में दिखलाते हैं कि मंथरा का चरित्र अमर हो जाता है।

मंथरा को आगे क्या कौशल्या अच्छी नहीं लगती। कैकेयी अच्छी लगती है। वाल्मीकि जी ने उसे मातृ कुल की दासी कहकर कारण का पूरा संकेत कर दिया है। पर गोस्वामी जी ने इस कारण का संकेत न देकर उसकी प्रकृति को स्त्रियों की सामान्य प्रकृति के अन्तर्गत रखा है। जिसमें स्वाभाविकता अधिक है। इसी में गोस्वामी जी की कला चमत्कार प्रस्तुत करती है।

राम के अभिषेक की तैयारी होते देख वह कुढ़ जाती है और वह मुँह लटकाये कैकेयी के पास खड़ी हो जाती है। कैकेयी को उसके अनुराग का पता चाहे रहा हो पर अभी तक उस उसके द्वेष का पता बिल्कुल भी नहीं है। वह मुँह लटकाने का कारण पूछती है और व्यंग्य में 'लात कह तोर' कहती है। इस वाक्य में जी की बात धीरे-धीरे बाहर निकालने का मार्ग मंथरा को मिल जाता है वह अपनी वही मुद्रा कायम रखती हुई कहती है—

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई।।[1]

किसी का बल पाकर गाल बजती। इसका मतलब यही है कि मुझे एक तुम्हारा ही बल सहारा। मैं तुम्हें चाहती हूँ और तुम मुझे चाहती हो। तो मैं देखती हूँ कि तुम्हारी यहाँ कोई गिनती नहीं। रानी पूछती है सब लोग कुशल से तो हैं इसकी उत्तर भी फिर वह इसी प्रणाली का अनुसरण करती हुई देती है।

रामहि छाँड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू।।[2]

राम के प्रति द्वेष भाव उत्पन्न करने के निमित्त मंथरा कैकेयी के समक्ष उसकी सपत्नी का रखती है। जिसमें गर्व को न सहना स्त्रियों की प्रकृति होती है। सपत्नी के घमंड की बात जान कर कहाँ तक ईर्ष्या उत्पन्न न होगी। इस ईर्ष्या के साथ भरत के प्रति कुछ वात्सल्य भाव भी जगाना चाहिए।

---

१ मा अयो पृ २६२

२ मा० अयो पृ २६२

पूत बिदेस न सोच तुम्हारे।[1]

इतना होने पर भी राजा के प्रति जब तक क्षोभ उत्पन्न न होगा। तब तक कैकेयी में अभावस्यक कठोरता का समावेश कहाँ से होगा। इसके हेतु मंथरा के यह वचन हैं—

नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥[2]

इतने पर भी जब कैकेयी कुछ फटकारती है तब मंथरा पुनः कहती है—

एकहि बार आस सब पूजी। पुनि कछु कहब जीभ करि दूजी॥

कोउ नृप होहि हमहि का हानी। चेरि छाँड़ि किम होब कि रानी॥[3]

अब कैकेयी को विश्वास हो रहा है। यह समझते ही वह राम के अभिषेक से होने वाली कैकेयी की दुर्दशा का चित्र खींचती है।

भामिनि भइहु दूध कइ माखी।[4]

इस भावी दशा की कल्पना से भला कौन सी स्त्री डरी न होगी। वह कैकेयी मंथरा के पूर्ण समर्थन में आ गई। तब कैकेयी को वरदान माँगने के हेतु मंथरा दृढ़ कर देती है। मंथरा के चरित्र को देख कर अनुमान लगाया जा सकता है कि तुलसी ने मानव रहस्यों का कैसा सुन्दर उद्घाटन किया है।

इसी में गोस्वामी जी की कला का मुख्य रूप दर्शन को मिलता है। उन्होंने उपयुक्त कैकेयी से जो उसकी वार्ता कराई है वह बड़ा ही मर्म-स्पर्शी और भाव पूर्ण है। साथ ही मंथरा ऐसी उक्तियाँ कैकेयी के सामने लाकर रखती है।

पाख दिवस ना सकल समाजू। तुम पाई सुधि मोहि सन आजू॥[5]

जिस पर कैकेयी की जगह या भी स्त्री होती उस विश्वास ही करना होता। ऐसा वार्तालाप का निर्माण करना और उसके माध्यम से मानव वृत्तियों का उद्घाटन जो तुलसी ने कराया है उसी में उनकी कला है।

केवट—

मानस में केवट का चरित्र बड़ा ही महत्वपूर्ण है। वह राम का प्रिय सखा है। राम को नाव से पार उतारने का दृश्य और उसका वार्ता गोस्वामी जी ने बड़ी ही मार्मिक व्यंग्यात्मक कलात्मक उक्तियों के द्वारा चित्रित की है। जिसे हम यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं। राम आकर उससे नाव माँगते हैं। पर केवट नाव लाने के बजाय कितना व्यंग्यात्मक उत्तर देता है।

---

१ मा० अयो० दो० १४ १५
२ मा० अयो० दो० १४ १६
३ मा० अयो० दो० १६ १७
४ मा० अयो० दो० १६ २०
५ मा० अयो० दो० १६-२०

मागी नाव न केवट आना । कहहिं तोहार मर्म मैं जाना ।।[1]

अब प्रश्न है कि मर्म क्या है जिसे केवट जानता है । मर्म यह है—

चरण कमल रज कहँ सब कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ।।[2]

यहाँ कितनी व्यंग्योक्ति से काम लिया गया है जो कवि की सार्थक शब्द प्रयोग की कला के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है । यहाँ इस चरित्र चित्रण में कलात्मकता यह है कि केवट से अन्य मुनियों की भाँति—

नमामी शमीशान निर्वाण रूपम् ।।[3]

नहीं कहलाते हैं प्रत्युत वह इस केवट से राम के हेतु 'तोहार' शब्द का प्रयोग करवाते हैं जो बड़ा ही कलात्मक है । गोस्वामी जी के सभी पात्र अपनी अपनी भाषा में बोलते हैं । यही तो उनके चित्रण की कला है । यहाँ केवट यहाँ तोहार शब्द का प्रयोग कर रहा है । यह वास्तव में उसकी ग्रामीण संस्कृति के अनुरूप और कलात्मक है । आप केवट विनोद से यही बात कह रहा है कि सभी लोग कहते हैं कि आपके चरणों की धूलि मनुष्य बना देने वाली जड़ी है । आग तो उसके व्यंग्य की हद हो गई । वह कहता है कि आपके चरणों की रज मनुष्य बना देती है । यह तो कोई बुरी बात नहीं है । लेकिन दोष यह है कि यह जो भी बनती है वह उड़ जाती है । अतः मैं मजबूर हूँ जब तक आप अपने चरणों को धुल न धुलवायेंगे तब तक मैं कभी भी आपको पार न उतारूँगा ।

तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ।।[4]

आगे उसकी निर्लोभता का भी रूप देखिये—

नाथ न उतराई चहा ।[5]

अन्त में भी वह उतराई देने पर उतराई लेने को प्रस्तुत नहीं होता—

फिरत बार मोहि जो कछु देबा । सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा ।।[6]

इसमें गोस्वामी जी ने जो केवट की निर्लोभता का रूप खींचा है । वह बड़ा ही सजीव है । और सहज ही पाठक को प्रभावित करने के कारण यह कलात्मक है ।

फिरत बार प्रभु जो कछु देबा ।[7]

से केवट राम को पुनः लौटते समय बुलाता है । राम पुनः उसके पास जंगल से वापस आते हुए आते हैं । राम की भक्त वत्सलता देखिये । केवट तो उन्हें एक बार अपने

---

१ मा० अयो० पृ० ३१६
२ मा० अयो० पृ० ३१६
३ मा० उत्तर० पृ० ७६६
४ मा० अयो० पृ० ३१६
५ मा० अयो० पृ० ३१६
६ मा० अयो० पृ० ३१८
७ मा० अयो० पृ० ३१८

स्थान पर पहुँचा रहा है और राम राज्य पर बैठ कर उसे उसका प्रसाद बाँटा माँगा प्रसाद—

सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा ॥[1]

केवट प्रसाद में सर्वेश पाने के लिये कहते हैं जब कि वह सभी को विदा कर देते हैं।

पुनि प्रभु बोलि लियो निषादा । दीन्हेंहु भूषन बसन प्रसादा ॥
तुम प्रिय सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥[2]

यह है गोस्वामी जी की पूर्वा पर निर्वाह की कला। जो प्रसाद केवट ने मांगा था उसी का ५ कांड लिखने के बाद राम द्वारा उत्तर कांड में निर्वाह कराना गोस्वामी जी की अद्भुत पूर्वा पर निर्वाह की कलात्मकता का द्योतक है।

उपसंहार—

तुलसी ने अपने काव्य में जिन पात्रों का लिया है उनमें प्राण फूंक दिये हैं। क्या मजाल की पाठक उन्हें पढ़ कर उनके अन्दर कवि इच्छित भावनाओं और विचारों की झलक न देख सकें। तुलसी के पात्र बोलते हैं वे जीते जागते स्वरूप के रूप में हैं। काठ के टुकड़े कवि द्वारा गढ़ कर खड़े नहीं कर दिये गये हैं। यही गोस्वामी जी की चित्रण कला है। सभी सामान्य पात्र राम के चरित्र विकास में योग देते हैं। चरित्र-चित्रण में कवि को विशेष रूप से सफलता मिली है।

नारी के चरित्र चित्रण में गोस्वामी जी ने कोई मानव की सी दृष्टि रखी है। वहाँ नारी का व्यक्तित्व भी उभरा है। सीता कौशिल्या आदि की महिमा का गान गोस्वामी जी ने राम के ही नाते किया है। इन पात्रों की महिमा मूलतः राम की ही महिमा है।

गोस्वामी जी ने अपने पात्रों को दो विशेष धरातलों पर खड़ा किया है। एक का सम्बन्ध राम की मानव लीलाओं से है। दूसरे का राम के मानवेतर रूप से। यह भी उनकी असाधारण प्रभुता का द्योतक है। अधिकांश कथा में यह दोनों धरातल एक दूसरे को लपेटे हुए चलते हैं। पहले हम उस धरातल पर विचार करेंगे जिसका संबंध राम के मानवेतर रूप से है।

'मानस' के सभी पात्र राम भक्त हैं। इसमें गोस्वामी जी की भी मिला ली —

सीय राम मय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥[3]

दास्य भक्ति की भावना काम कर रही है। यह भी तुलसी की कला का वृत्तान्त कर हमारे सामने प्रस्तुत करती है। कहने का अभिप्राय यही है कि गोस्वामी जी की राम भक्ति उनके पात्रों में भी व्याप्त हो गई है। मानस का कोई भी पात्र राम को छोड़ कर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखता। यह शरीर है तो राम

---

१ मा० अयो० पृ० ३६८
२ मा० उत्तर पृ० ७०६
३ मा० बा० पृ० ६

धात्मा। राम के परिवार स्वजन और आत्मीय देव ऋषि भक्त विरोधी सभी प्रकट या अप्रकट रूप से उनके भक्त हैं। रावण और मेघनाद उनके सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हैं। उन्होंने जीवित रहते राम की ब्रह्म सत्ता को स्वीकार नहीं किया। पर मरते समय दोनों ने किसी भी भाव से राम को स्मरण कर मुक्ति पाई है। राम रावण युद्ध में राक्षसों के युद्ध के सम्बन्ध में भी यही बात है।

राम राम कहि तनु तजँहि पावहिं पद निर्वान।[1]

तुलसी के सब चरित्रों में जितने ही चरित्र ऐसे हैं जो भक्त हो हैं उनकी अवतारणा इस हेतु की गई है कि उनसे तुलसी की कला का एक विशेष उद्देश्य सिद्ध होता है। वे कथा प्रसंग को किसी भी प्रकार से आगे नहीं बढ़ाते। सुतीक्ष्ण मुनि आदि ऐसे ही चरित्र हैं। अन्य पात्रों को राम भक्ति उनके चरित्र तथा व्यक्तित्व का का एक आवश्यक अंग है। राम के साथ उनके आत्मीय सम्बन्ध में जो चरित्र प्रकाशित होता है वह प्रसन्न की बात है। अन्य पात्रों की भक्ति भावना भी महत्वपूर्ण है। तुलसी ने सभी पात्रों में राम भक्ति का प्रवेश कर अपनी कला में एक विचित्रता उत्पन्न कर दी है।

गोस्वामी जी ने वाल्मीकि जी के चरित्र चित्रण के ढांचा को स्वीकार नहीं किया है। इसमें वे काव्य की भूमि पर अत्यन्त सतर्कता से चलते हैं। वे विशेषतया उन उक्तियों को स्थान नहीं देते जो उनके काव्य का लांछित करने वाली हैं। जिनकी विवेचना पीछे की जा चुकी है।

तुलसी ने चरित्रों का विकास अपने विशिष्ट सांस्कृतिक धरातल पर किया है। चरित्र चित्रण की कला का उत्कर्ष यही है कि उसमें पात्रा के वास्तविक स्वभाव और कर्म का यथार्थ परिचय प्राप्त हो सके। चरित्र के विकास के हेतु गोस्वामी जी ने अपने काव्य में सुन्दर सुन्दर सम्वादों की भी अवतारणा को है। उनके द्वारा काव्य की शैली को ही रोचक नहीं बनाया अपितु वे नाटकीयता की दृष्टि से इतने सुन्दर और सरस बन पड़े हैं कि पाठक उनकी चित्रण कला पर बिना मुग्ध हुये नहीं रह सकता। पात्रों की आन्तरिक भावनाओं के साथ उन्होंने बाह्य रूप सौन्दर्य के साथ अंग सौष्ठव का बड़ा ही मर्मस्पर्श चित्र अङ्कित किया है।

चरित्र चित्रण के उत्कर्ष के हेतु यदि घटनाओं में भी कुछ हेर फेर करना की आवश्यकता हुई तो गोस्वामी जी उसमें हिचके नहीं हैं। चित्रकूट की सभा में यदि जनक न पहुँचाये जाते तो अयोध्या की सामान्य घटनाओं के प्रति उनकी ऐसी विरक्ति व्यक्त नहीं की जा सकती। जनक की सभा में परशुराम का प्रवेश का एक ही घटना है। जिसमें गोस्वामी जी की कला देखी जा सकती है।[2]

मानस का द्वितीय सोपान ही चरित्र चित्रण की कसौटी है। इसमें तुलसी खूब

---

१ मा अरण्य पृ० ८८७
२ मा बा० पृ० १९८

क्रम है। मानस के प्रमुख पात्र जिस रूप में हमारे हृदय में अपना घर बनाते हैं वह रूप अनुदिन निखरता रहता है। केवल मंथरा ही ऐसी है जो पुनः निखर कर हमारे सामने नहीं आती। कैकेयी का निखार भी आगे हो जाता है। उसकी ग्लानि में ही उसके सारे कल्मष धुल जाते हैं। इसके पात्र वृत्तियों के प्रतीक होकर आये हैं। अतएव इन विभिन्न बातों में गोस्वामी जी की कला दर्शनीय है।

सभी मुख्य पात्रों का चरित्र गोस्वामी जी ने ग्रन्थ के उपक्रम में ही वर्णन कर दिया है। यह भी उनके चरित्र चित्रण की कला है। आदि से अन्त तक ठीक वही विशेषता मिलती है। कहीं किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ने पाता। भरत का ही उदाहरण लीजिये।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।[1]

भरत के चरित्र की यह विशेषता मानस भर में मिलती है।

गोस्वामीजी के चरित्र चित्रण की एक यह भी कला है कि मानस में सभी पात्रों का चित्रण करने में उन्होंने सद्गुणों का आरोप इस प्रकार किया है कि उससे काव्य में कहीं भी कृत्रिमता नहीं आने पाई है और उनके पात्रों में वह आदर्श सन्निहित है जिसकी आवश्यकता किसी एक काल के लिये ही नहीं वरन् सभी युगों सभी देशों के हेतु हो सकती है। यह भी उनके चित्रण कला की ही महती महानता है।

आधार ग्रंथों में कथानक के पात्र जिस अविचार और आवेश का परिचय देते हैं वहाँ उनमें [illegible] देने में हमारे कवि की तत्सम्बन्धी कला दृष्टिगोचर होती है।

अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण[2] सीता[3] और भरत[4] राम को यह दिखलाते हैं कि यदि राम उन्हें अपने साथ वन नहीं ले जायेंगे तो वे अपने प्राणों का तत्काल अन्त कर देंगे। चित्रकूट में भरत राम से कहते हैं कि वे अन्न जल छोड़ कर प्राण त्याग देंगे यदि राम उन्हें अपने साथ रहने की आज्ञा न देंगे और तदुपरांत अपने इस निश्चय की पूर्ति के हेतु भू में कुशा बिछाकर पूर्व की ओर मुँह कर बैठ जाते हैं।[5] चित्रकूट से विदा होते समय फिर भरत कहते हैं कि यदि अवधि समाप्त होते ही राम अवध न लौटेंगे तो वे अग्नि समाधि ले लेंगे।[6] शूर्पणखा खर को भय दिखलाती है कि वह अपना प्राणान्त कर लेगी। यदि राम लक्ष्मण का रुधिर पान उसे न प्राप्त होगा।[7]

---

१ मा० बा० पृ० १८
२ अध्यात्म रामायण—अयो० सर्ग ४ श्लोक ८२ ८३
३ अध्यात्म रामायण—अयो० सर्ग ४ श्लोक ८७ ८८
४ अध्यात्म रामायण—अयो० सर्ग ९ श्लोक ३६
५ अध्यात्म रामायण—अयो० सर्ग ९ श्लोक ९
६ अध्यात्म रामायण—अयो० सर्ग ९ श्लोक ४०
७ अध्यात्म रामायण—अरण्य० सर्ग ५ श्लोक २५

'वाल्मीकीय रामायण' में पात्रों में प्रायः यही आवेश और अविचार पाया जाता है। गोस्वामी जी ने इसका पूर्ण निराकरण किया है जिसे हम पीछे स्पष्ट कर आये हैं।

चरित्र चित्रण की कला के तीन पक्ष हैं।

१—शारीरिक व्यक्तित्व का अंकन।

२—बौद्धिक गुणों की विवेचना।

३—हार्दिक गुणों का चित्रण।

जो भी महाकवि चरित्र चित्रण की इन तीनों बातों की पूर्ण यथेष्ठ अभिव्यक्ति अपने पात्रों में कर सके वही चरित्र चित्रण की कला में पूर्ण सफल कहा जा सकता है। गोस्वामी जी ने इन तीनों ही पक्षों की बड़ी ही मनोहारी व्यंजना अपने पात्रों में प्रस्तुत की है। शारीरिक व्यक्तित्व के अंकन का प्रश्न जहाँ तक है यह उनके परशुराम के वीर वेष के सजीव अंकन से भली भांति प्रकट हो जाता है कि वह इस पक्ष के अप्रतिम गायक थे। जैसे —

गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥

सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥[1]

इस प्रकरण को पढ़ते ही पाठक के समक्ष परशुराम के शारीरिक व्यक्तित्व वीर वेष का एक रूप सा खड़ा हो जाता है। ऐसी ही अंगद के चरित्र चित्रण में गोस्वामी जी ने जो बौद्धिक चतुराई की विशद अभिव्यक्ति की है वह पर्याप्त है इसके हेतु कि वह बौद्धिक गुण चतुराई के अंकन में भी पटु थे। अब रहा तीसरा पक्ष हार्दिक गुण वीरता। इसकी व्यंजना गोस्वामी जी ने राम के चरित्र में भली भाँति की है।

अतः इसके विवेचन के उपरांत स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी की पात्रों की चित्रण कला अद्वितीय थी। जिसकी तुलना में अन्य महाकवि नहीं आ सकते। यह निस्सन्देह है।

---

१ मा० बा० पृ० १८६ १८७

नवाँ अध्याय



छन्द योजना और संवाद कला

गोस्वामी जी की छन्द योजना—

छन्द योजना काव्य कला का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है। कविता कामिनी के कमनीय कांत पदा मालिभूत सुरम्य संगीत से मानव हृदय तन्त्री को निनादित कर देने वाले कवि सम्राट गोस्वामी जी ने यह भली भाँति अनुमान लगा लिया था कि उनके पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रबन्ध निर्माण के लिये अवधी में जो दोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है वह सर्वथा उपयुक्त है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि दोहा और चौपाई के लिये अवधी से बढ़कर दूसरी भाषा और प्रबन्ध कथा की तरंगिनी प्रवाहित करने के हेतु दोहा और चौपाई से बढ़कर दूसरा छन्द न उपयुक्त होगा।

यद्यपि गोस्वामी जी ने दोहा चौपाई को प्रबन्ध रचना का मेरुदण्ड माना तथापि उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि प्रबन्ध का कलेवर इन्हीं दो छन्दों से पूर्ण तथा सुसज्जित और आकर्षक होगा। वस्तुतः उन्होंने प्रबन्ध सौष्ठव के लिए दोहा चौपाई के अतिरिक्त कुछ चुने हुए अन्य प्रकार के छन्दों का उचित प्रयोग भी किया है। उनका मानस ऐसे प्रयोगों के कारण केशव की रामचन्द्रिका की भाँति छन्दागार नहीं हो गया है। प्रत्युत उसमें उनके प्रबन्ध की एक रूपता और मार्मिक छन्द प्रयोग की प्रतिष्ठा होती है।

'मानस' के प्रत्येक सोपान के अन्तर्गत संस्कृत के कुछ श्लोक विविध वृत्तों में प्रयुक्त हुए हैं। उनको छोड़ शेष अवधी भाषा में अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है। अरण्य कांड में अनेक छन्दों का समावेश है। उनके ग्रंथों में सभी प्रचलित छन्दों का प्रयोग प्रसंग पर अवसर के अनुकूल हुआ है। मानस में प्रयुक्त छन्दों पर विचार किया जाये तो प्रतीत होगा कि मानस में ११ वर्णिक और ८ मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा रचना में मात्रिक छन्द और मंगलाचरण के सब श्लोकों में वर्ण वृत्तों का प्रयोग हुआ है। इन वर्ण वृत्तों का प्रयोग केवल श्लोकों में ही हुआ है। अतः इन पर विचार करने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। मानस मूलतः मात्रिक छन्दों में लिखा गया है। इसलिये गोस्वामी जी के छन्द योजना पर विचार करते समय उनके मात्रिक छन्दों का ही विवेचन विस्तार से किया जायगा।

सवैया और कवित्तों की पद्धति मुक्तक के लिये तो ठीक है किन्तु कथा के लिये उनमें अपेक्षित प्रवाह उपलब्ध नहीं होता। यही कारण है कि गोस्वामी जी ने

भी मानस के हेतु दोहा चौपाई का ही आश्रय लिया है। किन्तु मानस की एक महान् विशेषता यह है कि उसमें दोहे और चौपाई का प्रयोग एक निश्चित योजना के आधार पर हुआ है। प्राय सर्वत्र ८ अरधाली पर एक दोहे का क्रम रक्खा गया है। प्रत्येक कांड के अन्त में एक हरिगीतिका का छन्द देकर तब दोहा या सोरठा देकर समाप्त किया गया है। अयोध्या कांड में तो इस नियम का पालन और भी कड़ाई से हुआ है। यहाँ प्रत्येक २५ दोहे के बाद एक हरिगीतिका छन्द दिया गया है। दोहों के पश्चात् सोरठों की ही संख्या अधिक है। त्रिभंगी छन्द का प्रयोग लंका कांड में एक स्थान पर स्तोत्र के रूप में हुआ है। त्रिभंगी और चौपाया का प्रयोग भी स्तोत्र के रूप में बाल कांड में हुआ है। तोमर का प्रयोग खरदूषण एवं राम रावण युद्ध में हुआ है। साथ ही लंका कांड में इन्द्र कृत स्तुति में भी हुआ है। छन्दों का विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि जहाँ वर्णनों को पुष्ट करना आवश्यक हुआ है वहाँ हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है। हरिगीतिका छन्द के बाद भी सर्वत्र सोरठा आया है। इसके अलावा जहाँ कहीं कोई विशेष चमत्कार की बात कहनी है वहीं पर सोरठे का प्रयोग हुआ है।

संकर चाप जहाज सागर रघुपति आहुबल।
बूड़ सो सकल समाज चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस।[1]

युद्ध में प्रचंड गति होती है। इसीलिये युद्धों में तोमर जैसे वेगशील छन्द का प्रयोग हुआ है। वर्णन सब के सब दोहे और चौपाइयों में हैं। प्रयुक्त छन्दों के संख्या क्रम से देखा जाये तो पहला स्थान चौपाई का दूसरा दोहे का तीसरा सोरठे का और चौथा हरिगीतिका छन्द का है।

यह प्रचलित है कि रहीम ने अपने किसी सरदार की स्त्री के द्वारा रचित बरवै की एक पंक्ति पर मुग्ध होकर इस ललित छन्द में अपने बरवै नायिका भेद की रचना की। बरवै अवधी का अत्यन्त मोहक छन्द है। भाव और स्वर के असीम विस्तार का इस छोटे से छन्द में पूरा अवकाश है। गोस्वामी जी ने भी आपसे बरवै में रचना करने का कहा था जिसके परिणामस्वरूप तुलसी ने बरवा छन्द में बरवै रामायण की रचना की। यह छन्द अन्तिम गुरु लघु का क्रम भाव और विस्तार की असीमता को समेटे हुए है और मध्य के लघुउच्चारी अवधी के शब्द लोच पूर्ण लालित्य के सजीव रूप है। इसमें १२ व १२ व के विराम से चारों चरणों में १८ मात्रायें होती हैं। भाषा की दृष्टि से कवियों ने इस छन्द में अधिक व्यापकता पाई है। अवधी भाषा का इस छन्द से बड़ा गौरव प्राप्त हुआ है। इस छन्द को कुछ आचार्यों ने ध्रुव मोहिनी तथा कुरंग भी कहा है। वास्तव में बरवै और मोहिनी में बहुत कम अन्तर है। मोहिनी में केवल जगण के स्थान में अन्त में सगण होता है। शब्दों के प्रयोग में दीर्घान्त करने की वृत्ति बहुधा बरवै छन्द में पाई जाती है। इससे

१ मा० बा० पृ० १८२

भी बरवै में कवित्व माधुर्य भी पाया जाता है और छन्द में सरसता और प्रवाह भी पाया जाता है। शब्दों के दीर्घान्त होने से इसके अन्त में देर तक गुंजित होने का अवकाश प्राप्त होता है जिससे इसका प्रवाह भी एक विशेष प्रकार का होता है। बरवै रामायण में कुल मिलाकर ६६ छन्द हैं। जो सात काण्डों में विभक्त हैं। बाल और अयोध्या काण्ड के छन्द कम चरित्र और भाव चित्रण की सूक्ष्मता को लिए हुए हैं। यह बरवै छन्द मुक्तक रूप में है पर कलात्मक सौन्दर्य की बारीकी उन्हें काव्य प्रेमी जनों का कण्ठहार बनाये है। प्रत्येक बरवै मणि मुक्ता के समान आभामय है और पाठक की भी यही इच्छा होती है कि वह ऐसे ही छन्दों का आनन्द प्राप्त करे। इसी इच्छा का विश्वास यह परिणाम जान पड़ता है कि तुलसी का यह ग्रन्थ बृहत् रूप में रहा होगा। प्राप्त छन्द उसी की उसी बड़ी माला के बिखरे रत्न हैं जो इस रूप में संकलित हुए हैं।

पार्वती मंगल में भी मंगल और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग किया गया है।

कवितावली में अनेक सवैयों कवित्त आदि छन्द हैं जिनमें से भाव वाले छन्द मानस गीतावली और विनयपत्रिका आदि ग्रन्थों में पाये जाते हैं। इसी प्रकार कवितावली में विरचित सरस मधुर और भावपूर्ण छन्दावली दर्शनीय है। चौपाइयों का संकेत करते हुए तुलसी ने लिखा है।

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।[1]

छन्द के नियमानुसार मात्रा गण वर्ण अथवा गुरु लघु की योजना मात्र करके छन्द विधान कर लेना कोई विशेष महत्व की बात नहीं है। ऐसा तो रीति ग्रन्थों का सामान्य ज्ञाता भी कर सकता है। महान् कलाकार के छन्द विधान में केवल छन्द विधान के नियमों की पाबन्दी ही नहीं रहती अपितु उनमें प्रसंगानुकूल लय और ताल भी उपस्थित रहते हैं यति भावों का ताल में निर्भर कर भाव में प्राकृतिक संगीत स्वयमेव उपस्थित होता है जैसे ही उच्च कलाकार विरचित छन्दों में भावानुरूप नैसर्गिक ध्वनि होती है। गोस्वामी जी ऐसे ही उदात्त छन्द निर्माता थे। मानस में उन्होंने जिन विविध प्रकार के छन्दों पर पूर्ण अधिकार रखते हुए उनका सृजन किया है वह अद्भुत सा है। कवितावली आदि में कई प्रकार के सवैये घनाक्षरी छप्पय तथा झूलना आदि का प्रयोग हुआ है। दोनों मंगलों की रचनाएँ मात्रिक हरिगीतिका में है। बरवै नाम का छन्द उसके नाम से ही स्पष्ट है। इसी प्रकार दोहावली में सोरठा भी है। रामाज्ञा प्रश्न तो पूर्णतया दोहा छन्द में है। नहछू की रचना सोहर छन्द में हुई है। सोहर छन्द हमारे प्रान्त का एक प्रसिद्ध मंगल छन्द है। यह पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर गाया जाता है। स्त्रियाँ इस की भाषा में अपनी इच्छा के अनुकूल कमी और अधिकता कर लेती हैं। इस छन्द का सबसे बड़ा गुण प्रवाह है।

---

१ मा० उ० पृ० ७६६

भी मानस के हेतु वाह्य चौपाई का ही आश्रय लिया है। किन्तु मानस की एक महान् विशेषता यह है कि उसमें दोहे और चौपाई का प्रयोग एक निश्चित योजना के आधार पर हुआ है। प्राय सर्वत्र ८ अरधाली पर एक दोहे का क्रम रक्खा गया है। प्रत्येक कांड के अन्त में एक हरिगीतिका का छन्द देकर तब दोहा या सोरठा देकर समाप्त किया गया है। अयोध्या कांड में तो इस नियम का पालन और भी कड़ाई से हुआ है। यहाँ प्रत्येक २५ दोहे के बाद एक हरीगीतिका छन्द दिया गया है। दोहों के पश्चात् सोरठों की ही संख्या अधिक है। त्रिभंगी छन्द का प्रयोग लंका कांड में एक स्थान पर स्तोत्र के रूप मे हुआ है। त्रिभंगी और चौपाया का प्रयोग भी स्तोत्र के रूप में बाल कांड में हुआ है। तोमर का प्रयोग खरदूषण एवं राम रावण युद्ध में हुआ है। साथ ही लंका कांड में इन्द्र कृत स्तुति में भी हुआ है। छन्दों का विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि जहाँ वर्णनों को पुष्ट करना आवश्यक हुआ है वहाँ हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है। हरिगीतिका छन्द के बाद भी सर्वत्र सोरठा आया है। इसके अन्यत्र जहाँ कहीं कोई विशेष चमत्कार की बात कहनी है वहीं पर सोरठे का प्रयोग हुआ है।

शंकर चाप जहाज रघुपति सागर बाहुबल।
बूड़ सो सकल समाज चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस।[१]

युद्ध में प्रचंड गति होती है। इसीलिये युद्धों में तोमर जैसे वेगशील छन्द का प्रयोग हुआ है। वर्णन सब के सब दोहे और चौपाइयों में हैं। प्रयुक्त छन्दों के संख्या क्रम से देखा जाये तो पहला स्थान चौपाई का दूसरा दोहे का तीसरा सोरठे का और चौथा हरिगीतिका छन्द का है।

यह प्रचलित है कि रहीम ने अपने किसी सरदार की स्त्री के द्वारा रचित बरवै की एक पंक्ति पर मुग्ध होकर इस ललित छन्द में अपने बरवै नायिका भेद की रचना की। बरवै अवधी का अत्यन्त मोहक छन्द है। भाव और स्वर के प्रयोग विस्तार का इस छोटे से छन्द में पूरा अवकाश है। गोस्वामी जी से भी आपने बरवै में रचना करने को कहा था जिसके परिणामस्वरूप तुलसी ने बरवा छन्द में बरवै रामायण की रचना की। यह छन्द अन्तिम गुरु लघु का क्रम भाव और विस्तार की असीमता को समेटे हुए है और मध्य के मधुराभावी अवधी के शब्द लोच पूर्ण लालित्य के सजीव रूप हैं। इसमें १२ ७ १२ ७ के विराम से चारों चरणों में १८ मात्रायें होती हैं। भावों की दृष्टि से कवियों ने इस छन्द में यथेष्ट व्यापकता पाई है। अवधी भाषा को इस छन्द से बड़ा गौरव प्राप्त हुआ है। इस छन्द को कुछ आचार्यों ने ध्रुव मोहिनी तथा कुरंग भी कहा है। वास्तव में बरवै और मोहिनी में बहुत कम अन्तर है। मोहिनी में केवल जगण के स्थान में अन्त में सगण होता है। शब्दों के प्रयोग में मौलिकता करने की वृत्ति बहुधा बरवै छन्द में पाई जाती है। इससे

---

१ मा० मा० पृ० १८९

भी बरवै में अधिक माधुर्य आ जाता है और छन्द में सरलता और प्रवाह भी आ जाता है। क्योंकि दोहान्त होने से उसे कान में देर तक गुंजित होने का अवकाश प्राप्त होता है जिससे उसका प्रवाह भी एक विशेष प्रकार का होता है। बरवै रामायण में कुल मिलाकर ६९ छन्द हैं। जो सात काण्डों में विभक्त हैं। बाल और अयोध्या काण्ड के छन्द रूप चरित्र और भाव चित्रण की सूक्ष्मता को लिये हुए हैं। यह बरवै छन्द मुक्तक रूप में है पर कलात्मक सौन्दर्य की बारीकी उन्हें काव्य प्रेमी जनों का कंठहार बनाये है। प्रत्येक बरवै मणि मुक्ता के समान आभामय है और पाठक की भी यही इच्छा होती है कि वह ऐसे ही छन्दों का आनन्द प्राप्त करे। इसी इच्छा का विश्वास यह परिणाम जान पड़ता है कि तुलसी का यह ग्रन्थ वृहत रूप में रहा होगा। प्राप्त छन्द उसी की उसी वर्ण माला के बिखरे रूप हैं जो इस रूप में संकलित हुए हैं।

पार्वती मंगल में भी मंगल और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग किया गया है।

कवितावली के अनेक सवैया कवित्त आदि ऐसे हैं जिनके से भाव वाले छन्द मानस गीतावली और विनयपत्रिका आदि ग्रन्थों में पाये जाते हैं। इसी प्रकार कवितावली में विरचित सरल मधुर और ओजपूर्ण पदावली दर्शनीय है। चौपाइयों का संकेत करते हुए तुलसी ने लिखा है।

सतपंच चौपाई मनोहर जानि के नर चित धरैं।[1]

छन्द के नियमानुसार मात्रा गण वर्ण अथवा गुरु लघु की योजना मात्र करके छन्द विधान कर देना कोई विशेष महत्व की बात नहीं है। ऐसा तो रीति ग्रन्थों का सामान्य ज्ञाता भी कर सकता है। महान कलाकार के छन्द विधान में केवल छन्द विधान के नियमों की पाबन्दी ही नहीं रहती अपितु उसमें प्रसंगानुकूल लय और ताल भी उपस्थित रहते हैं जैसे कोयल की तान में निर्झर के नाद में प्राकृतिक संगीत स्वयमेव कर्णगोचर होता है वैसे ही उच्च कलाकार विरचित छन्दों में भावानुरूप नैसर्गिक ध्वनि होती है। गोस्वामी जी ऐसे ही उदात्त छन्द निर्माता थे। मानस में उन्होंने जिन विविध प्रकार के छन्दों पर पूर्ण अधिकार रखते हुए उनका वर्णन किया है वह अनूठा ही है। कवितावली बाहुक में कई प्रकार के सवैये घनाक्षरी छप्पय तथा झूलना आदि का प्रयोग हुआ है। दोनों मंगलों की रचनाएँ मात्रिक हरिगीतिका में हैं। बरवै नाम का छन्द उसके नाम से ही स्पष्ट है। इसी प्रकार दोहावली में सोरठा भी है। रामाज्ञा प्रश्न तो पूर्णतया दोहा छन्द में है। नहछू की रचना सोहर छन्द में हुई है। सोहर छन्द हमारे प्रान्त का एक अत्यन्त सरस छन्द है। यह पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर गाया जाता है। स्त्रियाँ इस की मात्राओं में अपनी इच्छा के अनुकूल कमी और अधिकता कर लेती है। इस छन्द का सबसे बड़ा गुण प्रवाह है।

---

१ मा० उ० पृ० ७२६

बड़े-बड़े तत्सम शब्दों की बहुलता होने से इसमें अस्वाभाविकता आ जाती है। इसी दृष्टि से गोस्वामी जी ने इसमें कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। साधारण बोल चाल के शब्दों का ही आधिक्य है। गीतावली कृष्ण गीतावली एवं विनयपत्रिका के छन्द विधान के विषय में कुछ कहना ही नहीं इन पदों का वास्तविक मर्म विविध राग रागनियों का विशेष सहृदय ही पा सकता है। पर इन तीनों कृतियों के छन्दों द्वारा काव्य और संगीत का समन्वय तथा अविच्छिन्न सम्बन्ध समझने में किसी विशेष प्रयास की अपेक्षा नहीं। गोस्वामी जी ने गीतावली[1] में तथा विनयपत्रिका में भी विभिन्न प्रकार के छन्दों का समावेश कर एक तीसरे प्रकार के नये छन्द का निर्माण करने की रुचि दिखलाई। गीतावली में दोहा के द्वितीय और चतुर्थ चरणों में दो मात्रायें घटाकर ४ नये ढंग के छन्द निर्मित किये गये हैं।[2]

प्रबन्ध द्वार पर सर्व प्रथम जिन छन्दों के दर्शन होते हैं वे हैं संस्कृत के श्लोक। प्रत्येक कांड का मंगलाचरण संस्कृत छन्दों से प्रारम्भ होता है। मानो गोस्वामी जी प्रबन्ध कथा के छन्द प्रवाह का उद्गम यहीं से सूचित करा रहे हैं। उद्गम स्थान के इन छन्दों का देववाणी में होने का उद्देश्य पूर्ण हो संभवतः ऐसा इसी अभिप्राय से किया गया है। इसमें कवि सम्राट ने संस्कृत के प्रति अपनी आस्था भी प्रकट की है। प्रबन्ध की समाप्ति पर संस्कृत के दो छन्द लिखकर मानों ग्रन्थ की इति भी संस्कृत में ही की गई है। कवि कुल क्रमश लिखकर महाकाव्य के सर्ग के प्रारम्भ में छन्द परिवर्तन का नियम भी पूरा करते गये हैं। हमारे कवि ने विचार कर ही अनुष्टुप का प्रयोग ग्रन्थारम्भ में किया है। मानस में प्रयुक्त सभी शार्दूलविक्रीड़ित छन्दों के भीतर झांकने से पता चलता है कि इनमें राम और शिव के शौर्य तेज कान्ति की कीर्ति दीप्त दीपित है। मानस में दो प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है।

१—वर्णिक छन्द
२—मात्रिक छन्द

अब इन दोनों प्रकार के छन्दों का नीचे गोस्वामी जी की कृतियों से उदाहरण देकर विश्लेषण किया जा रहा है।

वर्णिक छन्द—

मानस में कुल मिलाकर ११ वर्ण वृत्तों का प्रयोग हुआ है। जिनकी विवेचना निम्नलिखित है।

(१) अनुष्टुप—इस छन्द में चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण में ८ अक्षरों का होना आवश्यक है। प्रथम और तृतीय पद के सप्तम अक्षर गुरु होते हैं। चारों चरणों में पंचम वर्ण का लघु और षष्ट का गुरु होना अनिवार्य है। द्वितीय और चतुर्थ चरणों का सप्तम वर्ण लघु होना चाहिये।[2] जैसे—

---

१ गीतावली अरण्य पद गीत १०।१-८ और उत्तर ११।१।२
२ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० २०

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥[1]

(२) शार्दूलविक्रीडित—इस वृत्त के प्रत्येक चरण में १९ अक्षर होते हैं अर्थात् एक मगण एक सगण एक जगण एक सगण दो तगण और एक गुरु का होना आवश्यक है। इसका रूप SSS।।S।S।।।SS।SS।S है। पहली यति १२ अक्षरों पर और दूसरी १९वें अक्षर पर होती है।[2] उदाहरण—

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा ।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां ।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।।[3]

(३) वसन्ततिलका—इसके प्रत्येक चरण में एक तगण एक भगण दो जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं इसका स्वरूप इस प्रकार का होगा। SS।S।।।S।।S।SS जैसे—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये ।
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे ।
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।।[4]

(४) इन्द्रवज्रा—इस छन्द में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण के ३, ६, ७ और ९वें अक्षर का ह्रस्व होना आवश्यक है। दो तगण एक जगण और दो गुरु प्रत्येक चरण में आने से यह छन्द निर्मित होता है। जिसका स्वरूप ऐसा होगा।[5] SS।SS।।S।SS—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।[6]

यहाँ पर कवि ने तीन चरण इन्द्रवज्रा के लिखकर चतुर्थ चरण उपेन्द्रवज्रा के रख दिये हैं। अतः यह छन्द इन्द्रवज्रा के अवान्तर भेद माला और हंसी सम्मिश्रित हो गया है।

(५) मालिनी—इस छन्द के चारों चरण १५-१५ अक्षरों के होते हैं। अर्थात् प्रत्येक चरण में दो नगण एक मगण और दो यगण आते हैं इसके चरणों में

---

१ मा० बा० पृ० १
२ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० २१
३ मा० बा० पृ० १
४ मा० सु० पृ० २११
५ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० २१
६ मा० अयो० पृ० २२१

प्रत्येक का स्वरूप ।।। ।।। SSS ।SS ।SS इस प्रकार का होता है।[१] इसका उदाहरण—

> अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं ।
> दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।।
> सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं ।
> रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।[२]

(६) वंशस्थ—इस वृत्त के प्रत्येक चरण में १२ १२ अक्षर होते हैं अर्थात् एक जगण एक तगण एक जगण और एक रगण होता है प्रत्येक चरण का स्वरूप ऐसा होगा ।[३] ।S। SS ।।S ।S। S उदाहरण—

> प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
> मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ।।[४]

(७) रथोद्धता—इस छन्द में प्रत्येक चारों चरणों में ११ अक्षर होते हैं। अर्थात् एक रगण एक नगण और पुनः एक रगण अंत में एक लघु और एक गुरु का होना निश्चित है। जिसका स्वरूप ऐसा होगा है।[५] SIS ।।। SIS ।S उदाहरण—

> कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
> कारुणीककलकंजलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम् ।।[६]

(८) नगस्वरूपिणी—इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में एक जगण एक रगण एक लघु तथा एक गुरु होता है। अर्थात् प्रत्येक चरण में द्वितीय चतुर्थ और षट तथा अष्टम वर्ण का गुरु होना आवश्यक है। जिसका ऐसा क्रम होगा। ।S।S।S।S जिसको प्रमाणिक भी कहा है।[७] उदाहरण—

> नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।
> भजामि ते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं।।[८]

(९) स्रग्धरा—इस वर्ण के प्रत्येक चरण में २१ अक्षर होते हैं। अर्थात् एक मगण एक रगण एक भगण एक नगण और तीन यगण का होना आवश्यक है। इसका स्वरूप इस प्रकार का होगा।[९] SSSS ।SS ।।। ।।S SIS SIS SIS उदाहरण—

---

१ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द शास्त्र पृ० ५१
२ मा० सु० पृ० ५११
३ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ५२
४ मा० अयो० पृ० २५३
५ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ५३
६ मा० उ० पृ० ६६७
७ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ५३
८ मा० अरण्य पृ० ४६८
९. रघुनन्दन शास्त्री हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ५३

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं ।
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ॥
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं ।
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥[1]

(१०) भुजंग प्रयात—इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में चार यगण होना आवश्यक है। इस वृत्त के प्रथम चतुर्थ सप्तम और दशम् वर्णों का लघु होना आवश्यक है। इसके प्रत्येक चरण का रूप यह होगा।[2] ISS ISS ISS ISS
उदाहरण—

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं ॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥[3]

(११) तोटक—इसका उदाहरण मानस में इस प्रकार उपलब्ध होता है।

जय राम रमारमनं समनं । भव ताप भयाकुल पाहि जनं ।
अवधेस सुरेस रमेस विभो । सरनागत मागत पाहि प्रभो ॥[4]

संस्कृत वृत्तों की इस संक्षिप्त चर्चा के उपरांत अब मानस के दोहा सोरठा चौपाई हरिगीतिका त्रिभंगी आदि की विशेषताओं पर भी कुछ विचार विवेचना करना अपेक्षित है।

प्रबन्ध प्रवाह में दोहा सोरठा बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह छन्द प्रबन्ध के धारा प्रवाह का संयम रखने के निमित्त जहाँ विश्राम देने का भी कार्य करता है वहाँ वस्तुतः मार्मिक स्थलों का नियमन अथवा आध्यात्मिक दार्शनिक एवं तात्त्विक सिद्धान्त दिखाते हैं। कहीं प्रबन्ध कथा प्रवाहित रखने के हेतु सूक्ष्म वस्तु उपस्थित करने का अवसर भी प्रदान करते हैं। कहीं विस्तृत कथा का सार एकत्रित कर उसकी झलक देते हैं। यहाँ नहीं सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर्जगत एवं बाह्य दृश्यों का चित्र भी इन्हीं दोहों में दृश्यों से अब तक वर्णन करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। मानस प्रसंग में ऐसा एक भी दोहा और सोरठा न मिलेगा जो अपने पेट में रक्खी हुई वस्तु को प्रसन्न व्यंजना न करता हो। यह तो महाकवि अपने विषय को किसी भी रूप में बाँध सकता है पर दोहा और सोरठा को प्रसंगानुरूप रखने का कारण कवि राज की विश्राम दायिनी प्रवृत्ति ही है।

चौपाइयों तथा कुछ अन्य छन्दों के प्रवाह में कथानक के साथ बढ़ते हुए पाठक को कुछ विश्राम की भी अपेक्षा होती है। इसकी पूर्ति दोहा या सोरठा से की गई है। विश्राम के बाद कथा प्रवाह फिर नवीन गति से उत्तरोत्तर अग्रसर रहता है और

---

१ मा० उ० पृ० ९८७
२ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश पृ० ५४
३ मा० उ० पृ० ०६६
४ मा० उ० पृ० ९६८

उसमें नीरसता नहीं आने पाती। मंगलाचरण के संस्कृत छन्दों के पश्चात भी विश्राम के लिये एक दोहा या सोरठा आया है। तदनन्तर चौपाइयों की धारा बहती है और आठ अर्धालियों की लड़ी बन जाने पर एक दोहा या सोरठा आ जाता है यद्यपि विशेष रूप से इसी क्रम का निर्वाह हुआ है फिर भी कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहाँ ७ ९, १० या इससे भी अधिक अर्धालियों के बाद विश्राम आया है। उत्तर काण्ड में तो प्रायः १६ अर्धालियों के उपरान्त दो या तीन दोहे अथवा दो दोहे का विश्राम पड़ता है। लक्ष्मण के सप्त प्रश्न के प्रसंग में लगभग ४ अर्धालियों के बाद दोहा आया है। जिन प्रसंगों में चौपाइयों की अधिक संख्या के उपरांत विश्राम आया है उन्हें विचारपूर्वक देखने से पता चलता है कि यदि इतना अधिक विस्तार न करके बीच में ही विश्राम रख दिया जाता तो वर्णन में अपूर्णता आ जाती और वह खटकने वाला हो जाता। ऐसी ही उपयुक्तता के हेतु कहीं-कहीं चौपाइयों में कथा प्रवाह को गति तब तक बढ़ाई ही गई जब तक वह पूर्णता को नहीं पहुँची। प्रवाह के नियम की पूर्णता के हेतु आठ अर्धालियों के बाद विश्राम उपस्थित करने का सामान्य नियम कई प्रसंगों में छोड़ दिया गया है।

गोस्वामी जी ने अपनी चौपाइयों के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि भाव प्रतिबिंब की जितनी प्रत्यक्ष और सजीव मूर्ति इनमें दृष्टिगोचर हो सकती है उतनी और किसी भी अन्य छन्द में नहीं। प्रबन्ध अन्तर्गत कोई भी ऐसी वस्तु या व्यापार नहीं है जो चौपाइयों की माला में संग्रथित न हो। यह दूसरी बात है कि इस माला को विशेष मनोरञ्जक बनाने के हेतु अन्य छन्द भी पिरोये गये हों। एक ही छन्द चौपाई में श्रुति नाद और शैली की विभिन्नताओं के द्वारा कवि ने नाना प्रकार के वातावरणों का सफल अंकन किया है। अनेकानेक चौपाइयों की मात्राओं में प्रयुक्त स्वरों और व्यंजनों की नाद श्रुति में ऐसा उत्तम आरोह या अवरोह है कि वे गायकों के लिये भी उपकारक सिद्ध होती हैं। फलतः अनेक बाजा के साथ उन्हें गाते भी हैं। इनका संगीतत्व स्वीकार करने में हमें कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। क्योंकि प्रत्येक स्थल पर गोस्वामी जी ने अपने को रामचरित का गायक भी कहा है।

हरिगीतिका का प्रयोग भी प्रबन्ध के सभी काण्डों में किया गया है। संख्या की दृष्टि से सर्व प्रथम स्थान है चौपाई का। द्वितीय दोहा सोरठा का और तृतीय हरिगीतिका। गोस्वामी जी की चौपाइयों की मुख्य विशेषता के सम्बन्ध में ऊपर संकेत किया जा चुका है कि यह श्रुति नाद और शैली के सहारे नाना प्रकार के वातावरण की सृष्टि करती है। यही बात उनके हरिगीतिका छन्द के भी विषय में कही जा सकती है। उनके हरिगीतिका के छन्द प्रयोग की विलक्षणता यह है कि जहाँ वे किसी भाव व्यापार या परिस्थिति का चित्र पूर्णतया साकार और प्रभावोत्पादक बनाना चाहते हैं वहाँ चौपाइयों की धारा संगठित कर उसे प्रत्यक्ष कराने के हेतु हरिगीतिका छन्द उपस्थित करते हैं। हरिगीतिका में प्रसंग की शृंखला अभंग रखने के हेतु उसके प्रथम चरण में उसके ऊपर की अन्तिम अर्धाली का जो अन्तिम अंश गृहीत

रहता है । यह छन्द द्वारा प्रस्तुत किये गये चित्र को पूर्ण प्रवाह के साथ रखता किन्तु रोचकता के साथ मिलाये रहता है । एक उदाहरण लीजिये । राम रावण युद्ध में — रावण से दुखी हो :—

हाहाकार करत सुर भागे ।[1]

तब मधुर :—

बिकल देखि सुर अंगद भाग । पकरि लात महि भूमि गिरावे ॥[2]

हरिगीतिका :—

महि भूमि पारेउ लात मारेउ बालि सुत प्रभु पहि गयो ॥[3]

छन्द के पूर्व की अन्तिम चौपाई का अन्तिम अंश महि भूमि गिरावे इसी पद से ही आरम्भ होकर छन्द प्रवाहित होता है । और कवि का अभीष्ट चित्र भी उपस्थित करता है । छन्द के इस ढंग से प्रयोग करने का परिणाम यह नहीं हुआ कि छन्द अस्वाभाविक हो गया है । प्रत्युत यह उपर्युक्त चौपाइयों के प्रवाह में प्रवाहित हो स्वाभाविकता सा देता है । साथ ही यह एक विचित्र चित्र की भी झलक देता है । प्रत्येक कांड की समाप्ति के उपरान्त जब कि विशेष विश्राम की अपेक्षा होती है । तो हरिगीतिका और दोहे का मनोहर जोड़ा देखते ही बनता है । यद्यपि यह बताना दुस्तर है कि अमुक वर्णन विषय के प्रकाशनार्थ हरिगीतिका विशेष उपयुक्त है । तथापि बाल कांड में पार्वती एवं जानकी के विवाह के प्रसंग में इस छन्द की बहुलता दृष्टिगोचर हो जाती है । इसी प्रकार स्तुति के प्रसंग में भी । इस आधार पर कहा जा सकता है कि विशेष उल्लासमय प्रसंग में गोस्वामी जी को इस छन्द का विशेष प्रयोग पसन्द था ।

चौपैया त्रिभंगी और प्रमाणिका छन्दों का प्रयोग अनेक स्थलों में नहीं है । इसके उपर्युक्त[4] स्थलों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि प्रथम प्रयोग स्थल पर यह वैसे ही रमणीय लगते हैं जैसे गगन मण्डल पर इन्द्र धनुष । उस त्रिभंगी छंद के प्रत्येक चरण में जो कई विराम पर्व पड़ते हैं उनके कारण इनमें प्राकृतिक भावा वेग द्योतन की असीम क्षमता है । इसी से इन छन्दों का प्रयोग कवि ने ऐसे ही प्रसंगों में किया है जहाँ बिना किसी अपवाद के हमारी वाणी आनन्दातिरेक में प्रेम विभोर हो जाय । इन छन्दों में आनन्दोल्लास की साकार प्रतिमा दृष्टिगोचर होती है । जैसे आनन्दातिरेक से हृदय उछलने लगता है वैसे ही यह छन्द भी अपने वातावरण के अपार आनन्द अथवा भावातिरेक के भाव में उछलते और अठखेलियाँ करते चलते हैं

---

१ मा० सं० पृ० ६६०

२ मा० सं० पृ० ६६०

३ मा० सं० पृ० ६६०

४ देखिए मानस बाल कांड—दोहा १९१ के बाद ।

उनकी मति के साथ हमारे हृदय का तादात्म्य हो जाता है और भावावेश में हमें आत्मविस्मृत सी हो जाती है।

> भए प्रगट कृपाला दीनदयाला⋯ ⋯तेम न परहिं भवकूपा।
> वही बाल कांड दोहा १९० के आगे।
> परसत पद पावन सोक नसावन⋯ ⋯भई पति लोक अनन्द भरी।
> वही अरण्य दोहा ३ के बाद।
> नमामि भक्त वत्सलं⋯ ⋯स्वदीय भक्ति संयुतम्।

तोटक और भुजंगप्रयात की उपयुक्तता उनकी सजीवता और सौन्दर्य उनमें की गई स्तुतियों में ही देखते बनता है। ग्रंथारम्भ में पहले का प्रयोग केवल तीन स्थलों पर किया गया है।[1] और दूसरा सिर्फ एक स्थान पर। तोमर छन्द का प्रयोग प्रायः युद्ध वर्णन में बहुत उपयुक्त माना गया है।[2] यहां युद्ध का संकुल वातावरण उसकी भयोत्पादकता विद्रूपता वीभत्सता और इसी प्रकार के अन्यान्य व्यापारों से हृदय को झुरझुरी चढ़ाने वाला आँखों को चमकाने वाला युद्ध वर्णन नितान्त आवश्यक है। वहीं हमारे कवि ने तोमर छन्द का प्रयोग किया है। नीचे केवल तोमर के दो चरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

> तब चले बान कराल फुंकरत जनु बहु ब्याल।
> कोपेउ समर श्री राम चल बिसिख निसित निकाम।
> ⋯ ⋯ ⋯कट करहिं कठिन कराल।[3]
> ⋯ जब कीन्हतहिं पाखंड।
> भए प्रगट जंतु प्रचंड
> बैताल भूत पिसाच।
> कर धरें धनु नाराच।
> ⋯⋯तहि मध्य कोसल राज॥[4]

छन्द के यह चार चरण साँप की फुफकार की ध्वनि उत्पन्न करते हुए कवि के अभिप्रेत वातावरण की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। उसे स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं। ग्रन्थकार ने उपर्युक्त दो ही उदाहरण ऐसे हैं जहाँ इस छन्द का प्रयोग युद्ध वर्णन में किया है। एक तीसरा प्रसंग भी है।[5] जहाँ उन्होंने तोमर में ही स्तुति की

---

1 देखिए मानस बाल्हा लंका कांड ११ और ११४ के बाद का छन्द तथा उत्तर कांड दोहा १३ के बाद का छन्द।
2 मा० उत्तर दोहा १०७ के आगे का छन्द।
3 मा० अरण्य दोहा १९ चौपाई १ ११
4 मा० लंका दोहा १ ० चौपाई १–६
5 मा० लंका दोहा ११२ चौपाई १–१–१

मधुर ध्वनि भर कर यह भी दिखला दिया है कि कुशल कलाकार विपरीत छन्द को भी अपने विषयानुरूप बना सकता है।

मात्रिक छन्द—

१—चौपाई
२—दोहा
३—सोरठा
४—चौपैया
५—डिल्ला
६—तोमर
७—हरिगीतिका
८—त्रिभंगी

चौपाई—

इस चौपाई में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १६ मात्राओं का होना अनिवार्य है। चरणान्त में जगण और तगण न हो।[1] गोस्वामी जी ने विलासित तामरस स्वागता अनुकूला डिल्ला चन्द्रमालिनी विद्युन्माला दोधक भ्रमर और चम्पक माला इत्यादि छन्दों को भी परिगणना चौपाई छन्द में ही की है। वैसे भी हा मानस में १६ मात्राओं से युक्त चौपाइयों का ही बाहुल्य है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु वियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥[2]

दोहा—

इस छन्द में ४ चरण होते हैं प्रथम और तृतीय चरण में १३ १३ मात्रायें तथा द्वितीय और चतुर्थ में ११ ११ मात्रायें होती हैं।[3]

पाहि नाथ अवधेस मैं जितेहु चराचर झारि।
तासु सूल मैं पा करि हरि पावेहु प्रिय नारि॥[4]

गोस्वामी जी ने अपने ग्रंथों में अनेक ऐसे दोहे लिखे हैं जिनके प्रथम और द्वितीय चरण में १२ १२ मात्रायें हैं उदाहरण —

विनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभा सिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात॥[5]

दोहे को उलट देने से सोरठा बन जाता है।

---

१ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० २१२
२ मा० अयो० पृ० ९६५
३ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ११२
४ मा० सु० पृ० ८६२
५ मा० लं० पृ ९७६

सोरठा—

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रथम और द्वितीय चरण में ११, ११ और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में १३, १३ मात्रायें होती हैं।[1] जैसे —

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥[2]

सोरठे को पलट देने से दोहा बन जाता है।

चौपैया—

इस छन्द में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण ३०, ३० मात्राओं का होता है १०, १८ और १० वीं मात्राओं पर यति होती है।[3] जैसे:—

सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई॥
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥[4]

त्रिभंगी—

इस छन्द के ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १६, १६ मात्रायें होती हैं। चरणान्त में जगण का होना आवश्यक है।[5] जैसे:—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन॥[6]

तोमर

तोमर छन्द के ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १२, १२ मात्रायें होती हैं। चरणान्त में गुरु लघु का होना आवश्यक है।[7] जैसे:—

जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥[8]

हरिगीतिका—

इस छन्द में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें होती हैं। १६वीं

---

१ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५२
२ मा० बा० पृ० २
३ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५५
४ मा बा० पृ० १६०
५ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५६
६ मा० लं० पृ १७६
७ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५६
८ मा लंका पृ० ५६४

और २८वीं मात्राओं पर यति होती है।[1] गोस्वामी जी ने कहीं १४वीं मात्रा पर भी यति दी है। चरणांत में गुरु लघु वर्ण आये हैं।

> उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
> पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
> तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
> रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥[2]

त्रिभंगी—

इस छन्द में ४ चरण होते हैं प्रत्येक चरण में ३२ ३२ मात्रायें होती हैं। १०वीं १८वीं २७वीं और ३२वीं मात्राओं पर यति होती है।[3] जैसे —

> ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
> मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
> उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
> कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥[4]

कवितावली में पांच प्रकार के छन्द उपलब्ध होते हैं।

१—सवैया
२—कवित्त
३—घनाक्षरी
४—छप्पय
५—झूलना

जिसके लक्षण और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सवैया—

यह वर्णवृत्त है इसमें ४ चरण होते हैं। वर्ण विचार से सवैया के १० प्रकार हैं। जैसे —

(१) मदिरा—जिसमें ७ भगण और एक गुरु हो।
(२) किरीटी—जिसमें ८ भगण हों।
(३) मालती—जिसमें ७ भगण और दो गुरु हों।
(४) चित्रपदा—जिसमें ७ भगण और एक गुरु और एक लघु हो।
(५) मल्लिका—जिसमें १ लघु और ७ भगण हों।
(६) माधवी—जिसमें १ लघु ७ भगण और दो गुरु हों।

---

१ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५६
२ मा० अयो० पृ० ३०१
३ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५६
४ मा० बा० पृ० ११६

(७) दुर्मिलिका—जिसमें २ लघु ७ जगण और एक गुरु हो। अथवा जिस में ८ सगण हों।

(८) कमला—जिसमें दो लघु ७ भगण और २ गुरु हों।

(९) मंजरी—जिसमें एक लघु ७ भगण १ लघु और १ गुरु हो।

(१०) ललिता—जिसमें दो लघु ८ भगण हों अर्थात् जिसमें ८ सगण और दो गुरु हों।

(११) सुधा—जिसमें दो लघु ७ भगण १ गुरु और १ लघु हो।

(१२) अलसा—जिसमें ७ भगण और १ रगण हो।

उदाहरण के लिये कवितावली में किरीटी मालती दुर्मिलिका और कमला विशेष रूप से मिलते हैं जिनके उदाहरण कवितावली से प्रस्तुत किये जा रहे हैं:—

किरीटी:—

जाकें बिलोकत लोकप होत बिसोक लहैं सुरलोक सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाय कहै तुलसी तू लजाहि न मागत कूकर कौरहि।
जानकीजीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि॥[1]

मालती—

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥[2]

दुर्मिलका—

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरें।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि करें।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करें।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरें।[3]

कमला—

पद कोमल स्यामल, गौर कलेवर राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन सीस जटा सरसीरुह लोचन सोन सुहाए॥
जिन देखे सखी सतभायहु तें, तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर बधू बिधुबैनी समेत सुभाए सिधाए॥[4]

---

१ कवितावली—उत्तर कांड—छंद सं० २९
२ कवितावली—बाल कांड—छं० सं० १७
३ कवितावली—बाल कांड—छं० सं १७
४ कवितावली—अयोध्या कांड—छं० सं० २४

गोस्वामी जी ने किन्हीं छन्दों की रचना में उपयुक्त नियमों की अवहेलना भी कर दी है। उदाहरण स्वरूप उत्तर कांड के छंद संख्या १२ १४ और ४६ दिये जा सकते हैं जिनके चारों चरणों में अक्षर का गण समान नहीं है।

छप्पय—

इस छन्द में ६ चरण होते हैं जिनमें प्रथम ४ चरण रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के रहते हैं। यह मात्रिक छन्द है रोला में २४ २४ और उल्लाला में २८, २८ मात्रायें होती हैं। उल्लाला में १५ मात्राओं पर प्रथम और २८ वीं मात्रा पर द्वितीय यति होती है।[1] जैसे

दिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बे समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल बिकल दिगपाल चराचर।
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरविमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर॥
चौंकि बिरंचि संकर सहित कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड जबहि राम सिवधनु दल्यो॥[2]

कवित्त—

यह छन्द चार चरण का होता है। प्रत्येक चरण में ३० या ३१ अक्षर होते हैं। जिसमें १६ अक्षरों के अनन्तर पहली यति होती है। इस छन्द में मात्रा अथवा गण का विचार नहीं रहता।[3]

सुन्दर बदन सरसीरुह सुहाए नैन
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन लसत सुचि कर सर
तूने कटि मुनिपट लूटक पटनि के॥
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि के
बिधि बिरचे बरूथ बिद्युत छटनि के।
गोरे को बरन देख सोनो न सलोनो लागे
सांवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के॥[4]

घनाक्षरी—

इसमें चार चरण होते हैं। गण अथवा मात्रा का विचार इस छन्द में भी नहीं होता। प्रत्येक चरण में ३० ३२ या ३३ अक्षर तक होते हैं।[5] जैसे

---

१ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश
२ कवितावली—बाल कांड—छं० सं० ११
३ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५४
४ कवितावली—अयोध्या कांड—छं० सं० १६
५ रघुनन्दन शास्त्री—हिन्दी छन्द प्रकाश—पृ० ५५

जलजनयन जलजानन, जटा है सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदोत है।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी
मुनिपट धारे उर फूलनि के हार है॥
करनि सरासन सिलीमुख निषंग कटि
अतिही अनूप काहू भूप के कुमार है।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार है॥[1]

झूलना—

यह मात्रिक छन्द है इसके भी चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में ३७ मात्रायें होती हैं।

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि
दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि परबाम बिधि बाम तेहि राम सों
सकत संग्राम दसकंध काँध्यो॥
समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो॥[2]

गीतावली और विनयपत्रिका में गोस्वामी जी ने उत्तमोत्तम गीतिकायें लिखीं। इनकी राग रागिनियों के वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं।

उपसंहार—

गोस्वामी जी की छन्द धारा मानो संस्कृत वर्णवृत्तों के शुभ्र हिम शिखा खंड से प्रसूत होकर लोकभाषा की सम भूमि में सहज स्वाभाविक गति से प्रवाहित होती है। मार्ग में दोहा सोरठा के मोड़ पर विश्राम करती हुई भावावेग रूप वायु के झकोरों से विलोड़ित होकर अपनी मन मोहक लहरों से सजीव चित्र दिखाने के हेतु हरिगीतिका चौपाई आदि के क्षेत्र में अपनी इठलाहट दिखलाती कल-कल नाद करती हुई उत्तरो-त्तर राम सागर में लीन हो जाती है।

यह स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने काव्य की स्थायी भाव से उपासना करने के विचार से छन्दों के बदलने और अपनी रचना चातुरी दिखलाने की चेष्टा नहीं की, प्रत्युत प्रवाह के निर्वाह के हेतु छन्द योजना सर्वत्र एक सी रक्खी है।

महाकवि गोस्वामी जी छन्द शास्त्र के पारंगत पंडित थे। कई स्थानों पर तो

---

१ कवितावली—अयोध्या कांड—छं० सं० १४
२ कवितावली-लंका कांड—छं० सं० ४ पृ० १८१

इनका पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। चौपाई दोहा सोरठा आदि की रचना करते समय तो ज्ञात होता है कि वाणी इनकी वाणी पर नृत्य करती थी। गोस्वामी जी द्वारा विरचित समस्त ग्रंथ छन्द शास्त्र के नियमों से पूर्णतया सुसज्जित हैं। महाकवि केशव की भाँति ज्ञान प्रदर्शन का भाव इनकी छन्द योजना में लक्षित नहीं होता।

हिन्दी छन्दों में तुक का मिलाना उसके प्रारम्भिक काल से ही आवश्यक माना गया है। यह एक गवेषणीय बात है कि हिन्दी में छन्दों में तुक मिलाने की प्रथा कब से चली। संस्कृत से यह नियम आ नहीं सकता क्योंकि संस्कृत में तुक मिलाने की अनिवार्यता है नहीं। जान पड़ता है प्राकृत और अपभ्रंश काल से तुक मिलाने की प्रथा निकल पड़ी है। इसमें तो सन्देह नहीं कि तुक छन्द का एक आवश्यक अंग है। क्योंकि इससे छन्द का श्रुति माधुर्य बढ़ जाता है और वह प्रभावोत्पादक भी हो जाता है।

फ़ारसी में भी तुक बन्दी का प्राधान्य है। फ़ारसी से यह नियम उर्दू में आया। उर्दू में भी तुक का नियम बड़ी कड़ाई से पालन किया जाता है। अंग्रेज़ी कविता में भी पहले तुकों की प्रधानता थी। शेक्सपीयर ने अपने को तुक बन्धन से मुक्त किया। फिर तो बेतुकी कविताओं का प्रचलन बहुत ज़ोर से चल पड़ा।

संस्कृत में यद्यपि तुकों का बन्धन नहीं है। पर जहाँ कहीं किसी कवि ने तुक मिला दिया है वहाँ उसके छन्द की सरसता और भी बढ़ गई है। आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण के सुन्दर काण्ड में कुछ अन्त्यानुप्रास श्लोक लिखे हैं। गोस्वामी जी को भी तुक मिलाने का अच्छा शौक जान पड़ता है। उन्होंने उत्तम कोटि के तुक मिलाने का ध्यान सर्वत्र ही रक्खा है। इससे भी उनके ग्रन्थों के प्रचार में बड़ा ही योग मिला है।

गीतावली के एक गीत में हाथ शब्द का प्रयोग हुए एक पंक्ति में उन्होंने तुकों पर अपना सहज अनुराग प्रकट किया है। हिन्दी में स्वर संयुक्त व्यंजन का तुक मिलाने की प्रथा प्रचलित है। केवल स्वर के तुक का मिलान तो उर्दू में चलता है। तुलसी ने तुक मिलाने में यद्यपि प्रचलित नियम का ही सर्वत्र अनुसरण किया है पर कवितावली में कुछ छन्द ऐसे भी मिलते हैं जिनमें स्वर के ही तुक मिलते हैं। जैसे :—

> ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे कर सायक लै।
> बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ अनमोल कपोलन की छबि है॥
> तुलसी असि मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै।
> स्रम सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महा तम तारक मै॥[१]

आजकल हिन्दी में भी अतुकान्त कविता होने लगी है। पर अभी तक उसका प्रचार बढ़ता हुआ दिखलाई पड़ रहा है। छन्दों के भी नये नये रूप निकाले गये हैं।

---

१ कवितावली—अयोध्या काण्ड—छं० सं० ११—पृ० १६४

पर ऐसे छन्द जब तक गाकर न पढ़े जायें तब तक इनमें कोई आकर्षण नहीं होता। अतः पद रचना में गुणों का प्रधानता अभी तो कायम ही दिखाई पड़ती है।

प्रवाहमयी गति भी छन्द का एक आवश्यक गुण है। उचित तो यही है कि प्रवाह को ही छन्द कहा जाय। प्रवाह की विभिन्नता से छन्द का स्वरूप तो बदल ही जाता है वह सुनने में भी प्रिय नहीं लगता।

गोस्वामी जी ने तो छन्दों की गति और प्रवाह पर बड़ा ही ध्यान रक्खा है। उनके छन्दों को पढ़ते समय जीभ अपने आप आगे को फिसलती चलती है। उन्होंने प्रत्येक छन्द के आगे का शब्द उससे मिलता जुलता ऐसा चुन कर रक्खा है कि उनके छन्द के स्वाभाविक प्रवाह में बड़ी ही सरलता आ जाती है। जैसे—

जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहां कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥[1]

जरा अन्तिम पंक्ति को ध्यान से पढ़िये। लगातार ह्रस्व वर्ण रख कर छन्द के प्रवाह को कितना स्निग्ध बना दिया गया है।

प्रवाह में व्याघात कहां होता है। जहाँ छन्द में कुछ मात्रायें बढ़ जाती हैं या यति भंग होता है। छन्द में जैसे प्रवाह की सरलता आवश्यक होती है वैसे ही प्रवाह में यति या विराम का अपने उचित स्थान पर होना भी आवश्यक है। तुलसी ने गति और यति में औचित्य का सर्वत्र ही ध्यान रक्खा है। फिर भी कहीं कहीं वे इनसे चूक से गये हैं।

मुनिवर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए।[2]

इससे उनके स्वाभाविक प्रवाह में रुकावट पड़ती है। छन्द की मात्रायें ठीक हों पर शब्दों का चुनाव ठीक नहीं तो भी प्रवाह में बाधा पड़ती है।

कहूँ कोऊ मैया कहीं मैं न मैया भरत की,
बलैया लेहूँ भैया तेरी मैया कैकेयी है।

—गीतावली

यह ३१ अक्षरों का छन्द है इसमें ३१ अक्षरों की गिनती ठीक होने पर भी शब्दों का संगठन ठीक नहीं है। इससे यह ठीक ठीक नहीं पढ़ा जा सकता। इसी प्रकार से:—

मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुवीर निपाता।[3]

इसमें असुर के पहले विराध शब्द कर दिया गया होता तो प्रवाह में अटक न पड़ती। यह बताना असंभव है कि गोस्वामी जी छन्द शास्त्र के प्रकांड पंडित थे उन्हें किस उद्देश्य से इस रूप में रहने दिया। क्योंकि यह उनका दोष नहीं कहा जा सकता।

---

१ मा० बा० पृ० १७२ १७३
२ मा० अयो० पृ० ४१८
३ मा० अरण्य० पृ० ४७२

उनके जैसे सरस्वती को अपने आँचल में बसाने वाले कवि सम्राट के हेतु इनका कर लेना कोई मुश्किल न था। मेरी समझ में तो ऐसे प्रयोग में तुलसी के काव्य ने काम किया है जिससे काव्य की शोभा नहीं घटती। प्रत्युत निखर उठती है।

संवाद कला—

संवादों का वास्तविक क्षेत्र तो नाटक है। नाटक में ही संवादों का महत्व भी है। संवादों के ही कारण नाटक बनते व बिगड़ते हैं। काव्य उपन्यास या कहानी में संवाद या कथोपकथन का साधारण महत्व होता है फिर भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। यदि किसी कथा काव्य में बीच बीच में संवादों की योजना की जावे तो उसमें जीवन आ जाता है। केवल वर्णन करते जाने या कथा लिखते जाने से रचना में कोई चमत्कार नहीं आ पाता। वह मन को छू नहीं पाती। इस कारण नाटकों का स्थान सर्वोच्च माना गया है। क्योंकि उनमें संवादों की प्रधानता के कारण विशेष रोचकता की वृद्धि हो जाती है। पात्रों का चरित्र निखर आता है।

मानस तो प्रधानतया संवाद काव्य है। यह पूरा काव्य ही उमा महेश संवाद काकभुशुंडि गरुड़ संवाद और भारद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद है। किन्तु संवाद से हमारा तात्पर्य कथा के पात्रों द्वारा कथा की धारा में जोड़ तोड़ के उत्तर से है। इस प्रकार का एक अत्यन्त सुन्दर संवाद कालिदास के कुमारसम्भव में वहाँ है जहाँ उमा और वटु रूप शिव में शंकर के रूप गुण और स्वभाव के सम्बन्ध में अत्यन्त युक्ति-युक्त उत्तर प्रति उत्तर दिये गये हैं।

मानस का प्रयोग आरम्भ से ही गोस्वामी जी के समय से ही नाटक के रूप में होता गया है। आज भी राम लीलाओं में सर्वत्र मानस के ही संवाद पात्रों से कहलाये जाते हैं। उनमें हेर फेर करने की आवश्यकता कभी भी नहीं समझी गई। इन संवादों के कारण लीलाओं की रोचकता में भी कमी नहीं आई। यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि मानस की योजना नाटकीय ढंग से की गई है। इसी कारण उनके संवादों में जोड़ तोड़ के उत्तर प्रति उत्तर और चमत्कार का भी समावेश हो गया है। तुलसी की एक दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने संवादों में जिन उक्तियों का समावेश किया है वे केवल कवि समाज में प्रचलित उपमान मात्र नहीं हैं। वरन् उनमें जीवन के व्यापक क्षेत्र में पाये हुये लोकतत्त्व प्रचलित हैं। इससे उनकी उक्तियाँ तो बहुत ही सजीव हो उठी हैं। और इनके कारण काव्य चमक उठा है। संवादों में जहाँ भी ऐसे अवसर आये हैं वहाँ संवाद प्राणवान हो गये हैं। निम्नलिखित संवादों में—

१—नारद राम संवाद
२—लक्ष्मण राम संवाद
३—लक्ष्मण परशुराम संवाद
४—मंथरा कैकेयी संवाद

५—कैकेयी दशरथ संवाद

६—भरत राम संवाद

७—हनुमान रावण संवाद

८—सीता राम संवाद

९—अंगद रावण संवाद

कवि ने जो शैली अपनाई है उससे संवादों में जीवन आ गया है। यह जीवन लाने के लिये ही उन्होंने प्रसन्न राघव और हनुमन्नाटक आदि नाटकों से संवाद लेकर उन्हें और भी अधिक सशक्त बनाकर अपने काव्य में समाविष्ट कर लिया।

तुलसी की काव्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण देखना हो तो उनके संवाद पढ़ना देखिये। संवाद तो गोस्वामी जी के बड़े ही मर्मस्पर्शी व हृदय ग्राह्य हैं। पढ़ते ही पाठक को रसमग्न कर देते हैं। परशुराम राम संवाद कितना स्वाभाविक है जिसके पढ़ते ही पाठक की समस्त सहानुभूति राम में केन्द्रित हो जाती है। इसी प्रकार अयोध्या कांड में कैकेयी मंथरा संवाद भी बड़ा सजीव है। चित्रकूट में भरत राम संवाद भी ऐसा ही है। लंका कांड में हनुमान संवाद भी बहुत रोचक है।

संवाद मूलक उपाख्यानों में जिस ढंग से एक पक्ष को प्रबल और दूसरे पक्ष को निर्बल कर दिखलाना होता है। इनकी शैली भी गोस्वामी जी की निराली है। अंगद और रावण के संवाद को आप पढ़िये। अंगद की वीरता धृष्टता और निर्भीकता को इतना उच्च स्थान प्रदान किया है कि रावण के ही दरबार को गंदूल बना दिया। इतने बड़े प्रतापी नरेश के मुकुटों को पृथ्वी पर पतन कराकर उनमें से ४ को प्रभव राम के पास भेज देते हैं। पर रावण से कुछ नहीं बन पड़ता। उपाख्यानों व संवाद कथाओं में हम उत्तर प्रति उत्तर की विचित्र शैली देखते हैं।

हाँ तो तुलसी के मानस का सर्वस्व है उसका सम्वाद। गोस्वामी जी ने यहाँ काव्य और भक्ति का जो रूप दिखलाया है उसके बारे में अभी कुछ कहा नहीं जायेगा अभी तो 'ज्ञान नयन निरखत मन माना' और सुठि सुन्दर संवाद वर विरचे बुद्धि विचार' पर ही कुछ कहा जायेगा। सोपान और घाट यहाँ तो मानस के प्रमुख स्थान हैं। इसमें भी पहले घाट और फिर सोपान अच्छा तो घाट है क्या सुठि सुन्दर संवाद ही न। अतः पहले इन संवादों पर ही ध्यान दीजिये। मानस में तीन संवादों का नाम प्रत्यक्ष है।

१—याज्ञवल्क्य और भरद्वाज

२—शिव पार्वती

३—काकभुशुण्डि और गरुड़

किन्तु चौथे के सम्बन्ध में कुछ विचार है। वक्ता तो तुलसीदास ही हैं पर श्रोता कौन है यदि कोई नहीं तो तुलसी का मन और यदि कोई श्रोता है तो वह समाज या पाठक।

क्या उनके भावों में तीव्रता और गहराई है। इस प्रश्न का उत्तर यही ठीक है कि यदि उनके विचारों और भावों में तीव्रता और गहराई न होती तो वे इतने लोकप्रिय कैसे होते। आपकी कृतियों में प्रेम भाव उत्कर्ष को पहुँचा हुआ है। यह लौकिक नहीं अपितु अलौकिकता के आवरण में आवेष्टित है। यह प्रेम भाव है चातक और मेघ का —

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास॥[1]

चातक की प्यास निरन्तर बनी रहे इसी में उसका गर्व है। प्रिय के साथ दुर्व्यवहार से भी वह विचलित होने वाला नहीं है। संसार में सभी अपने सुखों के निमित्त प्रयत्न करते हैं और साथ ही फल प्राप्ति की भी उत्कट कामना रखते हैं। किन्तु धन्य है चातक और मेघ का प्रेम जिसके अन्दर न तो सुखों के हेतु प्रयत्न है और न फल की अभिलाषा। अब इस प्रेम की अनन्यता का एक स्वरूप देखिए।

बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच॥[2]

अतः चातक का प्रेम कितना पवित्र और उत्कर्ष पूर्ण है।

मानस की रचना में गोस्वामी जी की दृष्टि काव्य पर भी रही है। इसे तो मानना ही होगा। कारण कि मानस का श्रीगणेश ही शब्दों के अर्थों को लेकर हुआ है। वाणी और विनायक को जैसे एक में जोड़ दिया गया है। वैसे ही इसमें वर्ण अर्थ और रस छन्द आदि का भी उद्घाटन कर दिया गया है। और मंगल का विधान भी। तात्पर्य यह है कि गोस्वामी जी ने काव्यमय वाणी को अपनाया है निरी वाणी को नहीं।

गोस्वामी जी ने मानस को जिस ढंग से रचा है उसका ढंग भी निराला है। उसकी तुलना संस्कृत के किसी भी काव्य ग्रंथ से नहीं की जा सकती है। यों मानस वाल्मीकीय रामायण की परम्परा में होने पर भी उसकी पद्धति उससे सर्वथा भिन्न है। उसमें पुराणों की शैली और आगमों का अनुगमन भी है। इतना सब होते हुए मानस की कथा ऐसी नहीं हुई है कि कहीं भी उसने कथा का नाम भी नहीं लेना। तुलसी ने जो (कथा विशेष बनाई) वह आज कहीं भी वह नि बचना कठिन हो रहा। यह मानस की कथा लोगों के हृदय में इतना घर कर चुकी है कि लोग उसको सच्चा मानना समझते हैं और उसकी विचित्रता का सत्य मान चुके हैं। मानस का कथावस्तु में जो परिवर्तन हुआ है वह काव्य की दृष्टि से हुआ है। जैसे कथा के स्वरूप उतर जाने से काव्य के उत्कर्ष में अवश्य प्रभविष्णुता आ जाती है और उसके सहारे ही ऐसा लगता कि काव्य

1 दोहावली दो० सं० २७७ पृ० १२६
2 दोहावली दो० सं० १०२ पृ० १३८

में संविधान भी बड़े महत्व का होता है। प्रबन्ध की शोभा तो वस्तु के समुचित संविधान में ही खरी होती है। नहीं तो उसका उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है।

मानस वैसे तो सात सोपानों में विभक्त है किन्तु यदि ध्यान से देखा जावे और उसकी भूमिका के सहारे उसको समझने का श्रम किया जावे तो यह स्पष्ट प्रस्तुत होगा कि तीन खण्ड हैं। मानस का प्रथम खंड तो भरत चरित्र तक है और दूसरा रावण वध तक तीसरा खंड काकभुशुण्डि और गरुड़ संवाद है। सारांश यह है कि गोस्वामी जी ने मानस की कथा और भावना को इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया है कि रचना और काव्य की दृष्टि से भी इन तीनों खण्डों का अपना अलग अलग महत्व बना रहता है। काव्य की दृष्टि से प्रथम खण्ड ही सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। हृदय का मर्म भाव इसी में खुला है। दूसरे खण्ड में हृदय की अपेक्षा बुद्धि की प्रधानता है। इसमें व्यवहार की बात ही अधिक कही गई है और तृतीय खण्ड में तो परमार्थ ही है। यदि इसी को सूत्र रूप में कहा जावे तो कह सकते हैं कि पहले में भाव और दूसरे में विचार की और तीसरे में विवेक की प्रधानता है।

प्रथम खण्ड में विपत्ति के तीन अवसर आते हैं।

१—धनुष यज्ञ
२—कैकेयी का वरदान
३—भरत का आग्रह

धनुष यज्ञ के अवसर पर जिस व्याकुलता के दर्शन हमें होते हैं वह अन्यत्र नहीं मिलती। तुलसी ने इस अवसर पर व्याकुलता के भाव की व्यंजना बड़े ही मनोहारी और सरस ढंग से की है। इस स्थल में शोक का प्राधान्य विशेषकर जनक के परिवार में जनक सीता और उनकी माता में ही देखने को मिलता है। परन्तु आगे चलकर राम वन गमन से जो अयोध्या में संकट पड़ा उसमें सभी दुखी हो रहे हैं घर घर में रुदन मचा हुआ है। इसके उपरान्त संकट यह आया कि न तो भरत ने राज्य ही लिया और न राम जंगल से ही लौटाये जा सके। इस संकट को राम की चरणपादुकाओं ने ही दूर किया। इन तीनों अवसरों पर गोस्वामी जी ने भावों को बहुत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी जैसी सफलता और किसी को नहीं मिल सकी। व्यथा की शोक विह्वलता का ऐसा मार्मिक चित्रण नहीं मिलेगा। हनुमान बाहुक में गोस्वामी जी के भाव वर्णन में तीव्रता है। गीतावली में धनुष यज्ञ राम वन गमन सीताहरण शुक सारिका संवाद आदि उसकी काव्य संपत्ति हैं। गोस्वामी जी के भाव वर्णन की यही विशेषता है कि वह अपनी इच्छा अनुसार पाठक को हँसाने और रुलाने में समर्थ है। अतः इसीलिये तो स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल उनके विषय में कहते हैं।

कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे। इस शक्ति की परीक्षा का राम चरित से बढ़ कर विस्तृत क्षेत्र और नहीं मिल सकता है। जीवन स्थिति के इतने भेद और

नहीं दिखलाई पड़ते हैं। इस क्षेत्र में जो कवि सर्वत्र पूरा उतरता दिखलाई देता है उसकी भावुकता को और कोई भी नहीं पहुँच सकता। जो केवल दाम्पत्य रति में ही अपनी भावुकता प्रगट कर सकें वे पूर्ण भावुक नहीं कहे जा सकते। पूर्ण भावुक वही है जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें और उसे श्रोता या पाठक के सम्मुख अपनी शब्द शक्ति द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें। हिन्दी के कवियों में इस प्रकार की सर्वांगीण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में ही है जिसके प्रभाव से मानस उत्तरी भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है।[1]

इसके उपरान्त हम काव्य में भावों पर भी संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं।

भाव

जिन साधनों व वस्तुओं की अनुकूलता से हृदय में किसी रस का प्रादुर्भाव हो उन्हें भाव कहते हैं। जैसे—

> कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदयं गुनि।।
> मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।।[2]

यहाँ पर कंकन और किंकिनी की ध्वनि शृंगार रस के प्रादुर्भाव होने में सहायता दे रही है। अतः यह भाव है। भाव के ४ भेद हैं—

१—स्थायी भाव
२—विभाव
३—अनुभाव
४—संचारी भाव

स्थायी भाव—

रस का मूल स्थायी भाव है। जो किसी के भी हटाये न हटे स्थायी भाव होता है। जैसे—

> बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा।।
> मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए।।[3]

विभाव—जहाँ किसी वस्तु से किसी रस की उत्पत्ति हो अथवा रसास्वादन का अंकुर उत्पन्न हो वहाँ विभाव होता है। विभाव के भी २ भेद हैं।

१—आलंबन
२—उद्दीपन।

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—षष्ट संस्करण—पृ० ८४
२. मा० बा० पृ० १९९
३ मा० बा० पृ० १०५

आलम्बन—जिनके आलम्बन से मन में रसोत्पत्ति हो वह आलम्बन है। जैसे —

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥[1]

इसमें 'सिय मुख' आलम्बन है।

उद्दीपन— प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा।
सिय मुख सरिस देखि सुख पावा ॥[2]

यहाँ चन्द्रमा को देखकर सिय मुख की स्मृति हो आई अतः चन्द्र ही रस में उद्दीपन हुआ। उद्दीपन के भी दो भेद हैं :

१—प्राकृतिक
२—मानुषी

प्राकृतिक— घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥[3]

यहाँ पर जो मेघ का गर्जन प्राकृतिक दृश्य है। जिसे सुनकर राम को सीता का स्मरण हो आया है। अतः घन गर्जन ही प्राकृतिक उद्दीपन है।

मानुषी— दीन्ह राम तुरत तेहि दीन्हा।
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥[4]

यहाँ सुग्रीव द्वारा प्राप्त जानकी के जो वस्त्र हैं उनको देखकर राम को सीता का स्मरण हुआ। अतः यह मानुषी उद्दीपन है।

अनुभाव—जिन बाह्य आकृति व चेष्टाओं से हृदयस्थ भाव प्रकट हों उन्हें अनुभाव कहते हैं। अश्रु, वक्र चितवन सात्विक भाव आलिंगन और चुम्बन आदि अनुभाव हैं। जैसे—

आलिंगन— राम सखा रिषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥[5]

चुम्बन— बार बार मुख चुम्बति माता।
नयन नेह जल पुलकित गाता ॥[6]

---

१ मा० बा० पृ० १९१
२ मा० बा० पृ० १९६
३ मा० कि० पृ० ५२४
४ मा० कि० पृ० ५१७
५. मा० अयो० पृ० ४०८
६ मा० अयो० पृ० २९६

संचारी भाव —

स्थायी भाव के सहायक होकर जो अन्य भाव उसकी पुष्टि मात्र करने वाले हैं वह संचारी भाव कहलाते हैं। इस प्रकार के भावों की संख्या ३३ है जिनमें से प्रत्येक के उदाहरण मानस से नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

ग्लानि— गरै गलानि कुटिल कैकेयी।
महि न बीचु बिधि मीचु न देई ॥[1]

दीनता— पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई।
भूतल परे लकुट की नाई ॥[2]

शंका— रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ।
उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥[3]

त्रास— जासु त्रास डर कहु डर होई।
भजन प्रभाव देखावत सोई ॥[4]

आवेग— अब जनि कोउ माखै भटमानी।
बीर बिहीन मही मैं जानी ॥[5]

मद— भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला।
सठ अजहूँ जिन्ह के उर साला ॥[6]

अमर्ष— इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं।
जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥[7]

उग्रता— जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी।
सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥[8]

औत्सुक्य—निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिय भुज बल खल दल जीति ॥[9]

---

१ मा० अयो० पृ० ४१४
२ मा० अयो० पृ० ४०६
३ मा० अयो० पृ० ४०
४ मा० बाल० पृ० १७८
५ मा० बाल० पृ० १७६
६ मा० लं० पृ० ६०२
७ मा० बाल० पृ० १८९
८ मा० बाल० पृ० १७७
९ मा० सु० पृ० ५११

चिन्ता— नीकें निरखि नयन भरि सोभा ।
पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ॥[१]

गर्व— करति मनहुँ मातु कुल कोरी ।
बलत सकति बल बीरज थोरी ॥
जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी ।
जौं सनमानहिं सेवकु मानी ॥[२]

प्रीत— आला मरमु कहुत प्रमामा ।
मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा ॥[३]

हर्ष— हरषे सब बिलोकि हनुमाना ।
नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥[४]

कुत्सिता— फोरै जोगु कपारु अभागा ।
भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥[५]

चापल्य—मोहन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ ।
नाहिं चले चितचोर सुख चखि मोहन सपटाइ ॥[६]

मोह— लीन्हि राय उर लाइ जानकी ।
मिटी महामरजाद ग्यान की ॥[७]

आलस्य—लरिका श्रमित उनींद बस सयन करावहु जाइ ।
अस कहि गे बिश्रामगृहँ राम चरन चितु लाइ ॥[८]

जड़ता— लछिमन अनुमान बनु भीती ।
पुलक चलै लता तरु पाती ॥[९]

विषाद— सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा ।
धीरजहू कर धीरजु भागा ॥[१०]

---

१ मा० बा० पृ० १८०
२ मा० अयो० पृ० ४०२ ४०३
३ मा० अयो० पृ० १८५
४ मा० सु० पृ० ५५६
५ मा० अयो० पृ० २६१
६ मा० बा० पृ० १४४
७ मा० बा० पृ० २११
८ मा० बा० पृ० २४७
९ मा० अरण्य० पृ० ४२७
१० मा० अयो० पृ० ३११

मूर्छा— अस कहि मुरुछि परा महि राऊ।
रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥[१]

व्याधि— एहिं कुरोग कर औषधु नाहीं।
सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥[२]

भ्रम— नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा।
सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥[३]

स्वप्न— सपनें बानर लंका जारी।
जातुधान सेना सब मारी॥[४]

लज्जा—गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥[५]

बोध— बंधु बंस तें कीन्ह उजागर।
भजेहु राम सोभा सुख सागर॥[६]

निर्वेद— अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजनु करौं दिन राती॥[७]

असूया— तब प्रभु नारि बिरहँ बलहीना।
अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ।
अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा।
सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥[८]

मद— रन मद मत्त फिरइ जग धावा।[९]

स्मरण — जब जब मातु करिहि सुधि मोरी।
होइहि प्रेम बिकल अति भारी॥[१०]

---

१ मा० अयो० पृ० १०२
२ मा० अयो० पृ० १८७
३ मा० अयो० पृ० ३२४
४ मा० सु० पृ० ५४७
५. मा० बा० पृ० १७८
६ मा० लं० पृ० ६११
७ मा० कि० पृ० ५११
८ मा० लं० पृ० ६००
९ मा० बा० पृ० १९८
१० मा० अयो० पृ० २६२

चिन्ता— नीकें निरखि नयन भरि सोभा।
पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥[1]

तर्क— फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी।
चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी।
जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥[2]

भीत— जाना मरमु नहात प्रयागा।
मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥[3]

हर्ष— हरषे सब बिलोकि हनुमाना।
नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥[4]

कुटिलता— फोरै जोगु कपारु अभागा।
भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा॥[5]

चापल्य—माखन करत चपल चित जब तब अवसरु पाइ।
नाथि चल निकसत मुख अति मोहत लपटाइ॥[6]

मोह— लीन्हि पायं उर लाइ जानकी।
मिटी महामरजाद ग्यान की॥[7]

आलस्य—अतिसय श्रमित मनोज बस सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्राम गृहँ राम चरन चितु लाइ॥[8]

जड़ता— लछिमन समुझाए बहु भाँती।
पूछत चले लता तरु पाँती॥[9]

विषाद— सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा।
धीरजहू कर धीरजु भागा॥[10]

---

१ मा० बा० पृ० १८०
२ मा० अयो० पृ० ४०२ ४०३
३ मा० अयो० पृ० ३५५
४ मा० सु० पृ० ५५९
५ मा० अयो० पृ० ३११
६ मा० बा० पृ० १४४
७ मा० बा० पृ० २३६
८ मा० बा० पृ० २४७
९ मा० अरण्य० पृ० ४२७
१० मा० अयो० पृ० ३२१

मूर्छा— अस कहि मुरछि परा महि राऊ।
रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥[१]

व्याधि— एहि कुरोग कर औषधु नाहीं।
सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥[२]

भ्रम— नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा।
सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥[३]

स्वप्न— सपनें बानर लंका जारी।
जातुधान सेना सब मारी॥[४]

लज्जा—गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥[५]

बोध— बंधु बचन तें चीन्ह उजागर।
मनउ राम सोभा सुख सागर॥[६]

निर्वेद— अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजनु करौं दिन राती॥[७]

असूया— तब प्रभु नारि बिरहँ बलहीना।
अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ।
अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा॥
सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥[८]

मद— रस मद मत्त फिरइ जग माया।[९]

स्मरण - जब जब मातु करिहि सुधि मोरी।
होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥[१०]

---

१ मा० अयो० पृ० ३०२
२ मा० अयो० पृ० ३८७
३ मा० अयो० पृ० ३६४
४ मा० सु० पृ० ५४७
५ मा० बा० पृ० १७४
६ मा० लं० पृ० ६११
७ मा० कि० पृ० ५११
८ मा० लं० पृ० ६००
९ मा० बा० पृ० १२८
१० मा० अयो० पृ० २६४

धृति—जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिर नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥[1]

आवेग—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥[2]

अवहित्था (आकृति गोपन)—लछिमन दीख उमाकृत बेषा ।
चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥[3]

इस प्रकार सभी रसों और भावों के प्रकाशन में कविराज की लेखनी और मनोवृत्तियां तन्मय हो गई हैं।

रस निरूपण—तुलसी के काव्य का महत्व बहुत कुछ विविध रसों एवं भावों की विषद व्यंजना के कारण है। भवभूति एक करुण रस की व्यंजना से महाकवि की उपाधि पा गये। वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्र में अपना काव्य चातुर्य दिखलाकर सूर हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य कहलाये पर तुलसी के काव्य में रसों की जैसी छटा दिखलाई देती है। वैसी अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलती। शृंगार और शांत हास्य और करुणा विविध विरोधी भावों की अभिव्यंजना तुलसी ने समान अधिकार के साथ की है। गोस्वामी जी की कविता सरस सजीव और पूर्ण है। प्रसंगानुसार कविराज ने जहाँ भी जिस रस का वर्णन उठाया है। उसे कुशलता के साथ आदि से अन्त तक निबाहा भी है। रसिक शिरोमणि गोस्वामी जी ने नवों रसों की मंदाकिनी अपने काव्य क्षेत्र में प्रवाहित की है। सहृदय पाठक जब अपनी इच्छानुसार किसी भी रस धारा में डुबकी लगा कर काव्यानन्द लूट सकते हैं। गोस्वामी जी भावों के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषक थे। उन्होंने उसके गहरे और हल्के रूपों को उत्तेजितावस्था में पहुंचा उनकी रस प्रवाही सरस धारा को धारा प्रवाहित करने में समर्थ हुई है। नीचे गोस्वामी जी की कविता से प्रत्येक रस की विशद विवेचना की जा रही है।

शृंगार रस—

रसों का राजा शृंगार ही समझा जाता है। हमें इस बात का गौरव है कि गोस्वामी जी की लेखनी सर्वत्र ही मर्यादा के पर्दे में रही है।

तुलसी ने अपने काव्य में शृंगार रस के संयोग और वियोग नामक दोनों ही पक्षों का ग्रहण किया है। संयोग शृंगारान्तर्गत उन्होंने दाम्पत्य प्रेम के अनेक पुष्ट हृदयग्राही और संयत चित्र उपस्थित किये हैं। राम और सीता के परस्पर प्रेम व्यवहार का अंकन करते समय उन्होंने संयोग शृंगार के स्थूल पक्ष का परित्याग कर उसके

---

१ मा० सु० पृ० ५५९
२ मा० बा० पृ० १६४
३ मा० बा० पृ० ४२

सूक्ष्म रूप का व्यंजनापूर्ण चित्रण किया है। उदाहरणार्थ वन गमन के अवसर ग्राम वधुओं के राम लक्ष्मण विषयक प्रश्न के उत्तर में सीता की चेष्टाएँ वर्णनीय हैं। विप्रलंभ शृंगार का चित्रण करते समय तुलसी ने इसी मर्यादा को सदैव ध्यान में रखा है। उन्होंने वन में राम और सीता के परस्पर पृथक होने पर दोनों का ही विरह भाव दिखलाया है किन्तु चरित्र की रक्षा करते हुए उन्होंने उत्ताप रत प्रेम रूप में राम और सीता को प्रस्तुत नहीं किया।

तुलसी रस सिद्ध कवि हैं। जिस भाव के चित्रण को उन्होंने अपनी कविता में स्थान दिया है। उसे बड़ी कुशलता से रस दशा तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की है। उनकी अभिव्यक्ति में जितनी भावुकता और सरसता पाई जाती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसी ने जीवन के किसी भी भाव को अछूता नहीं छोड़ा है। यही हाल रसराज शृंगार का भी है। इस रस के निर्वाह करने में बहुत से कवि चूक गये हैं। गोस्वामी जी ने इस रस का बड़ा ही उत्कृष्ट चित्रण किया है। इनके मर्यादा सहित शृंगार वर्णन में ऐसी उदात्त भूमिकायें प्राप्त होती हैं कि पाठक उसमें रस मग्न हो जाता है। राम और सीता का मिलन शुद्ध शृंगार है। किन्तु उसमें कहीं एक शब्द भी ऐसा नहीं आया जिस पर कोई उंगली उठा सके। देखिये —

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥[1]

सीता राम के प्रेम में विमुग्ध हो जाती हैं। किन्तु वर्णन इतना मर्यादा पूर्ण है कि यहाँ न कोई कामनी उद्दाम रूप है न कोई विरह हाव भाव है और न प्रश्न का संकेत ही है।

गोस्वामी तुलसीदास के सामने सबसे बड़ा संकट था स्त्री के रूप का भक्त लोग स्त्री के रूप को जिस रूप में देखते आये हैं। उसके बहुत की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। तुलसी भक्ति का प्रतिपादन करें और स्त्री के नख शिख का खोल कर दिखलायें यह कैसे सम्भव था। यह तो हुई भक्ति दास की कठिनाई। इधर नायिका के नख शिख के बिना रस को संताप कहाँ। गोस्वामी जी इसी संकट में घिरे थे। किन्तु उन्होंने इसको भी दूर किया। और अपनी रचना में नख शिख को भी स्थान दिया। किन्तु नख के लिये नहीं अधिकारियों के लिए हो और वह भी अपने ढंग पर रूपकातिशयोक्ति के रूप में हो। देखिये वियोग की दशा में राम के सामने सीता का नख शिख ही मंडरा रहा है। नख शिख प्रेमियों के लिए तुलसी ने स्त्री के नख शिख को यहीं तक रहने दिया है। इससे काम और उनसे कुछ भी न हो सका। सीता के सौन्दर्य को गोस्वामी जी ने अवर्णनीय रूप में रखा है। यही रूप राम के हृदय में किस प्रकार रम जाता है इसे कवि सम्राट ने पुष्पवाटिका प्रकरण में बड़े मार्मिक ढंग से दिखलाया है। और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पुरुष की भाव व्यंजना में भ-

---

[1] मा० बा० पृ० १६३

गया होता है। यहाँ यह ध्यान देना चाहिये कि सीता के आगमन की सूचना राम "कंकन किंकिन और नूपुर की ध्वनि" से मिलती है और सीता को राम के आगमन की सूचना एक सखी के द्वारा मिलती है। राम हृदय के क्षोभ को कहकर रह जाते हैं और सीता पर राम दर्शन का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि एक प्रकार की समाधि-सी लग जाती है। वे अपनी आँखें बन्द कर लेती हैं। राम इस दशा को कभी प्राप्त नहीं होते। उनके हृदय में तो बस सीता की मूर्ति ही बस जाती है। अथवा वे उसे भली भाँति अपने चित्त में उतार लेते हैं। गोस्वामी जी इस बात को भली भाँति समझते हैं कि स्त्री और पुरुष की भावना में क्या भेद होता है। धनुष यज्ञ में देखिये कि धनुष टूट जाने पर किसके हृदय में कैसी लहर उठती है। और किसको कैसा सुख प्राप्त होता है। लीजिये :—

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँति। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥
रामहि लखनु बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥[1]

इनमें रूपों का तो दूर कीजिये और रानी तथा राजा और सीता तथा लक्ष्मण के हृदय की प्रसन्नता लीजिये और देखिये कि तुलसी ने एक के भाव में दूसरे को कैसे जोड़ दिया है। ध्यान दिया न कि अप्रस्तुत से कैसा काम लिया गया है। चातकी और चकोर को स्मरण रखिये।

एक ही भाव किस तरह हृदय पर अपना शासन जमाता है। इसकी भी परीक्षा कर लीजिये। जानकी सीता राम के रूप को आँख भर कर देखना चाहती हैं किन्तु ऐसा नहीं कर पाती फलतः उनके नयनों की यह अवस्था हो जाती है।

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥[2]

इस डोल की गति पर ध्यान रखते हुए विचारणीय है कि मन की बात को पाने पर मन की स्थिति क्या हो जाती है।

पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचत मन सकुचत।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पियासे नैन॥[3]

छबि भी ऐसी निखर जाती है कि मीन का रंग फीका पड़ जाता है। और मन तो इतना ढीठ हो जाता है कि सीता को उस अनुपम छबि के निरीक्षणार्थ उपाय रचना पड़ता है।

---

१ मा० बा० पृ० १८१
२ मा० बा० पृ० १८०
३ मा० बा० पृ० २१६

निज पानि मनि महुँ देखियति मूरति सुरूपनिधान की ।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी ॥[1]

धीरे धीरे यह भाव बड़ा गहरा और प्रौढ़ हो जाता है । फिर यह न भूलना होगा कि शील कभी भी लज्जा को नहीं छोड़ सकता । फलतः वन यात्रा में सीता को अपने पति का परिचय इस प्रकार देना पड़ता है ।

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितै भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥[2]

इस प्रसंग में 'मधुविसीय मन मंद मुसकाना' में लज्जा का बड़ा भारी आवरण है । अन्यथा बात तो कुछ खुल कर ही मुस्काने की है और दूसरी ओर राम के चितवन की यह दशा है —

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥[3]

राम को सीता को फिर देखने का अवसर उस समय प्राप्त होता है जब वह रंगभूमि में आती हैं और उनके मन में 'कहिंहि मांहि रघुपति की दासी' की कामना होती है । गोस्वामी जी इसी अवसर पर कहते हैं ।

राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ॥[4]

और फिर तो दोनों की ही यह दशा होती है ।

सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रभु काहु न लखि परै ॥[5]

किसी कवि को इस मनोहर अवसादन संकेत से मुक्त नहीं हो सकता । यह तो इस चितवन की आड़ म लता है । जिसको सभी एक टक देख रहे । अतएव उनका निश्चय है ।

तुम अति हित चितवत हौ नाथ जेहि बार बार प्रभु तुमहि चितै हैं ।
यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तो पलकें नहिं लैहैं ॥[6]

राम और सीता के संयोग शृंगार के सम्बन्ध में यह जान लेना चाहिए कि तुलसी ने इसको बहुत ही दिव्य और सहज रूप में अंकित किया है इसे देखना हो तो बस थोड़े से चित्रकूट बढ़िया झाँकी और इसका निरूपण गीतावली में कीजिये ।[7] गोस्वामी जी के हृदय में जो इस प्रकार की जोड़ी बस गई वह है तो पुष्पवाटिका

---

१ मा० बा० पृ० १२६
२ मा० अयो० पृ० ३२८
३ मा० बा० पृ० १६१
४ मा० बा० पृ० १५१
५ मा० बा० पृ० २२१
६ गीतावली—सुन्दर कांड—पद ११
७ गीतावली—अयोध्या कांड—पद १४

को ही। पर इसमें अब कुछ विशेषता आ गई है। राजधानी छोड़ते समय जिसको लेश मात्र भी क्लेश नहीं हुआ। उसी की दशा पुर से बाहर होते ही यह हो जाती है।

> पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
> झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
> फिरि बूझति है चलनो अब केतिक पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
> तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥[1]

यह शृंगार का पूर्ण उदाहरण नहीं है। श्रम स्वेदकण आदि संचारी राम के हृदय में अनुभाव हैं। इसमें भाव शबलता देखी जा सकती है।

इसमें राम की आँख में आँसू भी समा सकते हैं और सो भी इतने से प्रश्न पर इसको कौन जानता था। राम धीरे धीरे उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ उनको पर्ण शाला बनी और प्रिया को प्रेम पीयूष का दान मिला किन्तु वहाँ तक पहुँचने में कितने पानी की आवश्यकता पड़ी और राम की आँख से कितना पानी गिरा इसका भी कुछ ठिकाना है। इस संयोग की वेदना भी कैसी दिव्य है।[2] संयोग में राम और सीता की जब यह दशा है तब वियोग में कैसी होगी इसे कोई भी समझ सकता है। परन्तु इन्हीं तुलसी के सामने दो जोड़ियाँ ऐसी हैं जिनकी दशा निराली है। जहाँ कभी खटपट नहीं होती। वहाँ सदा खटपट ही बनी रहती है। बालि तारा की सुनता नहीं तो मंदोदरी की रावण मानता नहीं। दशरथ भी कैकेयी की बात मानना नहीं चाहते पर मरते हैं उसकी मानकर ही। राम भी सीता को साथ नहीं ले चलना चाहते पर चलते हैं उन्हें साथ लेकर भी। यह इन दम्पतियों में विरोध एक ही बार हुआ और ऐसा हुआ कि सब की बन पड़ी और उसमें कभी भी भेद नहीं हुआ। पर इससे भी सब का नाश ही हुआ। तुलसी ने दम्पति प्रेम को कहाँ कब और किस रूप में व्यक्त किया है इस पर विचार करने का अभी अवसर नहीं। दिखाना तो इतना भर था है कि तुलसी किस प्रकार शृंगार को दिव्य और रमणीय बनाते हैं। साथ ही रहने देते हैं उसे सदा लौकिक ही। अच्छा होगा राम और सीता के वियोग को दिखाने के पूर्व एक झाँकी रावण और मंदोदरी की भी ले ली जाये। जब मंदोदरी रावण को समझाती है तो मंदोदरी के प्रति रावण कैसा प्रेम दिखलाता है और भीतर ही भीतर कैसा विरस हो जाता है। वस्तुतः रति की दशा कुछ और ही है। यहाँ प्रिया की मनुहार है पर हृदय का प्रसार नहीं। विनोद की वार्ता है पर विलास का हुलास नहीं। तुलसी ने राम और सीता के प्रेम और विनोद को किस प्रकार लिया है यह तो आपने देख ही लिया।

मनुष्य जीवन की सबसे प्रमुख वासना रति या शृङ्गार है। इसी कारण रति भाव से उत्पन्न रस शृङ्गार को रस राज कहा गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार

---

१ कवितावली अयोध्या कांड—पद ११

२. कवितावली अयोध्या कांड—पद २०

मर्यादावादी होने के कारण तुलसी की रचनाओं में शृङ्गार रस का पूर्ण परिपाक नहीं हो पाया है। पर उनकी यह धारणा निर्मूल है। यद्यपि उनमें नायिका भेद वाले कवियों का जैसा मर्यादा का उल्लंघन नहीं पाया जाता, पर सीता और राम के जिस परम पुनीत और गम्भीर परिणय की झाँकियाँ तुलसी के काव्य म मिलती हैं। उसमें मर्यादा का पूर्ण पालन करते हुए भी रंजन शक्ति किसी भी प्रकार से कम नहीं है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये।

जल को गए लक्खन हैं लरिका परिखौ पिय छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥[१]

इसमें राम आलम्बन सीता आश्रय राम का थका हुआ क्म तथा जो देर तक काँटे निकालते रहे यह उद्दीपन है। रोमाञ्च होना नयनों म आँसू भर आना आदि अनुभाव है और संचारी मोह है। तथा इसका स्थाई भाव रति है। इस प्रकार यह शृङ्गार का मर्यादित रूप मे बड़ा ही सुन्दर उदाहरण है।

साथों में चली सीता अयोध्या मे कुछ दूर पहुँचते ही थक जाती हैं। इसी समय लक्ष्मण जल लेने को जाते हैं लक्ष्मण की राह देखने क बहाने वस्तु क उदाहरण में सीता वृक्ष की छाया में विश्राम करने को पति से कहती हैं। प्रिया के हृदय में विराजने वाले राम सीता क हृदय में प्रवेश कर उनके मन की बात जान जाते हैं और बड़ा देर तक इसी मिस बैठ पैर के काँटे निकालते रहते हैं। सीता समझ जाती हैं कि काँटा निकालना तो बहाना मात्र है। वास्तव में इसी बहाने राम उन्हें विश्राम का अवसर देना चाहते हैं। पति का प्रेम पहचान प्रेम के आवेग में सीता का शरीर पुलकित हो जाता है। नेत्रों में जल भर आता है। यह गम्भीर स्नेह का भाव है। जो शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यहाँ संयोग का पूर्ण चित्रण होते हुए भी कहीं अश्लीलता का लेश नहीं है यही तुलसी की अपनी विशेषता है।

नायक तथा नायिका के प्रणय का सूत्रपात वाटिका विहार प्रकरण मे होता है। मानस में इसका सूत्रपात पुष्पवाटिका से होता है। मानस में नायक के गुण श्रवण पर नायिका क चित्त में दर्शन की कामना उत्पन्न होती है। इस कामना को कवि ने आतुरता द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥[२]

फिर नीतमुख से क्यर्यावत यह मिश्र कथा का भाव है इसके पीछे रचनावश कुछ पूर्वानुराग की स्थिति छिपी हुई है।

---

१ कवितावली अयोध्या कांड—पृ० १६४—छं० सं० १२
२ मा० बा० पृ० १६६

इससे किंचित कोमल व्याकुलता नायक में भी नायिका के बजने वाले आभूषणों से उत्पन्न की जाती है। यद्यपि भारतीय काव्यों का नायक धीर हुआ करता है। कदाचित् इसीलिये आकुलता का समावेश इस सम्बन्ध में नहीं किया जाता है।

कंकन किंकिन नुपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥
मानहु मदन दुदंभि दीन्ही । मनसा विश्व विजय कहं कीन्ही ॥[१]

इस उत्सुकता में रति का भाव अप्रस्तुत में कही गई ध्वनि द्वारा कितनी विचित्रता के साथ उपस्थित किया गया है। यह ध्यान देने योग्य है।

इस प्रकार की जड़ता का भाव इस उत्सुकता के अनन्तर ही राम में सीता के दर्शन द्वारा उपस्थित होता है।

भये विलोचन चारु अचंचल । मनहु सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥[२]

सीता में भी इसी जड़ता का भाव राम के प्रथम दर्शन के समय अंकित किया जाता है।

थके नयन रघुपति छवि देखी । पलकन्हु परिहरी निमेषी ॥[३]

और तदनन्तर—

अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥[४]

के द्वारा इस जड़ता के मूल में रति की व्यापकता का निर्देश किया जाता है। नारी की इस स्थिति के अनन्तर नायिका में अवहित्था का प्रसार दिखलाया जाता है।

देखन मिस मृग विहंग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
देखि देखि रघुवीर छवि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥[५]

इस रति मिश्रित भावों और मनोवेगों में व्याप्त अधीरता का उत्तरोत्तर विकास कवि ने कुशलता से दिखलाया है। सीता में नायक की असफलता की शंका और परिणाम स्वरूप इष्ट की प्राप्ति में असम्भावना की आशंका के कारण नायिका में चपलता के लक्षण दिखलाई देते हैं।

तब रामहि विलोकि वैदेही । सभय हृदय विनवति जेहि तेही ॥[६]

आकुलता भी उनकी स्पष्ट है —

मन ही मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेश भवानी ॥[७]

---

१ मा० बा० दो० २३०
२ मा० बा० दो० २३०
३ मा० बा० दो० २३२
४ मा० बा० दो० २३२
५ मा० बा० दो० २३४
६ मा० बा० दो० २५७
७ मा० बा० दो० २५७

नायक की सौन्दर्यानुभूति से नायिका चिंता पर खोजती है उनकी यह अधीरता दर्शनीय है।

> नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितु प्रन सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
> बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिय हीरा ॥[1]

यह शृङ्गार के पूर्व राग की स्थिति है। नायिका की यह अधीरता धीरे-धीरे उसको इतना व्यथित कर देती है कि यदि समाज का संकोच न होता तो वह जोर जोर से रुदन करने लगती। किन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें अपनी इस आकुलता पर लज्जा आती है और वह सम्भल जाती हैं किन्तु फिर भी रति जनित उनकी यह आकुलता उनका पीछा नहीं छोड़ती। क्योंकि नायक जब उन्हें देखता है तो वह उन्हें मानसिक स्थिति में पाता है। इस स्थिति का अन्त अनुभव के द्वारा होता है और तब नायिका सुख की स्थिति को प्राप्त होती है और जयमाल पहनाते समय फिर उनकी जड़ता की स्थिति है।

> जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी ॥[2]

दाम्पत्य प्रेम का दृश्य भी गोस्वामी जी ने बड़ा सुन्दर दिखलाया है। पर बड़ी मर्यादा के साथ। नायिका भेद वाले कवियों-का-सा कृष्ण की रासलीला के रसिकों का-सा लोक मर्यादा का उल्लंघन उसमें कहीं नहीं। सीता राम के परम पुनीत प्रणय की जो प्रतिष्ठा उन्होंने मिथिला में की उसकी परिपक्वता जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं के बीच पति-पत्नी के सम्बन्ध की रमणीयता सम्पादित करती दृष्टिगोचर होती है। अभिषेक के स्थान राम को वन जाने की आज्ञा मिलती है। आनन्दोत्सव का सारा दृश्य करुण रस में परिवर्तित हो जाता है। राम वन जाने को तैयार हैं और वन के क्लेश बतलाते हुए सीता को घर पर रहने का आदेश देते हैं। इस पर सीता कहती हैं।

> बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
> प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
> बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही ॥[3]

दुख की परिस्थिति में सुख की इस कल्पना के भीतर हम जीवन यात्रा में श्रान्त पथिक के हेतु प्रेम की शीतल सुखद छाया देखते हैं। यह प्रेम कर्मक्षेत्र से विरत नहीं करता अपितु उसमें बिखरे हुए कांटों पर फूल बिछाता है। राम जानकी को नंगे पाँव चलते देख ग्रामवासी विकल हो रहे हैं। करुणा में मंगल हो रहा है। सीता को भी सहस्रों अयोध्याओं का सुख नहीं मिल रहा था। अयोध्या में अधिक सुख का रहस्य

---

1 मा० बा० दो० २५८
2 मा० बा० दो० २६४
3 मा० अयो० दू० २६५

क्या है ? प्रिय के साथ सहवास के अधिक अवसर । अयोध्या में राजमहल और सेवा के इतने अधिक अवसर कहाँ मिल सकते थे ।

सीता जी द्वारा शृंगार की सवारी क्रीड़ा इस स्थल पर कितनी सुन्दर बन पड़ी है। जब वन मार्ग में ग्रामीण स्त्रियाँ राम की ओर लक्ष्य करके सीता से पूछती हैं कि यह तुम्हारे कौन हैं तब सीता—

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी । दुहु सकोच सकुचत बर बरनी ॥[1]

'बिलोकति धरनी' में कितनी स्वाभाविक मुद्रा है । 'दुहुं सकोच' में कवि ने सीता के हृदय की कोमलता और उनकी अभिमान शून्यता की बड़ी ही मधुर व्यंजना की है । क्योंकि सीता प्रत्यक्ष में यह कहें कि यह मेरे पति हैं लज्जा की बात है संकोच है दूसरे यदि वे इन भोली भाली ग्राम वनिताओं को उत्तर नहीं देती हैं तो भी वे उन्हें अभिमानिनी समझेंगी । इससे भी सीता को संकोच हो रहा है । इससे सीता की जो शृंगार सम्बन्धी चेष्टायें हैं उनका विवेचन भी गोस्वामी जी ने बड़ा ललित किया है । यह विवेचन बड़ा ही समयोपयुक्त है ।

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि ॥[2]

यहाँ गोस्वामी जी ने सीता जी द्वारा पवित्र रति की कैसी मधुर व्यंजना कराई है । कुल वधू की इस व्यंजना में जो गौरव और माधुर्य है वह उच्छृंखल प्रेम प्रलाप में कहाँ ।

शृंगार रस का सम्बन्ध प्रकृति के बाह्य और अन्तःसौन्दर्य दोनों से है तुलसी काम क्रोध आदि मनोविकारों को मनुष्य का शत्रु मानते और उनको हमेशा त्याज्य समझते हैं । इससे काम्योत्तेजक शृंगार उनकी कविता में कहीं भी नहीं पाने पाया । पर संसार के सहज सौन्दर्य की उन्होंने कभी भी उपेक्षा नहीं की । पति पत्नी के प्रेम संभाषण अनुराग प्रदर्शन को वे गृहस्थ जीवन का एक अनिवार्य अंग समझते थे । इसी से उन्होंने राम और सीता को पति पत्नी के ही रूप में देखा है । इसी भाव से प्रेरित होकर वे राम के एक दिन की बात को जो बहुत छोटी-सी है पर प्रेमी की दृष्टि से बड़ी ही महत्वपूर्ण है । इस प्रकार कहते हैं—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराये प्रभु सादर । बैठे फटिक सिला अति सुन्दर ॥

राम और सीता का प्रेम प्रारम्भ न तो जायसी के समान रत्नसेन की कठिन यात्रा के रूप में होता है और न ही राधा और कृष्ण के मिलन के समान । न तो रत्नसेन के समान राम सीता के दर्शन करके मूर्छित ही होते हैं और न सीता राम से मिलने के हेतु उन्हें राधा के समान सर्प का विष उतारने वाला बताकर ही साँप काटे

---

1 मा० अयो० पृ० १२८
2 मा० अयो० पृ० १२८

का बहाना करती है। यहाँ तो भारतीय मर्यादा की परम्परा के अनुसार स्वयंवर होता है और उसमें स्वयम्वर की शर्त को पूरा करके राम सीता का पाणिग्रहण करते हैं। कवि कल्पना द्वारा वाटिका में उनका पूर्व मिलन कराके रसोद्रेक में सहायक होता है।

शृङ्गार के दूसरे पक्ष विप्रलम्भ शृङ्गार का चित्रण करते समय भी गोस्वामी जी ने सर्वत्र इसी मर्यादा का ध्यान रक्खा है। कवि सम्राट ने वन में राम और सीता के परस्पर पृथक होने पर दोनों के ही विरह भाव की अभिव्यंजना की है। किन्तु उनके चरित्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए उन्होंने उन्हें प्रलापगत प्रेमियों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया।

हर सीता करके दीनमुखी मयभाग राम पम्पा सरोवर में विचरण करते करते प्रवर्षण गिरि पर आ रहे। वर्षाऋतु का काल था। स्निग्ध श्यामल बलाहकों से व्योम मण्डल व्याप्त था। सुख प्रदान करने वाली शीतल-मन्द सुगन्धित वायु झूम झूम कर प्रवाहित हो रही थी। प्रिय समागम से विह्वल मयूर मस्त होकर नृत्य कर रहे थे। शैल सरिता का प्रवाह कदम्ब कुसुमों से सिंचित पर्वतीय वायु रंजित मद मस्त स्वरित गति से कल कल निनाद करता हुआ बह रहा था। घन दर्शनोत्सुक प्रमुदित बक पंक्ति दशिर अम्बर की पुण्डरीक माला की भाँति पवन में उड़ रही थी। अभि नव जल धारा से आच्छादित मरकत मणि नील प्रान्तर पर रेंगती हुई बीर बहूटियाँ धरा रमणी को मानो प्रकृति द्वारा सुहागिनी अम्बर पहना रही थी। भ्रमर गुंजार कर रहे थे। पर विरही राम को भान पड़ा कि यह कपास रूप इन्द्र धनु लेकर वियोगियों पर शर धारा बरसा रहा है। उनकी स्मृति [illegible] उमड़ पड़ी। विरह [illegible] की वर्षा होने लगी फिर भी राम का सीता के विरह में वियोग स्थल शृङ्गार का उत्कृष्ट उदाहरण है।

माया की सीता की कामना और लक्ष्मण की विवेक हीनता के कारण सीता का वियोग हो गया और राम को उनका दुःख ऐसा [illegible] था।

आश्रम निरखि भूले द्रुम न फले न फूले
अलि खग मृग मानों कबहुँ न हे।
मुनि न मुनिबधूटी उजरी परनकुटी
पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे।
उठी न सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिये
प्रिया न पुलकि प्रिय बचन कहे
पल्लव सालन हेरी प्रानबल्लभा न टेरी
बिरह बिथकि लखि लखन गहे।
देखे रघुपति-गति बिबुध बिकल अति
तुलसी गहन बिनु दहन दहे।

अनुज दियो भरोसो, तौसौ है सोच भारी सो।
सिय समाचार प्रभु जौलौं न लहै ॥[1]

छठी न सलिल सिर' में जो राम का पारिवारिक जीवन सामने आता है। वह मानस में राज भवन में भी मिल कर बुद्धारिचर्या करइ' के रूप में व्यक्त होता है और तुलसी के आदर्शों को भी प्रस्तुत करता है। इस वियोग का परिणाम क्या हुआ इसको कौन नहीं जानता। किन्तु इसके उपरान्त जो महा वियोग अपने आप मोल लिया था। उसको तुलसी सबको सर्वत्र नहीं बतलाना चाहते और मानस में तो वह उसे सर्वथा ही पी जाते हैं और वे सीता राम के आनन्द में किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ने देना चाहते। उनके राम राज्य में किसी भी प्रकार की दुर्भावना नहीं है।

गोस्वामी जी करुणा के कवि हैं वियोग के नहीं। वियोग उनको आता ही नहीं। जब कहीं भी वियोग का अवसर आता है तो कवि सीधे से कह देते हैं कि कवि के हृदय में दुसाम ही नहीं होता। फिर वह उसका वर्णन कैसे करे। तुलसी की समझ में वियोग का वर्णन करना कठोरता का काम है। सहृदयता का नहीं कहते हैं।

बरनत रघुबर भरत बिलापू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोपू ॥[2]

जब राम और भरत के वियोग के प्रति कवि की यह धारणा है तब सीता और राम के वियोग वर्णन में उनकी वृत्ति कैसे रम सकती है। तो भी जब कवि कुछ कमल दिखाकर को लाते हैं कि यह असली सीता नहीं माया की सीता है जिनका राम को वियोग है। कवि का इमी से तो यहाँ तक कहना है।

प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को कबि उर आइ न आई।[3]

इसका यह अर्थ नहीं कि तुलसी ने वियोग दशा का वर्णन ही नहीं किया। वियोग में जो दशा राम की होती है। उसका विवेचन पहले ही किया जा चुका है। यहाँ कुछ सीता की भी अवस्था को देख लेना चाहिये। मानस में कई अवसरों पर सीता के वियोग को अंकित किया गया है। हरण के अवसर पर हनुमान के आगमन के समय और रावण की वाटिका में। हमारी दृष्टि में इन तीनों प्रसंगों में सबसे अच्छा प्रसंग है रावण का वध ही। इसी अवसर पर सीता के हृदय की सच्ची वेदना कही है। वे कहती हैं—

होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता ॥
रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई ॥

---

१ गीतावली—अरण्य कांड—पद १०—पृ० ३६६
२ मा० अयो पृ० ३१८
३ गीतावली—अरण्य कांड—पद ११ पृ० ३६७

मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही ॥
जेहिं छल कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा ॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए ॥
रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी।[1]

जितना क्षोभ आदि भावों की जैसी व्यंजना इन थोड़ी सी पंक्तियों में हुई है वैसी कहीं भी नहीं। गीतावली में तुलसी ने राम के वियोग को कुछ और ही रूप में लिया है। हनुमान राम से कहते हैं।

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु राम करुनानिधि जानौं कछु पै सकौं कहि हौं न।
लोचन नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचन कोन।
हा धुनि खगी लाज पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन।
जेहिं बाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास समीर भेंट भइ भोरेहु तेहिं मग पगु न धरयो तिहुँ पौन।
तुलसीदास प्रभु दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ तुम्ह आरत आरति दौन ॥[2]

गोस्वामी जी की सच्ची धारणा यही है कि जी की वेदना जी से ही जानी जा सकती है। जीभ से वह बखानी नहीं जा सकती। उन्होंने मूक रूप में प्रेम के मर्म को इस चौपाई में यथातथ्य रख दिया है।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥[3]

और इस पद में सविस्तार वर्णन भी किया है।

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर नीर नयननि छायो।
कहन चह्यो संदेस नहिं कह्यो पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।[4]

अत गोस्वामी जी ने शृंगार के दोनों पक्षों को पूर्ण भावुकता के साथ निभाया है कहीं भी उनके स्पष्टीकरण में अस्वाभाविकता नहीं आ पाई। तुलसी के विप्रलंभ शृंगार में जायसी जैसी बीभत्सता भी नहीं है। यहाँ न तो रक्त के आँसू ही गिरते हैं और न हाड़ ही रबाब बनते हैं। वरन मर्यादित वियोग है। सीता राम वन गमन की बात सुनती है तो उतनी व्याकुल नहीं होती जितनी राम का उपदेश सुनकर होती है।

---

१ मा० लं० पृ० ६६२
२ गीतावली—सुन्दर कांड—पद सं० २०—पृ० ३८०
३ मा० सु० पृ० ५५०
४ गीतावली—सुन्दर कांड—पद सं० १५

सीतल सिख दाहक भइ कैसें । चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥[१]

हमारे कवि कविराज ही तो ठहरे पुरानी उपमाओं की अवहेलना करते हुए नयी उपमा का निर्माण कर लिया ।

जौं पटतरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमासम किमि बैदेही ॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ॥[२]

इतनी विशद कल्पना करके लक्ष्मी भी निकाली तो भी सीता से उसकी समता करने में कवि सम्राट संकोच ही कर रहे हैं । कवि ने उपमाओं को भी जूठी समझकर इस प्रकार सीता का सौन्दर्य वर्णन रक्खा —

सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी ॥[३]

गोस्वामी जी के काव्य में सोने में सुगन्ध तो यों है जिसको कोई भी सच्चा समालोचक कहे बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी के अन्य कवियों की भाँति गोस्वामी जी ने अश्लील काव्य रचना से अपने ग्रंथ को दूषित नहीं किया । कहीं कहीं बड़ी मार्मिकता से शृंगार रस का वर्णन तो किया है पर ऐसे स्थलों पर साहित्य को ऐसी माधुर्य भरी भाषा में लपेटा है कि वहाँ साक्षात शृंगार रस की गंध तक नहीं आती । अब आप किसी ऐसे ग्रन्थ को उठाकर पढ़ें वाक्य जिसमें किसी नायिका के नख शिख का वर्णन लिखा हो । देखिये आपके हृदय में किस भाव का उद्रेक होता है । उसके बाद ही मानस की निम्न चौपाइयों का पढ़ने का कष्ट उठाइये ।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥[४]

अन्य कवियों के शतशत ग्रन्थों पर एक बार दृष्टिपात कीजिये तो आप उनमें कदापि भी इस भाँति का गुण नहीं पा सकेंगे ।

---

१ मा० अयो० पृ० २६१
२ मा० बा० पृ० १७२ १७३
३ मा० बा० पृ० १६१
४ मा० अरण्य कांड—पृ० ४६७

मैं यह कदापि भी कहने को उद्यत नहीं कि शृंगार रस काव्य से सदा लि
जाये। शृंगार रस कविता का मेरु है उसके बिना कविता कामिनी काली कुरूप
और कुरूपा हो जायेगी। पर उसे साहित्य में उचित मात्रा में रखने की आवश्यक
है और उसमें मर्यादा की भी अपेक्षा है। गोस्वामी जी तो अश्लील साहित्य ही हा
कारक समझते थे। तुलसी इस अंश में कितने सतर्क थे। यह तो अवर्णनीय है। ज
सीता के वर्णन में लिखते हैं।

सोइ नवल तनु सुन्दर सारी ॥[1]

यहाँ पर 'जगत जननि अतुलित छवि भारी' पूरक पद देकर ऐसी निपुणता
काम लिया है कि पापी से पापी मनुष्य भी इस पूरक पद को पढ़कर निर्मल हो उठ
है। इसी प्रकार शिव पार्वती के सहवास का वर्णन करते हुए कालिदास ने 'कुम
संभव' में क्या नहीं लिख दिया अन्त में यहाँ तक कि—

सम दिवस निशीथं सङ्गिनस्तत्र शंभो: ।
शतमगमदृतूनां साग्रमेका निशेव ॥
स तु सुरत सुखेष्वच्छिन्नतृष्णो बभूव ।
ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघैः ॥[2]

पाठक देखेंगे कि जहाँ कालिदास की उपर्युक्त रचना में लज्जा भी लज्जि
हो नतशीश हो जाती है वहाँ कवि सम्राट गोस्वामी जी दो ही पंक्तियों में मातृ
का समावेश कर कालिदास की कविता को फूँक से उड़ा देते हैं।

जगत मातु पितु संभु भवानी तेहि शृङ्गार न कहौं बखानी ॥
हर गिरिजा बिहार नितनयऊ। यहि बिधि बिपुल काल चलिगयऊ ॥[3]

माता पिता के शृङ्गार और रति वर्णन में कितना अनौचित्य है। इस
विचार प्रत्येक मर्यादा प्रिय मनुष्य को होना ही चाहिए। एक कवि ने नायिका
उदाहरण देते हुए लिखा है।

चाहिर आवत ही जमुना। जब न्हाइ चढ़े उमहे बहु बेनी ॥
त्यों पद्माकर हीरा के हारन। गंग तरंगन की सुख देनी ॥
पायन के रंग सों रंग जाति सी। भाँतिहि भाँति सरस्वती सेनी ॥
पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल। तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी ॥[4]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पद्माकर जी ने इस सवैया में शब्द और अलंका
का समुचित समावेश करके नायिका के शरीर में त्रिवेणी की कल्पना की है पर उन्हें
हीरा के हार और पाँवों में मेंहदी व महावर के रंग की सहायता लेनी पड़ी है। त

---

१ मा० बा० पृ० १७४
२ कालिदास—कुमार सम्भव—अष्टम सर्ग के अन्त में
३ मा० बा० पृ० ७८
४ पद्माकर—जगद्विनोद—सं० छं० १७

तलैया की शरण जानी पड़ी । तब त्रिवेणी बनी । किन्तु गोस्वामी जी कैसे सरस ढंग से अपने चरित नायक के चरणों में त्रिवेणी का प्रवाह प्रवाहित करते हैं —

राम चरण अभिराम काम प्रद तीरथराज बिराजै ।
संकर हृदय भक्ति भूतल पर प्रेम अक्षय बट भ्राजै ।
स्याम बरन पद पीठ अरुन तल लसति बिसद नख श्रेनी ।
जनु रवि सुता सारदा सुरसरि मिलि चलि ललित त्रिबेनी ।

—गीतावली

पाठक देखेंगे कि तुलसी की इस रचना में स्वाभाविकता फूट फूट कर भरी है । अतः गोस्वामी तुलसीदास शृङ्गार रस के भी अतिशय सतर्क और सिद्ध हस्त कवि थे ।

वीर रस —

गोस्वामी जी ने वीर रस का वर्णन करते समय राम के वीर वेष का वर्णन करने में सर्वाधिक रुचि ही दिखलाई है । गोस्वामी जी के काव्य में वीर रस का वर्णन अनेकों स्थानों पर हुआ है ।

क्रोध वीर रस का सहायक भाव है । मानस में क्रोध का सबसे अच्छा और प्रखर प्रसंग परशुराम के संवाद में ही हमारे सामने आता है । तुलसी ने परशुराम के जिस वीर रूप का चित्रण किया है वह विचित्र है । उसमें क्रोध है पर है वह उत्साह नहीं यथा इस प्रसंग की भी है । इसमें राम और परशुराम के भावों का उतार चढ़ाव देखते ही बनता है । वीर के संचारी भाव उत्साह की मानस में कमी नहीं । मानस का तो कहना ही क्या प्रति नायक भी उससे कूट कूट कर भरा है । हताश होना तो वह जानता ही नहीं । यहाँ तक कि मरते समय तक उसकी वाणी यही गरजती है कि राम कहाँ है मैं उन्हें ललकार कर मारूँगा । वीरता के सभी रूपों को दिखलाने मे कोई लाभ नहीं । रघुवीर की सेना का पराक्रम जैसा रहा उसका आतंक ब्रह्माण्ड में छा गया । जब सन्धि की बात निष्फल हो गई क्रोध और युद्ध का निशान बजने लगे उस समय हनुमान की वीरता दर्शनीय है ।

हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों संहारे ।
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की ।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की ॥
बार बार सेवक सराहना करत राम
तुलसी सराहैं रीति साहेब सुजान की ।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट
देखो देखो लखन लरनि हनुमान की ॥[1]

---

१ कवितावली—लंका काण्ड—पृ० ४०

राम लक्ष्मण और हनुमान के प्रहारों में क्या भेद है यह भी इस घनाक्षरी से व्यक्त हो जाता है।

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से
हने भट लखन जातुधान के।
मारि कै पछारि कै उपारि भुजदंड चंड
खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के।
कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत।
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के।
तुलसी महेस बिधि लोकपाल देवगन।
देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के॥[1]

तुलसी ने जो भी वर्णन किसी की वीरता में लिखा है बहुत सोच समझ कर लिखा है। उनके एक वर्णन की सत्यता को देख कर तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि उन्होंने जो भी लिखा है वह आँखों से देख कर लिखा है। उसका अध्ययन करने से आप ही आप स्पष्ट हो जाता है कि राम, लक्ष्मण और रावण की युद्ध कला में क्या भेद है और उनका उत्साह कब कैसा रूप पकड़ता और रंग बदलता है। तुलसी ने 'गीतावली' में हनुमान के जिस उत्साह को दिखलाया है वह और भी साहस और संकल्प से पूर्ण है। लक्ष्मण को शक्ति लगी है। सूरज निकला नहीं कि उनका अन्त हुआ। उपाय है पर सहज नहीं। हनुमान की घोषणा है।

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं।
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुध बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं सबहि को पापु बहावौं॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥[2]

इसमें हनुमान जो चन्द्रमा को निचोड़ देने पाताल से अमृत कुंड लाने सूर्य को छिपा देने देवताओं के वैद्य को लाने और मृत्यु को नष्ट कर देने की बात जो हनुमान कहते हैं वह उनके सभी हृदय उनके वीर मन के परिचायक हैं यह पद वीर रस का सुन्दर उदाहरण है।

---

१ कवितावली—लंका कांड—पृ० ४८
२ गीतावली—लंका कांड—पृ० सं० ८

वीर रस के सहकारी भाव अमर्ष को देखिये जब सारी सभा में जनक ने कहा :—

वीर बिहीन मही मैं जानी।

तब लक्ष्मण बिगड़ पड़े। लक्ष्मण अपने को किसी भी महावीर से कम नहीं समझते थे। ऐसा कह कर जनक ने उनकी वीरता को चुनौती दी। अतः उन्हें अपने मान की रक्षा के हेतु उत्तर देना पड़ा। लक्ष्मण की उक्ति है —

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई।
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू।
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥[1]

यहाँ गर्व या मान की रक्षा के हेतु क्रोध हो रहा है। अमर्ष में मान का होना अनिवार्य है।

वीर रस में ऐसी स्थिति आ सकती है जब व्रीड़ा भी संचारी रूप में दृष्टिगोचर हो। दानवीर के वर्णन में दान का उत्कर्ष दिखलाने के हेतु भाव का उपयोग काव्यों में देखा जाता है। तुलसी ने राम के दान का वर्णन इस प्रकार किया है।

जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥[2]

लंका जैसे बृहत राज्य के दान करने में भी राम का सकुचना उनकी व्रीड़ा को प्रकट करता है। पर उदारता को वृद्धि करता है। ग्लानि निर्वेद विषाद ईर्ष्यादि भाव भी इसी प्रकार सहयता के हेतु उत्साह के संचारी का काम देते हैं।

वीर रस में मोह और जड़ता की भी स्थिति देखी जा सकती है। राम रावण युद्ध में रावण ने एक बार माया से अपनी सेना में अनेक राम और लक्ष्मण बना दिये। जिन्हें देख कर वानरी सेना चकरा गई। स्वयं लक्ष्मण भी इसका रहस्य न समझ सके। यह जड़ता की स्थिति है। लक्ष्मण भी किंकर्तव्य विमूढ़ से दिखलाई पड़ रहे थे। किन्तु लक्ष्मण का उत्साह कम नहीं हुआ। वीरता का परिचय इसी संवाद से अच्छा प्रकट होता है। इस संवाद में गर्व भरी ललकार का चमत्कार खूब रहता है। जैसे लक्ष्मण का यह कहना कि —

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥[3]

और इस पर रावण का यह जवाब देना :—

खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥[4]

---

१ मा० बा० पृ० १७०
२. मा० सु० पृ० ५७४
३ मा० लं० पृ० ६४०
४ मा० लं० पृ० ६४०

कितना उत्साह पूर्ण है। लङ्का कांड तो वीर रस का आधार है जितनी इच्छा हो वीर रस का आनन्द लीजिये। अमर्ष एक ऐसा सद्भाव है कि जो समाज से केवल अधर्म की रक्षा ही नहीं करता वरन् उसको धर्माचरण की ओर प्रवृत्त करने में सहायक होता है। इसी प्रकार भरतागमन के समाचार पर निषाद राज के व्याख्यान में इसी भाव की व्यंजना हुई है।[१] इसमें ऐसा धीर्य प्रकट होता है कि उसकी उदारता के विषय में अत्युक्ति करना कठिन है। उत्साह का जो भाव वर्षा बीत जाने पर किष्किंधा में राम को उत्तेजित करता है। उसमें सन्निहित पुरुषार्थ की भावना दर्शनीय है।

एक बार कैसेहु सुधि पावौं।
कालहु जीति निमिष महु आवौं।।
कतहुँ रहौ जो जीवित होई।
तात जतन करि आनहु सोई।।[२]

पूरा अंगद रावण संवाद वीर रस से भरा हुआ है। भाषण की शिष्टता के प्रश्न को अलग छोड़ देने पर वह आत्म प्रदर्शन और आत्म प्रतिपादन का जो वीरता की मूल प्रवृत्तियाँ हैं। सुन्दर दृष्टान्त है।

युद्ध के दूसर दिन रण क्षेत्र में प्रवेश करते समय जिन शब्दों में मेघनाद अपने शत्रु को ललकारता है वह वीरता के भण्डार ही हैं और उससे भी अधिक हैं रावण के निम्नलिखित ओज पूर्ण शब्द जिनके द्वारा वह अपने वीर पुत्र मेघनाद के वध के उपरान्त युद्ध भूमि में प्रवेश करते समय राम को ललकारता है —

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं।
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना।।[३]

रावण की सभा में अंगद का पदारोपण कवितावली में उत्साह का प्रत्यक्ष परिचय देता है।[३] कवितावली के अन्तर्गत हनुमान का युद्ध की वीरता का प्रदर्शन का एक उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करता है। लङ्का कांड में उत्साह नामक भाव की व्यंजना उत्कृष्टता को पहुँची हुई है। इसमें युद्ध व दृश्यों का बड़ा ही उग्र चित्रण हुआ है। वीर रस का वर्णन कौशल इन्होंने तीन शैलियों के भीतर दिखलाया है। प्रचीन काल के चारणों की छप्पय वाली ओजस्विनी शैली के भीतर इधर के फुटकरिये कवियों की दंडक वाली पद्धति के भीतर और अपनी निज की गीतिका वाली शैली के भीतर तीनों का क्रमश एक एक उदाहरण दिया जाता है।

कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत।।

---

१ मा० पयो० दे १६०–१६२
२ मा० स० पृ० ६२४
३ कवितावली लङ्का कांड १६वाँ छन्द

चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत ।
विकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत ॥
लंगूर लपेटत पटकि भट जयति राम जय उच्चरत ।
तुलसीस पवननन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥[1]

दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं ।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक
चीरि फारि डारे एक मीजि मारे लात हैं ॥
तुलसी लखत राम रावन बिबुध बिधि
चक्रपानि चंडीपति चंडिका सिहात हैं ।
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े
जातुधान जूथप निपाते बातजात हैं ॥[2]

इसमें अनुभाव ही प्रधान है। इसमें आलम्बन शत्रु है, संचारी क्रोध
उग्रता आदि अनुभाव और उत्साह प्रधान है।

भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे ।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ॥
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे ।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥[3]

धनुर्भंग की प्रचण्डता का वर्णन भी अत्यन्त वीरोत्साह पूर्ण है। वचन पर उत्तेजित होकर लक्ष्मण जो कहते हैं वह भी वीरोत्साह पूर्ण। विवेचन पीछे हो चुका है। धनुर्भंग की प्रचण्डता देखिये।

डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर ।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर ॥
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंठ मुक्खभर ।
सुरबिमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर ॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ ॥[4]

धनुर्भंग के इस वर्णन में प्रदर्शित उत्साह का आलम्बन राम का कर्म है।

---

१ कवितावली लंका कांड ४७
२ कवितावली लंका कांड—छं० सं० ४१

वीर रस जाति का जीवन है। जिसे गोस्वामी जी ने अपने काव्य में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है। वीर रस के ४ भेद हैं —

१—दानवीर
२—धर्मवीर
३—युद्ध वीर
४—दयावीर

तुलसीदास के राम में वीर रस के उक्त चारों भेद घटित होते हैं।

राम की दानवीरता—

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥[1]

युद्ध वीरता—

खर दूषण का सन्देश सुनकर राम ने उत्तर दिया —

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥[2]

धर्म वीरता—

संयमी धर्म वीरता का महान उद्घाटन करते हुए राम विभीषण के आगमन के समय कहते हैं —

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥[3]

दया वीरता—

घायल जटायु को गोद में रखकर राम आँखों में आँसू भर कर कहते हैं —

जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज ते गति पाई॥[4]

अतः तुलसी ने वीर रस के वर्णन में भी अच्छी सफलता प्राप्त की है और इस रस के संचारी उत्साह को भी अच्छी प्रकार से व्यापक बनाने की चेष्टा की है। उनका यह प्रयास भी परम प्रशंसनीय है।

करुण रस—

करुण रस का भी अनेक करने वाले प्रसंग मानस में बहुत से आये हैं। अतिशय दुख की अवस्था से मन में करुण रस का संचार होता है। राम वन गमन का दृश्य कितना मर्म भेदी और हृदय द्रावक है।

राम चरित में केवल पति पत्नी का ही वियोग नहीं। उसमें एक प्रकार से सबका सभी से कुछ न कुछ वियोग है। राम के भावी वियोग से लक्ष्मण की जो

---

१ मा० सु० पृ० ५७४
२ मा० अरण्य० पृ० ४८१
३ मा० सु० पृ० ५७०
४ मा० अं० पृ० ६७८

व्यथा होती है। उसको तो गोस्वामी जी ने दोहे में ही टाल दिया है। किन्तु लक्ष्मण के आहत हो जाने पर राम के हृदय में जो पीड़ा उठी है। उसको कुछ दूर तक कवि सम्राट ने चलने दिया है। मानस में राम की आकुलता दो अवसरों पर देख पड़ी है। जिसमें उनका प्राकृत रूप सर्वथा निखर कर हमारे सामने आ गया है। इनमें एक तो सीताहरण के अवसर पर जब वह पशु पक्षियों से भी सीता का पता पूछते हैं। दूसरा लक्ष्मण शक्ति पर। राम का यह विलाप उनके भ्रातृ स्नेह को व्यक्त करता है।

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥[1]

पर न जाने कितना वाद विवाद है वस्तुतः इसमें राम की मर्म व्यथा का ही उत्कर्ष है।

जो भी करुण रस के वर्णन में तुलसी को अच्छी सफलता मिली है। कौशिल्या के प्रसंग में वियोग की जैसी गहरी और व्यापक अनुभूति कौशिल्या को हुई है। दूसरे को नहीं। मानस में उनकी वियोग दशा का चित्रण है। तो गीतावली में उनके वियोगी हृदय का। उनके हृदय में कैसा उन्माद छा गया है। इसे देखना हो तो इस पद को पढ़ें।

जननी निरखति बान धनुहियाँ।
बार बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे।
उठहु तात बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे॥
कबहुँ कहति यों बड़ी बार भई जाहु भूप पहँ भैया।
बंधु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरि मैया॥
कबहुँ समुझि बनगवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी।
तुलसीदास वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी॥[2]

इस चित्र लिखी सी की व्याख्या क्या करें। अर्द्ध चेतन अवस्था में उनकी मर्म व्यथा को जानना हो तो जान लें।

माई री मोहिं कोउ न समुझावै।
राम गवन साँचो किधौं सपनो मन परतीति न आवै।
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाहु या उर को बिधि जो भए बिपरीता॥
दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे॥

---

१ मा० अयो० पृ० १२८

२. गीतावली—अयोध्या कांड—पृ० सं० ५२

कौसल्या के बिरह बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर बिरह की पीर न जात बखानी ॥[1]

सचमुच रघुवीर का विरह था ही ऐसा कि उसका वर्णन नहीं हो सकता किन्तु इसका पछतावा भी तो कौशिल्या को कम नहीं है कि वह पुत्र को बन से बन में भेज कर पुनः भवन आ गई। अब तो उनके पास यही शेष रह गया है हाथ मलना।

हाथ मीजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्यां कहा जात बह्यो।
पति सुरपुर, सिय राम लखन बन मुनिव्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो ॥
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहं बिधि कहुं कुलिस लह्यो।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरि सुत क्यों कछु परत कह्यो ॥[2]

गोस्वामी जी ने विरह वेदना को और भी व्यापक रूप देने के विचार से पक्षियों को लिया है राम के वियोग में जो उनके घोड़ों की दशा होती है उसको देख कर माता और भी व्यथित हो जाती है।

राघौ एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ।
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज बार बार पुचकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाडिले ! ते अब निपट बिसारे।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झांवरे मनहु कमल हिम मारे ॥
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन कहियो मातु संदेसो।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इन्हको बड़ो अंदेसो ॥[3]

उधर तोतों और मैना की यह दशा है कि उसमें भी इस व्यापक वियोग का चर्चा छिड़ती है। पर एक सुहृद के साथ वह भी वहीं की वहीं रह जाती है।

सुक सों गहबर हिये कहै सारो।
बीर बीर सियराम लखन बिनु लागत जग अंधियारो।
पापिनि चेरि अयानि रानि नृप हित अनहित न बिचारो।
कुलगुरु सचिव साधु सोचत बिधि को न बसाइ उजारो।
अवलोके न चलत भरि लोचन नगर कोलाहल भारो।
सुने न बचन करनाकर के जब पुर परिवार समारो।

१ गीतावली—अयोध्या कांड—पं० सं० ६१
२. गीतावली अयोध्या कांड—पं० सं० ८४
३ गीतावली अयोध्या कांड—छन्द सं० ८७

भैया भरत भावते के संग बन सब लोग सिधारे ।
हम पसु पाइ पींजरनि तरसत अधिक अभाग हमारे ॥
सुनि खग कहत अंब मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो ।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो ॥
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो ।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो ।[1]

यहाँ राम के वियोग से दुखी तो सभी हुए किन्तु उनमें से जैसे तैसे सहा भी । वह जिसके हेतु पश्चाताप हुआ वह थे दशरथ । इसी हेतु उनका मानसिक पश्चाताप दर्शनीय है ।

सुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ ।
नारिबस न बिचारि कीन्हों काज सोचत राउ ।
तिलक को बोल्यो दियो बन चौगुनो चित चाउ ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्यो समुझि सील सुभाउ ॥
सीय रघुबर लखन बिनु भय भभरि भगो न आउ ।
मोहि बूझि न परत यातें कौन कठिन कुभाउ ॥
सुनि सुमंत्र कि आनि सु घर सुवन सहित बिभाउ ।
दास तुलसी लखत लोकनि मरन-अमिय पिआउ ॥[2]

उपर्युक्त उदाहरणों में से माता कौशिल्या के 'मरिबोई मुकत रहयो' है और पिता दशरथ के 'मरन अमिय पियाउ' में क्या नहीं रस है । वेदना की यह जो प्रक्रिया कभी भी कम नहीं हो सकती । यह ही भरत की समस्त स्थिति को स्पष्ट करने के हेतु सर्वत्र जुड़ी रहता है ।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि दशरथ मरण के समय का शोक साधारण था। नहीं ऐसा बात नहीं । महाराज दशरथ की मृत्यु से शोक अवध में उमड़ा वह इतना भीषण था जिसके विषय में गोस्वामी जी ने स्वयं लिखा है ।

घर मसान परिजन जनु भूता । सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं । सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥[3]

× × ×

महाबिपति किमि जाइ बखाना ।[4]

× × ×

---

१ गीतावली—अयोध्या कांड—छन्द सं० ५६
२ गीतावली—अयोध्या कांड—छन्द सं० ५७
३ मा० अयो० पृ० ३०६
४ मा० अयो० पृ० ३२१

सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा । धीरजहू कर धीरजु भागा ॥[1]

× × ×

घर घर रुदनु करहिं पुरबासी ।[2]

इसमें राजा आलम्बन उनकी मृत्यु उद्दीपन विलाप करना कैकेई को गाली देना विषाद स्मरण आदि संचारी से पुष्ट शोक भाव की व्यंजना करता हुआ यह करुण रस का सुन्दर उदाहरण है ।

महाराज दशरथ के अन्तिम मृत्यु जैसे पर वैसा शोक नहीं उमड़ा जैसा कि राम के वन गमन के अवसर पर उमड़ा है । दशरथ का निधन ऐसे अवसर पर हुआ जबकि अवध में उनका कोई भी उत्तराधिकारी नहीं रह गया था । राम लक्ष्मण वन को जा चुके थे और भरत शत्रुघ्न अभी ननिहाल में ही पड़े थे । ऐसी स्थिति में सबको राज्य की चिन्ता हुई और सभी इस तर्क वितर्क में पड़ गये कि भरत आकर क्या करेंगे । उधर राम और इधर भरत की स्थिति ने लोगों को अपने आप में समेट कर ऐसा जकड़ लिया कि दशरथ के हेतु किसी के हृदय में उतना स्थान ही नहीं रहा जितना ऐसे अवसरों पर स्वभावतः रह सकता था । उधर दशरथ सखा बूढ़े जटायु की स्थिति यह है कि उसको राम की गोद में मरने में जो आनन्द आता है वह जीवन में नहीं । अतः उसके प्रति भी शोक का स्थान नहीं । अब रही विपक्ष की बात । विपक्ष में कई अवसरों पर शोक का प्रसंग आया है । पर कहीं भी गोस्वामी जी ने उसे विलाप करने में आगे नहीं बढ़ने दिया । इसका कारण एक तो गोस्वामी जी की प्रवृत्ति है और दूसरा है राम के प्रति लोगों की भावना । मेघनाद कुम्भकरण और रावण जैसे वीर योद्धाओं के निधन पर विलाप होती अवश्य है पर साथ ही उनके हृदय में यह भी भाव बना रहता है कि राम के विरोध का परिणाम यही होना था । रावण जैसे प्रतापी वीर के प्रति उसकी पत्नी मंदोदरी की जो भावना है वह उसके शोक को बहुत दूर तक फैलने नहीं देती और अन्त में सबको समेट कर उसे राम भक्त बना देती है । वह कहती है —

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥
तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा । सभय दिसिप नित नावहिं माथा ॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं । राम बिमुख यह अनुचित नाहीं ॥[3]

तात्पर्य है कि मानस में जैसा भी शोक उमड़ता है वह अनिष्ट के कारण नहीं अनिष्ट की चिन्ता में । तुलसी ने अनिष्ट की चिन्ता जनक को जितना शोक व्यक्त किया है वह अवर्णनीय है । काव्य में जैसी करुण विप्रलंभ का अभाव है वैसी ही मानस में करुण समाप्त सी भी ।

---

१ मा० अयो० पृ० १२१
२ मा० अयो० पृ० १६१
३ मा० लं० पृ० ६६८

कैकेयी और दशरथ का कोप भवन ही इसके हेतु पर्याप्त है और सारा अयोध्याकांड ही इसका प्रमाण है। अवधवासी ऐसी स्थिति में एक दूसरे से मिलकर जितना शोक मग्न होते हैं। उतना एकांत में नहीं। तुलसी की यह विशेषता विशेष रूप से विचारणीय है। इसको देखते हुए मानना पड़ता है कि शोक की जैसी परख तुलसी को है वैसी और किसी को भी नहीं। उत्तर रामचरित में भवभूति ने राम को रुलाया है। पर उनका रोना सबको नहीं भाया। मानस में राम रोते नहीं पर अवध की सुधि आते ही उनके नेत्रों में भी जल समा जाता है। मानस में मन सभी का रोता है पर रोने का काम किसी का भी नहीं है। सभी को अपने धर्म और कर्म की चिन्ता है। अस्तु मानस में जो करुण धारा दिखलाई देती है वह अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न होती है और धीरे धीरे बहुत ही व्याप्त होती जाती है। वास्तव में तुलसी ने विषाद को वाणी के रूप में बहाया है। पर कहीं भी उसको वाचाल नहीं होने दिया है। इसी से इसकी अनुभूति भी गंभीर होती है। जो हृदय से निकल कर हृदय में बैठती और उसको करुणा का घर बना लेती है।

गोस्वामी जी ने शोक के प्रसंग में इतना और भी किया है कि काम और क्रोध को एक साथ ही एक प्रसंग में लाकर खड़ा कर दिया है और अन्त में सरलता से यह दिखलाया है कि काम और क्रोध का परिणाम अन्त में शोक हो जाता है। दशरथ में काम और कैकेयी में क्रोध नहीं तो कोप भवन की लीला है। दशरथ प्रसंग में आकर जब यह कहते हैं:—

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू॥
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें॥[1]

तब काम की दृष्टि में कोई कड़ी बात नहीं होती फलतः उधर से भी नहीं सीधी-सी बात निकल पड़ती है।

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका।
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥[2]

बात बहुत सीधी पर परिणाम कैसा भयंकर हुआ है। राजा की मृत्यु और राम वनगमन तथा भरत की तपस्या। और यह विषाद घर घर में फैल गया। मन्त्री के भी मेधा की ज्योति मंद पड़ गई। गोस्वामी जी ने काम और क्रोध में छिपे शोक रूप को पहले ही मिथिला में लिया था और यह बता भी दिया कि इसका परिणाम

१ मा० अयो० पृ २९६
२ मा० अयो० पृ १०१

सुलभ ही क्या हुआ। काम और भाव की स्थिति को ठीक ठीक समझने और उनके द्वारा इष्ट तक पहुँचने का मार्ग यदि कुछ सिखलाता हो तो तुलसी के मानस का अवगाहन करें।

करुण रस से सारा अयोध्या कांड ही आप्लावित हो रहा है। कौन ऐसा कठोर हृदय होगा जिसके नैन इसके पाठ से अश्रु पूर्ण न होते हों। उस समय की अवस्था विचारिये जब कौशिल्या ने राम के मुख से उनके वन जाने की बात सुनी उस समय उनकी अवस्था यह हुई।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके।।
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी।।[1]

परम प्रिय पत्नी तथा परम स्नेही बन्धु के साथ राम वन जा रहे हैं। उस समय घर वालों की बात कौन चलावे नगर वासियों की दशा देखिये :—

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा।।[2]

क्योंकि उनके वियोग में :—

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी।।[3]

और उधर घोड़ों की अवस्था भी राम के वियोग में बड़ी विचित्र है।

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं।।[4]

इतना ही नहीं वह भी :—

नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।[5]

घोड़ों की यह दशा देख राम के परिवार की वदना की थाह लगा लीजिये। इन पंक्तियों में करुण रस का स्रोत बहा है। इस स्थल की विशद विवेचना गत शीर्षक 'तुलसी की मौलिकता और चित्रात्मकता' के अन्तर्गत की जा चुकी है। इसी हेतु करुण रस के प्रसंग में उनका संकेत मात्र किया गया है।

कवि एक करुण चित्र उस समय अंकित करते हैं जब वह कैकेयी द्वारा उसके दोनों वरदानों के प्रकट किये जाने पर राजा की दशा का वर्णन करते हैं। सहवर्ती सात्विक अनुभावों स्तम्भ स्वर भंग और विवर्णता के समावेश से यह चित्र पूर्ण हो गया है। एक ऐसा ही चित्र पुनः कवि उस समय प्रस्तुत करते हैं जब उस वरदान को वापस करने की प्रार्थना पर जिसका सम्बन्ध राम के वनवास से था। वह राजा की घम कमता का वर्णन करते हैं। यह भी प्रकार और स्वर भंग जैसे अनुभावों के समावेश

---

१ मा० अयो० पृ० ३०५
२ मा० अयो० पृ० ३०६
३ मा० अयो० पृ० ३४४
४ मा० अयो० पृ० ३४४
५ मा० अयो० वाँ दोहा सं० ९९

द्वारा पूर्ण हो गया है।[1] पुनः एक ऐसे ही चित्र का उद्घाटन गोस्वामी जी द्वारा उस समय होता है जब वह राजा की उस दयनीय दशा का चित्रण करते हैं जिसमें राम उन्हें प्राप्त करते हैं। यह चित्र भी प्रलाप और मरण सम्बन्धी भावों के समावेश से पूर्ण बन गया है।[2] पर राम के वन गमन से सुमन्त की जो विषम अवस्था है उससे दयनीय और करुण शायद ही और कोई दृश्य हो।[3] इससे इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के शोक सम्बन्धी लक्षण यह हैं। शोक में चित्त में स्थित विषाद समस्त दैवी शक्तियों का शोषण कर लेता है। शरीर की सुध बुध नहीं रहती जैसे वह प्राण विहीन हो गया है। वह मूक जाता है अङ्ग प्रत्यंग शिथिल हो जाते हैं। वे शक्ति हीन और सीने भी हो जाते हैं। शोकित व्यक्ति श्वास कष्टपूर्वक ले पाता है थोड़ी थोड़ी देर पर उसे दीर्घ श्वास आती है। कण्ठ सूख जाता है। बीच बीच में जब व्यथा तीव्रती है तो दम सा घुटने लगता है। शोक के इन लक्षणों को हमारे कवि सम्राट ने सुमन्त की व्यथा के चित्र में कैसे स्वाभाविक रूप से समाविष्ट किया है। अपने पुत्र के वनवास और पति की मृत्यु पर कौशिल्या की व्यथा जो भरत से जब वह अपने मामा के घर से लौट कर आते हैं उनसे मिलते समय फूट पड़ी है। यह अपने ढंग की अनुपम है। इसमें जितना अभिव्यंजन गाम्भीर्य है उतना ही भाव गुरुत्व भी।[4] गीतावली में करुण रस की एक सफल व्यंजना उस समय हुई है जब कवि कानन केसरी गोस्वामी जी सीता के निर्वासन का विवेचन करते हैं[5] और उनको वन में छोड़ कर वापस होते हुए लक्ष्मण को सम्बोधित निर्वासित सीता के दैन्यपूर्ण निवेदन को कवि ने इतना करुण बना दिया है कि उसे सुनकर प्रत्येक हृदय एक बार पसीज जायेगा। किन्तु उस पर रघुवंश की छाया स्पष्ट है।[6] अतएव गोस्वामी जी ने करुण रस का चित्रण अत्यन्त हृदय ग्राहक पद्धति से किया है। दशरथ के मरण पर यह शोक अपनी पूर्ण दशा को पहुँच जाता है। उस समय अयोध्या की दशा के वर्णन में पाठकों को करुणा की ऐसी धारा दृष्टिगोचर होती है। जिसमें पुरवासियों के साथ वह भी मग्न हो जाते हैं। गोस्वामी जी द्वारा चित्रित राजकुल का यह शोक ऐसा है कि जिसके भागी केवल पुरवासी ही नहीं मनुष्य मात्र हो सकता है। क्योंकि यह शोक ऐसे आलम्बन के प्रति है जिसका स्वभाव भी कुल को देख मनुष्यता रखने वाले सभी करुणाप्रद हो सकते हैं।

दुखान्त काव्य एक ऐसी असाधारण विपत्ति को अपने में लपेटे रहता है।

---

१ मा० अयो० दो० सं० १५
२ मा० अयो० दो० सं० १६–८
३ मा० अयो० दो० १४३–४६
४ मा० अयो० दो० १६५–६६
५. गीतावली उत्तर कांड—पद सं० २८–३२
६. रघुवंश सर्ग १४

जिसमें किसी उच्च पद वाले व्यक्ति की मृत्यु का समावेश रहता है। इसमें महाराज दशरथ की मृत्यु प्रसंग में एक ऐसी बड़ी हलचल उत्पन्न कर देती है। जिसे दुखान्त नाटक की पराकाष्ठा ही कहनी चाहिए। पर तुलसी की कल्पना इसके विरुद्ध है। एक तो तुलसी हमारा ध्यान एक ही व्यक्ति में केन्द्रित नहीं करते दूसरे वह केवल मृत्यु को ही जीवन की महान करुणात्मक घटना नहीं मानते। प्रारम्भ में महाराज दशरथ हमें दुखान्त कविता के चरित्र नायक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। जिनकी बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियों के चित्रण में पाश्चात्य जगत के दुखान्त सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों का सन्निवेश हो जाता है। वह एक साम्राज्य के सम्राट हैं और उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में तुलसी यही लिखते हैं कि यदि दिनेश अपने समय से पहले अस्त हो संसार को अथवा कलेष कैसे न हो।[1] तुलसी की दुखान्त काव्य रचना की विशेषता यह है कि उन्होंने नाटकीय कौशल के साथ महाराज दशरथ के मानसिक सन्निपात का वर्णन अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया है। जिसका प्रारम्भ यह है —

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहग बेहालू॥[2]

दशरथ के आन्तरिक भावों के संघर्षण का वर्णन ऐसे करुणात्मक शब्दों में हुआ है कि आँसुओं को बिना न्योछावर किये नहीं रहा जा सकता। भरत के चरित्र पूर्ण विचार में यह शोकाचार ही उनके हेतु अत्यन्त दुखात्मक है कि वे अपनी माता के षड्यन्त्र में सम्मिलित हैं। तुलसी ने भी उनके इस दुख का ऐसे विस्तार के साथ वर्णन किया है कि हमारे हृदय में उनके प्रति करुणापूर्ण आदर का भाव उत्पन्न होता है। भरत जी स्वयं कहते हैं जो करुणा रस से ओत प्रोत है।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू॥
रायँ राम कहुँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥[3]

अतः गोस्वामी जी का काव्य करुण रस के वर्णनों से ओत प्रोत है। जहाँ भी अपनी रचना में अवसर मिला गोस्वामी जी ने इस रस की तरंगिणी प्रवाहित कर दी है।

अद्भुत रस—

अद्भुत रस के भी कुछ अच्छे उदाहरण मानस में मिलते हैं। मोह ग्रस्त सती को जो राम ने अपना अद्भुत रूप दिखलाया है। वह भी अद्भुत रस का अच्छा उदाहरण है।

आश्चर्य में विषाद और हर्ष की स्थिति मिली रहती है। आश्चर्य में आलम्बन की विशेषता होती है और उसके कार्य की भी। अद्भुत रस अद्भुत ही होता है।

---

१ अमदाहा—विश्वसाहित्य में रामचरित मानस—प्रथम संस्करण पृ० ४०
२ मा० अयो० पृ० २७६
३ मा० अयो० पृ० ३६७

उसमें चित्त की दशा भी अद्भुत होती है। गोस्वामी तुलसीदास ने राम के अद्भुत चरित्र में अद्भुत रस की व्यंजना भरपूर की है। इसके अनेक अवसर मानस में आये हैं, जिनमें सर्व प्रथम सती का मोह है और इसका अन्त है काकभुशुण्डि मोह में। इसके अतिरिक्त स्फुट प्रसंगों में भी अद्भुत रस दिखलाया गया है। किन्तु इस रस का समुचित परिपाक राम के अद्भुत चरित्र में हुआ है। इस अद्भुत चरित्र को देख कर सती की स्थिति यह हो जाती है।

नयन मूँदि बैठीं मगमाहीं।[1]

तात्पर्य यह है कि अति अद्भुत से भय ही उत्पन्न होता है। कुछ हास्य नहीं। पर यह अवस्था उसी की होती है जो उसे देखता है। सामाजिकों को तो इसमें भी आनन्द ही आता है। हमारी दृष्टि में जो बात नहीं आती और जिसे हम ठीक ठीक नहीं समझ पाते वही तो हमारे विस्मय का कारण होती है और हमारी मति में भी विभिन्नता होती है। अस्तु इस अद्भुत का वर्णन कवि ने अन्य स्थलों में भी किया है। हनुमान के पराक्रम में प्रायः इसके दर्शन ही हो जाते हैं। उनकी शिशुलीला को लीजिए —

भानु सों पढ़न हनुमान गए, भानु मन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन मन
क्रम को न भ्रम कपि बालक बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि सुरपाल हरि हर बिधि
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।
बल कैधौं बीररस धीरज कै साहस कै
तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो॥[2]

इसमें स्पष्ट है कि हनुमान थोड़ी सी अवस्था में कितना महान कार्य सम्पन्न करते हैं। एवं प्रौढ़ होने पर :—

लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो।
तीखी तुरा तुलसी कहती, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥[3]

इस पद के समग्र वर्णन से जो चित्र सामने खड़ा होता है उसके अद्भुत होने में कोई भी सन्देह नहीं। गगन मण्डल के बीच पहाड़ की एक लीक बन्ध जाना कोई साधारण व्यापार नहीं है। इस अद्भुत रस की योजना भी एक स्वभाव सिद्ध व्यापार

---

१ मा० बा० पृ० ४९

२ कवितावली—हनुमानबाहुक—पद सं० ४

३ कवितावली—लङ्का कांड—पद सं० २७

के आधार पर हुई है और यह योजना गोस्वामी जी का प्रकृति निरीक्षण भी सूचित करती है कि अत्यन्त वेग से गमन करती हुई वस्तु की एक लकीर सी बन जाया करती है। इस बात पर कवि की दृष्टि गई है। जिसकी दृष्टि ऐसी सूक्ष्म वस्तुओं पर नहीं जा सकती वह अपने को कवि कहलाने का अधिकारी नहीं। अद्भुत रस के इस वर्णन में गोस्वामी जी की बिम्ब व्यापार ग्राहिणी प्रवृत्ति लक्षित होती है। जो हिन्दी के और किसी भी कवि में उपलब्ध नहीं होती।

गोस्वामी जी ने राम के शील और सौन्दर्य को भी व्यक्त करने के हेतु इस रस से विशेष काम लिया है। राम मृगया खेल रहे हैं फिर भी मृग भागते नहीं हैं। प्रत्युत उनको देखते ही रह जाते हैं।

सर चारिक चारु बनाइ कसें कटि पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छबि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरें रतिनायक है॥[1]

राम के अलौकिक कर्मों को देख कर माता कौशिल्या को सहसा विश्वास नहीं होता। वह आश्चर्य के साथ राम से पूछती हैं —

सुकृति पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोरयो कोमल कर कमलनि शंभु सरासन भारी।
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी।
मुनि प्रसाद मेरे राम लखन की बिधि बड़ि करवर टारी॥
चरनरेनु लै नयननि लावति क्यों मुनिवधू उधारी।
कहौं धौं तात क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेहकुमारी।
दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर खयकारी।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय करी है बहुत मनुहारी॥[2]

तुलसी ने बाल कांड में कौशिल्या को जो अपना विराट रूप दिखलाया है वह भी अद्भुत रस का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ॥[3]

---

१ कवितावली—अयोध्या कांड—छं० सं० १७
२ कवितावली—बाल कांड—पद सं० १०७
३ मा० मा० पृ० १४१

इसमें आलम्बन राम, आश्रय कौशिल्या, अनुभाव राम के विराट रूप काल कर्म रूप आदि, उद्दीपन तनु पुलकित आदि, अनुभाव वचन नेत्रों को मूंद लेना भय आदि संचारी हैं, स्थायी विस्मय है। इस प्रकार यह अद्भुत रस का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। इसके वर्णन में उन्होंने ऐसे शब्द भी डाल दिये हैं जो अद्भुत रस की शास्त्रीय व्याख्या में प्रयुक्त होते हैं। अतः गोस्वामी जी ने अद्भुत रस का भी बड़ा अद्भुत वर्णन किया है।

हास्य रस—

'मानस' में हास्य रस का उत्तम परिपाक शिव जी की बरात और नारद मोह के प्रसंग में हुआ है। तुलसी के सम्पूर्ण काव्य में हास्य का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। 'स्मित हास्य' 'स्निग्ध हास्य' 'मुक्त हास्य' 'अट्टहास' 'व्यंग हास्य' आदि हास्य की अनेकों कोटियाँ हैं। अतएव मानस में इस प्रकार के हास्य का अभाव नहीं। प्रायः हम देखते हैं कि जब कहीं विवाह हो जाता है तब कहीं किसी को हर्ष भी होता है। देवताओं को हर्ष भी राम के विवाह में ही होता है। अतएव इस प्रकार के हास्य के सम्बन्ध में अधिक न कह कर देखना यह चाहिये कि तुलसी ने दूसरी और सूक्ष्म हास्य को कैसे चित्रित किया है। राम के प्रसंग में निषाद को छोड़ जाना कभी भी ठीक न होगा। निषाद की भाव भरी भोली वाणी में जो रस राम को मिलता है वह हँसी से छूटे बिना नहीं रह सकता। देखिये :—

> रावरे दोष न पायन को पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है ॥
> पाहन तें बन बाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है ॥
> पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं आयसु होत कहा है।
> तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥[१]

केवट के 'बर बैन' में जो भाव भरा था वह भाव व्यक्त कर किसी और ही रूप में व्यक्त हुआ और फलतः राघव को भी 'हहा' को अथवा 'हेरि हेरि' कर हँसना पड़ा।

> प्रभुरुख पाइ कै बोलाइ बालक घरनिहि
> बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
> छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को
> धोइ पाँय पीअत पुनीत बारि फेरि फेरि
> तुलसी सराहैं ताको भागु सानुराग सुर।
> बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
> बिबुध सनेह सानी बानी असयानी सुनी
> हँसे राघौ जानकी लखन तन हेरि हेरि ॥[२]

---

१ कवितावली—अयोध्या कांड—पद सं० ७
२ कवितावली—अयोध्या कांड—पद संख्या १०

रावण की इस हँसी का भूतनाथ की उस हँसी से मिला कर देखिये तो पता चले कि पालक और संहारक की हँसी में कैसा भेद होता है और यदि विष्णु और महादेव के हास्य को एक साथ देखना हो तो शिव विवाह को लीजिये। वहाँ शिव की बारात को देखकर सुर भी हँसते हैं और सुर त्राता विष्णु भी ऐसी स्थिति में हँस कर कहते हैं।

बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥[1]

यहाँ भी भूतनाथ को अपना समाज की सूझी तो उन्होंने भी अपने गणों का टेरा और परिणाम यह हुआ कि —

नाना बाहन नाना बेषा।
बिहँसे सिव समाज निज देखा॥
बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥[2]

इत्यादि मानस बाल कांड में यह बारात जब नगर के निकट पहुँची तो अगु-वानी लेने लोग आये तब :—

हिय हरषे सुर सेन निहारा।
पर — सिव समाज जब देखन लागे।
बिडरि चले बाहन सब भाग॥[3]

एक ही आलम्बन से किसी के हृदय में भय किसी के हृदय में हर्ष का संचार कैसे होता है इसका यह दिव्य उदाहरण है। बालकों का भयभीत होना कितना स्वाभाविक है। बच्चों को डरा कर आज भी आनन्द लूटने वाले कम नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यदि हास्य का पूरा परिपाक देखना हो तो नारद मोह लीला को लीजिये। शील निधि राजा की विश्व मोहिनी कन्या को देख कर नारद सोचते हैं।

जप तप कछु न होइ तेहि काला।
हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥[4]

और स्वयंवर में —

पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।[5]

यों तो गोस्वामी जी ने आप हास्य रस उत्पन्न ही किया है। नारद का जो इस स्वयंवर में उपहास हुआ उसका रूप यह निकला कि उनके हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ और रमापति के 'मुनि कहँ चले बिकल की नाईं' कहने पर तो वह बरस ही पड़ा।

---

१ मा० बा० पृ० ७०
२ मा० बा० पृ० ७०
३ मा० बा० पृ० ७२
४ मा० बा० पृ० ८७
५ मा० बा० पृ० ९९

हास्य के साथ रौद्र का ऐसा रंग कहाँ मिल सकता है। उसके विभाव भी तो अनुपम ही हैं। रमापति और उनकी लीला। हास और उपहास के साथ परिहास भी चला करता है। तुलसी ने इसके विधान में भी कोई चूक नहीं की। यदि विविध भावों से भरे हुए हास को देखना हो तो तुलसी के 'बावरो रावरो नाह भवानी' वाला पद देखें। इस पद में तो हास्य रस अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

> बिन्ध्य के बासी उदासी तपोब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
> गौतमतीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे॥
> ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखीं परसे पद मंजुल-कंज तिहारे।
> कीन्ही भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥[1]

हास की दृष्टि से हास्य का जो अभी तक विचार हुआ उसमें हर्ष का उच्छ्वास देखने में नहीं आया। विजय में जो प्रसन्नता होती है वह जैसी वानरों में दिखलाई देता है वैसी नरों में नहीं। हनुमान की प्रथम सफलता पर जो हर्ष वानरों का होता है उसकी गोस्वामी जी ने निम्नलिखित पद में कैसी सजीव व्यंजना की है —

> गगन निहारि किलकारी भारी सुनि,
> हनुमान पहिचानि भये सानँद सचेत हैं।
> बूड़त जहाज बच्यो पथिक समाज मानो
> आजु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं॥
> जै जै जानकीस जै जै लखन कपीस कहि
> कूदैं कपि कौतुकी नचत रेत रेत हैं।
> अंगद मयंद नल नील बलसाल महा
> बालधी फिरावैं मुख नाना गति लेत हैं॥[2]

गोस्वामी जी ने हास के अनेकों उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किये हैं जिनमें से कुछ की विवेचना पीछे हो चुकी है। मानस में सूपनखा की इस बात पर भी अवश्य ही हँसी आयेगी।

> तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह संजोग बिधि रचा बिचारी॥
> तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥[3]

ऐसी स्त्री हमारे किसी भी पाठक के देखने सुनने में नहीं आई होगी। इसने बाजारी स्त्रियों की भी नाक काट ली थी। अच्छा हुआ इसकी नाक भी काटी गई। इसकी दशा देख सचमुच रा[illegible] भी भाई से हँसी करने की उमंग आ गई।

---

१ कवितावली—अयोध्या कांड—छं० सं० २८
२ कवितावली—सुन्दर कांड—छं० सं० २१
३ मा० अरण्य० पृ० ४५२

प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा । जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा ॥[1]

इतना होने पर विशेषता यह है कि गोस्वामी जी का शिष्ट हास्य स्मित हास्य के अन्तर्गत आता है अतिहसित की कोटि में नहीं। गोस्वामी जी का हास मर्यादा संयुक्त है। बड़े लोगों का हास है। उस पर व्यंग्य गर्भित है। निरा हास नहीं। यह मोह और अहंकार को छुड़ाने वाला था तो नारद कह उठते हैं।

मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे।
कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥[2]

भयानक रस—

भयानक रस का दो चार जगह ही गोस्वामी जी के काव्य में चित्रण हुआ है। राघव के क्रोध करने पर युद्ध भूमि का दृश्य भयंकर हो गया था[3] इसमें क्रोध उत्साह और जुगुप्सा में एक साथ आया जोश रखता है किन्तु यह तो राम का स्फुट रूप रहा जो कहीं कहीं रण भूमि में ही दृष्टिगोचर हुआ। इधर लंका में जो लपटें आग लगी है वह किसी भी दावाग्नि से कम नहीं है। वहां की स्थिति तो और भी भयंकर है।

जरत निकेत धावो धावो लागि आगि रे।
कहाँ तात मात भ्रात भगिनि भामिनी भाभी
छोटे छोटे छोहरा अभागे भोर भागि रे ॥
हाथी छोरो घोड़ा छोरो महिष वृषभ छोरो ॥[4]

किन्तु यह पुकार उस भयानक भय के सामने कुछ भी न कर सकी। जायें भी तो लङ्का निवासी कहाँ जायें। भय की आकुलता में उन्हें वानर ही चारों ओर दृष्टिगोचर हो रहा है।[5] धनुभंग होने पर भी कैसा भयंकर नाद होता है।

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
को दंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

कवि कैकेयी को एक महान अनिष्ट की आशा से कम्पित दिखाते हैं। जब वह मंथरा के द्वारा सुनाये हुए भयंकर परिणामों का चित्र अपने मस्तिष्क में खींचती है। यह भाव चित्रण यद्यपि संक्षेप रूप में हुआ है पर कवि ने इसे भय का अति सुन्दर

---

१ मा० अरण्य० पृ० ४७
२ मा० बा० पृ० १०१
३ मा० लंका पृ० ११०
४ कवितावली—सुन्दर कांड—पद सं० ६
५ कवितावली—सुन्दर कांड—पद सं० १७

रूप दे दिया है।[1] अतः भयानक रस का निर्वाह भी कवि राज ने बड़ी सफलता से किया है। लङ्का दहन वर्णन में तो कवि ने इसे सजीवता ही प्रदान कर दी है।

बीभत्स रस —

बीभत्स रस का वर्णन प्राचीन काव्य में केवल युद्ध अथवा श्मशानों के प्रसंग में आया है। आजकल तो अनेक ऐसे स्थान देखने में आते हैं जो बीभत्स रस का उद्रेक करने में साधन बन सकते हैं। जैसे अस्पताल पशुवधालय और सड़कों पर एकत्रित कूड़े के ढेर। आज कल के आधुनिक सुरुचि सम्पन्न लेखकों और कवियों ने भी इसका वर्णन किया है पर मानस में इसका वर्णन दो ही स्थलों पर हुआ है। राम रावण युद्ध में और वस्तुतः युद्ध में जुगुप्सा का भाव अपने मामा के यहाँ से लौटने के पश्चात् भरत द्वारा की हुई अपनी माँ की भर्त्सना में देखा जा सकता है।

बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥[2]

इसके अलावा कवितावली का यह भी उदाहरण बीभत्स रस का बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है।

ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै॥
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी।
तीर तीर बैठीं सो समरसरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ।
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥[3]

स्थायी जुगुप्सा योगिनी आलम्बन उनके विभिन्न व्यापार उद्दीपन भय संचारी आदि से युक्त बीभत्स रस का सुन्दर उदाहरण है। अतएव इस रस में भी गोस्वामी जी ने सफलता पाई है। उनके बीभत्स में भी भक्ति भरा है जो अन्त पंक्ति से प्रकट है।

रौद्र रस—

इस रस का प्रयोग क्रोधावेश की दशा को प्रकट करने के हेतु होता है। भरत को शत्रु भाव से ससैन्य चित्रकूट में आये जान लक्ष्मण जी का जो अवस्था हो जाती है वह रौद्र रस का उत्कृष्ट उदाहरण है —

छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहु मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान।

---

१ मा० प्रयो० पृ० २०
२ मा० प्रयो० पृ० ११६
३ कवितावली -लंका कांड—पृ० १६१—छन्द सं० ५८

कह लगि सहिअ रहिअ मनु मारें।
नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥[1]

भौं चढ़ाना क्रूरता से देखना ओठ चबाना दाँत ठाकना हथियार घुमाना रोमांच और पसीना होना आदि इस रस के लक्षण हैं। तुलसी ने मानस में युद्ध के अवसरों पर इस रस का यथार्थ स्वरूप दिखलाया है। स्वयंवर में जब तक जनक ने असफल प्रयत्न किया राजाओं की भर्त्सना की तो तेजस्वी लक्ष्मण ने अपना रौद्र रूप प्रकट किया। तुलसी ने उसका बहुत ही ओजपूर्ण वर्णन किया है —

माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥[2]
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे रौद्र रस के चित्रण में भी मर्यादा को नहीं भूले। वहाँ क्रोधित अवस्था में भी लक्ष्मण के मुँह से जो शब्द निकले वे मर्यादा के आवरण में आवरणित और मर्यादा पूर्ण हैं पहले तो लक्ष्मण ने कहा —

काचे घट जिमि डारौं फोरी।

भाव है काचे घट कहने का। लक्ष्मण व्यंग्य से कह रहे हैं कि मैं तोड़नहार हूँ। पृथ्वी का पुनः निर्माण भी कर सकता हूँ। पक्का घड़ा फिर तोड़कर बनाया नहीं जा सकता और कच्चा घड़ा कुम्हार अनेकों बार बना सकता है। अतः लक्ष्मण कहते हैं ब्रह्मांड के टूट जाने पर यदि कहा जायेगा तो मैं उसका पुनः निर्माण भी कर दूँगा। इसी प्रकार लक्ष्मण ने कहा —

कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं।

'चाप चढ़ावौं' कहा 'चाप तोरौं' नहीं। 'तोरौं' कहने में औचित्य का नाश हो जाता है क्योंकि जब लक्ष्मण यह जानते हैं कि राम मन से जानकी का वरण कर चुके हैं तब वे 'चढ़ावौं' ही कह सकते 'तोरौं' नहीं। कितने औचित्य से भरे शब्द हैं। अतः तुलसी रौद्र रस के भी सफल चित्रकार थे।

शान्त रस—

गोस्वामी जी ने शान्त रस की बड़ी ही सुन्दर अभिव्यंजना विनय के पदों में की है। वास्तव में शान्त रस की जैसी धारा विनयपत्रिका में बही है। वैसी हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं। निर्वेद ही एक ऐसा भाव है जो आदि से अन्त तक बना

---

१ मा० अयो० पृ० ४००
२ मा० बा० पृ० १७३

रहता है । उसका मूल रहस्य है लाभ कहा मानुष तनु पाये । यदि हरि भक्ति नहीं की तो मनुष्य जन्म पाने से क्या लाभ ।[1] और उसका दृढ़ निश्चय भी राम भक्ति के प्रति अभिव्यक्त हुआ है ।[2] इससे कहने को तो मन नहीं चाहता है कि निर्वेद की प्रधानता होने पर भी उसकी इति राम रति में ही होती है और इसी का परिणाम है कि विनयपत्रिका ऐसी उत्तम रचना मानी जा सकती है कि जो सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अनुपमेय है । औरों की भक्ति के विषय में चाहे जो भी कहा जाय पर तुलसी की तो बड़ी अनन्य भक्ति राम में थी । तुलसी की दृष्टि में प्राकृत राम ही परम ब्रह्म थे । अतः उनके सम्बन्ध में वैसा विवाद नहीं उठ सकता जैसा कि अन्य विद्वानों ने अन्य मतों के सम्बन्ध में उठाया है । कदाचित यही कारण है कि आचार्यों ने देव विषयक रति को स्वतन्त्र स्थान दे भक्ति नाम को एक अलग रस ही मान लिया है । कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि विनय में निर्वेद का ही राज्य है ।

कवि अयोध्यावासियों में जब राम को वनवास दिया जाता है । उनके विरह से उत्पन्न उत्कट व्याकुलता से पुष्ट निर्वेद का चित्रण करते हैं ।[3] एक अत्यन्त चोखा कुछ निर्वेद का दृश्य कवि राज ने सुमन्त में प्रस्तुत किया है जब वे राम को वन पहुँचाकर लौटते हैं ।[4] शान्त का एक उदाहरण कवि कुछ कमल दिखाकर ने दशरथ में ही अंकित किया है । जब वे अपने निष्पाप पुत्र राम को युवराज पद देने के निर्णय की घोषणा के पश्चात स्वतः अपनी इस दशा पर विचार करते हैं ।[5] मानस में उत्तर कांड के अन्त में भक्ति निरूपण में भी शान्त रस ही है । अन्त में तुलसी को अपने शान्ति प्रधान मन से शान्ति भी प्राप्त हुई जिसे वे 'पायो परम विश्राम' कहकर स्वीकार करते हैं और अधिक उदाहरण हमसे इस पक्ष के न मांगिये अब गोस्वामी जी की रचना ही शान्त रस प्रधान है ।

गोस्वामीजी ने अपने काव्य में इस प्रकार से सभी रसों का यथास्थान विवेचन किया है । उन्होंने रस की तीव्रता के हेतु संचारी भावों के संस्थित पर ध्यान रखा है । जैसी विवेचना हो चुकी है ।

रसों के उपकरण एकत्रित करके योजना तो अधिकांश कवि कर सकते हैं किन्तु सुकवि का कौशल इसी में है कि वह रस के औचित्य का भी पूर्ण रूप से निर्वाह कर सके । अर्थात् न तो विरोधी रसों को वह एक में मिलावें और न ऐसी रचना करें कि उसमें रस दोष आ जायें ।

---

१ विनयपत्रिका — पद संख्या २०
२ विनयपत्रिका—पद संख्या २७८
३. मा० अयो० ८३ ८४ पृ०
४ मा० अयो० पृ० १४४—१४५
५ मा० अयो० पृ० १४६

गोस्वामी जी के काव्य में कहीं भी विरोधी रस एक साथ नहीं आये। जिस स्थल पर ऐसी योजना जिन स्थलों पर हो भी गई है वह अभिव्यक्ति भिन्न कुपित व्यक्तियों के लिये होने के कारण रस दोष से मुक्त हो गई है। जैसे —

प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।[1]

यहाँ प्रयुक्त वीर और भयानक दोनों ही रस विरोधी हैं पर दोनों का प्रयोग था भिन्न विरोधी लोगों के लिए ही होने से इसे रस दोष नहीं कहा जायेगा। कोई भी भाव तुलसी की लेखनी से अछूता नहीं रहा है। प्रत्येक भाव पर उन्होंने समानाधिकार से अपनी लेखनी चलाई है। यह केवल तुलसी के ही सामर्थ्य की बात थी।

गोस्वामी जी रस सिद्ध कवि थे। उनका सम्पूर्ण मानस ऐसे दिव्य रस से भरा हुआ है। जिसके विषय में वे स्वयं कहते हैं।

राम कथा जे सुनत अघाहीं। रस विसेष जाना तिन नाहीं।

उनके वृहद ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति में कुछ न कुछ रस चमत्कार विद्यमान है। सामान्यतः नीरस प्रतीत होने वाली पंक्ति में भी कथा का प्रवाह मिलेगा। जिसमें रस अपने आप ही आप उदय रहते होंगे। गोस्वामी जी ने कई जगह नवों रसों का माधुर्य एक जगह समेट कर रख दिया है। विचार करने पर ऐसे स्थलों में अनोखा ही आनन्द आता है। यहाँ एक उदाहरण दे देना अनुचित न होगा। सुन्दर कांड में वे लिखते हैं।

कनक कोट विचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु विधि बना।
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि का गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै।
बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं॥
नर नाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं।
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥[2]

इसमें विचित्रता के कारण पहली दो पंक्तियों में अद्भुत रस और बहुरूपी राक्षसी के कारण दूसरी दो पंक्तियों में हास्य रस विद्यमान ही है। पांचवीं पंक्ति में

---

१ मा० अरण्य० पृ० ४५२

२ मा० सु० पृ० ५४२

शृंगार रस और छठी में करुण रस है। क्योंकि नर-नाग-सुर गन्धर्व कन्यायें छीन कर ही लाई गई थीं। शस्त्रों के कारण सातवीं पंक्ति में वीर रस है। तर्जना के कारण आठवीं में रौद्र रस है। विकट तन के कारण नवीं में भयानक और अमंगल वसन के कारण दसवीं पंक्ति में वीभत्स रस ओत प्रोत है। रहा शांत रस तो वह शेष दो पंक्तियों में जिस खूबी के साथ प्रकट किया गया है वह देखते ही बनता है। इस प्रकार गोस्वामी जी ने जहां भी जिस रस का प्रयोग किया है वहाँ उसका समुचित ही उल्लेख किया है।

— —

ग्यारहवाँ अध्याय



शैली और उक्ति वैचित्र्य

शैली—

कवि जब तक अपने पात्रों में अपने व्यक्तित्व की विशिष्टता का रंग डाल कर काव्य रचना नहीं करता तब तक वह उत्कृष्ट काव्य का निर्माण नहीं कर सकता। पात्रों के साथ तादात्म्य का तात्पर्य यह है कि कवि जिस पात्र का वर्णन करे उसकी अन्तरात्मा का उद्घाटन करे। इस तरह पात्रों की मानसिक क्रियाओं के भीतर से तुलसी के ही व्यक्तित्व के विविध रूपों की अभिव्यक्ति होती है। मानस के चरित्र इतने जीते जागते और आकर्षक हैं कि उनके भीतर से तुलसी का कोमल और आकर्षक व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। यही मानस की शैली की सबसे बड़ी कला है। कवि की दैन्य भावना और आडम्बर हीन व्यक्तित्व की सरलता की ही अभिव्यक्ति मानस की शैलीगत सरलता सुबोधता और रमणीयता के रूप में प्रकट हुई है।

राम का चरित्र यदि सरस और सर्व सुलभ शैली में लिखा जाये तो तुलसी के मत से वह जितना प्रभावोत्पादक होगा उतना प्राकृत जनों के विषय में अत्यन्त अलंकृत और वैचित्र्य पूर्ण शैली में लिखा गया काव्य नहीं हो सकता। इस विश्वास को गोस्वामी जी ने मानस द्वारा प्रमाणित भी कर दिया है। क्योंकि केशव की राम चन्द्रिका पांडित्य और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति और आडम्बर पूर्ण कृत्रिम शैली के कारण सामान्य जनता में अज्ञात और मानस इन्हीं बातों के अभाव के कारण धर्म ग्रंथ जैसा पूजित है। कहने का अभिप्राय केवल यही है कि मानस के अन्तर्गत जो सरसता मिलती है। वह भी गोस्वामी जी की शैली की ही कलात्मकता है।

शैली का निश्चय केवल व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता वरन् वर्ण्य विषय पात्र परिस्थिति भाव उद्देश्य आदि के द्वारा शैली का रूप निश्चित होता है। इन बातों का ध्यान रखते हुए हम निम्नांकित शैलियाँ या काव्यरीतियाँ प्रचलित देखते हैं —सरस शैली, मधुर शैली ललित शैली विनम्र शैली या विनय शैली उदात्त शैली और व्यंग्य शैली या तीक्ष्ण शैली।[1]

---

१ इन में से सभी शैलियों के प्रकार गोस्वामी जी की रचनाओं में बड़ी ही सुन्दरता और कलात्मकता से उपलब्ध होते हैं। नीचे इन सभी शैलियों के उदाहरण और उनकी विवेचना गोस्वामी जी की रचनाओं के आधार पर प्रस्तुत की जा रही है।

मधुर शैली—

जिसमें मधुर एवं संगीतमय शब्दों द्वारा उपनागरिका वृत्ति के प्रयोग से सुकुमार और कोमल भावों का वर्णन किया जाता है वह मधुर शैली है। इसमें कर्कश भयानक प्रसंगों का वर्णन नहीं होता है। जैसे—

> सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
> तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
> तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
> अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकली॥[1]

इसमें 'न' वर्ण की आवृत्ति से मधुरता और संगीतात्मकता का समावेश हो गया है। साथ ही नयन सयन बैन, आदि मधुर संगीतमय शब्दों द्वारा उपनागरिका वृत्ति के प्रयोग से इसमें कलात्मक सौंदर्य उत्पन्न हुआ है। अतएव यह मधुर शैली का यह बड़ा मधुर उदाहरण है।

ललित शैली—

जिस शैली में उक्ति चमत्कार, शब्दों का कलात्मक प्रयोग, अलंकारिकता तथा वर्णन की सूक्ष्मता एवं चित्रात्मकता रहती है उसे ललित शैली कहते हैं। उदाहरणार्थ :—

> जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
> सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
> एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
> तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥[2]

इसमें जानकी के सौन्दर्य का वर्णन रूपक द्वारा बड़े ही कलात्मक शब्दों में अंकित हुआ है। जिसमें अलौकिक लक्ष्मी की उत्पादना की कल्पना एवं उसमें वर्णित उपकरणों जैसे शोभा की रस्सी शृंगार का मंदरा चल इत्यादि में सूक्ष्मता और चित्रात्मकता है। रूपक अलंकार और साथ ही अलौकिक लक्ष्मी की उत्पादना उक्ति चमत्कार भी दृष्टव्य है। इसी हेतु इसमें ललित शैली के द्वारा कलात्मकता आई है।

सरस शैली—

सरस भाषा में भावानुसार शब्दावली का प्रयोग करने वाली प्रसाद गुण सम्पन्न भाव एवं रसों का चित्रण करने वाली सर्वजन सुगम एवं रमणीय शैली है जैसे —

> जानी री मोहि कोउ न समुझावै।
> राम गमन साँचो किधौं सपनो मन परतीति न आवै।

---

१ कवितावली—अयोध्या कांड—छं० नं० २२

२ मा० बा० पृ० १५३

> समेत रहत हम कैकयि प्राण राम लखन पद सीता ।।
> तदपि न मिटत दाह या उर को विधि जो भयेउ विपरीता ।।
> दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत तन न रहै बिनु देखे ।
> करत न प्रान पयान सुनहु सखि समुझि परी यहि लेखे ।।
> कौसिल्या के बिरह बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी ।
> तुलसीदास रघुबीर बिरह की पीर न जाति बखानी ।।[1]

इसमें प्रसाद गुण और भाषा सरल होने से यह सरल शैली का सुन्दर उदाहरण है ।

व्यंग्य शैली—

इसमें बात का वाच्यार्थ प्रधान न होकर उससे निकलने वाला व्यंग्यार्थ प्रधान होता है । किसी बात को इस ढंग से कहना कि उसमें एक तीखा प्रभाव व्यक्त हो वक्रोक्ति या व्यंग्य शैली के भीतर है । जैसे —

> बहु धरि धर्मसीलता तोरी । हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी ।
> देखी नयन दूत रखवारी । बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी ।।
> कान नाक बिनु भगिनि निहारी । छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी ।।
> धर्मसीलता तव जग जागी । पावा दरसु हमहुँ बड़भागी ।।[2]

यहाँ पर रावण की अधर्मशीलता का विवेचन बड़ी ही व्यंग्यपूर्ण शैली में व्यक्त किया गया है । इससे प्रस्तुत उद्धरण व्यंग्यात्मक शैली का सुन्दर उदाहरण बन पड़ा है ।

विकट शैली—

जिसमें गूढ़ अर्थ या क्लिष्ट कल्पना की प्रचुरता हो और जिसका भाव बिना व्याख्या या टीका के स्पष्ट न हो वह क्लिष्ट या विकट शैली है । जैसे—

> सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई ।।
> जप तप ब्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ।।
> तेइ तृन हरित चरै जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ।।
> नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ।।
> परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ।।
> तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ।।
> मुदिताँ मथै बिचार मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ।।
> तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ।।
> जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
> बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ।।

---

१ गीतावली—अयोध्या काण्ड—छन्द नं० ५१

२ मा० मं०—पृ० ६६६

> तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
> चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥
> तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
> तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥
> एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
> जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥[1]

इसमें ज्ञान दीपक को स्पष्ट करने के हेतु क्लिष्ट कल्पना और गूढ़ अर्थ के दर्शन होते हैं इसका भाव बिना व्याख्या के स्पष्ट नहीं हो सकता। अतएव यह क्लिष्ट शैली का सुन्दर उदाहरण है।

उदात्त शैली—

ओज गुण सम्पन्न वीरता उत्साह भय आदि भावों की अभिव्यंजक शैली उदात्त शैली कहलाती है। इसके भी उत्कृष्ट उदाहरण गोस्वामी जी की रचनाओं में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जिनकी विशद विवेचना गत पृष्ठों में की जा चुकी है। अतएव यहाँ उसका वर्णन पुनरुक्ति मात्र ही होगा। अतः यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि गोस्वामी जी के काव्य में उपर्युक्त सभी शैलियाँ अपने प्रचुर रूप में उपस्थित हैं जो उनकी काव्य कला को अभूतपूर्व महत्व प्रदान करती हैं।

तुलसी की शैली के प्रकार—

मानस में तुलसी की शैली के अनेकों प्रकार हैं जिनमें से प्रमुख यह हैं।

१—रसानुरूप शैली
२—पात्रानुरूप शैली
३—स्थिति परक शैली
४—स्थान परक शैली
५—अवसरों पर प्रयुक्त शैली
६—स्तुति शैली
७—दार्शनिक शैली। आदि

इन सभी शैलियों से भी तुलसी की अद्भुत कला के दर्शन होते हैं। सारे मानस में इन सभी शैलियों के सुन्दर चित्र मिलते हैं। नीचे हम मानस की उपर्युक्त सातों शैलियों की विवेचना करेंगे।

रसानुरूप शैली—

रसों के स्थान पर ध्यान देते हुए इस बात की स्वयं सिद्धि हो जाती है कि सभी रसों की व्यंजना एक शैली में नहीं हो सकती। कालिदास का युद्ध वर्णन सफल नहीं माना जाता क्योंकि उसमें ओज की जगह माधुर्य गुण व्यक्त होता है। भवभूति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने रसानुरूप ही माधुर्य प्रसाद और ओज गुणों

---

१ मा० उत्तर०—पृ० ७८१

का प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य में भवभूति के समान ही रसानुकूल शैली का व्यवहार करने वाला यदि कोई महाकवि है तो वह गोस्वामी तुलसीदास। समस्त मानस के किसी न किसी स्थल में किसी रस विशेष के सभी उपकरणों के साथ तथा मुख्य गुण भी उस रस के प्रभाव स्वरूप वर्तमान हैं और वह रस के उत्कर्ष की ओर भी भी सम्पन्न करते हैं। यदि रस कोमल भाव पर टिकने वाला है तो उसमें माधुर्य और प्रसाद गुण सोने में सुगन्ध की कहावत को चरितार्थ करते दिखलाई पड़ते हैं। एक उदाहरण है।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥[1]

कहना न होगा कि शृङ्गार रस कोमल भावों से परिपुष्ट होता है। ऐसे भावों की व्यंजना के हेतु कवि ने जिस शैली को चुना है उसमें माधुर्य गुण तो ओत प्रोत है। साथ ही भाव सौष्ठव की गुंजार भी कितनी मधुर लगती है। अवतरण में एक भी शब्द ऐसा नहीं जिसमें माधुर्य न हो। प्रसाद गुण का तो कहना ही नहीं वह तो स्वच्छ दर्पण की भाँति झलक रहा है।

रसानुकूल शैली की अन्यान्य परिभाषायें न देकर हम इतना ही कहना चाहते हैं कि सारे ग्रन्थ में जहाँ कहीं रस का पूर्ण परिपाक दिखलाया गया है वहाँ की शैली उस रस विशेष के भावों को व्यंजित करती हुई उपयुक्त प्रसाद माधुर्य और ओज गुण का पल्ला पकड़े चलती है।

पात्रानुकूल शैली—

इस शैली से सामान्यतः यह प्रमाणित होता है कि वक्ता व्यक्तित्व का वर्णन है। जिस शैली में कलाकार स्वाभाविकता का अतिक्रमण किये बिना किसी पात्र का अंतर्द्वन्द्व प्रत्यक्ष करते हुए उसके व्यक्तित्व को मूर्तिमान कर देता है वह शैली पात्रानुरूप कहलाने की अधिकारिणी है। अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपियर इस शैली का धुरंधर पण्डित माना जाता है। इसके समान ही तुलसी हमारे हिन्दी साहित्य में पात्रानुरूप शैली के बेजोड़ कवि हैं। मानस में जहाँ कहीं पात्रों के उत्तमोत्तम कथन हुये हैं वहीं इस शैली की कला देखी जा सकती है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त है।

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥[2]
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

निषाद के हृदय में राम के प्रति अनन्य प्रेम होने के कारण उसे उनकी चरण रज पाने की उत्कट अभिलाषा है। इसकी व्यंजना तो उसके कथन में अपने

---

१ मा० बा० पृ० १६१
२ मा० अयो० पृ० ११६

आप ही प्रकट हो जाती है। उसके अन्तःकरण की सरलता व निर्मलता भी प्रकट हो जाती है। वह सामान्य वर्ग का पात्र है। अतएव उसकी वाणी से काठ और बाट परे इत्यादि आदि शब्दों का निकलना उसके कथन को और भी स्वाभाविक बना देता है। कथन में उसके हृदय और व्यक्तित्व की नैसर्गिक व्यंजना है। यह कवि की पात्रानुरूप शैली में कला का कितना सुन्दर उदाहरण है।

स्थिति परक शैली—

सामान्यतः जीवन में सम और विषम स्थितियों का चक्र चलता रहता है। मानस में जहाँ कहीं भी स्थिति विशेष की विलक्षणता उपस्थित हुई है वहीं उसका भाव प्रकट करने के हेतु वैसी शैली का अनुसरण किया गया है। उसमें स्थिति के गहरे प्रभाव को शीघ्रातिशीघ्र व्यक्त करने की बड़ी क्षमता है। इस शैली की पद योजना में नागरिकता की न्यूनता भले ही रहती है पर अभिप्राय की स्पष्टता थोड़े से बिखरे सरल शब्दों में ऐसी रहती है जो सब लोगों के हृदय में तुरन्त घर कर लेती है। अस्वाभाविक पदों की योजना द्वारा स्थिति के अनुकूल अनोखी शैली उपस्थित हुई है। जिसमें हृदय के भावों का उत्कर्ष देखते ही बनता है। ऐसे स्थलों पर उपयुक्त पदों की व्यंजना में मार्मिकता भरी पड़ी है। यह सब बातें हैं जिनके कारण गोस्वामी जी की शैली में कला आई है।

स्थान परक शैली—

मानस में जनकपुरी जनक वाटिका वाल्मीकाश्रम आश्रम चित्रकूट प्रभृति स्थानों के वर्णन में स्वाभाविक रमणीयता आती है। इन सभी स्थलों की शैली एक तो कोमल कांत पदावली को है ही साथ ही कुछ परम्परागत उपमानों की एवं अलंकार योजना से मंडित होने के कारण इसमें अद्भुत कलात्मक सौन्दर्य आ गया है।

अवसरों पर प्रयुक्त शैली—

प्रधान रूप से अवसर दो प्रकार के होते हैं, सुखात्मक और दुखात्मक इन्हीं दोनों से प्रभावित होकर हृदय प्रसन्नता के साथ उछल पड़ता है या बैठ जाता है। मानस में दोनों प्रकार के अवसरों पर मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं का अंकन मिलता है। ग्रंथ में रामजन्मोत्सव विवाहोत्सव तथा उनके वन से प्रत्यागमन से बढ़कर और सुअवसर क्या होंगे। अतः इन्हीं प्रसंगों को सुअवसर परिचायक शैली के उदाहरण रूप में लिया जा सकता है। उक्त प्रसंगों की शैली का मर्म समझने के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन सभी में एक रूपता है। इनकी पद योजना चहल पहल का रूप उपस्थित करने में समर्थ होते हुए हमारी सुखात्मक वृत्ति को सजग करती है। फलतः हमारा मन सुअवसर की आनन्दानुभूति में रम कर उसका मानसिक चित्र देखने लगता है। इसी सजीवता के कारण तो तुलसी की शैली में कला आ गई है।

राम वन गमन दशरथ मरण सीता हरण, लक्ष्मण मूर्छा आदि से बढ़कर और कुअवसर क्या होंगे। इन प्रसंगों की शैली का यदि परस्पर मिलान किया जावे

का इन सभी में साम्य मिलता। उसमें ऐसे अवसरों और पदों का योजना है कि वे सब हृदय में दुःखानुभूति कराकर मार्मिक दृश्य भी उपस्थित करते हैं।

स्तुति शैली—

स्तुति शैली के तत्सम संस्कृत शब्दों के प्रचुर प्रयोग और सामासिक पद लालित्य के मंजु प्रवाह के प्रेमोद्रेक के कारण प्रेम लक्षणा भक्ति का रसास्वादन होता है। मानस की स्तुति शैली में भी यही बात लक्षित होती है।

दार्शनिक शैली—

मानस की विचार प्रधान या दार्शनिक शैली में अप्रचलित तार्किक शब्दों की योजना के बाहुल्य के साथ सरलता भी है। उसमें भी हृदय के रमने का स्थान है।

उपदेशात्मक शैली—

मानस की उपदेशात्मक शैली में सूक्तिमय कथनों का ही आधिक्य है। तथापि उपदेश के कोमल भावों में आवृत होने के कारण सामान्यतः उसकी रमणीयता बनी हुई है।

संवाद शैली—

भरद्वाज मुनि की शंकाओं के समाधान रूप में ही मानस की सम्पूर्ण कथा कही गई है। शंका करने वालों की सभी शंकायें तथा उसके समाधान के निमित्त कही गई सम्पूर्ण कथायें स्पष्ट रूप से पौराणिक शैली में कही गई हैं। यह कथा संवादों के रूप में कही गई है। इस कारण मानस में हमें संवाद शैली के भी दर्शन होते हैं।

उपसंहार—

गोस्वामी जी का शैली के मौलिक गुण हैं। उनका आर्जव सरलता सुबोधता अलंकार, प्रियता धारा प्रवाह सभी कुछ तुलसी में है। जिसके कारण ही तुलसी की शैली में कला आई है।

शैली पर बौद्धिकता भावात्मकता और कला तीनों का ही प्रभाव पड़ता है। तुलसी की कला में यह तीनों ही तत्व पाये जाते हैं। अतएव उनकी कला में कलात्मक शैली के दर्शन होते हैं। उत्तम शैली का कलाकार ही अपनी प्रतिभा का ऐसा चमत्कार दिखला सकता है।

गोस्वामी की समस्त रचनाओं की शैलियां में हम यह देखते हैं कि तुलसी ने परंपरागत शास्त्रीय और लौकिक दोनों का प्रणालियों को समन्वित कर अपनी शैली का निर्माण किया है। शास्त्रीय शैली में उन्होंने संस्कृत के छन्दों तथा कवि शिक्षा एवं शास्त्र की बाधा तथा मर्यादा का पालन किया है। साथ ही लोक काव्य की शैली में व्यवहृत झूलना सवैया बाहुक आदि गीतों में भी उनकी रचनायें की जाती है। उन्होंने जानकी मंगल पार्वती मंगल आदि का शैली पर दोहावली कवित्त सवैये की शैली में कवितावली और पदों की शैली पर गीतावली की रचना की। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी ने अपने काव्य का शैली की दृष्टि से परिपूर्ण और सर्वांगीण

बनाकर प्रस्तुत किया है। शैली में शिल्प और कला को जिस सुन्दर रूप में कवि ने संजोया है वह उनकी कला का प्रस्तुत कौशल है।

अपने समय की प्रचलित काव्य भाषाओं पर ही नहीं उस समय की प्रचलित सभी शैलियों पर भी उनका प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है। विषय के अनुकूल उनकी शैली बदलती भी रहती है। गीतावली और विनयपत्रिका में सूर की गीति शैली का अनुसरण किया गया है। कवितावली में भाटों की शैली के अनुसार फुटकर कवित्त और सवैये की शैली अपनाई गई है। मानस की रचना शैली जायसी के पद्मावत पर आधारित होते हुए भी उसके दोषों से मुक्त है।

कवित्त छप्पय की वीर रसोपयुक्त शैली हिन्दी के वीर गाथा काव्यों की विशेषता है। तुलसी ने इसे बड़ी ही कलात्मकता से अपनाया है। मानस में फारसी मसनवियों की दोहा चौपाई पद्धति बरवै में रहीम के बरवै ग्रन्थ, नहछू में ग्राम गीतों की शैली गीतावली और विनयपत्रिका में पदों की परंपरा और दोहावली में नीति कारों की दोहा प्रणाली का अनुसरण किया गया है। सारांश यह है कि अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों को तुलसी ने राम चरित मानस का माध्यम बनाकर पूर्ण किया। इन सभी शैलियों का सुन्दर उपयोग उनकी कला विदग्धता का परिचायक है।

भावना के आवेग को व्यक्त करने के हेतु वर्णों या उदाहरणों की झड़ी लगा देना भी तुलसी की एक विशेषता और उसमें कलात्मकता लाने का एक कारण भी है। कैकेयी की करतूत पर भरत माता कौशिल्या के आगे अपनी सफाई देते हुये यह शपथ करते हैं कि अगर कैकेयी के कृत्य में मेरी सम्मति हो तो मैं इन पापियों की गति पाऊँ। पाप कर्मों की एक लम्बी सूची प्रवाह के साथ गिनाते चले गये हैं।[1] भरत के इस कथन की वाणी में कितनी सरलता और स्वाभाविकता तथा उनके शुद्ध अन्तःकरण की झलक है। जिसे पढ़कर पाठक एक बार यह अवश्य कहेगा कि भरत निर्दोष हैं। अतः तुलसी ने अपने समय की सभी प्रचलित काव्य शैलियों में रचना की। जबकि सूर ने केवल मुक्तक पद ही लिखे हैं।

कृष्ण के चरित्र पर गोस्वामी जी ने कृष्ण भक्त गीतकारों की शैली में 'कृष्ण गीतावली' की रचना कर डाली। गोस्वामी जी ने अपने काव्य में सभी प्रचलित शैलियों को इसलिये स्थान दिया ताकि जनता सभी शैलियों में राम चरित्र को अपने बीच में पा सकें। अतः इसके विवेचन से पूर्णतः स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने सभी शैलियों की बड़ी ही सुन्दर कलात्मक योजना की है।

उक्ति वैचित्र्य—

अपने किसी विश्वास की दृढ़ता अथवा अपनी कथा के किसी पात्र या किसी विषय के प्रति तीव्र सहानुभूति या तीव्र विद्वेष के कारण उमंग में आकर यदि एक

---

१ मा० अयो० पृ० १६६ ६०

उक्ति पर दूसरी उक्ति या एक कल्पना चित्र पर दूसरा कल्पना चित्र प्रस्तुत करके अपनी व्यंजना को अद्भुत ढंग तक प्रभावशाली बना देता है।

उक्ति वैचित्र्य से हमारा अभिप्राय उस केशव की उड़ान से नहीं है जिसके प्रभाव से कवि लोग जहाँ रवि भी नहीं पहुँचता वहाँ से अपनी उपमा उत्प्रेक्षा आदि के हेतु सामग्री लिया करते हैं। उक्ति वैचित्र्य से यहाँ हमारा अभिप्राय कथन के ऐसे अनूठे ढंग से है जो इस कथन की ओर श्रोता का ध्यान आकर्षित करता है तथा उसके विषय को मार्मिक तथा प्रभावशाली बना देता है। ऐसी उक्तियों में कुछ तो शब्द की लक्षणा व्यंजना शक्तियों का आश्रय लिया जाता है और कुछ पर्यायोक्ति जैसे अलंकारों का। ऐसी उक्तियाँ गोस्वामी जी की रचनाओं में भरी पड़ी हैं।

कुशल कवि उक्ति वैचित्र्य का आश्रय अपने विश्वास की दृढ़ता और तीव्र सहानुभूति की दृढ़ता प्रदान करने के हेतु ग्रहण कर काव्य में अद्भुत कलात्मक सौंदर्य की सृष्टि कर देते हैं।

गोस्वामी जी की उक्ति वैचित्र्य सम्बन्धी कला पर अभी तक समालोचकों का ध्यान नहीं गया है। अत नीचे हम कवि की इसी उक्ति वैचित्र्य सम्बन्धी कला पर प्रकाश डालेंगे।

राम की शोभा का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कवि सम्राट कहते हैं।

मानहु उमगि अँगनि छवि छलकै।[1]

इस छलके शब्द में कितनी शक्ति है। यह व्यापार को कैसा गोचर रूप प्रदान करता है। इसका वाच्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृत है। लक्षणा से इसका अर्थ होगा अनूप प्रमाण से प्रकट होना। पर अभिधा द्वारा इस प्रकार कहने से वैसी तीव्र अनुभूति नहीं हो सकती। विनयपत्रिका में गोस्वामी जी राम से कहते हैं—

हौं सनाथ ह्वै हौं सही तुमहू अनाथ पति।
जौ लघुतहिं न भितैहौ।।

—विनयपत्रिका।

लघुता से भयभीत होना कैसी विलक्षण उक्ति है। पर साथ ही कितनी सच्ची है। धनवान अमीर गरीब से क्यों बातचीत नहीं करते। उनकी लघुता के भय से ही न। वे यही न डरते हैं कि इतने छोटे आदमी से बातचीत करते देख लोग हमें क्या कहेंगे। अत लघुता से भयभीत होने में एक प्रकार का विरोध सा झलकता होता है। यह हृदय पर बड़ी शक्ति के साथ प्रभाव डालता है।

राम के घर से चले जाने पर कौशिल्या दुःख से विह्वल होकर कहती है—

हो घर रहि मसान पावक ज्यों मरि बोई मृतक दहती है।[2]

---

१ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—उक्ति वैचित्र्य शीर्षक

२. गीतावली—अयोध्याकांड

कौशिल्या को घर श्मशान सा लग रहा है। इस श्मशान की अग्नि में कौशिल्या को भस्म हो जाना चाहिये था। पर वह कहती है कि मुझे भस्म तो हो जाना चाहिये था किन्तु मैंने अपनी मृत्यु का ही सब इसमें जलाया है। भाव तो यह है कि मुझे मृत्यु भी नहीं आती। पर बड़े ही अनूठे ढंग से व्यक्त किया गया है।

यहाँ कौशिल्या जी कहती हैं कि मुझे मृत्यु भी नहीं आती। प्रश्न है कौशिल्या मरती क्यों नहीं इसका कारण भी उन्हीं के मुँह से सुनिये :—

लगइ रहत मेरे नयननि आगे राम लखन अरु सीता।
× × ×
दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे॥

राम लक्ष्मण की मूर्ति हृदय से हटती ही नहीं। बिना उनकी मूर्ति आये मन से रहा ही नहीं जाता और जब उनकी मूर्ति सामने आती है तब दुःख नहीं रह जाता। मरें तो कैसे मरें। ऐसी उक्तियों के हेतु कविवर शेक्सपियर प्रसिद्ध हैं। इस उक्ति में कितना गहरा भाव व्यंग्य रूप में निकलता है।

उक्ति वैचित्र्य में शब्द और अर्थ दोनों के प्रयोग की विलक्षण कलात्मकता काम करती है। कथन के आगे पिछले उलटे सीधे ढंग तुलसी के काव्य में हमें मिलते हैं। जो दूसरे के अन्तःकरण पर स्थायी प्रभाव डालते हैं। इसकी पुष्टि में यह उदाहरण है।

मुनि सुमंत कि आनि सुन्दर सुमन सहित बिमान।
दास तुलसी भयउ मोको मरन अमिय पियाउ॥[1]

यहाँ पर 'मरन अमिय' के विचित्र प्रयोग के साथ भाव की तीव्रता भी दर्शनीय है।

एक और उक्ति है। है तो साधारण। पर बड़ी अपूर्वता के साथ कही गई है।

कियो न कछू करिबो न कछू मरिबोई न कछू रह्यो है।[3]

और सब काम तो मैं कर चुका केवल मरने का काम बाकी है।

एक स्थान पर गोस्वामी जी एक क्रिया के दो कर्म ऐसे लाये हैं जो परस्पर अत्यंत विजातीय होने के कारण बड़े ही अनूठे हैं।

भरत की कुसल अचल ल्याये चलि कै।[4]

भरत की कुशल और पर्वत दोनों साथ लाये। इसमें चमत्कार दोनों वस्तुओं के अत्यन्त विजातीय होने के कारण है। अंग्रेज उपन्यासकार डिकेन्स ऐसे प्रयोग बहुत

---

१ गीतावली २—२१—१७१

२ गीतावली २—२७—४

३ रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास—पृ० १८—उक्ति वैचित्र्य

४ कवितावली लंका २५—पृ० १११—१७ —

पसन्द करते थे। जैसे इस बात ने उसकी आँख से आँसू और जेब से रूमाल निकाल दिया।

मानस की भूमिका में कवि जब राम कथा और राम चरित्र की महत्ता का गान करते हैं तो वह चौपाई के ४८ चरणों में और तीन दोहों में तीन कल्पना चित्रों का प्रयोग करते हैं। समस्त प्रकरण में यह युक्तियाँ एक के बाद एक क्रम से आती हैं। और विशेषता यह है कि राम कथा सम्बन्धी उक्तियाँ स्त्री लिंग की हैं और राम चरित्र सम्बन्धी पुरुष लिंग की। उदाहरण के हेतु निम्नलिखित पंक्तियाँ यथेष्ट होंगी।

> बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि॥
> राम कथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥
> राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
> *सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥*[1]

मानव देह पाकर भी जो हरि भक्ति नहीं करते उनके विरुद्ध कवि की तीव्र भावना पुनः उसी प्रकार से बड़ी सुन्दर पद्धति में व्यक्त होती है। नीचे देखिये राम की भक्ति लोग करें इस बात की प्रेरणा देने के हेतु कवि ने बड़ी विचित्र उक्ति का प्रयोग किया है।

> जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
> नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा॥

धनुर्भंग के अनंतर सीता को छीन लेने के हेतु क्रूर राजाओं के कायर विचार का प्रतिवाद साधु राजाओं द्वारा व्यंग उक्तियों की सहायता से यथाक्रम चौपाइयों के आठ चरणों में व्यक्त किया गया है।[2] पुनः कवि जब अपनी कल्पना की तीव्रता में भरकर राम को दूल्हे के रूप में वर्णन करते हैं तो वह ६ उत्कृष्ट चित्रों का कल्पना करते हैं।

> संकर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
> हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
> निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥
> सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
> रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥
> देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥[3]

पुत्रों के मिथिला से विवाहित होकर लौटने पर गोस्वामी जी माताओं के

---

१ मा० बा० पृ० २८-२९

२ मा० बा० पृ० १८५-८६

३ मा० बा० पृ० २१७

अपार रूप का वर्णन करते हैं। तब वह उस रूप को अर्धालियों के चरणों में ६ उक्ति चित्रों द्वारा बड़ी कलात्मकता से अभिव्यक्त करते हैं।

> पावा परम तत्त्व जनु जोगी। अमृतु लहेउ जनु संतत रोगी॥
> जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा॥
> मूक बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई॥[1]

केवल पांच अर्धालियों और एक दोहे में भी लौकिक असम्भावनाओं की समता का मानव सुख प्राप्ति के हेतु भक्ति के अतिरिक्त अन्य साधनों की असमर्थता बताने मे कवि उक्तियों का वैचित्र्य बड़ी कलात्मक ढंग से लाते हैं।

> कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा॥
> फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
> तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥
> अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥
> हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥
> बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
> बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥[2]

जब भुसुंडि गरुड़ से राम का ऐश्वर्य वर्णन करते हैं तब भी इसी तरह की प्रवृत्ति देखी जाती है। दस अर्धालियां और दो दोहों में ही वह उस ऐश्वर्य की तुलना २४ छोटे बड़े देवताओं में से प्रत्येक की करोड़ों गुनी शक्ति से करते हैं। तब वह यह परिणाम निकालते हैं कि राम की तुलना में सभी देवता इस प्रकार होंगे जैसे सूर्य की तुलना में कोटि शत खद्योत।[3] इस युक्ति में कितनी कलात्मकता और व्यापक शक्ति है।

राजा से राम को वन भेजने के हेतु वर मांगने के कैकेयी के कार्य पर टिप्पणी करते हुए पुनः कवि अपनी इसी प्रवृत्ति का प्रकाशन करते हैं। चार अर्धालियों में कवि रानी के कार्य की समता उन्माद ग्रस्त पांच मनुष्यों के पांच कार्यों से बड़ी ही सुन्दरता के साथ करते हैं। अर्थसमा की व्यंग्यपूर्ण कितनी विचित्र कलात्मक उक्तियां हैं।

> एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
> निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥
> कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥
> पालव बैठि पेड़ एहिं काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
> सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥[4]

---

१ मा० बा० पृ० २४१
२ मा० उत्तर पृ० ७९०
३ मा० उत्तर पृ० ७५६ ५७
४ मा० अयो० पृ० ३४२ ३४३

राम को वन पहुँचा कर लौटते समय सुमंत की विक्षिप्तावस्था के चित्रण में कवि फिर इसी उक्ति का सहारा लेते हैं। चार अर्धालियां और दोहे में कवि अत्यन्त मर्मस्पर्शी उक्त चित्रों का समावेश बड़ा विचित्रता से करते हैं।

मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गँवाई ॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई ॥
बिप्र बिबेकी बेदविद संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति ॥
जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम मन बानी ॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥[१]

परन्तु कवि के उक्ति वैचित्र्य का कदाचित सबसे सुन्दर उदाहरण भरद्वाज द्वारा राम के स्वागत वाक्यों में मिलता है। इस उक्ति में केवल भाव माहात्म्य ही नहीं शब्द भी बड़ी कलात्मकता से दोहराये गये हैं।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥
सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी ॥[२]

अतः तुलसी के काव्य में उक्तियाँ एक के बाद एक एक करके क्रम से आती हैं। यह उनके उक्ति वैचित्र्य की कलात्मकता है।

गोस्वामी जी ऐसे उक्ति वैचित्र्य का कभी भी महत्व नहीं देते जिसके भीतर सत्य का समावेश न हो। अथवा जिसमें जीवन का मार्ग प्रदर्शन करने वाले उदात्त चरित्रों का ग्रहण न हो। उनका उक्ति वैचित्र्य हृदय को रमणीय बना देता है यही उसकी कलात्मकता है।

---

१ मा० अयो० पृ० ३४४
२ मा० अ० पृ० २६६

बारहवाँ अध्याय



तुलसी की कला में प्रभावात्मकता

गोस्वामी जी ने अपने काव्य द्वारा अपने मत का कोई भी सम्प्रदाय नहीं चलाया। यह उनकी उदारता और उनकी कला की एक बहुत बड़ी विशेषता थी। वे सम्प्रदाय से बहुत ऊँचे थे। उन्होंने न तो साम्प्रदायिक आचार्यत्व का प्रदर्शन ही किया और न खण्डन मण्डन की शैली अपना कर वे इधर उधर दिग्विजय ही करते हुए घूमे। उन्होंने कोई भी नई बात कहने का दावा नहीं किया जो कुछ कहा वह श्रुति सम्मत ही कहा। उत्तर कांड में तो उन्होंने स्पष्ट ही कर दिया।

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥[1]

उनकी कला की विशेषता उपयुक्त विषय के संग्रह और अनुपयुक्त विषय के त्याग में थी। गोस्वामी जी का मत तो श्रुति सम्मत है। गोस्वामी जी ने कल्पित मतों को उत्तर कांड में खूब फटकारा है।

दंभिन्ह निज मत कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।[2]

यह तुलसी की कला का एक अभूतपूर्व महत्व है। तुलसी का मत एक मुकुलित मत होकर भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता को भारतीय संस्कृति की नस नस में प्रविष्ट कराके सार्वभौम रूप से विराज रहा है। तुलसी की कला की महत्ता के तीन कारण हैं —

१—बुद्धिवाद और हृदय वाद का सुन्दर सामंजस्य।
२—हिन्दू धर्म का विशुद्ध रूप।
३—विभिन्न सिद्धान्तों का समन्वय।[3]

मैं ब्राह्मण हूँ तू शूद्र है मैं शुद्ध हूँ तू अशुद्ध है इत्यादि कथन को ही सत्य समझ बैठना नितान्त विवेक हीनता है। तुलसी के काव्य में ऐसी विचारधाराओं को कहीं भी प्रश्रय नहीं मिला है। तुलसी के बुद्धिवाद की विशेषता यह है कि उसने अद्वैत मत को भली भाँति अपना लिया है। विचारों की संकीर्णतायें यदि किसी सिद्धान्त

---

१. मा० उत्तर काण्ड पृ० ७६१
२ मा० उत्तर काण्ड पृ० ७६१
३ डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—तुलसी दर्शन—पृ० १५०

द्वारा दूर की जा सकती है तो यह अद्वैत सिद्धान्त ही है। सायुज्य मुक्ति इसी सिद्धान्त की चरम सीमा है। शंकराचार्य की भाँति गोस्वामी जी भी भक्ति की मुक्ति की स्थिरता का प्रधान कारण मानते हैं, पर भक्ति के हेतु ही भक्ति करना अच्छा समझते हैं।

कार्पेन्टर महोदय का यह आक्षेप कि गोस्वामी जी ने पाप के प्रश्न पर विचार नहीं किया। तुलसी के सिद्धान्त का बुद्धिवाद ही ऐसा यदि यह प्रश्न अछूता छोड़ रहता। गोस्वामी जी ने स्पष्ट ही लिखा है —

करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥
काल रूप तिन कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम फल दाता॥

इस असमाधान नश्वर संसार में जहाँ मोह का विध्वंस करके परम शान्ति किस प्रकार प्राप्त की जावे, इसी प्रकार के प्रश्न के समाधान में तुलसी की सम्पूर्ण बुद्धि वाद लगा हुआ है।

बुद्धिवाद नहीं अपितु हृदयवाद की पहली विशेषता है अभिलषित विषय की ओर लगन। उसकी दूसरी विशेषता है इस सम्बन्ध की बाधक परिस्थितियों में भी अविचलता। उसकी तीसरी विशेषता है प्रतिकूल विषयों के त्याग के अर्थ पर्याप्त मनोबल। गोस्वामी जी के हृदयवाद की पहली दो विशेषतायें अनुराग के विवेचन में और तीसरी विशेषता वैराग्य के विवेचन में पूर्णता से लक्षित हो रही है।

राम भक्ति के बाधक जितने भी पदार्थ हैं उन सभी से मुँह मोड़ लेने में उन्हें जरा-सी भी हिचक नहीं होती। हृदयवाद की विशेषता है सहज स्नेह की व्यापकता। हमारे हृदय में लोक कल्याण का वास्तविक भाव कविता के रूप में प्रकट होता है। लोक कल्याण की भावना ही तो मानस में आदि से अन्त तक व्याप्त रही है। कहा भी है—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥[1]

गोस्वामी जी हृदयवाद और बुद्धिवाद के रूप को ही स्पष्ट करके नहीं रह गए वरन् उन्होंने इन दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य भी किया है। जैसे तर्क और श्रद्धा विरक्ति और आसक्ति।

गोस्वामी जी की काव्य कला की प्रभावात्मकता का दूसरा कारण यह है कि उनकी रचनाओं में हिन्दूधर्म का विशुद्ध रूप मिलता है।

सनातन हिन्दु धर्म में भारतीय संस्कृति और मानव धर्म दोनों का ही मेल है। गोस्वामी जी कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥[2]

---

१ मा० बा० पृ० १२
२ मा० कि० पृ० ३११

इतना ही नहीं वे तो जड़ को भी आदर देते हैं—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि।
बंदउ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥[1]

गोस्वामी जी ने वर्तमान जाति प्रथा के विरुद्ध कोई भी तीखी उक्ति नहीं की। पर उनके मत से जन्म चाहे जिस भी कुल में हो पर कर्म से हर कोई व्यक्ति उच्च वर्ग की बराबरी कर सकता है। कहा है—

आभीर यवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥[2]

हिन्दू धर्म पर बहुत अधिक संख्या में हुये आक्रमणकारियों के आघातों से बचाने के हेतु उन्होंने युगधर्म वर्णन जिस सुन्दरता से किया है। वह तो देखने की चीज है। तुलसी के काव्य में न केवल मानव धर्म और मानव संस्कृति की ही बहुत सी श्रेष्ठ बातें हैं वरन् उसमें गीता से लेकर गांधीवाद तक के निम्नलिखित सिद्धान्त क्रीड़ा कर रहे हैं—

१—गीता का समन्वयात्मक योग
२—बौद्धों और जैनों का अहिंसावाद
३—वैष्णवों और शैवों का अनुराग वैराग्य
४—शाक्तों का जप
५—शंकराचार्य का अद्वैतवाद
६—रामानुज की भक्ति भावना
७—निम्बार्क का द्वैताद्वैत भाव
८—मध्व की रामोपासना
९—चैतन्य का प्रेम
१०—नाथादि योगियों का जप
११—कबीर आदि संतों का नाम माहात्म्य
१२—राम कृष्ण परमहंस का समन्वयवाद
१३—ब्रह्म समाज की ब्रह्म कृपा
१४—आर्य समाज का धर्म संगठन
१५—गांधीवाद का सत्य अहिंसा
१६—मुसलमानों का मानस बंधुत्व
१७—ईसाइयों का श्रद्धा तथा वात्सल्य पूर्ण सदाचार।

तुलसी की कला की महत्ता का एक मूल कारण यह भी है कि उनकी रच नाओं में धर्म के मूल रूप के दर्शन होते हैं। गोस्वामी जी के कथन का ढंग इतना

---

१ मा० उत्तर पृ० ६
२. मा० उत्तर पृ० ७६६

महत्वपूर्ण है कि यह कहना कठिन हो जाता है कि उनकी कला की असामान्य लोक प्रियता का कारण उनका तुलसी भक्त है अथवा उनका काव्य कौशल। तुलसी के भक्त और कवि दोनों रूपों ने ही उनकी कला को अति लोक रंजक रूप प्रदान किया है।

भारतीय संस्कृति की वे कीर्ति हैं वे सच्चे साधु हैं निश्छल भक्त हैं, छिपे हुये शिक्षक हैं और धीमें सुधारक हैं। स्वर्ग की सुधा का बहाव गोस्वामी जी की कला में पग पग पर झलकता है।

विश्व के तमाम रंगों से चित्रित और अलौकिक चमत्कार से भरी होने पर भी गोस्वामी जी की सारी शक्तियाँ स्थल स्थल पर एक-एक करके निकल कर मोर के पंखों की भाँति समाकर फैलाती चली जाती हैं। जीवन की कला को चमत्कृत कर उसमें अपूर्व सौन्दर्य लाती हैं। गोस्वामी जी का ज्वालामुखी फूट नहीं निकलता। उस पर आवश्यकता का मोटा तवा रखा हुआ है। यह अवरोध केवल उसी समय प्रकम्पित हो उठता है जब भक्ति निर्झरणी दैन्य के पुलिन से होकर ज्वाला पर चल से जा गिरती है और सारी विह्वलता लिये हुए आत्मा ऊपर की ओर उठती है तब कवि अपनी वैयक्तिक भावना की पावन भूमि पर पहुँच जाता है और मार्ग में ऐसा प्रकाश विकीर्ण करता है कि अन्धों को भी चलने का सहारा दिखलाई देने लगता है। यही कला में प्रभावात्मकता का मूल रहस्य है।

तुलसी हमारी हिन्दी के ही नहीं विश्व के श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी और उनकी कला की लोक प्रियता के बारे में कुछ भी कहना व्यर्थ है। तुलसी ने सर्व प्रथम हमारे देश के जन साधारण के हृदयों को जीता। जिससे स्पष्ट है कि उनकी कृतियों में लोक साहित्य के अद्भुत गुण हैं। आज तुलसी की कीर्ति कौमुदी विश्व के अन्य देशों में भी फैल चुकी है।

महात्मा तुलसीदास की कला का आकार क्षेत्र इतना व्यापक और गम्भीर है कि उसके गर्भ में न जाने कितने गम्भीर रत्न छिपे हैं। जिसके उद्घाटन और उन्मेषण के हेतु कितने ही अध्यवसायी विवेकशील मनग्राही एवं कला निपुण जौहरियों की आवश्यकता होगी। ज्यों ज्यों हमारे नेत्रों में ज्ञानार्जन का योग होगा त्यों-त्यों वे मणि माणिक्य सूझ पड़ेंगे ऐसी स्थिति में विश्व कवि कुल कमल दिवाकर की कला सम्बन्धी मैंने सभी विशेषतायें ढूँढ निकाली हैं ऐसा कहना बालू पर भीति उठाना मात्र ही होगा।

गोस्वामी जी की रुचि यथार्थ चित्रण की ओर थी। वे कवि के अतिरिक्त एक मनोद्रष्टा के रूप में भी हमारे समक्ष आते हैं। राम कथा के मार्मिक स्थलों का पहिचानने और उनकी विशद व्यंजना करने में उनका कवि हृदय सदैव मग्न रहा है। कथा के विभिन्न पात्रों के चरित्र चित्रण में भी उनकी प्रतिभा अप्रतिम है। उनके चित्रों में असंगति कुरुचि का अभाव चमत्कार प्रियता अस्वाभाविकता आदि वे दुर्गुण नहीं मिलते जो हिन्दी साहित्य के अन्य छोटे बड़े कवियों में पाये जाते हैं।

इसका कारण उनकी रचनाओं की कला में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक प्रभाव क्षमता आई है। उनकी रचनाओं में उक्ति वैचित्र्य की भी न्यूनता नहीं। वे भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाले कवि हैं।

यह कथन निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिनकी कृतियों में उनके व्यक्तित्व की छाप हो। तुलसी की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप है। यह छाप हमें सुस्पष्ट रूप से तब समझ पड़ती है जब हम उनकी उक्तियों के समक्ष दूसरे की उक्तियों को रखकर देखते हैं। तुलसी काव्य कला के प्रत्येक पक्ष के विशेषज्ञ हैं जैसा हम इस प्रबन्ध में स्पष्ट कर चुके हैं।

तुलसी ने अपने जीवन सम्बन्धी आदर्शों में समन्वय के सिद्धान्त को अपनाया है जो बहुत कुछ लोगों के भाग पर निर्भर है। अलंकारों में भी उन्होंने परम्परागत उपमानों का जो प्रयोग किया है और लोक जीवन सुलभ उपमानों को ग्रहण किया है। अतः उनकी कला में लोक कला और शास्त्रीय कलाओं दोनों का ही अद्भुत योग है।

तुलसी की कला की सबसे प्रमुख विशेषता स्वाभाविकता और सरलता है। तुलसी के काव्य की स्वाभाविक सरलता का तथ्य यही है उनके पास इतने महान गम्भीर भाव विचार और अनुभूतियाँ हैं कि वे उन्हें सभी के समक्ष पूर्ण और स्पष्ट रूप में रखना चाहते हैं। अतः उनकी कला में दुरूहता नहीं। इस क्षेत्र में तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने पद्य को भी सुन्दर काव्य रचना में ढाल दिया है कि वह हमारे बोल चाल के गद्य से भी अधिक सुलझी हुई प्रतीत होती है। पद्य में तुलसी ने जितनी सरलता से भावों की अभिव्यक्ति की है उतनी सरलता से यदि गद्य में करना चाहें तो नहीं कर सकते। यह बात मानस के वर्णनों और संवादों में स्पष्ट है। लोक जीवन के देखे सुने पदार्थों और व्यापारों से उपमान रूपकों और प्रतीकों के चुनने के प्रयत्नों के द्वारा भी गोस्वामी जी ने अपनी कला में सरलता और स्वाभाविकता की सृष्टि की है।

तुलसी की कला की दूसरी विशेषता प्रभावोत्पादकता है। तुलसी ने जिस दृश्य जिस चित्र जिस भाव का वर्णन किया है उसे हमारे नेत्रों के समक्ष सजीव भी कर दिया है। वह चित्र भाव या दृश्य हमारे ऊपर जो प्रभाव डालता है। यही तुलसी की लोक प्रियता का रहस्य है। यह प्रभावात्मकता हम कई बातों में पाते हैं। उनमें से शब्द संघटन और उनका मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रमुख है। इन दोनों का ही विस्तार विवेचन 'शब्द प्रयोग सम्बन्धी कला' और 'भाव वर्णन तथा रस निरूपण' शीर्षक में यथास्थान विस्तार से किया जा चुका है।[1]

---

1 "Tulsidas, although not overse to using the conventional language of Indian poets in many passages is rightly praised because his narrative teems with similies drawn not from the traditions of the schools, but from nature herself and better than Kalidas at his best."

—V A Smith—Akbar the great Moghul—Page 420

तुलसी की कला की तीसरी विशेषता यह कि वह मर्यादा पूर्ण तथा औचित्य और सुरुचि सम्पन्न है। इसको भी वृहत् विवेचना 'तुलसी की कला में मर्यादा और औचित्य' शीर्षक के अन्तर्गत की जा चुकी है। अतएव यहाँ इसका संकेत भर ही पर्याप्त है। चौथी विशेषता यह है कि तुलसी की कला बड़ी उदात्त है। वह हमें सत् प्रेरणा प्रदान कर हमारी भावनाओं का संस्कार करती है।

गोस्वामी जी ने भग्न हृदय जन समाज को आत्म बल दिया और निराशापूर्ण जीवन के हेतु आशा से उत्फुल्ल उदात्त रूप सामने रखा जिससे वह ऐहिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के संकटों का सामना करने में समर्थ हुआ।

तुलसी के मानस से जो शक्ति शील और सौन्दर्य की स्वच्छ धारा निकली उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति में प्रविष्ट हो भगवान रूप के दर्शन कराये। मानस की इसी व्यापकता ने तुलसी को सभी के हृदय का इष्टदेव बना दिया। जनता के हृदय पर सबसे विस्तृत अधिकार रखने वाले गोस्वामी तुलसीदास ही हैं। जिसे शुक्ल जी ने भी स्वीकार किया है। इस अद्वितीय कलाकार के सम्बन्ध में ठीक ही कहा गया है।[1] तुलसी का कवित्व स्वयं ही उनके चरणों पर नत हुआ।

गोस्वामी जी की कृतियों में विलक्षण जागरूकता और भावुकता तथा सक्रिय मननशीलता है। उनकी भावुकता और तीव्र भाव व्यंजना में पग-पग पर मर्यादा की अनूठी झिझक दृष्टिगोचर होती है। भावुकता में भोलापन और जागरूकता में धीमी गति है। उनकी पहली कृतियों की प्रभा लजीली है। उनमें विलास का प्रतिबिम्ब तो है किन्तु वासना नहीं। अन्तिम रचनाओं में असमर्थता नहीं किन्तु स्पष्ट पुकार है। गोस्वामी जी इस बात के लिये भी प्रसिद्ध हैं कि उनके काव्य में कहीं पर भी अस्पष्टता अश्लीलता नहीं आई।

संक्षेप में तुलसी निसर्ग सिद्ध प्रतिभा वाले क्रांति दर्शी कवि थे। स्वान्तः सुखाय' काव्य रचना में लीन होने पर भी कला के समस्त बाह्य उपकरण उनकी कृतियों में इतने प्रचुर परिमाण में प्रविष्ट हो गये हैं कि उनकी समता हिन्दी का लगभग सभी साहित्यों का कोई भी एक कवि कर ही नहीं सकता। भाषा भाव शैली अलंकार, रस सभी गुण चित्रकारी के उस स्तर पर प्रदर्शित किया गया है जहाँ पर पहुँचना दूसरों के हेतु कठिन है।

निस्सन्देह महाकवि तुलसी की अवतारणा हमारे साहित्य के इतिहास की एक क्रांतिकारी घटना है। उनके कवि व्यक्तित्व को अहर्निशता में कसने वाले तो बहुत से हैं किन्तु उनसे स्पर्धा कर सकने का सौभाग्य पाने वाला हिन्दी साहित्य में दूसरा कोई भी महाकवि अब तक दृष्टिगोचर नहीं होता। आचार्य विनोबा भावे ने उन्हें

---

१ कविता करके तुलसी न लसे कविता लसी पा तुलसी की कला।

—हरिऔध

हिन्दी का सर्व श्रेष्ठ कवि ही नहीं उत्तर भारत का महानतम संत भी स्वीकार किया है।

निस्सन्देह गोस्वामी जी की कविता सभी गुणों से विभूषित है। इन्होंने वर्डसवर्थ के समान प्रकृति प्रयोगों से पाठ ग्रहण किया है। आप सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि शेक्सपियर के तुल्य प्रकृति तथा मानवी स्वभाव के बड़े पक्के ज्ञाता थे। ऐसा इनके मानस के अनुवादक ग्राउस साहब ने भी स्वीकार किया है। इनकी विलक्षण बुद्धि कभी नदियों तथा सरोवरों के तटों पर विचरण कर कभी पर्वतों पर चढ़कर कभी वनों में प्रवेश कर कभी आकाश में उठकर कभी समुद्रों में पैठकर और कभी पुरातन संस्कृत साहित्य की वाटिकाओं में भ्रमण कर सब स्थानों से सुन्दर उपयुक्त सामग्रियाँ एकत्रित करती गई है और इन्होंने उसके सहारे अपनी कविता वनिता को सुन्दर संवार कर शृंगार से सुसज्जित किया है। अपने राम नाम का वस्त्र पहना कर विलक्षण ललित उपमाओं की माला गूँथ कर और विविध अनुप्रासों की बिंदी जोड़ कर उसके गले की शोभा बढ़ाई है। ध्वनि और व्यंग्य की करधनी तथा कड़े छड़े भी डाल दिये हैं। अलंकारों की किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं रक्खी है। चरणों में विविध ललित गति भी दिखलाई है। हास की किरण छटा भी छिटकाई है। रौद्र तथा वीर का अंकुश भी लगाया है। अद्भुत रूपकों का अद्भुत अंबर पहना कर उसके चन्द्र मुख पर मर्यादा का अवगुण्ठन डाल कर उसकी विश्व मोहिनी मूर्ति खड़ी कर दी है। जो अपनी माधुरी से अखिल सभी को मोहित कर देती है। सारांश यह है कि हम गोस्वामी जी की कविता में कला को जिस रूप में भी देखते हैं उसे सर्व गुण सम्पन्न पाते हैं।

अतएव तुलसीदास जी निर्विवाद रूप से विश्व के कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। इनका मानस गहरे अध्ययन के हेतु गीता के समान ही मूल्यवान है।[1] फिर भी यद्यपि रामायण विद्वत्ता से पूर्ण है। किन्तु उसके भक्ति के प्रभाव के मुकाबले उसकी विद्वता का कोई भी महत्व नहीं रहता।[2] इसी प्रकार गोस्वामी जी के मानस तथा उनके सम्बन्ध में कुछ सम्मतियाँ यहाँ उद्धृत कर देना उचित जान पड़ता है। जो सनातनी हिन्दू हैं उनकी सम्मतियाँ कदाचित पक्षपात पूर्ण मानी जा सकती हैं। इसलिये हम यहाँ उन सज्जनों की सम्मतियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं जो या तो सनातनी हिन्दू हैं ही नहीं या उनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।

अब्दुर रहीम खान खाना का कथन है कि —

---

१ गांधी विचार दोहन—पृ० ३
२ महात्मा गांधी का धर्म पथ—पृ० १२२

राम चरित मानस बिमल संतन जीवन प्रान।
हिन्दुवान को बेद सम जमनहिं प्रगट कुरान॥[१]

फोर्ट विलियम के मुंशी सदानन्द लाल जो लिखते हैं…… उनके उपदेश सचमुच ही दार्शनिक ठोस और अनुकरणीय हैं।…… उनकी विचार धारा बहुत ही उत्कृष्ट है। शैली अत्यन्त शुद्ध और भाषा प्रवाहशालिनी है। इनको संसार के सभी विद्वान स्वीकार करते हैं।[२]

श्री ग्रोस्टसन महोदय की उक्ति है कि आधुनिक काल में जितने वैष्णव तथा सुधारक हुए और उनमें जो आध्यात्मिक उल्लास और आकांक्षा के भाव फैले उसमें गोस्वामी जी की रामायण एक बहुत उत्कृष्ट और दिव्य संगीत की भांति अपना मस्तक ऊँचा किये है।[३] की साहब की राय है कि हिन्दी साहित्य में गोस्वामी जी का स्थान निस्सन्देह बड़ा सर्वोच्च है और उनकी रामायण न सिर्फ भारत में ही बल्कि सारे संसार में प्रसिद्ध है। वह यथार्थ ख्याति के योग्य है।[४]

मैकफी साहब का निर्णय है कि गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों में भक्ति का जो उच्च और विशुद्ध भाव आता है उससे बढ़कर और कहीं भी दिखलाई नहीं देता।[५]

हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तों और उनकी संस्कृति का सर्वोत्तम सुन्दर चित्र जैसा रामायण में मिलता है। वैसा शायद और किसी भी ग्रन्थ में न होगा।[६]

गोस्वामी जी अपनी रचनाओं में कोई भी ऐसी बात नहीं कहते जो पाठक को अप्रिय प्रतीत हो।[७]

वे भारत के सर्व साधारण समाज को लेकर चलते हैं।[८] वे विश्व कोष का

---

१ कल्याण के रामायणांक पृ० २११ में श्री बाबूराम जी विनायक ने यह दोहा लिखा है इसे हमने रहीम के किसी ग्रन्थ में नहीं देखा। मुझको भी ये भी इसे संदिग्ध ही स्वीकार है।

२ यह अनुवाद हमने कलकत्ते की Imperial Liberary में देखा है। यह बहुत भ्रमात्मक है। केवल एक वचन का हल्योद्धार है इस कारण हमने यह सम्मति यहाँ दी है। तुलसी दर्शन—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

3 Hindi Literature—Key—Page 47

4 Central Theme—Page 16

5. भूमिका

6 Central theme Page 16

7 Central theme Page 215

८ यह पांचों उदाहरण डा० जे० एम० मैकफी एम० ए० पी-एच० डी० की The Ramayan of Tulsidas or the bible of northern India नामक पुस्तक से लिये गये हैं। यह ग्रन्थ १९१० में एडिनबर्ग में छपा है। इसे हमने कलकत्ते की Imperial Liberary में देखा है

उदाहरण स्वरूप एक विद्वान कहते हैं कि गोस्वामी जी की रचना जन समाज के इतने अनुकूल पड़ी है कि उनके वचनों को जनता कहावतों के रूप में इस्तेमाल करती है। इतना ही नहीं बल्कि सैद्धान्तिक दृष्टि से भी उनकी रचना बड़ी उत्कृष्ट है। वर्तमान समय में हिन्दुत्व के अन्दर जो उपदेशों का प्रभाव है वह अन्य किसी का भी नहीं। अन्य साम्प्रदायिक साधुओं की भांति उन्होंने अपना कोई भी निज का सम्प्रदाय नहीं बनाया। तथापि उत्तर भारत की समस्त हिन्दू जनता उनको अपने चरित्र निर्माण और धार्मिक कार्यों में एक बहुत ही प्रामाणिक पथ प्रदर्शक मानती है।[1]

भारत में करोड़ों पढ़ी और बेपढ़ी जनता में तुलसी की रामायण का इतना प्रचलन है जितना सामान्य ईसाइयों में भी बाईबिल का भी नहीं।[2]

तुलसी की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और मैं इसे अद्वितीय मानता हूं।[3]

किसी भी श्रेणी का हिन्दू हो वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है। सम्पत्ति में विपत्ति में, घर में वन में रण क्षेत्र में आनन्दोत्सव में जहां देखिए वहीं राम। गोस्वामी जी ने समस्त उत्तर पथ के लोगों को राम मय कर दिया। गोस्वामीजी के वचनों में जो हृदय को स्पर्श करने की शक्ति है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी की प्रेरणा से आज हिन्दू जनता शौर्य पर मुग्ध होती महत्व पर श्रद्धा करती शील की ओर प्रवृत्त होती है। सन्मार्ग पर पैर रखती है। विपत्ति में धैर्य धारण करती है। कठिन कर्म में उत्साहित होती है। व्यथा से आर्द्र होती है। बुराई पर ग्लानि करती है। शिष्टता का आलम्बन लेती है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करती है।[4]

अतः गोस्वामी जी के हृदय रूपी मानस से पवित्र और निर्मल कविता रूपी भगवती का राम यश रूप मधुर जल से आप्लावित ऐसा निःश्रोत प्रवाहित हुआ जो लोक और वेद की मर्यादा रूप दोनों कूलों की रक्षा करते अमूर्त कल घटों को साथ लिये समाज की कुरीति रूप मैल और अशुद्धियों को धोते दुष्ट और वञ्चकों की कुटिल नीति एवं पाखंड के प्रबल खंडन रूप वज्र के साथ वेदादि शास्त्रों के मनोहर उपदेशों और वर्णन रूप जलोपचारों से होते पौराणिक उपकथानक रूप धारा नदी को छोड़ते महान पुरुषों के वर्णन और आख्यायिका रूप सहायक नद और नदियों को लिये अगणित जिज्ञासु रूप पथिकों को परितृप्त करते हुये राम भक्ति रूप अथाह समुद्र में पहुंच आनन्द की उर्मियों में विराम पा गया। यही सब कारण है जिनके कारण तुलसी की कला में जो प्रभावात्मकता आई है वह अद्वितीय है। जिस प्रभावात्मकता का ही कारण है कि रूस और इंगलैंड में मानस का अनुवाद हो चुका है और वह विदेशी विद्वानों द्वारा प्रशंसा का कोष सा बन गया है।

---

1. Theology of Tulsidas Page 2
2. Incyclopidia of Religion and Ethics—Page 1921
3. महात्मा गांधी—धर्म तत्व पृ० ७५
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—प्रस्तावना—पृ० ४

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ—

१—अग्नि पुराण
२—अध्यात्म रामायण
३—अमरकोष—अमरसिंह
४—औचित्य विचार्य—क्षेमेन्द्र
५—उत्तर रामचरित—भवभूति
६—कामसूत्र—वात्स्यायन
७—काव्यदर्पण—रामदहिन मिश्र
८—काव्यादर्श—दण्डी
९—काव्यानुशासन—हेमचन्द्र
१०—काव्यालंकार—रुद्रट
११—काव्यालंकार—भामह
१२—काव्यालंकार—सूत्रवृत्ति—वामन
१३—काव्यप्रकाश—मम्मट
१४—कुमार संभव—कालिदास
१५—छान्दोग्योपनिषद्
१६—जैन पुराण
१७—धर्म सूत्र—गौतम
१८—धर्म सूत्र—बौधायन
१९—धर्म सूत्र—वशिष्ठ
२०—ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धनाचार्य
२१—ध्वन्यालोक लोचन—अभिनवगुप्त आचार्य
२२—नाट्यशास्त्र—भरत मुनि
२३—नारद सूत्र—नारद
२४—नीतिशतकम्—भर्तृहरि
२५—पाणिनीय शिक्षा
२६—प्रसन्न राघव
२७—मनुस्मृति—मनु
२८—महाभारत—व्यास
२९—मेदिनी कोश—मेदिनी
१०—यजुर्वेद
११—याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र—याज्ञवल्क्य
१२—रघुवंश—कालिदास

३३—रसगंगाधर—पंडितराज जगन्नाथ
३४—ऋग्वेद
३५—वक्रोक्ति जीवितम्—कुन्तक
३६—वाल्मीकि रामायण—वाल्मीकि
३७—विष्णु पुराण
३८—विष्णु स्मृति
३९—शतपथ ब्राह्मण
४०—शिव पुराण
४१—शिवसूत्र विमर्शिनी
४२—श्रीमद्भागवत—व्यास
४३—श्रीमद्भगवद्गीता—व्यास
४४—श्रुत बोध
४५—साहित्य दर्पण—विश्वनाथ
४६—हनुमन्नाटक

हिन्दी ग्रन्थ—

१—अध्ययन—साहित्यिक सामाजिक और सांस्कृतिक निबन्ध—डा० भगीरथ मिश्र
२—आधुनिक काव्य में छन्द योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल
३—अलंकार पीयूष—डा० रसाल
४—कवितावली—तुलसीदास
५—कवितावली—टीकाकार चन्द्रशेखर
६—कविता में प्रकृति चित्रण—तरुण
७—कवि परिपाटी—दिवाकर मणि त्रिपाठी
८—कला का विवेचन—मोहनलाल महतो
९—कला दर्शन—सचोरानी
१०—काव्य कल्पद्रुम—कन्हैयालाल
११—काव्य कला और शास्त्र—रांगेय राघव
१२—काव्य कला—गोपालदास घमा
१३—काव्य निर्णय—भिखारीदास
१४—काव्य और संगीत—लक्ष्मीधर
१५—काव्य कला तथा अन्य निबन्ध—बाबू जयशंकर प्रसाद
१६—काव्य में रहस्यवाद—रामचन्द्र शुक्ल
१७—काव्य चिन्तन—डा० नगेन्द्र
१८—काव्यशास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र
१९—काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र

२०—कामायनी—बाबू जयशंकर प्रसाद
२१—कालिदास और शेक्सपियर—[illegible]
२२—कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत—डा० उषा गुप्ता
२३—गांधी विचार दोहन
२४—गीतावली—तुलसीदास
२५—गीतावली—टीकाकार बैजनाथ
२६—गोस्वामी तुलसीदास—डा० श्यामसुन्दर और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
२७—गोस्वामी तुलसीदास—शिवनन्दन सहाय
२८—चिन्तामणि—रामचन्द्र शुक्ल
२९—जानकीमंगल—तुलसीदास
३०—जायसी ग्रंथावली—संपादक रामचन्द्र शुक्ल
३१—तुलसी—परशुराम चतुर्वेदी
३२—तुलसी—रामबहोरी शुक्ल
३३—तुलसी—रमेशचन्द्र गुप्त
३४—तुलसी ग्रंथावली दूसरा खंड—प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा
३५—तुलसी और उनका काव्य—सत्य नारायण
३६—तुलसी एक अध्ययन—माताप्रसाद गुप्त
३७—तुलसी का पर्यवेक्षणात्मक अध्ययन—प्रो० कुमार
३८—तुलसी की समन्वय साधना भाग १—राजेन्द्रसिंह
३९—तुलसी की समन्वय साधना भाग २—राजेन्द्रसिंह
४०—तुलसी के चार दल—सद्गुरुशरण अवस्थी
४१—तुलसी सन्दर्भ—माताप्रसाद गुप्त
४२—तुलसी साहित्य और सिद्धान्त—यज्ञदत्त
४३—तुलसी साहित्य की भूमिका—भटनागर
४४—तुलसी साहित्य रत्नाकर—रामचन्द्र द्विवेदी
४५—तुलसी सूक्ति सुधा—वियोगी हरि
४६—तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त
४७—तुलसीदास—चन्द्रबली पांडे
४८—तुलसीदास और उनका युग—डा० राजपति दीक्षित
४९—तुलसीदास और उनकी कविता—रामनरेश त्रिपाठी
५०—तुलसीदास और उनके ग्रंथ—भगीरथ प्रसाद दीक्षित
५१—तुलसीदास की भाषा—डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव
५२—तुलसी—भारतभूषण सरोज
५३—तुलसी मानस रत्नाकर प्रकाशित—भाग्यवती सिंह
५४—तुलसी रसायन—डा० भगीरथ मिश्र
५५—[illegible]

५६—तुलसी ग्रन्थार्थ प्रकाश—जयगोपाल
५७—दीप शिखा—महादेवी वर्मा
५८—दोहावली—तुलसीदास
५९—धर्म तत्व—महात्मा गांधी
६०—धर्म पथ—महात्मा गांधी
६१—नवरत्न—मिश्रबन्धु
६२—प्रकृति और काव्य—डा० रघुवंश
६३—प्रबन्ध प्रतिमा—सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
६४—पृथ्वीराज रासो—चन्दबरदाई
६५—पल्लव प्रवेश—सुमित्रानन्दन पन्त
६६—पार्वती मंगल—तुलसीदास
६७—बिहारी सतसई—टीकाकार रामवृक्ष बेनीपुरी
६८—भारतीय साहित्य शास्त्र—बलदेव प्रसाद उपाध्याय
६९—(तुलसी) मकरन्द—डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
७०—महाकाव्य का स्वरूप और विकास—डा० शम्भुनाथ सिंह
७१—महादेवी जी का विवेचनात्मक गद्य
७२—मानस का अनुवाद—निराला
७३—मानस का कला शिल्प—डा० रांगेय राघव
७४—मानस की कथा—सिहल
७५—मानस की रूसी भूमिका—अनुवादक डा० केसरी नारायण शुक्ल
७६—मानस कोष—रघुनन्दन दास
७७—मानस प्रबोध—विशेश्वरदत्त मिश्रा
७८—मानस पीयूष—अंजनी नन्दन शरण
७९—मानस व्याकरण—विजयानन्द त्रिपाठी
८०—मानस महत्व—मीरानन्द शर्मा
८१—मानस मीमांसा—रजनीकांत शास्त्री
८२—मानस में राम कथा
८३—मानस रहस्य—दीन
८४—मानस दर्पण—चन्द्र मौलि शुक्ल
८५—मानस दर्शन—डा० कृष्णलाल
८६—मिश्र बन्धु विनोद—मिश्र बन्धु
८७—मूल गोसाईं चरित—बेनी माधवदास
८८—रवीन्द्र ग्रंथावली भाग १
८९—रसज्ञ रंजन—महावीर प्रसाद द्विवेदी
९०—राम चरित मानस—तुलसीदास
९१—राम चरित मानस—तुलसीदास गीता प्रेस गोरखपुर
९२—राम चरित मानस—कौशलशरण
९३—राम चरित मानस—टीकाकार रंग बहादुर सिंह
९४—राम चरित मानस—टीकाकार श्यामसुन्दर दास

९५—राम चरित मानस—विजयानन्द श्री त्रिपाठी
९६—राम चरित मानस—टीकाकार मालवीय
९७—रामचरित मानस का पाठ—डा० माताप्रसाद गुप्त
९८—रामचरित मानस की भूमिका—रामदास गौड़
९९—राम रसायन—रसिक बिहारी
१००—रामलला नहछू—तुलसीदास
१०१—रामाज्ञा प्रश्न—तुलसीदास
१०२—ब्रजभाषा व्याकरण—डा० धीरेन्द्र वर्मा
१०३—बरवै रामायण—तुलसी
१०४—विनय कोष—महावीर प्रसाद मालवीय
१०५—विनय पत्रिका—तुलसीदास
१०६—विनय पत्रिका—तुलसीदास—टीकाकार देवकीनारायण द्विवेदी
१०७—विनय पत्रिका—तुलसीदास—टीकाकार वियोगी हरि
१०८—विनय पत्रिका दर्शन—चतुर्वेदी
१०९—विश्व साहित्य में रामचरित मानस—समसोखा
११०—वैराग्य संदीपिनी—तुलसीदास
१११—भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त—डा० गोविन्द त्रिगुणायत
११२—श्रीकृष्ण गीतावली तुलसीदास
११३—संगीत रत्नाकर—शार्ङ्गदेव
११४—संगीत पारिजात
११५—संगीत दर्पण
११६—संगीत माकर
११७—संगीत शास्त्र—पं० विष्णु नारायण भातखंडे
११८—समाज और साहित्य—आनन्द कुमार
११९—समालोचना शास्त्र—रघुनाथ प्रसाद साधक
१२०—साहित्य जिज्ञासा—ललिताप्रसाद सुकुल
१२१—साहित्य का मर्म—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१२२—साहित्य दर्शन—शची रानी गुर्टू
१२३—साहित्य विवेचन—क्षेमचन्द्र सुमन
१२४—साहित्य साधना और समाज—डा० भगीरथ मिश्र
१२५—साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दरदास
१२६—साहित्य दर्शन—शची रानी गुर्टू
१२७—सिद्धान्त और अध्ययन—गुलाबराय
१२८—सूर सागर—सूरदास
१२९—सूर की भाषा—डा० प्रेम नारायण टंडन
१३०—हिन्दी काव्य और प्रवृत्ति—पी एनसट

१११—हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण—डा० किरणकुमारी गुप्ता

११२—हिन्दी भक्ति काव्य—भटनागर

११३—हिन्दी छन्द प्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री

११४—हिन्दी महाकाव्य में नायक—डा० पुष्पलता निगम

अंग्रेजी ग्रन्थ—

1 Aesthetic—Benedetto Croca
2. A Grammar of Hindi Language—Kellog
3 Akbar the great Moghul—V A. Smith
4 A Study in epic development—Irene T Myers.
5 A Study of Hindi Literature—F E. Keay
6 Best quatations for all occassions.
7 Comparative Grammar of modern Languages—Beames.
8. Encyclopidia of Religion and Ethics
9 Essay on Education—Milton
10 Evolution of Awadhi—Dr Babu Ram Saxena
11 From Virgil to Milton—C M Bowra
12. Hindi Literature—Prof Key
13 Illussion and Reality—Candwell
14 Index Verborum of the Ramayan of Tulsidas—
Dr Suryakant
15 Indian Antiquiry—Dr Grierson
16 Loci Critic—George Saintsbury
17 Manual of English Prose—Minto
18 Notes of the grammar of Ramayan of Tulsidas—
Gorge Grierson
19 Oxford Lectures on Poetry—A. C. Bradley
20 Personality—Sri Ravindra Nath Tagore
21 Poetics—Aristotle
22. Principle of Literary Criticsm—I A Richards.
23 The Art of Poetry translated by Bywater—Aristotle.
24 The Epic on Essay—Abercromlie
25 The New Dictionary of Thoughts.
26 The Philosophy of fine art—G W Hegel
27 The Pocket books of quotations—Henry David
28 The principle of English Metre—Egerton
29 The Problem of Style—Murrey
30 The Ramayan of Tulsidas or the bible of Northern India—
Dr T M. Macfee.
31 Theology of Tulsidas—Carpentar
32. *Valets lates Camallra Quatations*
33 What is Art—Tolstoy